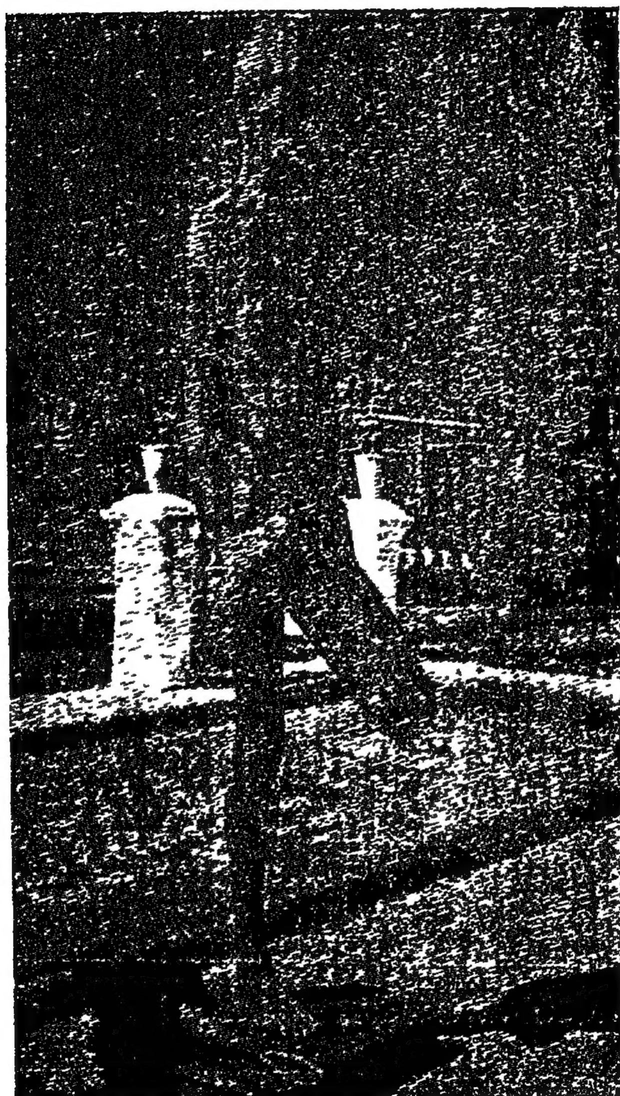
परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती

आचार्य श्री १०८ शान्तिसागर जी महाराज



जन्म :
आषाढ़ कृष्णा ६
विक्रम सं० १९२९

समाधि :
द्वितीय भाद्रपद शुक्ला २
विक्रम सं० २०१२



पूज्य आचार्यकल्प श्री १०८ चन्द्रसागर जी महाराज (ध्यानावस्था में)

परम पूज्य आचार्य कल्प श्री १०८ चन्द्रसागर जी महाराज



जन्म
माघ कृष्णा त्रयोदशी
वि० सं० १९४०

समाधि
फाल्गुन शुक्ला पूर्णिमा
वि० सं० २००१



पूज्य आचार्य कल्प श्री १०८ चन्द्रसागर जी महाराज (चर्या करते हुये)



पूज्य आर्यिका-रत्न श्री १०५ इन्दुमती माताजी



विदुषी रत्न आर्यिका श्री १०५ सुपार्श्वमती माताजी



सेठ मिश्रीलाल जी बाकलीवाल, गौहाटी



श्रीमती अमराव देवी वाकलीवाल
धर्मपत्नी श्री मिश्रीलाल जी वाकलीवाल
गौहाटी



प्रस्तुत ग्रन्थ प्रकाशन के प्रेरणा सूत्र

श्री शिवकरण जी, लाडनू

वर्तमान मे- पूज्य क्षुल्लक श्री १०५ सिद्धसागर जी महाराज

क्षुल्लक दीक्षा : बसन्त पंचमी . ५ फरवरी १९७६

प्राक्कथन

प्रस्तुत "श्री चन्द्रसागर स्मृति ग्रन्थ" मात्र स्मृति ग्रन्थ ही नही प्रत्युत साधु तथा त्यागी वर्ग के लिये विशेप रूप से उपयोगी ग्रन्थ है, जिसका प्रकाशन कराके सेठ मिश्रीलाल जी वाकलीवाल गौहाटी ने भव्य जीवों के कल्याण का एक अवलम्बन जुटा दिया है और अपनी चचला लक्ष्मी का सद्‌उपयोग करके एक अनुकरणीय कार्य किया है।

इस ग्रन्थ मे तीन खण्ड है। प्रथम खण्ड मे आचार्य कल्प श्री १०८ चन्द्रसागर जी महाराज के प्रति समर्पित श्रद्धा सुमन संकलित किये गये है। द्वितीय खण्ड मे कुछ सैद्धान्तिक लेख प्रस्तुत किये गये है और तीसरे खण्ड में वह 'नित्य पाठ संग्रह' प्रकाशित किया है जो कि स्वर्गीय श्री १०८ आचार्य कल्प चन्द्रसागर जी महाराज ने अपने स्वय के पढ़ने के लिये सकलित करके अपनी सुन्दर लिखावट में लिपिबद्ध किया था। यह 'नित्य पाठ सग्रह' गुटका ब्र० श्री शिवकरण जी लाड़नू निवासी को पूज्य आचार्य श्री १०८ महावोर कीर्ति जी महाराज के संघ से प्राप्त हुआ था। तभी से मान्य ब्रह्मचारी जी के यह भाव थे कि यह ग्रन्थ छपकर साधु संघ एवं धर्म प्रेमियो के हाथो में पहुंचे। उन्होने बड़ी श्रद्धा और भक्ति से वह 'नित्य पाठ सग्रह' पूज्य आर्यिका श्री १०५ इन्दुमती माता जी की परम शिष्या विदुषी रत्न आर्यिका श्री १०५ सुपार्श्वमती माता जी को संशोधनार्थ भेट किया। पूज्य माता जी ने बड़ी लगन और शोधपूर्ण दृष्टि से ग्रन्थ का अवलोकन किया और जहां कही अशुद्धि समझी वहा संशोधन किया।

शुभ कर्मोदय से गत वर्ष हम पूज्य आर्यिका संघ के दर्शनार्थ गौहाटी पहुचे। वहां मान्य ब्र० श्री शिवकरण जी भी पूज्य माता जी के दर्शनार्थ पधारे हुये थे। तभी इस ग्रन्थ की १००० प्रतियों के प्रकाशन की रूप रेखा वनी जिसमे से ५०० प्रतियों का प्रकाशन गौहाटी निवासी स्वनाम धन्य सेठ मिश्रीलाल जी वाकलीवाल ने अपनी ओर से कराने का विचार प्रगट किया जिससे सभी को प्रसन्नता हुई। परिणाम स्वरूप ग्रन्थ को यह प्रति आपके कर कमलों मे शोभित हो रही है।

प्रकाशक का संक्षिप्त परिचय

श्री मिश्रीलाल जी सादगी पसन्द, निरभिमानी, सरल स्वभावी, धार्मिक कार्यों में अग्रणी, परम गुरुभक्त तथा उदार चित्त से पूर्ण गौहाटी जैन समाज रूपी सुरभित उद्यान के एक आकर्षक पुष्प हैं।

आपका जन्म राजस्थान के चुरू जिले में स्थित लालगढ़ नाम के कस्बे में वि० संवत् १९८१ में स्वर्गीय श्री जेठमल जी वाकलीवाल के घर हुआ था।

आपके पिता श्री जेठमल जी बड़े धर्म परायण व्यक्ति थे। धार्मिक कार्यों में सदैव रुचि लेते थे। समाज सेवा में सदैव अग्रणी रहते थे। तीर्थ यात्रा, दान, साधु सत्कार के प्रसगों में सदा आगे बढ़कर कार्य करते थे। योग्य पिता के योग्य पुत्र श्री मिश्रीलाल जी भी अपने पिता के पद चिह्नों पर चलकर आज समाज की सेवा में तत्पर हैं।

आपके जीवन की एक उल्लेखनीय एवं चिरस्मरणीय बात यह है कि किशनगंज (बिहार) से पूज्य आर्यिका श्री १०५ इन्दुमति जी, आर्यिका श्री १०५ सुपार्श्वमती जी, आर्यिका श्री १०५ विद्यामती जी, एवं आर्यिका श्री १०५ सुप्रभामती जी के आर्यिका संघ को जगह जगह बिहार, बंगाल, और आसाम में पद विहार कराते हुये अद्वितीय धर्म प्रभावना के साथ आप और आपकी दानशीला धर्मपत्नी श्रीमती अमरावदेवी वाकलीवाल ने संघ के दुर्लभ दर्शनों का आसाम वासियों को सुयोग प्रदान किया है। इस गुरुतर कार्य की सफलता के उपलक्ष मे आपने इस ग्रन्थ का प्रकाशन कराया है। आपका यह कार्य इतना अनुपम एव अनुकरणीय रहा है जो कि जैन इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखा जायेगा। संघ की गुरुभक्ति से उल्लसित होकर तथा अपनी चंचला लक्ष्मी का सद्उपयोग करते हुये, भव्य जीवों को जैन धर्म के पवित्र मार्ग का अनुसरण करने में सहायक यह ग्रन्थ स्वाध्याथ हेतु भेंट करके आपने अपनी धार्मिक भावना का परिचय दिया है।

आपकी धर्म पत्नी श्रीमती अमरावदेवी वाकलीलाल को वैयावृत्ति पूर्ण भावनाओं का जितना उल्लेख किया जाय उतना थोड़ा है। आपने शीत उष्ण तथा मार्ग की असुविधाओं और कष्टों की कोई परवाह न करते हुये पूज्य आर्यिका सघ की वैयावृत्ति में जिस मनोयोग से अपने चित्त को लगाये रखा है वह सर्वथा प्रशंसनीय है। ऐसी महिला रत्नों से समाज गौरवान्वित होता है।

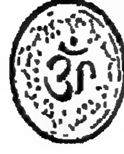
—जिनेन्द्र प्रकाश जैन

सम्पादक करुणा दीप एटा

श्री
चन्द्रसागर स्मृति ग्रंथ

द्वितीय खण्ड

सैद्धान्तिक लेख



आचार्य कल्प दिगम्बर जैन मुनि

गुरुवर्य श्री चन्द्रसागर स्तुतिः

–आर्यिका श्री १०५ सुपार्श्वमती माताजी द्वारा रचित–

य शान्ति सागर गुरोश्चरणारविन्दे,
जग्राह सर्व सुखदा हि जिनेन्द्र दीक्षां ।
राजाधिराज सुर सेवित पाद पद्मं,
त चन्द्र सागर गुरुं हृदि भावयामि ॥१॥

गुप्तित्रय समिति युक्त महाव्रतानि,
धृत्वा त्रयोदश विधं मुनि रूप धर्मं ।
कर्मारि–भेदनविधौ निशितं कुठार,
श्री चन्द्रसागर गुरुं प्रणमामि भक्त्या ॥२॥

संसार ताप रहिताः शिवसौख्य युक्ता,
भक्ता भवति तव दर्शन मात्र तस्तु ।
संसार तापहननाय दयादियुक्तं,
श्री चन्द्रसागर गुरुं प्रणमामि भक्त्या ॥३॥

मिथ्यांधकार कलिते मुमरुप्रदेशे,
भव्यान् प्रबोध्य मदमोह कषाय युक्तान् ।
धर्मं समादिशदधोद्धरणाय मर्त्यं,
श्री चन्द्रसागर गुरुं प्रणमामि भक्त्या ॥४॥

संसार एक रंगशाला है, जिसमें प्राणी नाना भेष धारण कर भ्रमण करता है।

यः संस्तुतस्तु न चकार कदापि तोषं,
वा निन्दकेषु विदधे न कदापि रोषं।
सर्वेषु जीवगणकेषु दयांद धानं,
श्री चन्द्रसागर गुरुं प्रणमामि भक्त्या ॥५॥

मिथ्यांधकार परिमर्दन रश्मिजालं,
ज्ञानाब्धि वर्धनविधौ विधु तुल्यमेव।
त च्चन्द्रसागर गुरोश्चरणारविन्दं,
संपूजयामि सुमुदा महदा दरेण ॥६॥

धीरोपसर्ग विजयी खलु शास्त्रवेत्ता,
ध्यानी व्रती गुणनिधिस्तु हितोपदेशी।
दुःखाब्धितस्तरति तारयती तरान्यः,
तं चन्द्रसागर गुरुं प्रणमामि हर्षात् ॥७॥

ग्रन्थानधीत्य सकलान् श्रुत सार भूतान्,
बोधं, विधाय शिव सौख्य करं च शुद्धं।
योऽभूद् दृढस्तपसि निश्चल भावयुक्तः,
तं चन्द्रसागर गुरुं प्रणता सुपार्श्वा ॥८॥

माता सीता सतीयस्य नथमल्लः पिता बुधः।
तप्त जाम्बूनदाभंतं वन्देऽहं चन्द्रसागर ॥



पूज्य मुनिराज श्री की अपनी कलम मे

स्व-परिचय

जन्म–पौष कृष्णा (राजस्थान की अपेक्षा माघ कृष्णा) १३ दिन शनिवार ४६ घडी ५ पल शक सम्वत् १८०५ वि० सम्वत् १९४० पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र रात्रो।

(स्थान)–नाद गाव–(पिता का नाम) श्री नथमल जी चोथमल जी पहाड़े खंडेलवाल जाती दिगम्बर जैन धर्म परायण की भार्या सितावाई के पुत्र तीन–केवलचन्द, खुशालचन्द, लालचन्द (इन) मे से द्वितीय का विवाह १॥ साल के लिए हुआ। शके १८२५ ज्येष्ठ शुक्ल नवमी शील व्रत धारण करे अतिचार सहित–विद्याभ्यास मराठी छठी क्लास तक – व्यापार वश पढ़ने के साधन न होने से कुछ सामाजिक कामो में भाग विताते हुए श्री निर्वाण क्षेत्रो के दर्शन सर्वत्र होकर, मन की शातता वढने पर आषाढ़ शुक्ल १० सं० २४४८ को ऐल्लक पन्नालाल जी महाराज से दूसरी प्रतिमा धारण की। फिर भाद्रपद शुक्ला ५ को पांचवी प्रतिमा (के) व्रत लिए। नतर स० २४४९ को श्री जी के सम्मुख श्रावण कृष्णा अष्टमी को सातवी ब्रह्मचर्य प्रतिमा धारण करी। सम्वत् २४५० पोष शुक्ला ११ को नवमां प्रतिमा धारण की। माघ शुक्ला २ श्री मुनिराज शान्ति सागर जी के कुर्दुवाडी जाके दर्शन किये और माघ कृष्णा सप्तमी को दशवी प्रतिमा के व्रत लिये। नंतर कुभोज के निकट बाहुवलि डोंगर पर फाल्गुन शुक्ला सप्तमी सम्वत् २४५० को मुनिराज के चरणो मे क्षल्लक व्रत ग्यारहवी प्रतिमा धारण किये। चातुर्मास समडोली मे हुआ। आश्वनी शुक्ला ११ बुधवार २४५० श्रवण नक्षत्र पर आचार्य महाराज १०८ श्री शान्ति सागर जी के उपदेश से केशलोच कर ऐल्लक व्रत धारण किये–नाम चन्द्रसागर। मिती मार्गशीर्ष शुक्ल १५ सोमवार २४५६ मृग नक्षत्रे मकर लग्ने सोनागिरि क्षेत्र पर दिन के १० वजे चन्द्रसागर ने मुनि दीक्षा महाव्रत धारण किये आचार्य शान्ति सागर जी दीक्षा गुरु के कर कमलों से।

॥ शुभ भवतु ॥

श्री १०८ आचार्यकल्प चन्द्रसागर जी महाराज की

जीवन-झाँकी

जन्म सम्वत्	जन्मवार	जन्म दिवस
विक्रम सम्वत् १९४०	शनिवार	माघ कृष्णा त्रयोदशी

जन्म गांव	देश	पिता	माता	जाती
नांद गाव	महाराष्ट्र	नत्थमल	सीतादेवी	खंडेलवाल

आपका विवाह संस्कार मार्गशिर शुक्ला नवमी संवत् १९६० में हुआ और विक्रम संवत् १९६२ मे पत्नी का वियोग हुआ।

विक्रम सम्वत् १९६२ ज्येष्ठ शुक्ला नवमी के दिन आपने स्वत: वीतराग प्रभु के समक्ष आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण किया। वीर सवत् २४४८ आषाढ शुक्ला दशमी के दिन ऐलक पन्नालाल जी से दूसरी तीसरी प्रतिमा ग्रहण की। वीर सवत् २४४८ भाद्रपद शुक्ला पचमी के दिन सचित्त त्याग प्रतिमा ग्रहण की। कुर्दू वाडी मे आचार्य शान्ति सागर जी महाराज के चरण सान्निध्य में दशवी प्रतिमा ग्रहण की। वीर सवत् २४५० मे कुभोज के निकट बाहुवली क्षेत्र पर फाल्गुन शुक्ला सप्तमी के दिन आचार्य शान्तिसागर महाराज के समीप क्षुल्लक व्रत ग्रहण किये। वीर संवत् २४५० आश्विन शुक्ला एकादशी के दिन आचार्य श्री से ऐलक व्रत ग्रहण किये। वीर संवत् २४५६ मार्गशीर्ष शुक्ला पूर्णिमा सोमवार मृग नक्षत्र मकर लग्न मे दिन के दस बजे आचार्य श्री शान्ति सागर महाराज के चरण सान्निध्य में दिगम्बर दीक्षा ग्रहण की। वीर सवत् २४७१—सन् १९४५—२६ फरवरी विक्रम सवत् २००१ फाल्गुन शुक्ला पूर्णिमा चन्द्रवार १२ बज कर २० मिनट पर चतुर्विध सघ के समक्ष णमोकार मन्त्र का जाप करते हुए बडवानी सिद्ध क्षेत्र पर स्वर्गवास हुआ।

चन्द्र कुण्डली

शु० ११ र० १० बु०	९ च०	८ रा० ७
१२		६
श० १ के० २	३	गु० ४ मं० ५

लग्न कुण्डली

९ श० ८	७ रा०	६ ५
र० १० बु०		गु० ४ मं०
११ शु० १२	१ के०	३ २ श०

जन्म-राशि पूर्वाषाढ ४६ घड़ी ५ पल पौष कृष्णा १३ वि० सम्वत् १९४० शक स० १८०५ रात्री

उपसर्ग विजेता के चरणारविन्द में

चा. च पूज्य आचार्य श्री १०८ विमल सागर जी महाराज

की

भक्तिपूर्ण श्रद्धाञ्जलि

जैन साधु हो तो ऐसा हो !

परम पूज्य प्रात. स्मरणीय आचार्य कल्प श्री १०८ चन्द्रसागर जी महाराज परम तपस्वी उपसर्ग विजेता आगम वक्ता अनुशासन शील महा पुरुष थे। महाराज उन आदर्श तपस्वियों मे थे-जिन्होने साधु पद के उच्च आदर्श को दुनिया के सामने उपस्थित किया। जैन साधू हो तो ऐसा हो इस प्रकार की ध्वनि प्रत्येक आबाल वृद्धो के मुख से सुनाई दे रही थी। आपकी विद्वत्ता श्लाघनीय थी। किसी भी तात्विक विषय पर विचार करने बैठते अथवा अपने उपदेश में किसी तत्व का विवेचन करते तो तलस्पर्शी विषय रहता था। अनेक विरोधी दूर से गीदड के समान हू हू करते समक्ष आते ही-शात हो जाते।

पत्नी का देहावसान : त्याग मार्ग प्रारम्भ

आपने महाराष्ट्रीय नाद गाव मे खडेलवाल जातीय पहाडया गोत्रोत्पन्न नथमल जी की धर्म पत्नी सीता बाई की कुक्षि को अपने जन्म से पवित्र किया। २२ वर्ष की अवस्था मे पत्नी का वियोग हो जाने से विरक्त होकर उसी दिन परम पवित्र ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया। आपकी संसार से विरक्ति बढती गई। एलक पन्नालाल जी की सगति ने उस विरक्ति मे पानी सींचा— जिससे आपके हृदय मे अटूट वैराग्य के अकुर फूटे। उन अकुरो को पल्लवित करने के लिये आप ने चारित्र चक्रवर्ती शाति सागर महाराज की संगति की। आपके हृदय मे उनके प्रति अपूर्व भक्ति थी। आपने चारित्र चक्रवर्ती महाराज श्री से सप्तम प्रतिमा के व्रत लिये। आपको ब्र० हीरालाल जी (वीरसागर जी) का सयोग मिला-दोनो ब्रह्मचारियो ने :चाद सूर्य के समान महाराष्ट्र मे धर्म का झडा फहरा दिया।

क्षुल्लक दीक्षा

वीर निर्वाण सं० २४५० में दोनो ब्रह्मचारी जी ने क्षुल्लक दीक्षा फागुन शुक्ला ७ को धारण की। आपका नामकरण खुशाल चन्द जी (क्षु० चन्द्र सागर जी) ब्र० हीरा लाल जी (क्षु० वीर सागर जी) हुआ। आ० शाति सागर जी के पास समडोली मे चातुर्मास किया वहां पर क्षु०चन्द्र सागर जी क्षु०पाय सागर जी ने ऐलक दीक्षा ली। क्षु०वीर सागर जी ने, क्षु०नेम सागर जी ने मुनि दीक्षा आश्विन शुक्ला ११ को ली। वहा से विहार कर संघ के साथ

[५]

सम्मेद शिखर जी, चंपापुर, मंदारगिर जी, गुणावा, पावापुर, राजगिर, पटना, आरा, गया आदि स्थानों में धर्माचरण करता हुआ संघ बनारस, अयोध्या, इलाहाबाद होकर चातुर्मास कटनी में किया।

मुनि दीक्षा

अगला चातुर्मास ललितपुर हुआ वहा से विहारकर सोनागिर जी अगहन सुदी १२ वि० सं० १९८६ में श्री १०८ आचार्य शान्ति सागर जी ने श्री १०५ ऐलक चन्द्र सागर जी पाय सागर जो ऐलक कुथ सागर जी को मुनि दीक्षा दी। अब संघ का परम गौरव बढा लश्कर, मोरेना, धौलपुर, आगरा, फिरोजाबाद, मरसलगज, वटेश्वर, कपिला, एटा, अवागढ, जलेसर, बरमाना, अलीगढ मथरा चातुर्मास वहा से अलवर, तिजारा, गुड़गावा रोहतक वगैरह विहार कर देहली चातुर्मास दरियागंज में हुआ।

दिल्ली चातुर्मास : प्रतिवन्ध की हल-चल

वहां पर सरकार व अन्य लोगो ने हल-चल पैदा करदी। साधुओं पर प्रतिबध लगा दिया। साधु वर्ग को १-२ माह मालूम नही होने पाया। जब चन्द्र सागर जी को मालूम हुआ तो चर्या के लिये महाराज श्री लाल मदिर चांदनी चौक होकर पहाडी पहुचे और प्रतिवंध की हलचल दूर कर दी। जव नर पुगवों काउपदेश धारावाही मना तो जनता यानी आर्य समाज की बोलती वद हो गई। और उधर से विहार कर महावीर जी जयपुर से आगे श्री १०८ आचार्य शान्ति सागर जी ने स्वतन्त्र विहार किया। उसका कारण लोहड़ साजन वड़ साजन था।

मारवाड के उद्धारक—

तव महाराज श्री ने मारवाड़ को डूबते हुये उबारा और धारा प्रवाही सर्व जगह मालवा बड़नगर गिरनार वगैरह यात्रा उपदेश कर तमाम जैन धर्मावलम्बी वन्धुआ को शूद्र जल के त्याग के साथ २ व्रती बनाया। आपका अध्ययन बराबर चलता था। व्याकरण ज्योतिप साहित्य धर्म शास्त्र पहिले क्षु० ज्ञान सागर जी (आ० सुधर्म सागर जी) वाद मे ब्र० प० गौरीलाल जी सिद्धात शास्त्री व्याकरण पढाते थे। उस समय महाराज के ओजस्वी उपदेश सुनकर विरोधी दल सामने नही आता था। आपने मारवाड को दि० जैन धर्म में दृढ कर स्थितिकरण अग व वात्सल्य अंग का कार्य महान किया जो साक्षात मुक्ति का कारण है। आपने अनेकों भव्यों को व्रती मुनी आर्यिका क्षुल्लिका क्षुल्लक ऐलक बनाकर जैन धर्म की प्रभावना की।

वचन के पक्के

आप वचन के बड़े ही पायवंद थे जो कह दिया सो करके दिखा दिया। आपने अपनी वचन प्रमाणिकताके कारण अपने संघ की भी परवाह नही की। जब आप सघ सहित मुक्तागिरजी पर थे उस समय सेठ चादमल धन्नालाल जी पाटनी ने महाराज श्री से प्रार्थना की कि बड़वानी सिद्ध क्षेत्र

पर मान स्तम्भ तैयार है उसकी मिती फाल्गुन सुदी १२ वि०स०२००१ है। महाराज श्री की उपस्थिति में पचकल्याण प्रतिष्ठा करना है। महाराज श्री ने मजूर कर लिया। सनावद मे श्राध्-गण रुग्ण हो गये। रुग्णावस्था मे सिद्धवरकूट होकर खरगोन, पावागिर ऊन पहुंचे वहा पर श्री १०८ मुनिराज हेमसागर जी क्षु० वोध सागर जी मलेरिया बुखार से पीडित होकर समाधि हो गई उनकी समाधी कर वडवानी के रास्ते में ही महाराज श्री भी ज्वर से पीड़ित हो गये किन्तु ज्वर की परवाह न कर वडवानी पहुच गये।

समाधि मरण–

वहा पचकल्याणक मानस्तम्भ प्रतिष्ठा शान्ति रूप से निर्विघ्न हो गई। फागुन शुक्ला १२ को महाराज श्री ने अन्न जल का त्याग कर समाधी ली और आप की परिचर्या ब्र० वैद्य वासुदेव पिलुआ (एटा) निवासी व श्री १०५ क्षु० इन्दुमती जी क्षु० मानस्थभामती जी ने और भी भव्य श्रावको ने णमोकार मत्र द्वारा सुना कर वैयावृत्ति की और वि० स० २० १ फागुन शुक्ला १५ को इस नश्वर पार्थिव शरीर को छोडकर स्वर्गवासी हो गये। यानी समाधि हो गई। भारत मे सब जगह शोक छा गया। और एक महान आत्मा का वियोग असह्य हो गया।

आपके शिष्य–

आचार्य महावीरकीर्ति जी को पीसन गांव में ब्रह्मचारी सप्तम प्रतिमा के व्रत दिये थे। श्री १०५ क्षु० इन्दुमती जी ने श्री १०८ आचार्य वीर सागर जी से आर्यिका व्रत लेकर सर्व जगह विहार कर बड़ी प्रभावना के साथ २ कलकत्ता चातुर्मास कर इस वर्ष गोहाटी चातुर्मास किया था। आपके सघस्थ आर्यिका विदुषी रत्न सुपार्श्वमती जी विद्यामती जी सुप्रभामती जी है।

क्षु० धर्म सागर जी, श्री आचार्य वीर सागर जी से मुनि दीक्षा लेकर आप आचार्य धर्म सागर जी के नाम से प्रख्यात है इस वर्ष चातुर्मास सहारनपुर में है। आप महा शांति स्वाभावी है।

क्षु० मानस्थभामती जी ने भी आचार्य वीर सागर जी से आर्यिका दीक्षा लेकर नागौर मे समाधी की।

भक्तिपूर्ण श्रद्धाञ्जलि

मुझे भी शूद्र जल का त्याग जयपुर मे कराया था और भी व्रत दिये थे। उन्ही की कृपा से मैं इस पद पर पहुंचा हूं और उनके चरणारविंद मे भक्ति सहित श्रद्धाजली अर्पण करता हूं और भावना करता हूं कि उन्ही के समान व्रताचरण पालता हुआ धैर्यशाली बनू।

—आ० विमल सागर



वर्तमान युगका एक सच्चा आगमनिष्ठ महासाधु

—श्री तेजपाल काला, संपादक 'जैनदर्शन' नांदगॉव—

दिगम्बर जैन साधुओ की दृष्टि से वर्तमान-युग का प्रारम्भ स्व० परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती श्री १०८ आचार्य श्रेष्ठ शांतिसागर जी महाराज से प्रारम्भ होता है। इससे पहले लगभग तीनसौ चारसौ वर्षो तक दिगम्बर जैन साधुओ का प्राय. अभावसा था। दक्षिण मे कही कही जो कुछ थोड़े से उगुलियो पर गिनने लायक साधु थे भी तो उनमे आगम के अनुकूल प्रवृत्तियो मे शिथिलता आ गई थी। वे प्रायः शहर से दूर एकान्त गुफाओ में रहकर ध्यानाध्ययन करते थे। साधारण जनता को उनको साधु चर्या और विहारादिक मे कोई धर्मलाभ नही होता था। ऐसी स्थिति मे सच्चे आगमनिष्ठ साधुओ के दर्शन दुर्लभ हो गये थे। इसीलिए इस साधु दर्शन की दुर्लभता की मनोव्यथा-महाकवि भूधरदासजी जैसे साधु भक्त विद्वान को—"कर जोर 'भूधर' वीनवे कब मिलहिं वे मुनिराज। यह आस मनकी कब फले मेरे सरे सगरे काज'॥ इन शब्दो में व्यक्त करनी पडी।

किन्तु गत लगभग पचास वर्ष से मुनि दर्शन को इस दुर्लभता का, स्व० परम पूज्य १०८ आचार्य प्रवर श्री शाति सागर जी जैसे एक महा तपस्वी साधु के उदय से अन्त हो गया। अब तो सौभाग्य से भारतवर्ष में प्रायः सभी प्रदेशो में शताधिक से भी अधिक दिगम्बर जैन साधुओ का विहार निरबाध रूप से हो रहा है। जन साधारण उनके आहार, विहार चर्या और धर्मोपदेश से लाभ उठा रहा है। जैन धर्म का वडा भारी उद्योत हो रहा है। वास्तव में परम पूज्य आचार्य शातिसागर जी तो स्वय ही एक महान रत्नत्रय स्वरूप आदर्श निर्दोष कठोर तपस्विता को धारण करने वाले असाधारण साधु थे, किन्तु उनने जो शिष्य प्रशिष्य अपने समय में तैयार किए और उनके वाद भी उनकी पट्ट परम्परा में जो शिष्य आज भी है वे भी निश्चय ही आज गुरु की तरह ही निरपेक्ष निर्मोह वृत्तिके आदर्श साधु है। रत्नत्रय को निर्मलता के लिए जो निरपेक्षता निर्भयता, स्वाधीनता, आडम्बर हीनता, नि.सगता, वीतरागता आदि साधुजनोचित गुण आचार्य शाति सागर जी की शिष्य परम्परा में देखकर मन को सतोष होता है वह अन्यत्र नही होता।

तथापि गत पचास वर्ष के साधु जीवन की आदर्शता का जब सूक्ष्म अवलोकन किया जाता है तो यह नि सशय कहना पड़ता है कि श्रमण सस्कृति के एक श्रेष्ठ साधक लोकोत्तर साधु तपस्वी आचार्य श्री शातिसागर जी ने जिन निर्मल रत्नत्रय के धारक महान तेजस्वी आदर्श प्रभावी शिष्य रत्नों का प्रसव किया, उनमें स्व० परम पूज्य महा विद्वान, अत्यन्त कठोर

तपस्वी, आगमनिष्ठ, सच्चा महाव्रती, दृढ आत्म सयमी महा मुनिराज श्री चंद्रसागर जी महाराज का नाम मुकुटमणि के रूप मे शोभायमान होता है। 'बाप से बेटा सवाई' इस लोकोक्ति के अनुसार अपने आदर्श महान तपस्वी गुरु आचार्य शातिसागर जी से भी अधिक महामुनि श्री चंद्रसागर जी ने अपनेको आदर्श सवाई शिष्य के रूप में सिद्ध किया। वस्तुत बाप या गुरु के जीवन की सार्थकता भी इसी में है कि उसका पुत्र या शिष्य आदर्श परम्परा का निर्वाह करता हुआ ससार में अपने बाप या गुरु से भी अधिक गौरवता को प्राप्त करे।

'वह सच्चा वीर साधु है'

आचार्य शाति सागर जी अपने इस महान चारित्र निष्ठ, निष्कलक, आगमज्ञ विद्वान नि संग, निर्भय एव वीतराग असाधारण तप.पूत शिष्य को पाकर अपने मे महान गौरव अनुभव करते थे। वे हमेशा उनकी सराहना किया करते थे। सन१९४१की बात है आचार्य शातिसागरजी अपने सघ के साथ गुजरात से विहार करते हुये महाराष्ट्र प्रदेश मे नासिक जिले के पास एक रोज बराना नामक ग्राम में नदी के किनारे बैठे हुए थे। पूज्य श्री १०८ मुनिराज वीरसागर जी (बाद में आचार्य) भी अपने सघ के साथ गुरु के पास बैठे हुए थे। तब मुनिराज वीर सागर जी, मुनि चन्द्रसागर जी आदि प्राय. सभी शिष्य अलग २ विहार करते थे। उस समय अन्य भी कुछ श्रावक गण बैठे हुए थे। मैं भी था। मैने उस समय आचार्य महाराज के पास इन्दौर मे हुए मुनि चन्द्रसागर जी के बहिष्कार की चर्चा छेडी तो उसी समय आचार्य महाराज ने कहा कि — 'चन्द्रसागर हमारा सच्चा वीर शिष्य है। वह उसकी ही हिम्मत थी कि इन्दौर जैसे स्थान मे बहिष्कार किये जाने पर भी वह अत्यन्त निश्चल और निर्भय रहा। आगम मार्ग पर दृढ रहा।' इन शब्दो में आचार्य महाराज ने अपने शिष्य मुनि चन्द्रसागर जी का गौरव किया। यह सुनकर सब लोग हर्षित होकर चन्द्रसागर महाराज की 'जय' बोलने लगे।

'चंद्रसागर का बहिष्कार अन्याय और अनुचित है'

इन्दौर में जब पूज्य महामुनि चन्द्रसागर जी महाराज ने इन्दौर के साधु भक्त धार्मिक लोगो की प्रार्थना से ससघ चातुर्मास करने का निश्चय किया तो यह बात वहां के कुछ पथ द्वेषी पडितों को सहन नही हुई और उन्होंने इन्दौर के कुछ श्रीमतो को श्री चद्रसागर जी महाराज के विरोध में पथ द्वेष की झूठी बाते कहकर भडकाना शुरु किया। श्रीमतो ने भी आगे पीछे का योग्य विचार न कर पंथ डूबा के भय से महाव्रती चद्रसागर जी का बहिष्कार करा दिया। उस ...ारित बहिष्कार की केवल इन्दौर की धार्मिक गुरु भक्त समाज मे ही नही मार्ग... वर्ष की समाज मे तीव्र प्रतिक्रिया हुई। समाज ने इस अन्याय पूर्ण बहिष्कार का तीव्र ... ही नही किया स्वयं इन्दौर मे ही अप्रत्याशित रूप से आगमानुसार पद्धति का एक ...व्य जिन मदिर खड़ा कर बहिष्कार को अप्रभावित करा दिया। श्री चद्रसागरजी महा- ...ने ऐसे बहिष्कार के झंझावाती वातावरण में एक स्थित प्रज्ञ योगी की तरह अत्यन्त शान्त

और निर्भय रहे। उन्होंने कभी भी किसी को भी अपने वहिष्कार करने वालो के विरोध में जरा भी नही उकसाया।

इन्दौर के चातुर्मास के बाद मुनि वहिष्कार के कारण समाज मे व्याप्त तीव्र क्षोभ और असतोष को दूर करने की दृष्टि से जब कुछ समाज के महामान्य श्रीमंत और विद्वान नेता पावा-गढ मे परमपूज्यश्री१०८ आचार्य शांति सागर जी महाराज के पास वहिष्कार के संबंध मे उनका आदेश लेने गये तो सभी के द्वारा प्रार्थना करने पर पूज्य आचार्य महाराज ने अत्यन्त गम्भीर होकर यह स्पष्ट आदेश दिया कि—'मुनि चन्द्रसागर का वहिष्कार अन्याय, अनुचित अनधिकार और शास्त्र विरुद्ध है। इस स्पष्ट आदेश से वहिष्कार निष्प्रभ हो गया। समाज मे व्याप्त क्षोभ दूर हो गया और मुनि चंद्रसागर जी का साधुत्व प्रखर अग्नि मे तप्त सुवर्ण की तरह निखर उठा।

अत्यन्त निष्काय निर्वैर साधु

कुछ लोग मुनिराज चंद्रसागर जी महाराज पर अत्यन्त क्रोधी और कषायवान होने का आरोप करते थे। किन्तु उनका यह आरोप भय विद्वेष के कारण सर्वथा असत्य था। वस्तुत. श्री चन्द्रसागर जी महाराज आगम विरोधी बात को सहन न हो सकने के कारण तीव्र शब्दों में विरोध करते थे और लोगो को आगम मार्ग पर लगाने के लिए किसी के भी रोष तोष की पर्वाह न कर कड़ाई से उपदेश देते थे। गरज यह कि व्यक्तिसे वह आगम की रक्षा को अधिक महत्व देते थे। तथापि उनके मन में अपने विरोधी के प्रति भी कोई द्वेष या वैर नही होता था। वस्तुत: शुभ मित्र के प्रति समवृत्ति रखने को जो क्षमता श्री चन्द्रसागर जी मे थी वह अन्यत्र बहुत कम देखने को मिलती है नीचे की घटना से यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जायेगी।

पूज्य श्री चन्द्रसागर जी महाराज विहार करते हुए जब नासिक (महाराष्ट्र) में आये तब मैं भी उनके दर्शनार्थ नादगाव से नासिक चला गया। महाराज श्री मंदिर में दोपहर के समय धर्मोपदेश दे रहे थे। तब मैं वहा पहुच गया। धर्मोपदेश के अनन्तर महाराज श्री ने मुझे देखतेही पहला प्रश्न किया कि—'तुम वकालत कब से करने लगे? मैं महाराज श्री के प्रश्न पर अचम्भित होकर कहने लगा कि—'महाराज जब मैं वकील नही तो वकालत कैसे कर सकता हूं।" तब महाराज ने कहा कि—तुमने हमारे वहिष्कार को लेकर सर सेठ हुकमचन्द जी के विरोध में लेख क्यों दिया? क्या हमने तुमको कहा था कि तुम हमारे वहिष्कार का प्रतिकार करो'। मैंने कहा 'महाराज' यद्यपि आपने नही कहा तथापि धर्मायतनो पर यदि कोई उपसर्ग करे तो उसे कोई भी धर्म भक्त व्यक्ति कैसे चुपचाप देख सकता है? हमने तो अपना कर्तव्य पालन किया।" तब भी महाराज ने अत्यन्त शांत और गम्भीर होकर कहा कि- भाई सरसेठ हुकमचद जी ने या और किसी ने भी हमारा वहिष्कार किया है तो करने दो, हमारा चारित्र यदि निर्मल है तो हमे उसकी कोई चिन्ता नही। जब तक हमारे उपसर्ग या परिषह को सहन करने में हम

समर्थ है तो तुम लोगो को हमारे बीच मे पडने की कोई आवश्यकता नही है। मगर सेठ हुक्म चन्द्र जी समाज मे एक प्रभावशाली श्रीमन्त नेता है। सरकार पर उनका बडा भारी प्रभाव है। अत उनके प्रभाव से धर्म पर आई हुई आपत्तियां सहज दूर हो सकती है। समाज मे रह कर तुम लोगो को उनसे काम लेना पडता है। यदि तुम उनका विरोध करोगे तो फिर वे तुम्हारा साथ कैसे देंगे। इसलिए तुमको उन्हे नाराज नही करना चाहिए। हमारा विरोध हम सहन कर लेगे। वह हमारा धर्म है। तुम लोगो को हमारी चिन्ता नही करनी चाहिए।'

कितने स्थितप्रज्ञ वीतराग विचार है ये। जिसको अपने विरोध मे भी कोई विषाद या वैर नही। न अपने विरोधी के विरोध से कोई हर्ष। इससे अधिक निष्कषायता, निर्वैरता का और शत्रु, मित्रता मे समभाव का उदाहरण और क्या हो सकता है। जिनको अपने विरोध मे भी विरोध नही दीखता, जो उस स्थिति मे भी अत्यन्त शान्त, धीर और गम्भीर रह सकता है। वास्तव मे सच्ची साधुता के दर्शन वही होते है। हम पूज्य श्री चन्द्र सागर जी की उस वीतराग साधु वृत्ति को देखकर उसी समय श्रद्धा से उनके पावन चरणो मे नत हो गये।

सारा मरुस्थल धर्म स्थल में परिवर्तित हो गया

जिस मरुस्थल में कुये बहुत गहरे है, पानी बहुत दूर-दूर से जूते पहने हुये मजदूरो से मगवा कर खान-पान करना पडता है, फिर जो श्रीमन्त लोग भोगोपभोग मे सुखासीन, सयमहीन जीवन बिताते है—ऐसे असुविधाजनक स्थानो मे मरुस्थल के गाव-गाव और नगर-नगर में विहार कर बडे-बड़े श्रीमन्तो में और साधारण श्रावको मे भी अपनी अमोघ प्रभावी वाणी, आगम तल स्पर्शी ज्ञान एव निर्मल चारित्र के प्रभाव से वास्तविक जैनत्व के भाव जागृत कर उनमे शुद्ध खान-पान की प्रवृत्ति जागृत करदी-यह पूज्य श्री चन्द्र सागर जी के ही विशुद्ध तप का प्रभाव था कि उनका जनता पर जादू का सा असर पडता जाता था। जो मरुस्थल पथ की खोटी भावना से अभिभूत था उनमे आगम मार्ग की ज्योति प्रज्वलित करदी। सारा मरुस्थल आगम मार्गी वन कर धर्म स्थल वन गया। निरन्तर भोगो और व्यसनो मे लीन रहने वाले वडे-वडे डाक्टरो; सरकारी अधिकारियों, न्यायाधीशो, उद्योगपतियो और श्रीमन्तो मे जिनने प्रतिमा रूप सयम और त्याग की प्रवृत्ति पैदा करदी- यह वास्तव मे मुनि चन्द्र सागर जी के द्वारा की गई धर्म की एक महान आश्चर्यकारी क्राति थी। आज भी सारा मरुस्थल उन्हे एक महान कठोर तपस्वी सच्चा महाव्रती महा साधु के रूप में श्रद्धा से याद करता है।

दिगम्बरत्व का जागृत निर्भय प्रहरी

भारत की राजधानी देहली में पहली वार आचार्य शान्ति सागर जी महाराज का विशाल संघ सहित चातुर्मास दिगम्बर जैन समाज ने कराया। लेकिन उस समय की अंग्रेज सरकार ने देहली के कुछ सरकारी स्थानो मे नग्न विहार पर प्रतिवन्ध की शर्त पर दिगम्बर साधुओ को देहली मे लाने की अनुमति दी थी। देहली में आने पर जब सघ को नग्न विहार के प्रतिवन्ध की वात मालूम हुई तो सघ मे सबसे पहले श्री मुनि चन्द्रसागरजी ही थे जिन्होने स्वय इस दिगम्बरत्व पर डाले गये प्रतिवन्ध के आघात को दूर करने के लिए आचार्य महाराज को

अनुज्ञा से पीछी कमंडलु उठाया और विना किसी संकट की पर्वाह किए निर्भय होकर सरकारी प्रतिबन्धित स्थान में विहार किया। सरकार के बड़े अधिकारी ने आकर जब महाराज को रोकना चाहा तो वे महाराज की बातों से, तपश्चर्या से और विद्वत्ता से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने उसी समय दिगम्बर जैन साधुओं के विहार के प्रतिवन्ध को हटा दिया और इस तरह मुनिराज श्री चन्द्र सागर जी के प्रभाव से धर्म की बड़ी भारी विजय हुई। सारे भारतवर्ष की दिगम्बर जैन समाज में इस विजय पर वड़ा भारी हर्ष छा गया।

आगम चक्खु साहू

मनुष्य किसी भी वस्तु को ग्रहण करते समय अपनी आंखों से देखकर उसको अपने लिए ठीक समझने पर ग्रहण करता है। किन्तु ऐसा करते समय मनुष्य अपनी आखों से धोखा भी खा सकता है। अतः दिगम्बर साधु आगम को अपनी आंख वनाकर उससे वस्तु को ग्रहण करता है। रत्नत्रय, महाव्रत और मोक्ष मार्ग की विशुद्धता के लिए आगम ही उसकी आंखे होनी है। आगम के प्रकाश में निरन्तर चलते रहने के कारण वह कभी आत्म वंचित नही होता। मुनिराज चंद्रसागर जी ऐसे ही एक महासाधु थे जो कभी लोकेषणा, यशलिप्सा, आत्म प्रशंसा, परनिंदा, शरीर सुख,उपसर्ग या परीषह भय आदि के व्यामोह में आगमाज्ञा के विरुद्ध पाव नही रखते थे। लोगों से वाहवाही लूटने के लिए या अपनी पादपूजा करने के लिए उन्होंने कभी भी किसी को खुश रखने की दुर्नीति का अवलंवन नही लिया। आगम का उनका पाथेय था और उसकी रक्षा के लिए उन्होने वड़ी से वड़ी शक्ति के विरोध या असन्तोष की परवाह न कर रत्नत्रय धर्म का पालन किया। उनका सम्यक्त्व सुमेरु पर्वत की तरह अचल था। आगम ज्ञान समुद्र की तरह गंभीर, विपद और तलस्पर्शी था एवं चारित्र स्फटिक की तरह अत्यन्त विशुद्ध और निर्मल था। उनके आगम ज्ञान के आगे बड़े २ शास्त्री न्यायतीर्थ विद्वान भी निरुत्तर हो जाते थे।

इन्दौर के वहिष्कार में वडी से वड़ी शक्ति भी उनको आगम मार्ग से विचलित नहीं कर सकी। वड़वानी प्रतिष्ठोत्सव पर भयंकर ज्वर की स्थिति में चलने की शक्ति न होने पर भी अपने दिये हुए वचन का पालन करने के लिए प्राणों का मोह न करते हुए समय पर पहुंचे। वड़वानी पहुंच कर उन्होंने अत्यंत निराकुल परिणामों से सल्लेखना धारण कर समाधि मरण किया। प्राणों का मोल देकर भी सत्य महाव्रत की रक्षा हुई इसका उनकी आत्मा में पूर्ण संतोष था।

निरपेक्ष अयाचक योगी

आगम का अगाध ज्ञान, प्रभावी वक्तृत्व एवं सुन्दर लेखन की शक्ति होते हुए भी अपनी प्रसिद्धि के व्यामोह में उन्होने कभी कोई नया ग्रन्थ या साहित्य निर्माण नही किया वे कहते थे कि पूर्वाचार्यो ने ही द्वादशाग पर बड़े से बड़े विद्वतापूर्ण ग्रन्थो की ओर टीकाओं की इतनी रचना की है कि जिनके अध्ययन में सैकड़ों वर्ष की आयु भी पूरी नहीं पड़ सकती तब उसके बाहर और उससे अधिक सुन्दर आज का बड़े से वड़ा विद्वान भी क्या लिख सकता है? यदि लिखे भी और कहीं नासमझ, छद्मस्थता या भ्रांतिवश कुछ थोड़ा भी विपरीत लिखा गया तो

वह स्वयं तो अनन्त संसार चक्र के गर्त में तो फसेगा ही, पर्वत की तरह अनन्त प्राणियों को भी अकल्याण का कारण बनेगा। अतः नया साहित्य लिखना यह बुद्धि का विलास और लोकैषणा का व्यामोह है जिसके वश होकर साधु भी अपने महाव्रत से भ्रष्ट हो जाता है। साहित्य प्रसिद्धि के लिए उसे परमुखापेक्षी बनकर याचकत्व की अधम वृत्ति स्वीकार करनी पड़ती है।

मुनि चद्रसागर जी सदैव निरालव और स्वाधीनता से रहते थे। अपने विहार और चर्यादि की व्यवस्था के लिए वे कभी किसी को कहते नही थे। न मन से भी किसी से किसी व्यवस्था की अपेक्षा रखते थे। उनके साथ में कोई आडम्बर नही होता था, न पुस्तकों और शास्त्रो का अबार रखते थे एवं न अपने लिए कभी किसी प्रकार की सुविधा, वैयावृत्ति आदि के लिए कहते थे। प्रदर्शन वृत्ति से सदैव दूर रहते थे।

श्री चद्रसागर जी शरीर से केवल बाह्यत: ही अपरिग्रही नही थे अतरग मे भी वे पूर्ण निर्मोही थे। तभी तो ज्वर की तीव्र वेदना के होते हुए भी उन्होने अपने सत्य महाव्रत की रक्षा के लिए बड़वानी प्रतिष्ठा पर, समय पर पहुच कर समाधि मरण पूर्वक प्राणोत्सर्ग किया। कड़ी से कडी धूप में घटो खडे रहकर ध्यान करते थे। हिंसश्वापदो आदि की परवाह न कर पहाडो और निर्जन वनो में जाकर निर्भयता से सामायिक करते थे। निरन्तर उपवासादिको के द्वारा शरीर कृश करते थे। अनेक रसो का त्याग करके आहार लेते थे और कडे से कडा नियम (व्रत परिसख्यान) लेकर आहार के लिए निकलते थे। अनेक दिनो तक भी नियमानुसार आहार न मिलने पर भी कभी खेद खिन्न नही होते थे और न अपने ध्यानाध्ययन मे कोई शिथिलता आने देते थे।

एक दफा उनका नैणवां (राजस्थान) में चातुर्मास योग था। एक रोज आहार में गेहूं की बाटी कड़ी होने से उनसे खाई नही गई और उन्होंने वह ग्रास छोडकर अन्तराय करली। श्रावकों ने समझा कि महाराज श्री के गेहूं का त्याग होने से उन्होने अन्तराय करली। फिर क्या था उस रोज से रोज आहार मे मक्के की रोटी और मक्के का आटा बनने लगा। करीब दो माह तक यह क्रम चलते रहा। लेकिन महाराज श्री ने कभी भी अपने अन्तराय के सही कारण का गोप्यस्फोट किसी के भी पास प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से भी नही किया। एक रोज कर्मोदय से नांद गांव के श्रावको ने आकर चौक लगाया। गाव के लोगों ने उनको गेहूं का पदार्थ चौके में बनाने को मना करने पर भी उन्होने गेहूं की रोटियां बनाईं। भाग्य से उस रोज आहार भी उनके यहां निरन्तराय हुआ। लोगों ने यह अपवाद लगाया कि आज महाराज ने उनके गांव के श्रावक का चौका होने मे गेहूं की रोटी आहार में लेली। तब कहीं उस रोज महाराज श्री ने अपने धर्मोपदेश के बाद अंतराय की सही स्थिति का निर्देश कर लोगों का भ्रम दूर किया। ऐसी थी शरीर से निर्मोह और निःस्पृह वृत्ति श्री चद्रसागर जी की।

नांद गांव में महाराज श्री की स्मृति में अनेक वर्ष पूर्व श्रावको ने श्री मुनि चन्द्र सागर दिगम्बर जैन धर्मार्थ औषधालयकी स्थापना की थी। कर्म, धर्म, संयोग से महाराज श्री की इच्छा न होते हुए भी संघ के एक साधु मुनि हेम सागर जी के अचानक अधिक बीमार हो जाने के कारण नांद गांव (उनकी जन्म-भूमि) मे ही महाराज श्री को वर्षा योग करना पड़ा। शहर में

अनेक बडे-बड़े उदारधी श्रीमन्त लोग महाराज को भक्तिवश दर्शनार्थ राजस्थान, मालवा, बगाल आदि दूर-दूर प्रदेशो मे आते थे। महाराज श्री चाहते तो उनके नाम से स्थापित औषधालय को अपने भक्तों से प्रेरणा कर हजारों की निधि सहज में प्राप्त कर सकते थे। लेकिन पूज्य महाराज श्री ने कभी भी किसी को औषधालय के लिए प्रेरणा नही की।

इसी प्रकार पूज्य महाराज श्री ने कभी भी कही किसी को कोई सस्था को निर्माण करने को नही कहा। वे अपनी अयाचक वृत्ति में कोई दाग लगने नही देना चाहते थे। अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग, निरन्तर ध्यानाध्ययन और तपस्या की आत्म साधना के सिवाय किसी लोकैषणा की चाहकी दाह से वे सदैव अलिप्त रहते थे। लोकानुरजन नही आत्मानुरजन की उन्हे चाह थी। जीवन की यही एकमात्र साध थी। जिसके लिए वे समर्पण वृत्ति से रहते थे। आत्मा के लिए जो-जो श्रेयस् होता था वही उनके लिए प्रेयस था। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य के शब्दो में 'आदहिदं कादव्व' का पूज्य महाराज श्री के जीवन मे प्रथम स्थान था। उसके बाद वे परहित मे अपना समय देते थे।

रत्नत्रय की मूर्तिमंत प्रतिमा

वास्तव मे मुनिराज श्री चन्द्र सागर जी को देखकर रत्नत्रय की मूर्तिमत प्रतिमा को देखने का हृदय को सतोष मिलता था। महाराजश्री का जीवन हिमालय की तरह उत्तुग सागर की तरह गभीर, चन्द्रमा की तरह शीतल, तपस्या में सूर्य को तरह प्रखर, स्फटिक की तरह अत्यन्त निर्दोष, आकाश की तरह अंतर्बाह्य खुली किताब, महाव्रतों के पालन में वज्र की तरह कठोर, मेरु सदृश अडिग एव गगा की तरह अत्यंत निर्मल था।

वे साधुओ मे महा साधु, तपस्वियों मे कठोर तपस्वी, योगियों मे आत्मलीन योगी, महाव्रतियो मे निरपेक्ष महाव्रती और मुनियों मे अत्यन्त निर्मोह मुनि थे। वास्तव मे ऐसे ही निर्मल नि:स्पृह और स्थितिप्रज्ञ साधुओ से ही धर्म की शोभा है। विश्व के प्राणी ऐसे ही सत्साधुओं के दर्शन, समागम और सेवा से अपने जीवन को धन्य बना पाते है।

पूज्य तरण-तारण महा मुनिराज श्री चन्द्र सागर जी महाराज अपने दीक्षा गुरु परम-पूज्य श्री १०८ आचार्य शान्ति सागर जी की शिष्य परम्परा मे और आज के साधु जीवन मे न केवल ज्येष्ठता मे श्रेष्ठ थे वरन् श्रेष्ठता मे भी श्रेष्ठ थे। उनके पावन पद विहार से धरा धन्य हो गई। सच्चा आध्यात्म जगमगा उठा और आत्महितैषियों को आत्म पथ पर चलने के लिए प्रकाश स्तम्भ मिल गया। वास्तव मे वे लोग महा भाग्यशाली है कि जिन्हे ऐसे लोकोत्तर असाधारण महा तपस्वी सच्चे आगमनिष्ठ साधु के दर्शन का सुयोग मिला हम इस स्मृतिग्रन्थ के प्रकाशन के सुअवसर पर उस महा साधु आध्यात्म योगी तपस्वी के पावन चरणो मे श्रद्धावनत होकर नम्र अभिवादन कर भाव पूर्वक अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पण करते हुए अपने को पुण्यशाली अनुभव करते है।



ॐ ह्री श्री वर्द्धमानाय नमः ॐ ह्री श्री चंद्रसागराय नम.

पूज्य आचार्य कल्प श्री चन्द्र सागर जी महाराज का जीवन परिचय

— आर्यिका श्री १०५ सुपार्श्वमती माताजी —

जन्म

इस भरत क्षेत्र में महाराष्ट्र देश है-उसमें नादगाव नामक नगर है। उस नगर में खंडेल वाल जातीयोत्पन्न जैन धर्म परायण नथमल नामक श्रावक रहते थे-उनकी भार्या का नाम सीता था। वास्तव में वह सीता ही थी-अर्थात शीलवती और पति के आज्ञानुसार चलने वाली थी। सेठ नथमलजी और सीता बाई का सम्बन्ध जयकुमार सुलोचना के समान था। शालि वाहन सम्वत्१८०५ वि०सवत्१६४०मिति माघ कृष्ण त्रयोदशी के दिन शनिवार की रात्रिको नक्षत्र पूर्वाषाढा मे सीता बाई की पवित्र कुक्षि से पुत्र रत्न की उत्पत्ति हुई। जिसके रूप राशि ने सूर्य चन्द्रमा भी लज्जित हो गये। पुत्र का मुख देखकर माता को असीम आनन्द हुआ। घर में वादित्र बजने लगे। पिता हर्षित होकर कुटुम्बी जनो को पारितोपिक देने लगे। जन जन के हृदय मे खुशिया थी। दसवे दिन बालक का नामकरण सस्कार किया। जन्म नक्षत्रानुसार जन्म नाम भूरामल भीमसेन आदि होना चाहिये। परन्तु पुत्रोत्पत्तिके समय माता पिता को अपूर्व आनन्द हुआ था इसलिये ही उन्होने इनका नाम खुशहाल चन्द रखा हो-ऐसा अनुमान लगाया जाता है। इनके जन्म तिथिवार नक्षत्र महीना इनके हस्तलिखित गुटके मे पौष कृष्णा त्रयोदशी के दिन शनिवार पूर्वाषाढा नक्षत्र रात्रिके समय लिखा है-वह महाराष्ट्र देश की अपेक्षा है क्योंकि मरुस्थल में और महाराष्ट्र के कृष्ण पक्ष मे एक महीने का अन्तर है-शुक्ल पक्ष दोनो के समान है इसलिए माघ कृष्ण त्रयोदशी कहो या पौष कृष्ण त्रयोदशी दोनो का एक ही अर्थ है।

वह बालक खुशहाल चन्द्र द्वितीया के चन्द्रवत् दिन प्रतिदिन वृद्धिगत हो रहे थे। जिस प्रकार चन्द्रमा की वृद्धि मे समुद्र वृद्धिगत होता है-उसी प्रकार खुशहाल चन्द्र की वृद्धि से कुटुम्बीयो का हर्ष रूपी समुद्र बढ रहा था।

विवाह : पत्नी वियोग : ब्रह्मचर्यव्रत

अभी खुशहाल चन्द्र ८ वर्ष के पूरे नही हुये थे कि पूर्वोपार्जित पाप कर्म के उदय से पिता की छत्र छाया शिर पर से उठ गई-अर्थात् पिता का स्वर्गवास हो गया। नमस्त घर का भार

विधवा माता पर गिर गया। उस समय इनके बड़े भाई की उम्र२०वर्ष की थी छोटे भाई की चार वर्ष की थी। घर की परिस्थति नाजुक थी-ऐसी अवस्था मे बच्चों के शिक्षण की व्यवस्था कैसे हो सकती है इसको भुक्त भोगी ही जानसकना है। खुशहाल चन्द्र की बुद्धि तीक्ष्ण थी परन्तु शिक्षण का साधन नही होने के कारण उनको छह क्लास तक पढकर १४वर्ष की अवस्था मे शिक्षण छोड कर व्यापार के लिए उद्योग करना पड़ा। पढ़ने की इच्छा तीव्र होते हुये भी पढ़ना छोडना पड़ा ठीक ही है कर्म की गति विचित्र है-इस संसार में किसी की इच्छा पूर्ण नही होती। जब खुश हाल चन्द्र की उम्र २० वर्ष की थी, उसकी इच्छा न होते हुये भी कुटुम्बी जनो ने उसकी शादी करदी परन्तु इस शादी से आपको संतोष नही था-क्योंकि लड़की रुग्ण थी। डेढ़ साल बीता होगा कि आपकी पत्नी का स्वर्गवास हो गया। आपके लिये मानो खान् नो रत्नवृष्टि' आकाश स्थल से रत्नो की वर्षा ही हो गई क्योकि आपकी रुचि भोगो में नही थी। उस समय आपकी उम्र २१ वर्ष की थी-अग अग में जवानी फूट रही थी भाल ललाट देदीप्यमान था। तारुण्य श्री से उनका शरीर अलकृत था; और उनके कुटुम्बी जन उनको पुन: विवाह के बंधन मे बाधकर संसारिक भोगों में फसाने का प्रयत्न करने लगे। परन्तु खुशहाल चन्द्र की आत्मा सर्व प्रकार से समर्थ एवं एवं सांसारिक यातनाओ से भयभीत थी इसलिये उन्होंने मकडी के समान अपने मुख की लार से अपना जाल बनाकर और उसी मे फसकर अपना जीवन गमाने की चेष्टा न की। किन्तु अनादि कालीन विषय वासनाओं पर विजय प्राप्त कर आत्म तत्त्व को प्राप्त करने के लिये, दुर्बलताओं का वर्धक दु.ख और अशान्ति का कारण गृहवास को तिलाजलि देकर दिगम्बर मुद्रा को धारण कर आत्म साधना निमित्त अन्त: बाह्य. सत्य, अहिसा अचौर्य ब्रह्मचर्य अपरिग्रह का प्रशस्त पथ स्वीकार कर कर आत्म कल्याण करने का विचार किया। इसलिये आपने जेष्ठ शुक्ला नवमी विक्रम सवत् १९६२ को आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार कर लिया। इस तारुण्य अवस्था में आपने ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर महान् वीरता का काम किया।

मित्र–लाभ : आत्मिक उन्नति की ओर–

उस दिन से आप अपने मनो मर्कट को वश में करने के लिए स्वाध्याय में लीन हो गये। ग्रहस्थ सम्बन्धित व्यवसाय करते हुये भी जैसे जल में कमल भिन्न रहता है उसी प्रकार आप उनमें अलिप्त थे। यदि उस समय किसी त्यागी गण का सत्संग मिलता तो उसी समय घर बार छोड़ देते। गृहस्थाभार सिर पर होने से व्यापार करने के लिये बम्बई आदि नगरो में भ्रमण किया। व्यापार में उन्नति की व्यापारियो के विश्वास के पात्र बने। आपकी दिन प्रतिदिन घर की उदासीनता बढ़ती ही चली गई। उनके मन मे संसारिक दु.खो से ग्लानि उत्पन्न हो गई और वह किसी प्रकार शांत नहीं हुई। इस बीच में आपकी मित्रता श्री ब्र० हीरालालजी गंगवाल से हो गई मानो सोने में सुगन्ध आगई। ब्र०हीरालालजी धर्मानुरागी एव वात्सल्य भाव से ओत प्रोत थे इनकी शास्त्र स्वाध्याय में बहुत प्रवृत्ति थी दिनभर शास्त्र समुद्र का मथन कर सार निकालते थे। आप दोनो की सगति आत्म साधक हुई आप दोनो जब कभी परस्पर मिलते थे तो

"आत्मिक उन्नति कैसे होगी" इसी का विचार किया करते थे। आप दोनों ने समाज का सेवा करते हुए आत्मोन्नति करने का निश्चय कर लिया।

पांचवी प्रतिमा

वीर सवत् २४४६ में श्री १०५ ऐलक पन्नालाल जी का चातुर्मास नादगाव मे हुआ तब आपने अषाढ शुक्ला दशमी के दिन तीसरी सामायिक प्रतिमा धारण की। श्री ऐलक महाराज के चरण प्रसाद से आपकी प्रतिदिन ससार से विरक्ति वृद्धिगत होती गई। इसलिये भाद्रपद शुक्ला पंचमी को सचित्त त्याग पाचवी प्रतिमा धारण की।

चातुर्मास पूर्ण होने के पश्चात् आपने श्री १०५ ऐलक जी महाराज के साथ चार महीना तक महाराष्ट्र के ग्राम और नगरो मे भ्रमण कर धर्म का प्रचार किया। तदनतर आपने समस्त तीर्थ क्षेत्रो की यात्रा की अपनी शक्ति अनुसार क्षेत्रों में दान भी दिया।

उस समय इस भूतल पर मुनियो के दर्शन अत्यन्त दुर्लभ थे महानिधि के समान दिगम्बर साधु कही कही दृष्टि गोचर होते थे। आप का हृदय मुनि दर्शन के लिए 'निरन्तर छटपटाता रहता था। उनको गृहस्थारम्भ विषके समान प्रतीत होता था निरन्तर विचार करते थे अहो वह शुभ घड़ी कब आयेगी जिस दिन में दिगम्बर होकर आत्म कल्याण के अग्रसर होऊ ।

आचार्य शाँतिसागर जी के दर्शन

एक दिन आपने आचार्य श्री १०८ शाति सागर महाराज की ललित कीर्ति सुनी। आपका मन उन गुरुवर के दर्शनो के लिये लालायित होने लगा। उनके दर्शन बिना आपका मन जल के बिना मछली के समान तडफने लगा। इसी समय ब्र० हीरालाल जी गगवाल शांतिसागर महाराज के दर्शन करने के लिए दक्षिण की ओर जाने लगे। यह वार्ता सुनकर खुशहाल चन्द्र का मन मयूर नाचने लगा और ब्रह्मचारी जी के साथ आप ने भी आचार्य श्री के दर्शनार्थ प्रस्थान किया। आचार्य श्री उस समय ऐनापुर के आस पास विहार कर रहे थे। आप दोनों महानुभाव उनके पास चले गये। तेजोमय मूर्ति शाति सागर महाराज के चरण कमलों में अतीव भक्ति से नमस्कार किया—आपके चक्षु पटल निर्निमेष दृष्टि से उनको आर निहारते ही रह गये। आप का मन आनद की तरगो से व्याप्त हो गया। आपने आचार्य श्री की ध्यान मुद्रा देखकर निश्चय कर लिया कि यदि ससार मे मेरे कोई गुरु हो सकते है तो यही महानुभाव हो सकते है और कोई नही। आप का चित्त आचार्य श्री के पादमूल मे रहने के लिए ललचाने लगा। आप गोम्मट्ट स्वामी की यात्रा करके वापिस आये और उनसे सप्तम प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये। कुछ दिन घर में रहकर आचार्य श्री के पास वीर निर्वाण सम्वत् २४५० फाल्गुन शुक्ला सप्तमी के दिन क्षुल्लक व्रत ग्रहण किये। निरन्तर महाराज के समीप स्वाध्याय ध्यान में मग्न रहने लगे। आचार्य श्री ने समडोली मे चातुर्मास किया। आश्विन शुक्ला एकादशी वीर सं० २४५०मे ऐलक दीक्षा ग्रहण की आपका नाम चन्द्रसागर रखा गया। वास्तव में आप चन्द्र थे

गौरवर्ण उन्नत भाल तेजस्वी ललाट चन्द्र के समान था। आप के धवल यश की किरणें चन्द्रमा के समान समस्त संसार में फैल गईं। वीर सम्वत २४५३ में आचार्य श्री ने सम्मेद शिखर की यात्रा के लिए प्रस्थान किया। ऐलक चन्द्र सागर जी भी साथ में थे। संघ फाल्गुन में तीर्थ राज में पहुंचा—तीर्थ राज की वन्दना कर अपने को कृत्य-कृत्य समझा। तीर्थराज पर संघपति पुनम चन्द घासीलाल ने पंचकल्याणक प्रतिष्ठा करवाई—जिसमें लाखों जैन नर-नारी दर्शनार्थ आये। धर्म की अपूर्व प्रभावना हुई। वहां से विहार कर कटनी ललितपुर जम्बू स्वामी सिद्धि क्षेत्र मथुरा में चातुर्मास करके अनेक ग्रामो में धर्मामृत कीवर्षा करते हुए सोनागिरि सिद्ध क्षेत्र पहुचे। वहां पर आपने वी०सं २४५६ मार्ग शीर्ष शुक्ला १५ सोमवार मृग नक्षत्र मकर लग्न में दिन के१० बजे आचार्य श्री शान्ति सागर महाराज के चरण सान्निध्य में दिगम्बर दीक्षा ग्रहणकी। समस्त कृत्रिम वस्त्राभूषण का त्याग कर पच महाव्रत पंच समिति तीन गुप्ति रुप आभूषण तथा २८ मूल गुण रुप वस्त्रों से अपने को सुशोभित किया।

जब धर्म मार्ग अवरुद्ध हुआ, पथ भूल भटकते थे प्राणी।
सद्‌गुरु के उपदेश विना, नहीं जान सके थे जिनवानी ॥
धर दीक्षा मुनि मार्ग बताया, स्वयं बने निश्चल ध्यानी।
प्रणम श्रीगुरु चन्द्र सिन्धु को-जिनकी महिमा सब जग जानी ॥

दिगम्बर मुद्रा धारण करना सरल और सुलभ नही, अत्यन्त कठिन है। जो धीर-वीर महा पुरुष हैं—वही इस मुद्रा को धारण कर सकते है। कायर मानव इस मुद्रा को धारण नही कर सकते। आपने इस निर्विकार मुद्रा को धारण कर अनेक नगर और ग्रामों में भ्रमण किया। तथा अपने धर्मोपदेश से जन जनके हृदय पटल से मिथ्याधकार को दूर किया। सुना जाता है कि आपकी वक्तृत्व शक्ति अपूर्व थी। आपका तपोवल, आचार बल, श्रुत बल, वचन बल, आत्मिक बल, धैर्य बल, प्रशंसनीय था।

सिंह वृत्ति धारक

जिस प्रकार सिंह के समक्ष श्याल नही ठहर सकते—उसी प्रकार आपके सामने वादीगण भी नही ठहर सकते थे। श्याल अपनी मडली मे उहू-उहू कर शोर मचा सकते है परन्तु सिंह के सामने चुप रह जाते है। वैसे ही दिगम्बरत्व के विरोधी जिन शास्त्र के मर्म को नही जानने वाले अज्ञानी दूर से आपका विरोध करते थे परन्तु समक्ष आने के बाद मूक के समान चुप रह जाते थे।

सुना है—कि जिस समय आचार्य श्री का संघ दिल्ली में आया—उस समय सरकारी लोगों ने नियम लगा दिया कि दिगम्बर साधु नगर में विहार नही कर सकते। जब यह वार्त्ता निर्भीक चन्द्र सिंधु के कानो पर पड़ी तो उन्होंने विचार किया—अहो! ऐसे तो मुनिमार्ग ही रुक जायगा इसलिए उन्होंने आहार करने के लिए शुद्धि की, और वीतराग प्रभु के समक्ष कायोत्सर्ग करके हाथ में कमण्डलु लेकर शहर में जाने लगे, श्रावक गण चिन्तित हो गये क्या होगा—

परन्तु महाराज श्री के मुख मंडल पर अपूर्व तेज था—सिंह के समान निर्भय होकर जा रहे थे। जब साहब की कोठी के नीचे गये, तो साहब इनकी शान्त मुद्रा देख कर नत मस्तक हो गया, भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगा। सत्य ही है —महा पुरुषों का प्रभाव अपूर्व होता है।

अपवाद-उपसर्ग विजयी

आपकी भावना थी "सर्वे सुखिन. भवतु"। महाराज श्री का निरन्तर प्रयत्न संसारी जीवों को धर्माभिमुख करने के लिए था। गुरुदेव की तपस्या केवल आत्म कल्याण के लिए नहीं थी, अपितु इस युग को धर्म और मर्यादा का विरोध करने वाली दूषित पाप-वृत्तियों को रोकने के लिए भी थी। मानवों की पाप-वृत्तियो को देख कर उनका चित्त आशंकित था। महाराज श्री ने इनके विनाश करने मे पूरे साहस और धैर्य से यत्न किया। मूढ धर्म भावना शून्य लोगो ने इनके पथ मे पत्थर बरसाने मे कोई कमी नही रखी। परन्तु मुनि श्री ने एक परम साहसी सेनानी के समान अपनी गति नही बदली। यश और वैभव को ठुकराने वाले "क्या विरोधियो की परवाह कर सकते हैं कभी नही। महाराज श्री हमेशा ही सत्य सिद्धान्त और आगम पक्ष के अनुयायी रहे। सिद्धान्त के समक्ष आप किसी को कोई मूल्य नही देते थे। यदि शास्त्र की प्रतिपालनामें प्राणो की भी आवश्यकता होती थी तो आप निःसकोच देने को तैयार रहते थे। जिन धर्म के मर्म को नही जानने वाले द्वेष की अग्नि से प्रज्वलित अज्ञानियों ने महाराज श्री पर वर्णनातीत अत्याचार किए जो लेखनी मे लिखा नही जाता। परन्तु मुनि श्री ने इतने-इतने घोरोपसर्ग आने पर भी अपने सिद्धान्त को नही छोडा—सत्य है "न्यायात्पथ. प्रविचलन्ति पद न धीरा:" घोरोपसर्ग आने पर भी धीर-वीर न्याय मार्ग मे विचलित नही होते।

यह निश्चित है कि मानव मे असाधारणता कठिन से कठिन परीक्षा मे उत्तीर्ण होने पर ही आती है। अगर वत्ती को अग्नि मे जलना मान्य नहीं हो तो उसकी सुरभि दशो दिशाओ में महक नही सकती। सुवर्ण का मूल्य अग्नि मे तपाये बिना आका नही जा सकता—उसी प्रकार उपसर्ग सहन किये बिना महानता आ नही सकती। अग्नि मे तपाने पर जो निखरता है उसे कुन्दन कहते है। आपत्ति आने पर भी विचलित नही होने उसे सज्जन कहते हैं।

महा सती सीता देवी की महिमा इसलिए है कि वह अग्नि परीक्षा में उत्तीर्ण हुई। उसके सतीत्व की परीक्षा के लिए राम ने अग्नि कुंड बनवाया—और कहा तुम्हें अपने शील की परीक्षा देने के लिए अग्निकुन्ड मे प्रवेश करना होगा। सीता सती भभकती हुई भीषण अग्नि की ज्वाला मे कूद पड़ी महामाता सीता वास्तव मे निष्कलंक निष्पाप पूज्य पाद महासती थी। उसका वह घोर अग्नि ज्वाला कुछ नही कर सकी—स्वय जलवत् शात हो गई।

स्वर्गस्थ देवगण ने अग्निकुण्ड को जल कुण्ड बना दिया तथा उस पर कमल का आसन बिछा दिया और देवकृत चमत्कारो से उस आसन पर सीता आसीन हो गई। नभ मंडल जयकारो की ध्वनि से व्याप्त हो गया। सीता का सुयश जग में फैल गया। आज कितने वर्ष हो गए, अभी तक जन-जन के हृदय मे सीता के गुणों की सुवास भरी हुई है। सत्य है—आपत्तियो का सामना करने पर ही गुणो की प्रतिष्ठा होती है। गुरु देव ने घोर आपत्तियो का सामना किया जिससे आज भी उनका नाम अजर-अमर है।

एक कवि ने कहा है —

लाखों सेती पूजनीय यतियों में अग्रनीय,
चारित्र से शोभनीय कर्म मल धोहिंगे।
द्रव्यवंत देख डर, खुशामदि होय कर,
दियो न आशीर्वाद धर्म धारी मोहिंगे।
रुग्ण सु अवस्था मांहि सुयात्रा करत रहे,
समाधि मरण कर स्वर्ग गये सोहिंगे।
मोह हारी, गुणधारी, उपकारी, सदाचारी,
मुनीद्र चन्द्र सिंध् से हुए है न होहिंगे।

मारवाड़ के सुधारक

आपकी सिंह वृत्ति थी। जिस समय समाज का प्राणी मात्र चारित्र हीन और धर्म विहीन बनता जा रहा था- उस समय आपने जैन समाज को धर्मोपदेशकर सन्मार्ग मे लगाया। अनेक ग्रामो नगरो में भ्रमण करके अपने वचनामृत के द्वारा धर्म पिपासु भव्य प्राणियों को संतुष्ट करते हुये राजस्थान के अन्तर्गत सुजानगढ़ नगर में पधारे। वि० सं० १९९२ में आपने यहां चतुर्मास किया। इस मारवाड देश की उपमा आचार्यों ने संसार की दी है। जहां पर अतीव उष्णता अतीव ठंडक है—गर्मी के दिनो में भीषण सूर्य की किरणो से तप्तायमान धूलि मे ज्वाला निकलती है। आपने जिस समय राजस्थान में पदार्पण किया उस समय लोग मुनियो की चर्या से अनभिज्ञ थे- खान पान अशुद्ध हो गया था- आपने अपने धर्मोपदेश से जनता का सम्बोधन किया- उनको श्रावकाचार की क्रियाओं का ज्ञान कराया। आपके सदुपदेश से कई व्रती बने। मारवाड़ प्रांत के लोगों की सुधारणा का श्रेय आपको ही है।

मेरी मधुर स्मृति

चतुर्मासांतर महाराज श्री लाडनू डेह लालगढ आदि नगरो में विहार कर मैनसर ग्राम में आये। मेनसर एक छोटा सा ग्राम है- जहां पर एक मन्दिर है- जिसमे कृष्ण पाषाण की पार्श्वनाथ की मूर्त्ति है- शिखरबंध मन्दिर है उस समय श्रावको के २५ घर थे वर्त्तमान में तो एक घर भी नही है- केवल मन्दिर है। वही पर मेरा जन्म हुआ है। वहां पर बालू रेत के धोरे है रेल गाड़ी मोटर आदि वाहन का जाना दुष्कर है- माघ के महीने में महाराज का उस गाव में पदार्पण हुआ- जनता के हृदय सरोवर में उल्लास की नवीन उर्मियां लहराने लगी। इस देश में ऐसे घोर तपस्वी का आना परम आश्चर्यजनक था। जो सन्मार्ग को भूले हुये थे जिनका खान पान अशुद्ध हो गया था- उनको अपने धर्मोपदेश से सन्मार्ग दिखाया। जिस समय महाराज श्री का मेंनसर गांव मे पदार्पण हुआ- उस समय मेरी आयु सात वर्ष को थी। परन्तु महाराज श्री की उपदेश के समय एक हाथ मे लाल रंग की पुस्तक दाहिने पैर बाये पैर के ऊपर एक हाथ की अंगुली ऊपर उठाई हुई जो मुद्रा थी वह अभी भी मेरे हृदय पटल पर अंकित है। उनकी मृदु वाणी की झंकार मेरे कानो मे गूज रही है। मेरे कसी महान पुण्य का उदय था,

जिससे इस छोटी सी उम्र में आपके दर्शन किये। आपके दर्शन की [illegible] नहीं भूल सकती। मैं तो ऐसा मानती हूं कि उन्हीं के संस्कार से आज मैं इस पद पर [illegible] हुई हूं।

उत्कृष्ट धर्म प्रचारक

गुरुओ की गौरव गाथा गाई नही जा सकती। आपके वचनो मे [illegible] और [illegible] हृदय में विविक्षा, मन मे मृदुता, भावना मे भव्यता, नयन मे परीक्षा, बुद्धि मे समीक्षा [illegible] मे विशालता, व्यवहार में कुशलता और अन्त:करण मे कोमलता कूट कूट कर भरी हुई थी। इस लिये आपने मानव को पहिचाना-पात्र की परीक्षा कर व्रत दिये। जन जन के हृदय मे [illegible] की सुवास भरी।

वर्तमान चन्द्र अन्धकार को दूर करता है, परन्तु चन्द्र सागर रूपी चन्द्र निर्मल चन्द्र थे। उनकी ज्ञान ज्योत्सना निर्मल थी। जो ज्ञानियों के मन-मन्दिर मे ज्ञान का प्रकाश [illegible] थी। जिन्होने धर्मोपदेश देकर जन-जन का अज्ञान दूर किया। देश-देशान्तरो मे विहार कर [illegible] धर्म का प्रचार किया। उनका वह परम उपकार कल्पात काल तक स्थिर रहेगा। उनके वचनो में ओज था। उपदेश की शैली अपूर्व थी। उनके मधुर भाषणो मे उनके जैन सिद्धान्त के अभूत पूर्व मर्मज्ञ होने की प्रखर प्रतिभा का परिचय स्वत. मिलता था। उनकी [illegible] वाक्य रश्मियों से साक्षात् शांति-सुधा, रस विकीर्ण होता था। जिसे पान कर भक्त जन झूम उठते और अपूर्व शांति का लाभ लेते थे।

अपूर्व मनोबल

उनकी वृत्ति सिंह वृत्ति थी; अतएव उनके अनुशासन तथा नियन्त्रण में माता का लाड़ न था। सच्चे पिता की सी परम हितैपिणी कठोरता थी। जिसके लिए उन्होंने अपने जीवनोपार्जित यश की बलि चढ़ाने मे जरा भी परवाह न की।

अनेक देशो में विहार करते हुये विक्रम संवत २००१ फाल्गुन सुदी ८ [illegible] बावन-गजा मे आये। उस समय आपके इस भौतिक शरीर को ज्वर के वेग ने पकड़ लिया था। इस लिए उनका शरीर यद्यपि दुर्बल हो गया था। फिर भी मानसिक बल अपूर्व था। [illegible] सिद्ध क्षेत्र में चांदमल पन्नालाल की ओर से मानस्तम्भ प्रतिष्ठा थी। आपने [illegible] अवस्था में भी अपने हाथ से प्रतिष्ठा कराई।

पूज्य गुरुदेव की शारीरिक स्थिति अधिकाधिक निर्बल ही होती गई। तो भी महाराज श्री ने फाल्गुन सुदी १२ को फरमाया कि मुझे चूलगिरि के दर्शन कराओ।

लोगो ने कहा— "महाराज—शरीर स्वस्थ होने पर पहाड़ पर जाना उचित होगा। गुरुदेव ने कहा कि शरीर का भरोसा नही। यदि शरीर ही नही रहा तो हमारे दर्शन [illegible]

जायेंगे। महाराज श्री दर्शन करने के लिये पर्वत पर गये उस समय १०५ डिग्री ज्वर था। निर्बलता भी पर्याप्त थी। महाराज श्री ने बड़े उत्साह और हर्ष से दर्शन किये। सन्यास भी ग्रहण कर लिया अर्थात् अन्न का त्याग कर दिया। फाल्गुन सुदी १३ को जल मात्र लिया।

अंतिम संदेश

त्रयोदशी को ही अन्न जल त्यागकर सन्यास धारण करते समय कहा था कि अष्टान्हिका की पूर्ति परसों है न ? लोगों ने कहा, हां महाराज ! "सब लोग धर्म का सेवन न भूलें। आत्मा अमर है।"

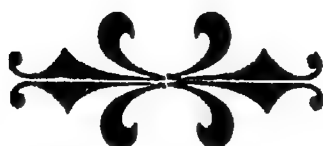
फाल्गुन सुदी १४ को और भी शक्ति क्षीण हो गई। डाक्टरों ने महाराज श्री को देखकर कहा कि महाराज का हृदय बडा दृढ़ है, औषधि लेने पर तो शर्तिया स्वस्थ हो सकते हैं। परन्तु गुरुदेव कैसी औषधि लेते। उनके पास तो मुक्ति मे पहुंचाने वाली परम वीतराग नामक आदर्श महौषधि थी।

शरीर–त्याग

फाल्गुन सुदी १५ के दिन बारह बज कर बीस मिनट पर गुरुदेव ने इस विनाशशील शरीर को छोड़ अमरत्व की प्राप्ति कर ली। यह सन १९४५ की २६ फरवरी का दिन था। इस दिन अष्टान्हिका को समाप्ति थी। दिन भी चन्द्रवार था। परमाराध्य गुरुदेव चन्द्र सागर ने पूर्ण चन्द्रिका-चन्द्रवार के दिन सिद्ध क्षेत्र पर होलिका की आग मे अपने कर्मो को शरीर के साथ फूंक दिया। समस्त भक्तजन स्वामीराज के वीतराग शरीर की ओर विलखते रह गये। सभी के नेत्र अश्रु प्लावित हो गये।

चरण–वन्दना

दृढ़ तपस्वी, आर्ष मार्ग के कट्टर पोषक वीतरागी, परम विद्वान, निर्भीक, प्रसिद्ध उपदेशक, आगम मर्मस्पर्शी अनर्थ के शत्रु, सत्य के पुजारी, मोक्षमार्ग के पथिक, सांसारी प्राणियों के तारक, आत्मबोधि, स्वपरोपकारी, अपरिग्रही तारण-तरण, संताप हरण, गुरुदेव के चरण कमल में शत-शत वन्दन ! शत्-शत् वन्दन।



दिगम्बरी चन्द्र

—ले० श्री १०५ छुल्लक सुभद्र सागर जी महाराज—

(श्री श्रेयास सागर मुनि सघस्य : नादगाव चातुर्मास सन् १९७५)

काही उच्च ध्येय, उच्च आदर्श आपल्या नयन कमला समोर अविरत ठेऊन ज्यानी भारतीय जैन दिगंबरी संस्कृति हिमालया सम उत्तुंग तसेच क्षीर समुद्राप्रमाणे पवित्र-मधुर अमततुल्य आणि अलौकिक केली अशा नरवीराची प्रसिद्धि सर्व जगा मध्ये दुमदुमुन राहीली आहे असे अनेक साधुरत्ने ह्या भारतात होऊन गेली आहेत. ह्या वृंद मालिकेत आपले परम पूज्य आचार्य कल्प श्री १०८ चन्द्र सागर महाराजाचे नाव आणि नावाप्रमाणे त्र ऊन अग्रगण्य (श्रेष्ठत्वाने) गभीर (कर्तृत्व-चारित्र-दिव्य त्याग) तेने सतत जन मनावर आज ते नराता नाही डोलतो आहे

आज जी आम्हाला त्याच्या स्मृतीची आठवण कराविशी वाटते त्याला जी अनेक कारणे आहेत त्यामध्ये त्यानी जो आमच्या साठी कर्तृत्वाचा तरण तारण-न्यायाने जो अमृताचा भरा ठेवला आहे त्याचे प्राशन करता यावे त्यांचा तो स्वपर-कल्याणकारी सुखकर मार्ग आम्हा सही प्राप्त व्हावा, त्याची सतत स्मृती रहावी म्हणूनच आम्ही त्याचे शिष्य-भक्त-पूजारी त्याचे नांवाचे स्मृति-ग्रंथ, औपधालय ग्रंथालय, शिक्षण सस्यादि काढु इच्छितो. त्याचे चालने बोलते प्रतीक हेच आहे.

आमचा हा त्रिकालदर्शी, त्रिकाल वदनीय चद्र महाराष्टातील नासिक जिल्ह्यातील निसर्ग-रम्य नादगाव च्या धर्म प्रेमी, दानशूर श्री सेठ नथमल जी व त्यांची धर्मपत्नी, धर्मनिष्ठ सौ० सीताबाई च्या पोटी सुखी-समृद्धि वैभव सपन्न आणि जैन धर्मात अप्रतिम ठरणार्या पहाडे घरा-ण्यातील खडेलवाल समाजा च्या क्षितीजावर विक्रम सवन १९४० रोजी शुभ मुहूर्ता वर उदयाला आला. त्याचे शिशुपणातील व गृहस्थी अवस्थेतील नाव "खुशालचन्द" होते "शुद्ध बीजा पोटी फले येती रसाल गोमटी" ह्या न्यायाने केवलचद जी (देशभक्त) खुशालचद जी (मुनी चद्र सागर जी) लालचद जी (व्रतीक) आणि एकत्र भगिनी सौ० चदाबाई (जलगाव) असी ही चारी भावडे धर्मप्रेमी, श्रद्धालु, दानशूर, पुढारी, देशभक्त असे होते

एकदर ह्या चद्रा च्या जीवन रुपी कला च्या अपेक्षे ने आयुष्यातील दिवसांची गिनती करत असताना चद्रापेक्षा एक जास्त म्हणजे तीन समान पक्ष उत्तरोत्तर उज्वल वृद्धिगत असे वीस वर्षा चे दिसुन येतात एकदर आयुष्य एकसष्ठ वर्षा चे आहे. त्यापैकी वीस वर्षा पर्यंत शिशुकाल. एकवीसाव्या वर्षा विवाह बधना चाळीसाव्या वर्षा पर्यंत गृहस्थीचा काल, एकेचाळी-साव्या वर्षा नतरचे दीक्षासह समाधिचा काल.

अशा ह्या समाधि-स्वर्गस्थ आत्म्याचा बाल्यकाल बहुतेक जन्म भूमि नांदगांव मध्ये गेला. त्यांचे शिक्षण इंग्रजी पांचवी ते सहावी पर्यन्त झाले होते. त्यांची रहाणी अत्यन्त साधी परन्तु देशाला-धर्माला व व्यापारी पेशाला शोभेल डौलदार दिसेल असे खादीचे धोतर-सदरा पागोटे असे असे. त्याच्या चेहर्यावर पवित्र तेचो एक अपूर्व ज्योती चमकत होती. सुसगठित ऊंच शरीर, प्रशस्त ललाट आणि दिव्य तेज व चन्द्रा ची बरोबरी करणारा गौरवर्ण ह्या मुळें पहाणार्यां वर प्रभाव पडत असे. ते स्वभाव ने बालपणा पासुन अतिशय शांत, सेवा भावी, राजकारणी समयसुची न्यायप्रिय असल्यामुले बहुसंख्या चा त्याच्या वर अपार विश्वास आणि आकर्षकता असे. त्यामुले च ते-स्वराज्या च्या चलवलीत मोठ मोठो क्रांतीकारक प्रभावी अन्दोलने घडवु शकले.

अशा तन्हेने अल्लड, खेलकर, विद्यार्जनाचे कालाने युक्त असे त्यांचे वय शुद्ध बीजे पासुन चन्द्रा च्या कोरी प्रमाणे वाढु लागले. वयात आल्यानंतर एक वीसाव्या वर्षी ह्या आमच्या चरित्र नायकाचे अर्थात खुशाल चन्दजी चे (भावी चन्द्राचे) नांदगांव निवासी जैन धर्म प्रेमी जिन मन्दिर उद्धारक श्री शेठ गिरधार जो विनायके ह्यांच्या सत् गुण सम्पन्न चन्द्रा च्या रोहणी प्रमाणे असलेल्या कु० चि० सोनाबाई नावाच्या कन्ये बरोबर विवाह होऊन आता दोन हाताचे चार हात झाले.

पण असे म्हणतात की एक शब्द महान ग्रंथ घडवतो, एक दृष्टी ब्रम्हांड जालु शकते, एक प्रतिज्ञा (क्षण) युगायुगातील जडण घडण उखडुन टाकते, अगदी असाच प्रभावी न्याय ह्या खुशाल चदजी च्या आनंदी खेलकर सलसलणा च्या रक्ता च्या अल्लड तारुण्याच्या सर्व इन्द्रिये सर्व प्रकार चे चोचले मागणार्या वयामध्ये झाला वरे.

लग्नानंतर चा फार फार तर दीड वर्षा च्या काला चा असेल तो प्रसग . एके दिवशी उषा कालातील साफ सफाई च्या वेली त्यां चे मातोश्रीना ह्या नूतन विवाह बद्ध झालेल्या युगला च्या विछाण्या च्या खाली पेढया चा कागद सापडाला. त्यावरून मातोश्री, ह्यांना चैन चमन करायची सुचते—आमच्या रक्ताचे पाणी होते-कठीण परस्थीला तोंड द्यावे लागते—ह्या चा ह्या पोर--टयांना विचार कसा नाही " आदि शब्द बोलल्या. ते ह्या तरुण तुर्क रूपी खुशालचन्दजो च्या कानावर गेले आणि मगकाय ? जो व्हायचा तोच परीणाम झाला त्यांनी मातोश्रीना जाऊन नमस्कार केला . विनयाने चरण धरले वही आज पासुन माझी बहीण आहे. हे भीष्म प्रतिज्ञे पूर्वक चे क्रांतीकारक असे उत्तर एकवले.

अशा तन्हेन धर्म पत्नीचे रुपांतर धर्म भगिनी मध्ये पुढे त्या सोनाताईची प्रकृती एकदम खुपच विगडली त्यावेली तिच्यांशी धर्म बहीण ह्या नात्याने राहुन, सबोधन पूर्वक सल्लेखने ने युक्त उत्तम सावधान तेने समाधि साधुन सोनीच्या भावी जीवनाचे सोने केले.

वरील प्रमाणे ससार कार्यावरोवर राजकारण, समाजसेवा, सोबत सोबत धर्मकार्य चालले होते। रोज मन्दिरात जाणे-शास्त्र स्वाध्याय करणे, धर्म कार्यात भाग घेणे आदि

श्रावकांच्या साठी जिनागमात सांगीत लेल्या देव पूजा गुरुपास्ति आदि षट् क्रियाचे पालन उत्तम प्रकारे चालले होते. ह्याची साक्ष म्हणजे छोटयाशा वयात त्यांनी प० पू० महान तपस्वी, धर्म वृद्धारक ऐलक पन्नालाल जी कडुन पाचवी प्रतिमा नैष्टीक व्रतिक—देशविरत धारी श्रावक झाले. त्यामध्ये बाराव्रताचे पालन इतक्या प्रभावना पूर्ण आदर्श रुपाने दृढते पूर्वक सम्यक् युक्त केले कि आज असे अत्यन्त दुर्मील आहे. उदा० गृहस्थी अवस्थेतील उपवासा ची व्रते अगर पर्व तिथी आदि च्या निमीत्ता ने अन्याची धारणा, चांदी च्या ताटातील भोजन शेठजी च्या घरील निमंत्रणाची आदि धारणा (नियम) पहाडणारी नादगाव ची नगरी व तेथील त्यावेल चे लोक धन्य व पुण्यवान् म्हटाल्यास चुकेल काय.

असे धर्म कार्यामध्ये जीवन व्यतीत करत असताना आपले तृतीय बंधु लालचन्दजी पहाडे ह्यां च्या विवाहा च्या प्रसगामुले वाल ब्रह्मचारी हीरालाल जी गगवाल उर्फ गुरुनी वीर गांव निवासी (भावी प० पू० आचार्य वीर सागर) हयांच्याशी सवन्ध आला त्यामुले त्याना ह्या संबधामुले स्वाध्याय आदिला खूपच चालना व सहकार्य मिलाले। जणकाही पुण्याई डवल झाली असे म्हटल्यास चूकणार नाही.

परीक्षा प्रधानी उपसर्ग विजयी आधुनिक समन्तभद्र—

वालपणा पासुनच प० पू० श्री १०८ तरण तारण आचार्य कल्प चन्द्रसागर श्रीच्या अंगी परीक्षा प्रधानता होती. दिगम्बर जैन आगमामध्ये भव्य मुमुक्षु शिष्या चे दोन प्रकार मानले गेले आहेत एक आज्ञा प्रधानि (परपरेने आज्ञे च्या अनकुल जसेच्या तसे देव—गुरु शास्त्रा च्या उपदेशा प्रमाणे मानणारे) दूसरा परीक्षा प्रधानी (आगमा प्रमाणे सम्यक्त्व भुषीत गुणाला पाहुन च उपदेशाला मानणारे) ह्या द्रष्टीने चद्रसागर महाराज हे परीक्षा प्रधानी होते। उदा० दीक्षा पूर्वीचा तो प० पू० महान गुरु चारित्र-चक्रवर्ती, उपसर्ग विजयी, महान तपस्वी आचार्य शातिसागर महाराज श्रीच्या प्रथम दर्शनाचा प्रसग व सम्वन्धित याची मुनी मार्गा-विषये ची निर्भीक पूर्वक केलेली चर्चा.

दूसरा प्रसग हितमित भाषा समीतिच्या पालनाने निर्ग्रन्थ दिगम्बर अवस्थेतील त्या श्री शेठ हुकुमचन्द जी च्या इन्दौर मदीरामध्ये मूर्ती अन्ध आहे हा उच्चार लेले शब्द व त्यामुले निर्माण झालेले इन्दौर काड आदि प्रसग कशाची साक्ष आहेत। थोडक्यात आजच्या कालात "जैसी गद्दी वैसा सलाम" करणार्या धर्म भोलया दिगम्बर जैन भक्ता मध्ये नसणारी गोष्ट आहे. त्यांनी ही घेतल्यास वरे पड़ेल.

आपल्या अंगच्या परीक्षा प्रधानतेने जेव्हा गुरु च्या गुणां विषयी यथार्थ परीक्षा सत् निश्चय, सम्यक्, श्रद्धान निर्माण झाले तेव्हा वैराग्य—भक्ती तीव्र तेने जागृत झाली त्यामुले लौकरात लौकर जीवनाची इन्द्रियाची शरीराची ऐश्वर्य भोग सपत्तीची क्षणभगुरता जाणवल्या मुले श्रवण वेलगुलच्या यात्रेच्या पूर्वीच दीक्षे चे श्रीफल उपसर्ग विजयी आचार्य शांति सागर महाराजांच्या चरण कमलावर चढवून, गुरु आज्ञे प्रमाणे ब्र० हीरालाल जी गगवाल वीरगाव

वाला व खुशालचन्द जी पहाडे ह्या दोघांनी ही यात्रे हुन परतताच १९८० मध्ये उत्तम श्रावका चे जे अकराव्या प्रतीमेचे क्षुल्लक पद स्वीकार ले. ब्र० हीरालाल जी चे नाव क्षुल्लक वीर सागर व ह्या आमच्या पहाड़े चे नांव क्षु० चन्द्रसागर ठेवण्यात आले. उभयतांचे वैराग्य युक्त तपाचार आदि पाहुन क्षुल्लक दीक्षे नतर सातव्या महिन्यात क्षुल्लक वीरसागर मुनी दीक्षा झाली व त्याचवेली आपल्या ह्या उत्तम श्रावकाच्या म्हणजे क्षुल्लक परीग्रहाच्या अव रात असलेल्या चद्राला ही पण वैराग्य झाले, त्याप्रमाणे गुरुदेवांच्या प० पू० त्रिकाल वदनीय शातिसागराच्या चरण कमलावर विनत्ती ही केली. परन्तु ह्याक्षुल्लक परीग्राही चद्राची योग्यता पात्रता असताना सुद्धा त्याची बुद्धि चतुरना समय सुचकता कर्तृत्व मनेजमंट चे कौशल आदि संघ सघठन नियोजनाच्या प्रभावक गुण पाहून "शिखरजीला आपण व सघ जाई पर्यंत मी तूला तूझी पात्रता असताना सुद्धा मुनी करु इच्छित नाही. कारण आपल्या सघामध्ये व्यवस्थे साठी कोणी नाही तेव्हा फार तर तू ऐलकत्व पद स्वीकार असे सांगीतले" परिणामी आमच्या ह्या क्षुल्लक परीग्रहाच्या अवंरात असलेल्या चद्राने एक लगोटी कान मुनीचे लघुनंद पद अर्थात ऐलकत्व पद प्राप्त झाले. ह्या पदात सुमारे सहा वर्ष रहावे लागले ह्या कालात विद्या-व्यसनी, चारित्र सम्पन्न आचार्य शान्ति सागर महाराज श्रींच्या सानिध्यात राहून तपाचा, ध्यानाचा खुपच स्वाध्याय केला. असे म्हणतात कि आचार्य श्री चद्रसागराना नेहमी त्रिकाल सतत शास्त्र वाचावयास लावत व अर्थ समजुन घेत असत विषयाचा अर्थ—माहीती विशद करवत असत. अनेक प्रश्नांवर समर्पक चर्चोत्तरे होत असत त्यामुले लोक गमतीने आचार्य श्री चे गणधर म्हणत असत पण हे चुकी चे व गमती चे नाही.

अखेर दैगंवरी निग्रन्थाच्या क्षितिजावर—

अशा तन्हेनेहाआर्यक् अर्थात् एक लंगोटीधारी लघुनदनमुनी सर्व अंतर्गत व बाह्य परीग्रह त्याग करुन महाव्रता चा अभ्यास वाढवीत स्वैराचार विरोधांनी, असिधाराव्रताची १९८६ मध्ये शिखरजी व बुन्देलखड चे यात्रे नतर सिद्ध क्षेत्र सोनागिरी येथ नट-नटकी जीवन विजयी प० पू० श्री १०८ पाय सागर महाराज, अज्ञानावर मातकरणे विद्याव्यवसनी प० पू० श्री १०८ कुन्थु सागर महाराज व सर्वां चे आवडते व लाडके, मुनीपुगव म्हणण्यास व होण्यास लायक अशा प० पू० श्री १०८ चद्र सागर ह्या तिवाची मुनी दीक्षा प० पू० मुनि मार्गप्रवर्तक आचार्य शान्ति सागर महाराज्यां च्या कर कमला द्वारे झाली आपला हा चन्द्र अशा तन्हेने दैगंवरी निग्रन्था च्या क्षितिजावर आला:

स्पष्ट वक्ते-पण, परीक्षा प्रधानतेची सोवत मिलालेली आर्प—धर्मश्रद्धे ची जोड व आचार्य श्री च्या कृपा दृष्टीमुले धीमान् बुद्धिमान् कर्तवगार, धुरदर आदिमूले समाजाचे दोष धालवुन स्व.तासह तरण तारण न्यायाने आघाडीवर आले त्यामुले त्यांनी समताधारी, अन्या-याचे कैवारी, क्रांतीकारक, महान् तपस्वी, तरण तारण, निर्ग्रन्थ, उपसर्ग विजयी म्हणुन स्थान प्राप्तझाले. ह्यास एक काय अनेक उदाहरणे—स्मृति आहेत.

बाप से बेटा सवायी—

श्रवणबेलगुल बाहुबली क्षेत्रावर एका वृद्ध गरीब जैन दिगम्बर बाईना काही शेठीया— धनवान् आदि लोक दुग्धा चा मस्तका अभिषेक करुन देत नव्हते त्यावेली हलचाल केली व त्या अन्यायाला न्यायमिलवुन दिला.

१६५२ च्या सुमारास शाती सागर गुरुदेवां च्या सानिध्यात व नंतरही राजस्थान (मरु-भूमी) पाण्याच्या-दुष्कालात प्रवचने—प्रेरणा आणि प्रसगी ४ ते ५ दिवसा चे उपोपणानतर क्षुद्रजलत्याग दिल्यानतर आहार. तसेच अजमेर मध्ये श्रीमान् समाजभूपण धर्म धुरधर टिकमचद शेठजीना क्षुद्रजलाचा त्याग देण्यासाठी घडलेले उपवास आदि भुले जण अधुनीक पूज्यपाद अवतरले म्हटल्यास चूक म्हणालकाय ?

ललितपूस्वी गोष्ट तर खरोखर च नवल च आहेकि जेव्हा तेथील गरीवी वद्दलची गोष्ट कानावर आली तेव्हा तेथे दूध सोडून वाकी सर्व रसाचात्याग व फलाना सोडुन नियम वद्ध आहार घेतला. मनुष्य हा अन्नाचा किडा म्हणवला जाणार्या ह्या पचम कालात सिंहक्रिडा-यणी व्रतासारखी कठीण समजले जाणारे उपवास, व्रते— धारणा नियम आदि ते करीत असत. सर्व मुनि क्रीया व मुलगुणाचे पालन करुन अत्यन्त उत्साह व शाती पूर्वक असत. ते कमी भोण-धेत असत.

कपडे नेसवण्याच्या, कोर्ट कचेरीच्या द्वारात गेलेले सहा वर्ष गेलेले इन्दोर काडातील दिवस—प्रासगीक धैर्य, धाडस, कर्तृत्व आणि "अहर्यावतारण असि प्रहारन में, सदा समता धरन" ह्या वाक्य खडातील गुण कोणता मुमुक्षु वदनीय मानणार नाही.

दिल्ली लाल किल्या रोड वरील सरकारी गुडानी अनलेला विहार बंदीचा हुकुम, दवाव गुरु अज्ञे ने मोडून काढून दिगंबर मुनीचा मुक्त विहार भक्कम केला. ज्योतिष्य आदि निमीत्त शास्त्राचे ही ज्ञान चांगले होते प्रसगानुसार प्रतिष्ठा दीक्षादि मुहूर्त हे त्याचे चालते वोलके साक्षच आहे. परंतु ह्याचा कुठे अतिरेघ नाही की कोणत्याही व्रतामध्ये वाधा नाही

आपल्या ह्या चद्रा चा परीवार अर्थात् शिष्य सम्प्रदाय जरी कमी असला तरी श्री प० पू० बाल ब्रह्मचारी आचार्य शाती सागर आचार्य पट्ट प्रणाली वरील आजचे विद्यमान् चारित्र निष्ठ, बाल ब्रह्मचारी आचार्य प० पू० धर्म सागर महाराजाचे ते क्षुल्लक (वालुज येथे दीक्षा) अवस्थे-तील गुरुदेव आहेत. आदर्शनीय चारित्र सपन्न, धर्म प्रवर्तक आर्यीका सघ प्रमुख सद्य आर्यीका प० पू० इन्दुमती माताजी चे क्षुल्लक अवस्थेतील (कसावखेड येथे मोहनवाई चे गृहस्थी अवस्थे-तुनरुपातरकरणारे) दीक्षा गुरु तसेच वत्तुवाई दिल्ली वाली चे क्षु० सिद्धमती करणारे प० पू० श्री १०८ हेम सागर (मौनी मुनी), क्षु० गुप्ती सागर आदि त्यागी गणाचे दीक्षा गुरु आहेत.

मनमाड स्टेशनवर सद्य विद्यमान असलले शिखरवंध मदिर सात किलो च्या चादी च्या कसावखेडे (वेरुल—औरगावाद रोड वरील) मदीरे व वीतराग प्रतिमा त्या च्या स्मृतीची आठ-वण डोलाने व्यक्त करता आहेत.

संवत २००१ मध्ये बडबानीच्या मानस्तंभ प्रतिष्ठेला येण्याचे अतुल येथे असताना शब्द (आश्वासन) दिले होते. ते राखण्यासाठी पंच महाव्रतातील सत्यमहाव्रत.चे पालन करण्यासाठो भर भयकर उन्हालयामध्ये खूप ताप असताना विहारमध्ये (सोवतचे हेम सागर मुनि, क्षुल्लक महाराजा ची समाधि झाली आदि) पुष्कल से अपशकुन—अडचणी —समस्या असताना सर्व असह्य परस्थीला तोड देत ते वडबाणीला पोहचले. ह्या विहार आदिमुले प्रकृती एकदम च खुपच बिघडली, तेव्हा डाक्टरानी तपासनी अती सागीतले को एक इंजक्सन देण्याची परवानगोदेत असाल तर पूर्णपणे वारे करण्याचे अश्वासन देतो परतु त्यावेली श्री नी यथायोग्य-मार्मिक उत्तरदिले कि जर तूमला अमरहोण्याचे इजक्शेन देत असशील तर तुझे इजक्शन मी घेईन बावा.

अखेर ह्या चद्राच्या निर्णयाला वैद्यराज मागे सरले व मत्यु राज पुढे आले. २००१ वड-वानी च्या मानस्तभ प्रतिष्ठे च्या नतर ६१ च्या वर्षी चे असताना दुपारी ७१ वाजता समाधि-ष्ठतेने स्वर्गाकिडे हा दिगवरी चद्र गेला.

आचार्य शांती सागर महाराज श्री ना ह्या चंद्र शिष्यावद्दल अत्यंत आवड, प्रेम तेवढेच चारित्र-तप-सम्यक धर्म प्रभावने विषयो चा दृढ विश्वास होता (कि जो एकल विहारी-स्वच्छंद गुरु-शिष्यानमध्ये आज दुर्लभ आहे.) सहा वर्षा चे चाललेल्या इन्दौर काडा च्या वेली श्रीमती च्या मदामध्ये येऊन शेठ हुकमचद जी जेव्हा आचार्य श्री च्या पुढे, येऊन, आम्ही तूम च्या चंद्र सागर महाराजांना कपड़े नेसवणार आहोत. तेव्हा गुरुदेव आचार्य श्री नी गर्जुन सागीतले की चद्र सागर हा माझा शिष्य आहे तो शास्त्रा च्या विरुद्ध कधीच सांगणार नाही—विपरीत बोलडार नाही. आपण जर चंद्रसागरला कपडे नेसवाल तर मी इन्दौर नगरीला म्लेंछ नगरी जाहीर करीनः

जेव्हा प० पू० श्री १०८ आचार्य कल्प चद्रसागर महाराजा चे स्वर्गवासा चे समाचार ऐकले तेव्हा प० पू० आचार्य शान्ती सागर ह्या गुरुदेवां नी गद् गद् दु खीत अंतकरनानी "माझा उजवा हात गेला". असे भावपूर्ण उद्गार काढले.

इत्यादि वरील सर्व प्रसंगानुसार पितृतुल्य दीक्षा गुरुं च्या पावला पाव लाने मागे असतांनाही अघाडीवर होते म्हटल्यास चुकणार नाही. म्हणनच "वाप से वेटा सवाई" ची सत्यता पटतेः त्यामुले च त्यावेलचे पुष्कल लोकानी शातो सागर श्रीमताचे (वडयाचे) वीर सागर गरीवाचे आणि आपले हे चंद्र सागर भांडणाराचे असे समीकरण वसवले होते परन्तु ते चुकीचे वाटते—तो अवर्णनाद वाट तो. त्यांचा स्वभाव करारी, आगमाचा विपर्यास कधीच सहन होत नसल्यामुले व त्यास आगमा च्या सम्यक् मथनेचो जोड—दृढता त्यामुले हे प्रगट होतेः परन्तु आहार-विहार ध्यान-धारणा तप आदि वेली अत्यन्त शात व आदर्शमय होते.

सूर्याच्या मागे जसे सध्याकाली किरणे जातात त्याप्रमाणे त्याचे पाठोपाठ पाऊलावर

पाऊल ठेवून त्याचा शिष्य सप्रदाय व गहस्थी अवस्थेतील त्याचे पुतणे आदि (फुलचद जी पहाडे धराणे) माझे प्रेरक—दीक्षा शिक्षा गुरुदेव प० पू० श्री १०८ श्रेयास सागर महाराज जाऊ लागले तर ह्यात आश्चर्य ते काय ? आणि ह्या चरण कमला च्या सानिध्यात मला अज क्षुल्लक पामराला अशा तपस्वी चे स्मृति प्रसगा चा मधुर सुगधा चा अस्वाद घेताना त्याना मार्गा च्या प्राप्ती ची—चारीत्रा ची कर्तृत्वा ची—तपाची श्रद्धाजली देताना—

दोन नयना च्या निर्मल जलाने, प्रक्षालीन ही भव्य चरणे।

सत् भावाची शुभ सुमने, स्मृती ग्रन्थाने पूजनीय चरणे ॥

—:*:—

तेजस्वी महर्षि चन्द्र सागर महाराज

लेखक—विद्वत रत्न, धर्म दिवाकर सुमेरु चन्द्र दिवाकर शास्त्री B. A, LL. B. सिवनी

जिन महर्षि आचार्य शिरोमणि चारित्र चक्रवर्ती १०८ श्री शाती सागर जी महाराज ने अपूर्व व्यक्तित्व, अप्रतिम श्रद्धा तथा श्रेष्ठ तपश्चर्या द्वारा इस कलि काल मे दिगम्बर मुनि जीवन को जगत में लोकोत्तर प्रतिष्ठा प्रदान की तथा उस मार्ग को उद्दीपित किया, उनके उज्वल चरित्र सपन्न श्रमण शिष्यो मे महा मुनि १०८ परम पूज्य आचार्य श्री चद्र सागर महाराज का अत्यन्त गौरवपूर्ण स्थान रहा है। उन्हे दिवगत हुए तीस वर्ष से अधिक समय हो गया फिर भी धार्मिक तथा सयम प्रेमी वर्ग मे उनकी पावन स्मृति अभी भी ताजी है। उनकी स्मृति मे एक ग्र थ प्रकाशन का विचार मुझे सूचित किया गया, तथा यह आग्रह किया गया कि मैं उन महर्षि के सम्बन्ध में अपने मनोभाव व्यक्त करूं, अत कुछ पक्तिया लिखने के बारे मे प्रयत्न करना कर्तव्य प्रतीत हुआ।

सत्पुरुषो के गौरव-सवर्धन के पावन कार्य में सम्मिलित होना मैं परम भाग्य मानता हू। यह मेरा दुर्भाग्य रहा कि मै उनके निकट सपर्क मे अधिक नही आ पाया, अत मैं विस्तृत लेख बनाने में असमर्थ हू। फिर भी गजपथा सिद्ध भूमि मे उनको निकटता से देखने का मुझे सौभाग्य मिला था। यथार्थ मे वे महान उग्र तपस्वी, सत्यवादी तथा आगम प्राण साधु थे। वे आगमोक्त कथन के प्रकाश में अपने विचारों को सुधारने मे सदा तत्पर रहा करते थे। जब तक कोई बात शास्त्राधार पूर्वक उनके गले नही उतरती थी तब तक बाह्य बल प्रयोग हो हल्ला आदि मचाने पर वे उस विचार को बदलने को तैयार नही होते थे। आगम उनका प्राण था।

पूर्व जीवन

वे मतस्वी तथा जितेन्द्रिय थे। जब वे अपने निवास स्थान नाद गाँव (नासिक जिला) में गृहस्थावस्था में थे, तब उनका जैन, अजैन सभी पर बडा प्रभाव पडा करता था। जिस समय गांधी जी ने सन् १९२१ में अपना असहयोग आंदोलन आरम्भ किया था तब ये काग्रेस के मुख्य कार्य कर्त्ता थे और इनके हाथ में राष्ट्रीय तिरंगा झंडा था और ये कहा करते थे—

"इसकी शान न जाने पावे, चाहे जान भले ही जावे।
विजयी विश्व तिरगा प्यारा, झंडा ऊंचा रहे हमारा ॥"

उस समय इनका नाम था खुशाल चन्द पहाड़े। ये ब्र० हीरालाल जी गंगवाल के, जो आचार्य वीर सागर महाराज के रूप में महनीय साधुराज बने, घनिष्ठ मित्र थे।

सत्समागम

एक बार ये दोनों मित्र दक्षिण यात्रा को गये। वहाँ इन्होंने उग्र तपस्वी, महान तेजस्वी श्री १०८ मुनि शांति सागर जी (जो अब आचार्य शांति सागर के नाम से धार्मिक जगत में सूर्य की तरह दैदीप्यमान हुए) के दर्शन किए। उस समय दिगम्बर मुनि का दर्शन दुर्लभ था। कुछ समय पूर्व इन्ही मुनि शाति सागर महाराज के शरीर पर पांच छः हाथ लम्बा सर्प लिपटा था तथा उस समय भी ये धैर्य धारी परम शात मुद्रा युक्त थे। उस तपस्या के काल में उनकी आकर्षण शक्ति अद्भुत थी। उनके दर्शन करते ही खुशाल चन्द जी तथा हीरालाल जी की यह भावना हुई कि अब अपने को सच्चे गुरु प्राप्त हो गये। इनके ही चरणो का शरण ग्रहण करना चाहिए।

दीक्षा

इस सत्समागम ने दोनों भव्यात्माओं के हृदय में आत्म उद्धार को सच्ची भावना जगा दी। सन् १९२७ में समडोली में शाति सागर महाराज से ब्र० हीरालाल जी ने मुनि दीक्षा ली। उनका नाम वीर सागर महाराज रखा गया। उनके साथ में पूज्य महाराज नेमि सागर जी की भी मुनि दीक्षा हुई थी। श्री खुशाल चंद जी पहाडे की वहां क्षुल्लक दीक्षा हुई। वे चन्द्र सागर महाराज कहे जाने लगे। चन्द्र सागर महाराज मुनि दीक्षा लेने वाले थे, किन्तु उनका विचार वदल गया, जव उन्हे यह ज्ञात हुआ कि शांति सागर महाराज ससघ शिखर जी की वदनार्थ निकलने का निश्चय कर चुके है तथा संघ की सर्व सुव्यवस्था का वचन ववई के सेठ पूनमचन्द घासीलाल जवेरी ने दिया है तब उनका विचार वदल गया। उन्होने गम्भीरता पूर्वक विचार किया कि सैकड़ो वर्षों वाद उत्तर भारत को ओर दिगम्बर मुनि संघ का विहार होने पर सम्भव है दुष्ट जीवो के कारण कहो तक उपद्रव या भारी विघ्न आ जाय, उस स्थिति मे मैं क्षुल्लक रहते हुए, प्रतीकार हेतु हर प्रकार का उचित प्रयत्न कर सकूंगा। कदाचित मुनि पद अंगीकार कर लिया, तो मै सघ रक्षार्थ आवश्यक कार्य नही कर पाऊंगा। क्षुल्लक रहते हुए कार्य करने की विशेष सुविधा रहेगी।

आचार्य शान्ति सागर का असाधारण व्यक्तित्व, तपश्चर्या और अपूर्व पुण्य के कारण उनके विहार मे कोई कठिनाई नही आई। जन साधारण ने अपने को भाग्यशाली माना कि ऐसी अनुपम विभूति आध्यात्मिक सत शिरोमणि के दर्शन का उन्हे सौभाग्य प्राप्त हुआ।

मुनि पद

जब उत्तर का विहार बिना विघ्न बाधा के होने लगा, तब सोनागिरि मे क्षुल्लक चन्द्र सागर जी को सन् १९२९ मे मुनि चन्द्र सागर जी को पदवी प्राप्त हुई। आचार्य श्री के समीप आकर अनेक व्यक्ति अद्भुत चर्चा छेडा करते थे, उस समय अनुभवी लोकविज्ञ तथा शास्त्राभ्यासी मुनि चन्द्र सागर महाराज उन सबका समाधान करते थे, जिससे उन्हे निरुत्तर हो जाना पड़ता था। आचार्य श्री को उचित अवसर पर थोडा बोलने का प्रसग आता था, उसमे श्रोताओ को अवर्णनीय आनन्द की अनुभूति होती थी।

सघ का जब दिल्ली में १९३१ मे चातुर्मास हुआ था, उस समय रत्नत्रय धर्म की प्रभावना कार्य में मुनि चन्द्र सागर जी विशेष प्रयत्नशील थे। सघ जब राजस्थान आया, तब चन्द्र सागर जी आदि आचार्य सघ से अलग हो गए। ऐसा भवितव्य था, अन्यथा अतिम जीवन तक चन्द्र सागर महाराज ने अपने मनो मन्दिर मे शाति सागर आचार्य महाराज के चरणारविन्दो की सदा पूजा की थी।

अपूर्व प्रभावना

राजस्थान में चन्द्र सागर महाराज के तपो पुनीत जीवन तथा उपदेश से धर्म की महान प्रभावना हुई। बहुत से दिगम्बर जैनो पर मिथ्या साधुओ का सम्पर्क रहने से विपरीत प्रभाव पड़ा करता था, यह मलिनता दूर हो गई और उन लोगो के हृदय में सच्ची श्रद्धा धर्म तथा सच्चे गुरुओ के प्रति भक्ति की भावना उत्पन्न हुई। हजारो लोगो ने शूद्र जल सम्बन्धी प्रतिज्ञा लेकर सत्पात्र दान का सौभाग्य प्राप्त किया। लोग सम्यक्चारित्र की ओर अधिक उन्मुख हुए। रत्नत्रय धर्म द्वारा सच्ची प्रभावना हुई।

वाणी

पवित्र हृदय होते हुए भी चन्द्र सागर महाराज की वाणी से कभी-कभी कडे शब्द निकलने से कोई व्यक्ति रुष्ट हो जाते थे। कुछ लोगो ने विरोध में आन्दोलन भी किए, किन्तु सच्ची तपस्या और विशुद्ध श्रद्धा युक्त व्यक्तित्व होने के कारण चन्द्र सागर महाराज के कार्यो में बाधा नही आई, यदि कठिनाई आई भी तो वह थोड़े समय तक टिकी। हमें हजारो समृद्ध सम्पन्न जैन मिले जो यह कहते है कि हम लोगों का सच्चा उद्धार चन्द्र सागर जी महाराज के द्वारा हुआ।

उदाहरण

एक वर्ष हो गया, जब अनंतमती आर्यिका माता जी (कन्नड वाली) सिवनी में

पधारी थी। उन्होंने बताया था कि दीक्षा के पूर्व वे सोना बाई के नाम से प्रसिद्ध थी। विधवा हो जाने पर भी उनके शरीर पर सोने के बहुत आभूषण मौजूद थे। चन्द्र सागर महाराज ने कहा "सोना बाई ! क्या दूसरा पति कर लिया ? सदाचारिणी विधवा का वेष तो ऐसा नहीं रहता है।"

यह कठोर बात सोना बाई के हृदय में प्रवेश कर गई। उन्होंने तुरन्त ही सब आभूषण दूर कर दिये। उनको गुरु की कड़ी वाणी ने कल्याण के मार्ग में लगा दिया। इस प्रकार की कड़वी उपदेश रूपी दवा देकर चन्द्र सागर महाराज ने हजारों भव्यात्माओं को सन्मार्ग पर लगाया था। आचार्य शान्ति सागर महाराज कहते थे "कड़ी भाषा बोलना चन्द्र सागर की पिण्ड प्रकृति थी। चन्द्र सागर महाराज ने स्वतन्त्र रूप से बड़ी योग्यता पूर्वक अपने संघ का संचालन किया। वे आचार्य होते हुए भी अपनी वीतरागता को संघ का संचालन करते समय सदा सजग रखते थे।

दर्शन

जब चन्द्र सागर महाराज गजपंथा पधारे तब मुझे उनके निकट संपर्क में जाने का सुयोग मिला, मैंने उनका उपदेश सुना मैंने उनकी वाणी में ओज और प्रभावकता के दर्शन किये। वे वर्तमान युग के भ्रष्ट आचार तथा विचार की भय विमुक्त हो कड़ी समालोचना किया करते थे।

गजपंथा में उस समय विद्यमान मुनि भक्त भाई वंशीलाल जी पाटनी ने उनके बारे में एक विचित्र बात सुनाई थी "कि महाराज गजपंथा पहाड पर अपना कमंडलु नही ले जाते थे और उसे नीचे ही तलहटी में देव के भरोसे छोड़ देते थे। वे इस बात की तनिक भी चिन्ता नहीं करते थे कि इसे कोई उठाकर ले जायेगा। वे कहते थे हमारी कार्मण वर्गणायें चारो ओर फैली है। वे इसकी रक्षा करेंगी। वे अत्यन्त निर्मोही और निर्भीक प्रकृति के थे। पात्रदान तथा पूजा को गृहस्थ का मुख्य कर्त्तव्यमान उपदेश देते थे।"

वे धनवानों को खुश करने के लिये उपदेश नही देते थे वे कहा करते थे जैसे-जैसे लोगों के पास पैसा बढ़ता है वैसे-वैसे उनके भीतर दुर्बुद्धि भी बढती है। उनकी वाणी कटु होते हुये भी कल्याण की भावना युक्त रहती थी। माता ही बच्चों को सुधारने के लिये कड़ी बोली कहती है दूसरे लोग मीठी बात करते हैं क्योंकि उनको दृष्टि में हित नहीं है। महाराज ये मारवाड़ी की कहावत कहते थे, "कड़वी बोली मायड़ी, मीठा बोल्या लोक"

शुद्ध वंश–परम्परा

एक दिन मैंने गजपंथा पहाड को जाते समय महाराज से सामाजिक शांति तथा संघ की कीर्ति संवर्धन के बारे में चर्चा की तब उन्होने मुझसे बड़े प्रेम पूर्वक कहा था, "पंडित जी आप को हमारी और हमारे संघ की कीर्ति रक्षा की बात क्यों सूझती है ? इसका कारण यह है कि

तुमने धार्मिक कुल में जन्म प्राप्त किया है। तुम्हारे पिता सिघई कुंवर सेन जी को हम जानते है। वे महान प्रभावशाली और परम धार्मिक जैन नेता है। जीवन में उच्चकुल और सज्जातित्व के कारण मानव की प्रवृत्ति अच्छे कामो की ओर होती है। शुद्ध वंश परम्परा का महत्व है। जैसे सच्चा क्षत्रिय युद्ध भूमि से विमुख नही होता है उसी प्रकार शुद्ध वंश परम्परा वाला व्यक्ति कर्मो के क्षय रूप धर्म युद्ध से विमुख नही होता है यह कह कर उन्होने मुझे अनेक उपयोगी बातें कहते हुए अपना आशीर्वाद दिया था।

सत्य प्रेम

उनकी खास बात थी कि समझ में आ जाने पर वे अपनी भूल को आगम के प्रकाश में सुधारने में संकोच नही करते थे। वे कहते थे, जिनके मन मे पाप का निवास है वे ही हठ और दुराग्रह का त्याग नही करते, "हठ ग्राहि रहे जिनके पोते पाप" ऐसा वे कहा करते थे। वे सत्य प्रेमी थे।

नर सिंह

महान आत्मा में जो गुण आवश्यक है, वे सब उनमे विद्यमान थे। वे सिंह के समान निर्भीक स्वभाव थे। जब वे जयपुर नगर के निकट खानिया की धर्मशाला मे थे और जगल में पहाडी पर ध्यान हेतु चले जाया करते थे तब कभी-कभी वहां शेर की तथा अन्य जगली जानवरो की गर्जना सुनाई पडती थी किन्तु ये धीर, वीर साधु उस जगह पर शात भाव से आत्म ध्यान में लीन रहा करते थे। कठिनाइयो के आगे सिर झुकाना और न्याय मार्ग को छोड देना उनका स्वभाव नही था। विपत्तियों और कठिनाइयों के बीच वे-आत्मबली, वीर मनस्वी सयमी-रत्न धर्म का आश्रय ले आगे बढ़ते जाते थे। यथार्थ मे वे बड़े तेजस्वी साधुराज हो गये। वे नर-सिंह समान थे वे ज्ञान-ध्यान-तपोरक्त महर्षि थे।

सच्चे साधु

रत्नकरण्ड श्रावकाचार मे सच्चे गुरु का लक्षण इस प्रकार कहा है—

विषयाशा-वशातीतो निरारंभोऽपरिग्रह.।
ज्ञान-ध्यान-तपोरक्तस्तपस्वी स प्रशस्यते ॥

जो विषय भोगों की आशा से रहित है, जो आरभ और परिग्रह से विमुख है, तथा जो ज्ञान, ध्यान और तप मे अनुरक्त है, वह तपस्वी स्तुति-योग्य हैं। चद्र सागर महाराज मे समत भद्र स्वामी कथित उपरोक्त लक्षण पूर्णतया पाया जाता था। यथार्थ मे वे बडे निर्मोही, निस्पृही, परम वीतराग तपस्वी थे। उन्होने खूब स्व तथा पर का कल्याण किया। विरोधी भी, पश्चात् उनके चरणों का भक्त बनता था ऐसा था उनका अपूर्व व्यक्तित्व।

समाधि मरण

वे मृत्यु का आक्रमण होते समय भी अपनी सिंह वृत्ति से शोभायमान थे। जब वे वड़वानी मे थे और १०४ डिग्री से अधिक ज्वर से उनका शरीर आक्रांत था, उस समय उनकी श्रद्धा, धैर्य, तथा आत्मबल अलौकिक थे। डाक्टरो ने उन्हे देख कर कहा, "महाराज आप जैसे ज्ञानवान, तेजस्वी साधु का जीवन अनमोल निधि है।" हम इंजेक्शन देकर आपको रोग मुक्त कर सकते है।"

उन्होने उत्तर दिया, "हमारा अपने जीवन के प्रति कोई मोह नही है। हमारा मोह अपने व्रत नियम आदि के निर्दोष रूप से परिपालन मे है।" यह कहते हुये उन्होने आंख बन्द करली। वे आत्मस्वरूप मे निमग्न हो गये। प्राणो ने शरीर का त्याग कर दिया। उस समय इन्दौर से रावराजा राज्यरत्न सर सेठ हुकम चंद जी ने हमे तार द्वारा समाचार दिया था, कि वे अनेक प्रभावशाली लोगो को साथ लेकर महाराज के देह सस्कार के अवसर पर पहुच गये थे।

प्रभाव दर्शन

आचार्य चंद्र सागर महाराज के जीवन की झलक उनके सच्चे भक्त और शिष्यो में दिखाई पड़ती है। आर्यिका इन्दु मती माता जी, सुपार्श्व मती माता जी के सघ मे उक्त साधुराज का पुण्य प्रभाव तथा पवित्र श्रद्धा का दर्शन होता है। उन दिवंगत महर्षि के चरणो को मेरा शतशः वन्दन है।



श्री श्री १०८ चन्द्रसागरजी महाराज के प्रति

श्रद्धाञ्जलि

(रच० श्री नेमीचन्द पटोरिया B. A. LL. B साहित्यरत्न)

हे गुरु महान् ! गौरव-निधान !
चारित्र - शिरोमणि ! विज्ञ-प्राण !
हे तापसवर ! शिव सतत-ध्यान !
हे धर्मरत्न ! आदित्य – भान !

आगम–सरिता के विमल तीर,
पाखण्ड–जलद के वर–समीर।
अपने पथ के एकान्त-वीर,
अपने सुध्येय के सुदृढ़-धीर ॥

हे अभयवृत्ति - धारक महान् !
विचरे निर्भय केहरि समान।
सम था तुमको मानापमान,
सच सच कहते आगम-प्रमाण ॥

जब उठी विरोधानल प्रचण्ड,
मानो कर देगी खण्ड खण्ड।
पाकर श्री गुरु को दृढ़ अखण्ड,
तब स्वय हुई वह खण्ड-खण्ड ॥

वचनों को इतना पूर्ण किया,
जीवन तक उनके हेतु दिया।
जब रोगों ने तन क्षीण किया,
तब गुरुने ध्यान-समाधि लिया ॥

मैं नत-मस्तक ले मनोद्‌गार,
करता चरणों में नमस्कार।
गुरु-चरण-चिह्न-पथ को निहार,
चाहूं करलूं कुछ निजोद्धार ॥

हे गुरु महान ! गौरव निधान।
अर्पित चरणो मे शत-प्रणाम ॥

—:o:—

"अनुपकारी के प्रत्युपकार"

— पूज्य श्री १०५ आर्यिका सुपार्श्वमती जी माताजी —

एक बार निर्जन बन मे भ्रमण करते २ सीता अत्यन्त म्लान हो गई थी, तब राम से बोली- हे प्राणनाथ ! मेरे कठ एक दम सूख गये है। जिस प्रकार ससार मे परिभ्रमण करते करते अनन्त जन्म-मरण से दु खी भव्य जिनेन्द्र भगवान के दर्शन की इच्छा करता है, उसी प्रकार तीव्र पिपासा से व्याकुल हुई मैं जल पीने की इच्छा करतो हू। इस प्रकार कहती हुई सीता एक सघन छायादार वृक्ष के नीचे बैठ गई।

इस प्रकार पिपासा से आकुलित हुई सीता को राम ने कहा—देवी ! विषाद को प्राप्त मत होवो । देखो सामने विशाल प्रासादो से युक्त नगर दृष्टिगोचर हो रहा है, वहा चलकर तुझे पानी पीने को मिलेगा।

राम के वचन सुनकर सीता उठी और धीरे-धीरे चलने लगी। नगर मे प्रवेश कर सीता सहित राम और लक्ष्मण एक ब्राह्मण के घर पहुंचे। ब्राह्मण की एक टूटी फूटी यज्ञशाला थी। उसमें विश्राम कर राम ने ब्राह्मणी से जल की याचना की। ब्राह्मणी पानी लेकर आई। सीता ने पानी पीकर थोड़ा सा विश्राम किया। इतने में मस्तक पर बेल, पीपल, पलाश आदि की लकड़ियो का भार लिये हुये अत्यन्त कुरूप लम्बोदर ब्राह्मणो का पति कपिल ब्राह्मण आ गया। निरन्तर क्रोध करने वाले उस विप्र का मन दावानल के समान था, वचन कालकूट के समान थे और मुख उल्लू के सदृश था। शिर पर बड़ी चोटी एव मुख पर दाढी थी। उसको दखने से ऐसा प्रतीत होता था कि मानो साक्षात यमराज ही हो।

महापुरुष राम और लक्ष्मण को देखकर उस विप्र का क्रोध रूपी समुद्र उमड़ गया। मुख एवं भौहें अत्यन्त कुटिल हो गईं। उसने तीक्ष्ण वचन रूपी शस्त्र से हृदय को विदारते हुये कहा- हे पापिनी तूने इनको यहां क्यों प्रवेश करने दिया। हे दुष्टे ! इन पापी निर्लज्ज ढीठ ने मेरी यज्ञशाला को दूषित कर दिया। इस प्रकार ब्राह्मण के कठोर एव अपशब्दों को सुनकर सीता ने कहा-हे आर्य ! हिंसक पशुओ से भरे हुये निर्जन बन में रहना उचित है, परन्तु इन अपशब्दो से तिरस्कृत होकर यहां रहना योग्य नही है। इसलिये इस कुकर्म अपशब्द कहने वाले पापी का स्थान शीघ्र छोड़ दो।

उसके वचनो के आघात से लक्ष्मण के नेत्र क्रोध से रक्त हो गये। ज्योंही राम के अनुज

ने अमागलिक वचन कहने वाले ब्राह्मण को ऊर्ध्वपाद और अधोग्रीव कर घुमाकर पृथ्वी पर पछाडने के लिए प्रयत्न किया, त्योही अनुकम्पा के स्रोत राम ने कहा—हे सौमित्रे, यह तुम क्या कर रहे हो, इस दीन के घात से क्या प्रयोजन है। धीर वीर महामानव, मुनि, ब्राह्मण, गाय, पशु, स्त्री, बालक और वृद्ध के दोषी होने पर भी हिंसा नही करते हैं। आज्ञाकारी सौमित्र ने धीरे से उस दीन को पृथ्वी पर सुला दिया तथा शीघ्र ही ब्राह्मण की कुटिया से बाहर निकल आये। शीतऋतु के समय दुर्गम कानन में तरुतल मे वास करना सर्वश्रेष्ठ है, आहार का परित्याग कर प्राण त्यागना अच्छा है परन्तु तिरस्कार के कटु वचन सुनकर दूसरे के घर मे रहना योग्य नही है।

हम नदियो के तटो और पर्वतो की अतिशय मनोज्ञ गुफाओं मे रहेगे, परन्तु दुजनो क घर में प्रवेश नही करेंगे। इस प्रकार मन मे दृढ निश्चय कर सीता सहित राम और लक्ष्मण गाव से बाहर निकल कर बन में चले गये।

इतने में ही समस्त आकाश को नीला करता और गर्जना से पर्वत की गुफाओ को प्रति--ध्वनित करता हुआ वर्षाकाल आ गया। उस समय समस्त ग्रह और नक्षत्र बादलो की ओट छिप कर विद्युत के बहाने से हसने लगे। ग्रीष्मकाल के भयकर विस्तार का दूर कर मेघ गर्जने लगे और बिजली रूपी अगुलि के द्वारा पापी मानवो को ताड़ने लगे। जिस प्रकार हस्ती लक्ष्मी का अभिषेक करता है, उसी प्रकार जलधाराओ के द्वारा नभस्थल को अधकार युक्त करता हुआ श्यामल मेघ सीता का अभिषेक करने लगे।

जल वृष्टि से भीगते हुये एक निकटवर्त्ती अत्यन्त ऊचे विशाल वृक्ष के नीचे वह पहुचे। जैसे ससार के दु.ख से भयभीत प्राणी जिनराज की शरण मे पहुचता है। राम लक्ष्मण के तेज से अभिभूत हुआ इभकर्ण नामक यक्ष विंध्याचल पर्वत पर रहने वाले अपने स्वामी के पास जाकर नमस्कार कर बोला— हे नाथ! स्वर्ग से आकर कोई तीन महानुभाव मेरे घर मे ठहर गये है और अपने तेज से अभिभूत कर मुझे शीघ्र ही घर के बाहर कर दिया। इभकर्ण के वचन सुनकर मन्द हास्य करता हुआ यक्षराज अपनी स्त्रियो के साथ महावैभव से युक्त लीला पूर्वक वट-वृक्ष के पास आया और अत्यन्त मनोज्ञ रूप के धारक राम लक्ष्मण को देखकर तथा अवधि ज्ञान के द्वारा यह बलभद्र और नारायण हैं, ऐसा जानकर शीघ्र ही वात्सल्य से ओत-प्रोत हो सुन्दर नगरी की रचना की।

प्रात काल मनोहर सगीत के शब्द से प्रबोध को प्राप्त हुये राम और लक्ष्मण ने अपने आपको अनेक खण्डो के अत्यन्त रमणीय महल में आदर के साथ शरीर की सेवा करने में व्यग्र सेवको से घिरे हुये रत्नो से सुशोभित शैय्या पर अवस्थित देखा। महाशब्द प्रकार तथा गोपुरो से सुशोभित सहसा नगर को देखकर भी उन महानुभावो का मन आश्चर्य को प्राप्त नही हुआ, क्योकि ये

सब चमत्कार छुद्र चेष्टा थी। पवित्र हृदय वाले राम, सीता और लक्ष्मण देवो के समान अनुपम भोग-भोगते हुये उस नगरी में सुख से रहने लगे। पुण्यात्मा पुरुष जहा जहां जाते है वहां वहां पुण्य सामग्री उनके पीछे चली आती है।

एक दिन कपिल ब्राह्मण लकड़ी लाने के लिए जंगल में गया। वहां पर अकस्मात् उसकी दृष्टि उस नगर पर पड़ी। उस शोभनीय नगर को देखकर उसका मुख आश्चर्य चकित हो गया। वह विचारने लगा - क्या यह स्वर्ग है अथवा वही मृगो से सेवित अटवी है। यह नगरी ऊंचे २ शिखरो की माला से शोभायमान तथा रत्नमयी पर्वतों के समान दीखने वाले भवनों से अकस्मात् ही सुशोभित हो रही है। यहा कमल आदि से आच्छादित जो यह मनोहर सरोवर दिखाई दे रहे हैं। वे पहले मैंने कभी नही देखे। यहां मनुष्यो के द्वारा सेवित सुरम्य उद्यान और बड़ी बड़ी ध्वजाओं युक्त मन्दिर दिखाई पड़ते है। इस नगर की निकटवर्तीभूमि, हाथियों, घोड़ों, गायों और भैसो से संकीर्ण तथा घन्टा आदि के शब्दों से पूर्ण है। क्या यह नगरी स्वर्ग से यहां अवतीर्ण हुई है। अथवा किसी पुण्यात्मा के प्रभाव से पाताल से निकली है। क्या मैं ऐसा स्वप्न देख रहा हूं ? अथवा यह किसी की माया है या गन्धर्व का नगर है। या मैं स्वयं पित्त से व्याकुलित हो गया हूं या मेरा निकट काल में मरण होने वाला है सो उसका चिह्न प्रकट हुआ है ? इस प्रकार विचार करता हुआ वह ब्राह्मण अत्यधिक विषाद को प्राप्त हुआ। उसी समय उसे नाना अलंकार धारण करने वाली एक स्त्री दृष्टिगोचर हुई। उसके पास जाकर उसने पूछा-उस स्त्री ने बताया कि यह राम की नगरी है, जिनका दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है। इस पुरुषोत्तम ने मन वांछित द्रव्य देकर सभी दरिद्र मनुष्यों को राजा के समान बना दिया है। ब्राह्मण ने कहा— हे सुन्दरी मैं किस उपाय से राम के दर्शन कर सकता हू ? ऐसा कहकर उस ब्राह्मण ने ईंधन का भार पृथ्वी पर रख दिया और स्वयं हाथ जोड़ उस स्त्री के पैरो पर गिर पड़ा। दया से आकृष्ट हुई उस सुमाया नाम की यक्षिनी ने ब्राह्मण से कहा कि तूने यह बड़ा साहस किया है। तू इस नगरी की समीपवर्ती भूमि में कैसे आया ? यदि भयकर पहरेदार तुझे देख लेते तो तू अवश्य ही नष्ट हो जाता। इस नगरी के तीन द्वारों में तो देवों को भी प्रवेश करना कठिन है। क्योंकि वे सदा सिंह हाथी और शार्दूल के समान मुख वाले तेजस्वी, वीर तथा कठोर नियन्त्रण रखने वाले रक्षकों से पूर्ण रहते है। इन रक्षकों के द्वारा डराये हुए मनुष्य निःसन्देह मरण को प्राप्त हो जाते हैं। इनके सिवाय जो वह पूर्वद्वार तथा उसके बाहर समीप ही बने हुये बगुले के पख के समान कान्ति वाले सफेद-सफेद भवन तू देख रहा है, वे मणिमय तोरणो से रमणीय तथा नाना ध्वजाओं की पक्तियो से सुशोभित जिन मन्दिर हैं। उनमे इन्द्रों के द्वारा वन्दनीय अरहन्त भगवान की प्रतिमाएं है। जो मनुष्य सामायिक कर तथा 'अरहन्त तथा सिद्धों को नमस्कार हो' इस प्रकार कहता हुआ भाव पूर्वक प्रतिमाओं का स्तवन पढ़ता है तथा निर्ग्रन्थ गुरु का उपदेश पाकर सम्यगदर्शन धारण करता है वही उस पूर्व द्वार में प्रवेश करता है। इसके विपरीत जो मनुष्य प्रतिमाओं को नमस्कार नही करता है, वह मारा जाता है। जो मनुष्य अणुव्रत का धारी तथा गुण और शील से अलंकृत होता है राम उसे बड़ी प्रसन्नता से इच्छित वस्तु

देकर सतुष्ट करते है।

उसके अमृत तुल्य वचन सुनकर तथा धन प्राप्ति का उपाय सुनकर वह ब्राह्मण परम हर्ष को प्राप्त हुआ। उसका समस्त शरीर रोमाचो से सुशोभित हो गया तथा उसका हृदय अत्यन्त अद्भुत भावो से युक्त हो गया। वह उस स्त्री को नमस्कार कर तथा बार बार उसको स्तुति कर चारित्र पालन करने के लिए शूर-बीर मुनिराज के पास गया और अजुली बाध सिर से प्रणाम कर उसने उनसे अणुव्रत धारण करने वालो की क्रिया पूछी। उस चतुर बुद्धिमान ब्राह्मण ने मुनिराज के द्वारा उपदिष्ट गृहस्थ धर्म अगीकृत किया तथा अनुयोगो का स्वरूप सुना। पहले तो वह ब्राह्मण धन के लोभ से अभिभूत होकर धर्म श्रवण करना चाहता था। पर अब वास्तविक धर्म ग्रहण करने के भाव को प्राप्त हो गया। मुनिराज से धर्म का स्वरूप जानकर जिसका हृदय अत्यन्त शुद्ध हो गया था, ऐसा वह ब्राह्मण बोला कि— हे नाथ! आज आपके उपदेश से तो मेरे नेत्र खुल गये है। जिस प्रकार प्यास से पीडित मनुष्य को जल मिल जाय, आश्रय करने की इच्छा करने वाले को छाया मिल जाय, भूख से पीडित मनुष्य को मिष्ठान मिल जाय, रोगी के लिए उत्तम औषधि मिल जाय, कुमार्ग मे भटक हुये को इच्छित स्थान पर भेजने वाला मार्ग मिल जाय और बडी व्याकुलता से समुद्र में डूबने वाले को जहाज मिल जाय, उसी प्रकार आपके प्रसाद से सर्व दुखो को नष्ट करने वाला यह जैन शासन मुझे प्राप्त हुआ है। यह जैन शासन नीच मनुष्यो के लिए सर्वथा दुर्लभ है। चूकि आपने यह ऐसा जिन प्रदर्शित मार्ग मुझ दिखलाया है, इसलिये तीन लोक में भी आपके समान मेरा हितकारी कोई नही है। इस प्रकार कहकर तथा अञ्जलीबद्ध सिर से मुनिराज के चरणो मे नमस्कार कर प्रदक्षिणा देता हुआ वह ब्राह्मण अपने घर चला गया। घर मे प्रवेश कर ब्राह्मण ने अपनी पत्नी से कहा-हे प्रिये! आज मैंने परम दिगम्बर गुरुओ के मुखारविन्द से श्रुत तत्व का स्वरूप का और धर्म का उपदेश सुना है, जो तुम्हारे माता पिता ने भी नही सुना है।

मैने भीषण अटवी में अत्यन्त रमणीक नगर देखा। उसमे प्रवेश करने से दारिद्र दूर हो जाता है। परन्तु उसमे प्रवेश वही कर सकता है, जो जिन-धर्मावलम्बी हो, इसलिये मैने जिन धर्म स्वीकार किया है। आज मैने महान पूर्व पुण्योदय के प्रभाव से भवनाशक अरहन्त नाम रूप महौषधि प्राप्त कर ली है। आज तक मैने अहिंसा से निर्मल वीतरागमय अरहन्त भगवान कथित धर्म रूपी रसायन को छोड़कर अज्ञानवश मिथ्यात्वरूपी विषम विष का भक्षण किया।

मानव देह को पाकर भी देवोपदिष्ट धर्म रत्न का परित्याग कर विषयरूपी कांच के टुकड़ को स्वीकार किया। उस सम्यगदृष्टि विप्र ने अपनी भार्या को जिनधर्मावलम्वी बनाया दोनो घर मे रहकर व्रती श्रावक के व्रतो का पालन करने लगे।

एक दिन कपिल ब्राह्मण ने दोनो बच्चो को कन्धे पर विठाया और उसकी पत्नी ने हाथ में फूलों का पिटारा लिया तथा शीघ्र हो राम के दर्शन करने के लिये निकले।

मार्ग में अनेक भयंकर सर्प, सिंह आदि जन्तु उसको बाधा देने लगे, परन्तु वह मन ही मन जिनेन्द्र भगवान का स्त्रोत पढ रहा था, इसलिये समस्त विघ्न दूर हो गये। भयंकर संसार रूप दावानल को शात करने वाले जिनेन्द्र स्त्रोत से क्षुद्र कार्य, विघ्न नष्ट हो जाय तो उसमें कौन सी आश्चर्य की बात है।

इसको जिन धर्म में दृढ विश्वासी देखकर वहां के रक्षक द्वारपालों ने भी उसको राम के दर्शन करने को जाने के लिए आज्ञा देदी? तदन्तर ब्राह्मण ने राम के महल मे प्रवेश किया, वहां वह दूर से ही लक्ष्मण को देखकर आकुलता को प्राप्त हुआ। उसके शरीर मे कपकंपी छूटने लगी। वह विचार करने लगा कि नील कमल के समान प्रभाववाला यह वही पुरुष है, जिसने उस समय मुझ मूर्ख को नाना प्रकार को मार से दुखी किया था। उसकी बोलती बन्द हो गई। वह मन ही मन अपनी जिह्वा से कहने लगा—हे महादुष्टे! हे पापे! उस समय तो तूने कानो के लिए अत्यन्त दुःखदायी वचन कहे, अब चुप क्यो हो, वाहर निकल। वह मन ही मन विचार करने लगा कि क्या करूं? कहा जाऊं? किस विल मे घुस जाऊं? आज मुझ शरणहीन का यहां कौन शरण होगा? यदि मुझे मालुम होता कि वह यहां ठहरा है तो मैं उत्तर दिशा को लाघकर देश त्याग ही कर देता। इस प्रकार उद्वेग का प्राप्त हुआ वह ब्राह्मण ब्राह्मणी को छोड़ भागने के लिए तैयार हुआ ही था कि लक्ष्मण ने उसे देख लिया। हँसकर लक्ष्मण ने कहा कि-यह ब्राह्मण कहा से आया है। जान पड़ता है कि इसका पोषण वन मे हो हुआ है। यह इस तरह आकुलता को क्यो प्राप्त हुआ है। सान्त्वना देकर उस ब्राह्मण को शीघ्र लाओ, हम उसकी चेष्टा को देखेंगे और सुनेगे कि यह क्या कहता है। डरो मत, लौटो इस प्रकार कहने पर वह सात्वना को प्राप्त कर लड़खड़ाते पैरो से वापिस लौटा।

श्वेत वस्त्र को धारण करने वाला वह ब्राह्मण पास जाकर निर्भय हो राम लक्ष्मण के सम्मुख गया तथा अजुली मे पुष्प रखकर उनके सामने खड़ा हो 'स्वस्ति' शब्द का उच्चारण करने लगा, जो प्राप्त हुये आसन पर बैठा था और पास ही जिसकी स्त्री बैठी थी ऐसा वह ब्राह्मण स्तवन करने में समर्थ ऋचाओ के द्वारा राम लक्ष्मण को स्तुति करने लगा। स्तुति के बाद राम ने कहा कि—हे ब्राह्मण उस समय हम लोगो का वैसा तिरस्कार कर अब इस समय आकर पूजा क्यों कर रहे हो सो तो बताओ। ब्राह्मण ने कहा—हे देव! मैने नही जाना था कि आप प्रच्छन्न महेश्वर हो इसलिये भस्म से आच्छादित अग्नि के समान मोहवश मुझ से आपका अनादर हो गया। हे जगन्नाथ, चराचर विश्व को यही रीति है कि शीत ऋतु मे सूर्य के समान धनवान की ही सदा पूजा होती है। यद्यपि इस समय मै जानता हू कि आप वही है, अन्य नही फिर भी आपकी पूजा हो रही है। सो हे पद्म! यहा यथार्थ मे धन की पूजा हो रही ,है आपकी नही। हे देव! लोग निरन्तर धनवान की ही पूजा करते हैं और जिसके साथ

मित्रता का प्रयोजन जाता रहा है,ऐसे धन हीन मनुष्य को छोड़ देते है । जिसके पास धन है, उसके मित्र है, बान्धव है, लोक मे वही पुरुष है । पण्डित है । और जब मनुष्य धन रहित हो जाता है, तब उसका न कोई मित्र रहता है और न भाई । और वही अगर जन-धन सहित हो जाता है तो लोग उसके आत्मीय बन जाते है । हे राजन् यह मनुष्य लोक विचित्र है । इसमे मेरे जैसे लोगो को तो कोई जानता ही नही है अथवा आपकी बात जाने दीजिये। आप, जैसे लोग जिनकी वदना करते है, वे साधु भी मूर्ख पुरुषों से अपमान प्राप्त करते है । मुझ मन्द भाग्य ने उस समय आपकी आतिथ्य क्रिया क्यो नही की यह विचार कर आज भी मेरा मन सन्ताप को प्राप्त हुआ है । आपके अतिशय सुन्दर रूप को देखकर मनुष्य ही अत्यन्त आश्चर्य को प्राप्त नही होता है। वरन पृथ्वी पर ऐसा कोई नही है जो आपके प्रति अत्यन्त आश्चर्य को प्राप्त नही हुआ हो । इस प्रकार कहकर वह कपिल ब्राह्मण शोकाकुल होकर रोने लगा । तब राम ने शुभ वचनो से सान्त्वना दी और सीता ने उसकी स्त्री सुशर्मा को समझाया ।

राम की आज्ञा से किंकरो ने भार्या सहित कपिल श्रावक को सुवर्ण घटो में रखे हुये जल से प्रीति पूर्वक स्नान कराया, उत्कृष्ट भोजन करवाया और वस्त्र तथा रत्नो से उसे अलकृत किया । वह बहुत भारी धन लेकर अपने घर वापिस गया । यद्यपि वह ब्राह्मण लोगों को आश्चर्य में डालने वाले तथा सब प्रकार के उपकरणो से युक्त भोगोपभोग पदार्थो को प्राप्त हुआ था । तो भी वह राम के सम्मान रूपी बाणो से बिद्ध था, गुण रूपी महासर्पो से डसा गया था तथा सेवा सुश्रूषा के कारण उसकी आत्मा दब रही थी । इसलिये वह सन्तोष को प्राप्त नही होता था । राम ने तिरस्कार के बदले उसका सत्कार किया था । अपने अनेक-गुणो से उसे वशीभूत किया था ।

वास्तव मे पुरुष वही है जो अनुपकारी के प्रति पुरुषोत्तम राम के समान उपकार करते हैं जिन्होने दुर्वचनो के द्वारा तिरस्कार करने वाले को सुवर्ण कलशो के पवित्र जल से अभिषेक कराकर अमूल्य वस्त्राभूषण भेट किये ।



श्री १०८ स्वर्गीय मुनि श्री चन्द्रसागर स्तुतिः

स्वर्गीय महा विद्वान पं० इन्द्रलाल जी जैन शास्त्री, वोरडी का रास्ता जयपुर

जिन्होंने प० मिश्रीलाल जी शाह की अधिकतम प्रेरणा पाकर वि० सं० २०२१ में यह स्तुति रच कर श्री चन्द्रसागर स्मारक लाडनूं को सेवार्पित की।

॥ अनुष्टुप् छंद ॥

* इलामूल मिलन्मौलि, श्चन्द्रसागर सन्मुनिम्।
नं नमीमि महाभक्त्या, संसार क्लेश हानये ॥१॥

शताब्धि नव कै के व्दे, वैक्रमे जन्म लव्धवान्।
माघ कृष्ण त्रयोदश्यां नांदगांव पुरे वरे ॥२॥

माता सीता सती यस्य, पिता नथमल्लो बुधः।
खण्डेलवाल मार्तण्डः पहाडया कुलदीपकः ॥३॥

संलेभे जन्म ताभ्यां यो, वंश संमोदकारकम्।
द्वितीया चंद्रवद्वृद्धि, प्राप चन्द्र समद्युतिः ॥४॥

नाम्ना खुशाल-चन्द्रोऽयं, प्रथितोऽभून्महीतले।
पठित्वा वहु शास्त्राणि, महाविद्वान विभूच्छिशुः ॥५॥

पाश्चात्य शासन द्रोही, देशभक्ति युतो युवा।
स्वातंत्र्यार्थ स्वदेशस्य, यत्नं चक्रे त्रिधा मुदा ॥६॥

न तत्र पूर्णता दृष्टा, स्वातंत्र्यस्य स्वतो विना।
वैराग्यमादधे चित्ते, ह्यात्मस्वातंत्र्य हेतवे ॥७॥

व्रह्मचर्यं पदं लेभे, गुरोः श्री शान्तिसागरात्।
धर्म सेवां प्रकुर्वाणः तत्पश्चात् क्षुल्लकादिकम् ॥८॥

षडष्ट नव कै केव्दे, वैक्रमेव्दे विदांवरः।
सुवर्णगिरि सिद्धाख्ये, मुनिदीक्षां समाहृदे ॥९॥

---

* पृथ्वी के मूल में लगा है मस्तक जिसका ऐसा मैं 'इन्द्रलाल'

चन्द्रप्रभ प्रभोः पादे, गुरोः श्री शान्तिसागरात्।
खुशालचन्द्रात्संजातो, दीक्षाख्यश्चन्द्रसागरः ॥१०॥

तपस्त्यागविधौ सक्तः, श्रुताध्ययन तत्परः।
वीत मोहो विदांश्रेष्ठो, निर्भीकः सिंह वृत्तिधृत् ॥११॥

सर्वं चिन्ता विनिर्मुक्त स्तारण स्तरणो गुरुः।
विजह्रे भारती भूमि, सत्यां वाणी प्रसारयन् ॥१२॥

जैन नागर सौभाग्यात्, लाडनूं नगरे वरे।
बोधयामास यो भव्यान् सुप्तान् वैषयिके सुखे ॥१३॥

देश धर्म कुलोद्दीपी, रागद्वेष विदूरितः।
अद्वितीयो जगद्बन्धु, निस्पृहो मुनिसत्तमः ॥१४॥

एक बिन्दु द्वयं द्वयब्दे, बडवानी महाचले।
सित फाल्गुन पूर्णायां, तिथौ सद्ध्यान चेतसा ॥१५॥

समाधिमरणं लेभे, कुंभकर्णादि सत्पदे।
पूर्वं मुक्तादि वच्छीघ्रं, निर्वाण पदमेष्यति ॥१६॥

सत्य मार्गमजानन्तो, मिथ्याज्ञान विमोहितः।
विरोधिनोऽपि संजाता, यत्पाद नुत मस्तकाः ॥१७॥

दूषयन्तो मुधा मोढ्यात्, वृथां पंडित मानिनः।
नेमुस्तेऽपि शिरः सर्वे, चन्द्रसागर पादयोः ॥१८॥

आचंद्रार्कं मिदं स्थेयात्, चंद्रसागर सद्यशः।
तस्येदं स्मारकं नित्यं, रत्नत्रितयराजितम् ॥१९॥

यद्भक्ति भावना मिन्द्रः, स्वान्तर्भावयते मुदा।
सदा मन्मन सि स्थेयात् स गुरुश्चंद्रसागरः ॥२०॥

शमिति।

प्रेषक—
मिश्रीलाल शाह जैन शास्त्री
श्री चन्द्रसागर स्मारक, लाडनूं।

॥ श्री ॥

विश्ववंद्य पूज्यपाद स्व० मुनि श्री चन्द्रसागर जी महाराज की

तपस्विता

— ब्र० शिवकरण जैन अग्रवाल, लाडनूं (राजस्थान) —

(वर्तमान में पूज्य क्षुल्लक श्री १०५ सिद्धसागर जी महाराज)

चारित्र शिरोमणि परम तपोनिधि पूज्य १०८ स्व० श्री चन्द्रसागर जी महाराज वर्तमान युग के एक आदर्श श्रेष्ठ वीतराग साधु थे। यद्यपि आज वसुधरा पर वे विद्यमान नही है, परन्तु उनका दिव्य उपदेश युग युगान्तर तक इस जगत के जीवो को मार्ग प्रशस्त करता रहेगा। यह ध्रुव सत्य है। आप आगमानुसार स्पष्ट बोलते थे। आगम पर आपको अडिग विश्वास था। आपकी कृपा से इस जैन समाज मे फैला हुआ मिथ्यांधकार दूर हो सका। जिसके लिये जैन समाज आपका सर्वदा ऋणी रहेगा। वास्तव मे समन्तभद्र स्वामी के बताये हुये साधु लक्षण के अनुसार आप ज्ञान ध्यान तप मे लीन सच्चे दिगम्बर साधु पुगव थे।

आप इस पचम काल में सूर्यवत् अज्ञान व मिथ्यात्व के नाशक ही नही थे बल्कि मिथ्या-दृष्टियो को त्रिशूल थे। आपके सामने धर्म विरुद्ध बोलने का कोई साहस नही कर सकता था आपकी उग्र तपस्या के आगे आगम विरोधियो के आसन हिल जाते थे। आपका युक्तिवाद अभेद्य था। वक्तृत्व शक्ति भी असाधारण थी। इसी कारण आपके सामने आगम विरोधियो को नतमस्तक होना पड़ता था। वास्तव मे आपके द्वारा जैन धर्म का प्रचार व प्रसार हुआ है। आपने आगम प्रणाली के रक्षण के लिए जो प्रयत्न किया था वह धार्मिक जनता यावत् "चन्द्र दिवाकरौ" भूल नही सकती है। आप प्राणी मात्र के हित चितक तथा हितकारी थे। ससार की महान् विभूति थे। ऐसे महामुनिराज की स्मृति को स्थायी बनाने का यह प्रयत्न स्तुत्य और अनुकरणीय है।

मै स्व० महाराज श्री के चरणो में कोटि कोटि नमन करता हू और जिनेन्द्र प्रभु से यह हार्दिक प्रार्थना करता हू कि आपकी आत्मा को शीघ्र ही मुक्ति लाभ मिले।

नोट:—श्री १०८ चन्द्रसागर जी महाराज की हस्तलिखित एक पुस्तक मुझे स्व० आचार्य श्री महावीर कीर्ति महाराज के सघ से प्राप्त हुई तभी मे इसको प्रकाशित करवाकर धार्मिक बन्धुओ के पठनार्थ पहुचाने की प्रबल इच्छा रही फलस्वरूप विदुषी रत्न श्री १०५ आर्यिका सुपार्श्वमती जी के कर कमलो मे अर्पित की। उन्होंने इसका सपादन करके स्वर्गीय श्री चन्द्रसागर जी महाराज की निर्मल देशना को जनता तक पहुचाने का प्रयत्न किया है। प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकाशन होने का श्रेय आपको ही है।

—०—

॥ श्री ॥

श्री १०८ परम पूज्य स्व० चन्द्रसागर जी महाराज का

॥ तेजोमय तपस्वी जीवन ॥

– श्री मिश्रीलाल शाह जैन शास्त्री, श्री चंद्रसागर स्मारक लाडनूं (राजस्थान) –

ज्यो ही यह जानने मे आया कि उपर्युक्त आचार्य कल्प सघ नेता श्री चन्द्रसागर जी महाराज के सम्बन्ध मे स्मृति ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है, मानस परम आह्लाद की तरंगो मे तरगति हो उठा। सुन्दर सामग्री से सुसज्जित होकर इसके प्रकाशन में वर्धमान उत्साह होने का एक कारण बना, वह यह कि स्व० १०८ आचार्य श्री महावीर कीर्तिजी मुनिराज के सघ के पास श्री १०८ चन्द्रसागरजी महाराज के स्वय के हाथ की लिखी हुई विपुल पठनीय सामग्री से परिपूर्ण महान पुस्तक थी। उनने लाडनू निवासी सप्तम श्रावक श्री शिवकरणजी जैन अग्रवाल को हस्तगत कर दी। इनने फिर १०५ विदुषीरत्न श्री सुपार्श्वमती जी आर्यिका जी (श्री १०५ इन्दुमती जी सघस्थ) जिनको कि गुरु महाराज पर परम श्रद्धा, भक्ति, और उनके पुनीत गुणों के सस्मरण से परम प्रभावशील रहती आई है-उस पुस्तक को सेवार्पित किया। आपने ही इस पुस्तक के सपादन मे परिपूर्ण योगदान देकर जन हित की भावना से इसके प्रकाशित कराने की योजना को कार्यान्वित बना दिया। इसलिये मुझे भी—जिनकी कि चरण छाया में दीर्घकाल तक रहकर ओजस्वी अमृतोपम वाणी के पान करने का सुखद सयोग मिला है, उनके प्रसाद से प्राप्त होने वाले अनुभवो को लेखनी वद्ध करने का उत्साह जागृत हुआ है।

आपने माघ बदी १३ वि० स० १९४० में अपने जन्म द्वारा नादगाव (दक्षिण) के धरातल को पवित्र बनाया था। पितु श्री नथमलजी माता सोता पहाडिया व गृह परिवार के तब हर्ष का पारावार न था। पुत्र खुशालचन्दजो ने तब अपने पूर्व सस्कार व माता पिता के भव्य सस्कारो से शीघ्र ही शास्त्र बोध पाया। लौकिक पारलोकिक शिक्षण मे पारगत हो गये। तारुण्य के प्रवेश मे ही आपको देश भक्ति का उत्साह जाग्रत हो गया। साधु सन्तो के सम्पर्क से वैराग्य से ओत प्रोत होकर साधना के क्षेत्र मे रहते रहते मगसर सुदी १५ वि० स० १९८९ सोनागिर सिद्धक्षेत्र मे स्व० आचार्य गुरु शातिसागर जी महाराज द्वारा मुनिदीक्षा से दीक्षित होकर सर्वत्र धरातल पर विहार करते हुये अपने विशिष्ट ध्यान, अध्ययन तपस्विता से बडे प्रभावशाली विशिष्ट व्याख्याता एव परम वाग्मी बन गये। मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविकाओ से आपका सघ दीप्तिमान था। सघ सचालन की आपमे बड़ी कुशलता थी। विहरित क्षेत्र में आपके

विज्ञान बल से अनेको श्रावक श्राविकाओ ने व्रत नियम लिये। अजैन भी आपके भव्योपदेश से प्रभावित होकर रात्रि भोजन मांस मदिरा आदि अभक्ष्य भक्षण के संसर्ग से छूट गये।

आप में प्रकृति दत्त एक गुण था, वह यह कि आप बड़े निर्भीक व सिंह वृत्ति के धारक थे। सेठ साहूकार धनी मानी आदि की परवाह न कर खरी कहने में कभी संकोच न करते थे। इससे शक्तिवन्त श्रीमन्त वर्ग आप से प्रतिगामी होकर भी कही पेश आते थे पर अन्त में उन्हें आपकी सत्यता, वास्तविकता अलंघ्य तर्कणा शक्ति और आर्ष मार्ग साधक तत्त्वबोध के आगे सभी वर्ग को आपके आगे झुकना पड़ता था। बड़े बड़े महारथी शास्त्री विद्वान आपकी विद्वता प्रतिभाशलिता के आगे नतमस्तक हो जाते थे। आपके भाषण में सहस्रों व्यक्ति जमा होते थे। बड़े बड़े सरकारी आफिसर्स भी आपके वस्तु प्ररूपण शैली से चमत्कृत होते थे। इन्दौर चातुर्मास में बहुत बड़ा विरोधी वातावरण खड़ा हुआ था पर वहां भी आप तप्तायमान स्वर्ण की भांति दीप्तिमान सिद्ध हुए, और आपकी तपस्विता के आगे सब शांत हो गये, उस समय जो वहां धर्म प्रभावना व जय जयकार हुआ वह अवर्णनीय है। एतावता आप परीषह जयी उपसर्ग जयी जितेंद्रिय सिद्ध हुए।

आपके निमित्त से आपकी स्मृति में सच्छ्रावकों ने प्रभावित होकर यहां 'श्री चन्द्र सागर स्मारक' निर्माण कराया। उसमें साधुत्रय की मूर्ति विराजमान होने से (श्री शाति, वीर, चद्र, मुनित्रय) नित्य ही कर्तव्य की संस्मृति होती रहती है। ऐसा ही स्मारक इन्दौर मे भी आगम सेवको जनो द्वारा निर्मापित हुआ है।

इन्दौर से विहार कर आप सिद्धक्षेत्र बड़वानी चले गये। वहां फागुन सु० १५ सं० २००१ में शुभ सल्लेखना पूर्वक स्वर्गीय हो गये। आपके प्रति मैं भक्ति से अवनत होकर श्रद्धांजलि समर्पित करता हूं और आप ही के पथ का अनुगामी होने की भावना करता हूं।



—: जीवन निर्माता :—

आज से लगभग ३८ वर्ष पूर्व जबकि मेरी आयु लगभग १७ वर्ष की थी। मै अपनी पूज्य माता जी के साथ रेवारपुर (कोटा) गया हुआ था। वहां मैने सर्वप्रथम परमपूज्य प्रातः स्मरणीय तपोनिधि आचार्य कल्प श्री १०८ श्री चन्द्र सागर जी महाराज के दर्शन किये। उन्होने बड़े प्रेम से मेरे सिर पर पिच्छिका रखते हुए आशीर्वाद दिया।

दूसरे दिन मैंने उनके आहार की विधि देखी, मनमें उमग उठी कि मैं भी आहार दूं—मैंने अपनी पूज्य माता जी से कहा—क्या मैं भी आहार दे सकता हू। उन्होने कहा बेटा—इन्हे वही व्यक्ति आहार दे सकता है जो स्वय शुद्ध आहार लेने का नियम ले—उस सारी विधि को सुन कर मै सहम सा गया। मै तो बाजार की पकौड़ियां, सेव आदि खाने का आदी था।

एक दिन पूज्य गुरुवर ने टोक ही दिया। क्यो हमें भोजन नही कराओगे। मन में सोचा क्या उत्तर दू—आखिर अनायास मुह से निकल गया। महाराज जब आप हमारे गांव में पधारेंगे तब मै आपको आहार दूगा—महाराज श्री का ३-४ दिन बाद वहा से विहार हो गया। बात आई गई सी हो गई। पर उनकी स्मृति हृदय पटल पर अकित हो गई।

लगभग ८-१० माह बाद निमित्त से पूज्य गुरुवर का सघ सहित सवाई माधोपुर में आगमन हुआ (वि० स० १९९६)। बडे समारोह के साथ सघ का नगर में प्रवेश हुआ—मै भी उस उत्सव में सम्मिलित था। मुझे पिछली सारी स्मृति याद हो आई। पूज्य महाराज श्री की धर्म देशना हुई। उसी प्रसग मे उन्होने कहा कि यहा का एक लड़का जो अपने आपको पापडीवाल बतलाता था। हमे यहाँ आने का निमन्त्रण देकर आया था—कौन है वह—मै झट हाथ जोडकर खड़ा हो गया। महाराज श्री ने कहा—क्यो भोजन कराना है या नही—मैं लज्जित सा खड़ा रहा। पूज्य महाराज जी का आहार अन्यत्र हुआ।

दूसरे दिन प्रात: मैंने स्वय बिना घरवालो के पूछे महाराज श्री से शुद्ध भोजन करने की प्रतिज्ञा ली और जो-जो नियम उन्होने बतलाए उन सभी को मैंने स्वीकार किया उस दिन से मेरे जीवन में एक नया मोड़ आ गया और मुझे एक नया मार्ग मिला—लगातार हमारे यहां चौका बनता रहा लेकिन लगभग ५-६ दिन तक पूज्य गुरुवर के आहार दान के पुण्य का योग प्राप्त नही हो सका। जब वे अन्यत्र आहार करके आये तो मैं मदिर जी की सीढ़ियों पर बैठा था। मेरी आंखो से अश्रु धारा बह रही थी। गुरुवर ने सिर पर पिच्छिका रख कर आशीर्वाद देते हुये कहा। क्यो आज क्या बात है—मैंने कहा महाराज मेरे यहा आहार क्यो नही हो रहा है—पूज्य गुरुवर कहने लगे रोने से क्या लाभ है। दूकानदार दूकान लगाता है। ग्राहक भी आता है तुम तो अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहे हो.........................मेरे को कुछ धैर्य बंधा। और

(शेष पृष्ठ ५० पर)

—: इस युग के महान् सन्त :—

जो साधना के क्षेत्र मे अपना सब कुछ दे देते है वे साधु कहलाते है। साधु शब्द की निरुक्ति यह है कि 'यः आत्मानं साधयति तत्साधुः'। जो सब तरफ से इन्द्रियों के विषय भोग आशा लोकतृष्णा आदि जाल से अपनी आत्मा को यहां तक कि अपनी देह से भी निर्ममत्व होकर सहज स्वभाव में रमाते रहते है वे ही ग्रन्थ रहित सच्चे पवित्रमना साधु माने जाते है। स्वर्गीय श्री १०८ चन्द्र सागर जी महाराज इसी के प्रतीक थे।

आपकी साधुता की गध सर्वत्र फैल गई थी। जो भी आपके चरणों में एक बार आ जाता था। वह चरण भ्रमर बन जाता था। आपकी कठोर तपस्या को देख कर दर्शक आश्चर्य चकित हो जाते थे। ग्रीष्म ऋतु में एक पाव से खड होकर ध्यान लगाना आपकी एक विशिष्ट आकर्षण शील चर्या थी।

आप सज्जातित्व के परम पोषक थे। आपके भाषणो मे आर्ष मार्ग की छाप रहती थी। प्रकृति मे बड़ी निर्भीकता थी। उपसर्ग परीषह जय मे अचल रहते थे।

आप परम जितेन्द्रिय थे। घृत, मीठा, लवण का आजन्म त्याग ही इसका प्रबल प्रमाण है। श्रावकोचित योग्याहार विहार ही आपके आशीर्वाद की परम कसौटी थी।

आपके निधन से समाज अनाथ हो गया। आज के युग में आपकी परम आवश्यकता थी। आपही के समान सन्मार्ग का अनुसरण करने वाले आचार्य प्रवर शांति सागर जी महाराज की संघ परपरानुवर्ती आचार्य श्री १०८ धर्म सागर जी प्रभृति संघ अहिंसा, अपरिग्रहवाद की महिमा से लोक को आलोकित कर रहे है। मै आपके चरणो में अपनी श्रद्धांजलि अर्पण करता हू।

—सुमतिशाह जैन बी. ए.
एकाउन्टेन्ट मेडीकल विभाग
जयपुर (राजस्थान)

पृष्ठ ४६ का शेषांश.....
तीसरे या चौथे दिन गुरुवर को आहार देकर मैंने अपने को बड़ा भाग्यशाली समझा। सौभाग्य सेसंघ का वर्षायोग यही हुआ और संघ के सानिध्य मे लगभग ६ माहरहने का पुण्य योग प्राप्त हुआ। उन्ही का आशीर्वाद है कि जीवन कुछ धार्मिक प्रवृत्तियो की ओर मुड़ा और आज तक उनके आशीर्वाद से उनके दिलाये हुये नियमो का बराबर पालन करता रहा हूं। मेरे वास्तविक जीवन के प्रदाता उन परम गुरुवर तारण तरण परम तपस्वी तपोनिधि श्री १०८ आचार्य कल्प चन्द्र सागर जी महाराज के पुनीत चरण कमलो में मै शत शत वन्दना करता हूं।

—लाडली प्रसाद जैन पापड़ीवाल
सवाई माधौपुर

पूज्य आचार्यकल्प श्री चन्द्रसागर जी महाराज के

चातुर्मास-स्थल

ऐलक अवस्था में

संबत			गांव का नाम
वीर सवत्	२४५०	आ० शाति सागर महाराज जी के संघ में	समडोली
,,	२४५१	,,	कुभोज
,,	२४५२	,,	नादणी
,,	२४५३	अकेले	नादगाव
,,	२४५४	आचार्य श्री के साथ	कटनी
,,	२४५५	,,	ललितपुर
,,	२४५६	,,	मथुरा

मुनि अवस्था में

,,	२४५७	आचार्य श्री के साथ	दिल्ली
,,	२४५८	,,	जयपुर
,,	२४५९	अकेले	अजमेर
,,	२४६०	,,	कुचामन
,,	२४६१	,,	सुजानगढ
,,	२४६२	,,	ब्यावर
,,	२४६३	,,	जयपुर
,,	२४६४	,,	नैनवां
,,	२४६५	,,	सवाई माधोपुर
,,	२४६६	,,	बड नगर
,,	२४६७	,,	नांदगॉव
,,	२४६८	,,	कोपर गांव
,,	२४६९	,,	कसाब खेडा
,,	२४७०	,,	आडूल



आचार्यश्री की शिष्य परम्परा का संक्षिप्त वर्णन

चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री १०८ शान्तिसागर जी महाराज द्वारा दीक्षित–

मुनिगण—सर्वश्री १०८ वीरसागर जी महाराज, नेमिसागर जी महाराज, वर्द्धमानसागर जी महाराज, देवसागर जी महाराज, पायसागर जी महाराज, चन्द्रसागर जी महाराज, नमिसागर जी महाराज, पद्मसागर जी महाराज, आदिसागर जी महाराज, श्रुतसागर जी महाराज, कुन्थुसागर जी महाराज, सुधर्मसागर जी महाराज, नेमिसागर जी (पुत्तूरकर), धर्मसागर जी महाराज, अनन्तकीर्ति जी महाराज, पार्श्वकीर्ति जी महाराज, चन्द्रसागर जी महाराज, (पुत्तरकर), समतभद्र जी महाराज।

पूज्य आचार्य श्री १०८ वीरसागर जी द्वारा दीक्षित–

मुनिगण—सर्वश्री १०८ शिवसागर जी, आदिसागर जी, धर्मसागर जी, सुमतिसागर जी, श्रुतसागर जी, सन्मतिसागर जी, पद्मसागर जी, जयसागर जी।

आर्यिकाये—सर्वश्री १०५ वीरमती जी, सुमतिमती जी, विमलमती जी, इन्दुमती जी, पार्श्वमती जी सिद्धमती जी, वासुमती जी, ज्ञानमती जी, सुपार्श्वमती जी।

क्षुल्लिकाये—सर्वश्री १०५ चन्द्रमती जी, जिनमती जी, पद्मावती जी, अनन्तमती जी, गुणमती जी।

क्षुल्लक—सर्वश्री १०५ सिद्ध सागर जी।

पूज्य आचार्य श्री १०८ पायसागर जी महाराज द्वारा दीक्षित–

मुनिगण—सर्वश्री १०८ जयसागर जी, कुलभूषण जी, देशभूषण जी।

आर्यिका—श्री १०५ चन्द्रमती जी।

क्षुल्लिकाये—सर्वश्री १०५ विमलमती जी, अजितमती जी, जिनमती जी, राजमती जी, विद्यामती जी, अनन्तमती जी, पार्श्वमती जी, सुमतिमती जी।

क्षुल्लक—सर्वश्री मल्लिसागर जी, विमलसागर जी, सुमतिसागरजी, सिद्धसागर जी।

पूज्य आचार्य कल्प श्री १०८ चन्द्रसागर जी महाराज द्वारा दीक्षित–

मुनिगण—सर्वश्री १०८ निर्मलसागर जी, हेमसागर जी।

आर्यिकायें—सर्वश्री १०५ पार्श्वमती जी, कीर्तिमती जी।

क्षुल्लिकायें—सर्वश्री १०५ इन्दुमती जी, बोधमती जी, मानस्तम्भामती जी।

क्षुल्लक—सर्वश्री १०५ भद्रसागर जी, बोधसागर जी, गुप्तिसागर जी, जयसागर जी।

पूज्य आचार्य श्री १०८ शिवसागर जी महाराज द्वारा दीक्षित–

मुनिगण—सर्वश्री १०८ अजितसागर जी, सुपार्श्वसागर जी, भव्यसागर जी, ऋषभसागर जी सुबुद्धिसागर जी, यतीन्द्र सागर जी, श्रेयांस सागर जी।

आर्यिकायें—सर्वश्री १०५ जिनमती जी, राजुलमती जी, पद्मावती जी, बुद्धिमती जी, विशुद्धमती जी, सुशीलमती जी, धन्यमती जी, कनकमती जी, श्रेयांसमती जी, अरहमती जी।

—संकलनकर्त्री–आर्यिका सुपार्श्वमती

श्री
चन्द्रसागर स्मृति ग्रंथ

द्वितीय खण्ड

सैद्धान्तिक लेख

नय विवक्षा

लेखिका-पूज्या श्री १०५ आर्यिका सुपार्श्वमती माताजी

विश्व के समस्त दर्शन शास्त्र वस्तु तत्व की कसौटी के रूप में प्रमाण को स्वीकार करते है। किन्तु जैन दर्शन इस सम्बन्ध मे एक नयी सूझ देता है। जैन धर्म की मान्यता है कि प्रमाण अकेला वस्तुत्व को परखने के लिए पर्याप्त नही है। वस्तु की यथार्थता का निर्णय प्रमाण और नय के द्वारा ही होता है।

प्रमाण नयैरधिगम ।।

अर्थात—प्रमाण और नय के द्वारा पदार्थो की जानकारी होती है केवल प्रमाण या नय से वस्तु का स्वरूप नही जाना जाता है। जैनेतर दर्शन नय को स्वीकार नही करते इस कारण एकातवाद के समर्थक बन गये है और जैन दर्शन नय वाद को स्वीकार करता है इसलिए अनेकात वादी है।

किसी भी वस्तु का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिये उसका विश्लेषण करना अनिवार्य है क्योकि विश्लेषण के बिना उसका परिपूर्ण रूप नही जाना जा सकता है। तत्व का विश्लेषण करना और विश्लिष्ट स्वरूप को समझना नय की उपयोगिता है। नय वाद के द्वारा परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाले विचारो के अविरोध का मूल खोजा जाता है और उनका समन्वय किया जाता है

नय विचारो की मीमासा है। वह एक ओर विचारो के परिणाम और कारण का अन्वेषण करते है और दूसरी ओर परस्पर विरोधी विचारो में अविरोध का बीज खोज कर समन्वय स्थापित करते है।

अनेक धर्मात्मक वस्तु के परस्पर विरोधी नित्य अनित्य, सत असत, एक अनेक आदि धर्मों का समन्वय करके सिद्धि करना नय का कार्य है। जगत के विचारो के आदान प्रदान का साधन नय है।

नय का लक्षण

अनन्त धर्मात्मक वस्तु को अखड रूप से जानने वाला ज्ञान प्रमाण कहलाता है, और प्रमाण के द्वारा जानी हुई वस्तु के एक अश जानने वाला ज्ञान नय कहलाता है। प्रमाण सर्वा श ग्राही है और नय एक अश का ग्राहक है।

"सधर्मणैव साध्यस्य सधार्म्या दविरोधतः।
स्याद्वाद प्रविभक्तार्थं विशेष व्यञ्जको नय. ।।
—"आप्त मीमासा"

स्याद्वाद अर्थात—श्रुत प्रमाण के द्वारा ग्रहीत अर्थ के विशेष धर्मो का प्रथक-प्रथक कथन करना नय है।

नीयतेऽनेन इति नय. जिसके द्वारा जाना जाय उसे नय कहते है।

"नीयते गम्यते येन श्रुता शोशों नयो हि स: "

श्रुत के द्वारा जाने हुये पदार्थो का एक अश जिससे जाना जाता है वह नय है।

"स्वार्थेक देश निर्णीत्ति लक्षणो हि नय.।"

— श्लोकवार्त्तिक

अपने अर्थ के एक अंश का निर्णय करने वाला नय है। "प्रमाणप्रकाशितार्थ विशेष रूप को नय:।" प्रमाण के द्वारा प्रकाशित अस्तित्व नास्तित्व, नित्यत्व अनित्यत्व आदि अनंत धर्मात्मक जीवादि पदार्थो के जो विशेष धर्म है उनके एक अश का ग्राहक नय है।

"प्रमाण परिग्रही तार्थेक देशे वस्त्वध्यवसायो नय:। प्रमाण के द्वारा परिग्रहीत अर्थ के एक देश की सत्प्ररूपणा का निश्चय करने वाला नय है।

"अनिराकृत प्र तिपक्षो वस्त्वंश ग्राही ज्ञानुरमि प्रायो नय:।

— प्रमेय कमल मार्तंण्ड

परस्पर अपने प्रति पक्षी का विरोध न करते हुये वस्तु के एक अंश को ग्रहण करने वाले को अथवा ज्ञाता के अभिप्राय को नय कहते है।

वस्तुन्यने कातात्म विरोधेन हेत्वर्पणत्साध्य विशेषस्य याथात्म्य प्रापण प्रवण प्रयोगो नय। —स० सि०

अनेक धर्मात्मक वस्तु के विरोध न करके किसी एक धर्म की अपेक्षा से वर्णन करने वाला नय कहलाता है।

"नयंति प्रापयंति प्रमाणै क देशानिति नय:।

प्रमाण के एक देश को प्राप्त कराता है उसको नय कहते है।

"यथा वस्थित स्वरूप दर्शन समर्थ व्यापारो नय:"

वस्तु के जैसा स्वरूप है वैसे स्वरूप के वर्णन करने के सामर्थ्य व्यापार को नय कहते है।

"जो णाणीण वियप्पं सुवासयं वत्थु अंस संगहणं"

तं इह णायं पउत णाणी पुण तेण जाणेण।

श्रुत ज्ञान का आश्रय लेकर ज्ञानी वस्तु के विकल्प को ग्रहण करता है वह नय है। नय श्रुत ज्ञान के भेद है इसलिये श्रुत के आधार से नय की प्रवृति होती है। श्रुत प्रमाण होने से सकल ग्राही होता है उसके एक अश को ग्रहण करने वाला नय है। इसलिये नय विकल्प स्वरूप है।

नय के बिना मानव को स्याद्वाद को बोध नही हो सकता है। इसलिये जो एकान्त का विरोध कर वस्तु का यथार्थ स्वरूप जानना चाहते है उनको नय जानना चाहिये।

श्रुत ज्ञान के दो कार्य है— १ स्याद्वाद —२ नय। सम्पूर्ण वस्तु के कथन को स्याद्वाद कहते है और वस्तु के एक देश कथन को नय कहते है।

अथवा स्याद्वाद के द्वारा ग्रहीत अनेकान्तात्मक पदार्थो के धर्म का प्रथक् प्रथक् करने वाला नय है। तथा प्रमाण के द्वारा अनेकान्त का बोध होता है। परन्तु नय तभी सुनय है जब वह सापेक्ष हो। यदि वह नय अन्य नयों के द्वारा गृहीत अन्य धर्मो का निराकरण करता है तो वह नय दुर्नय हो जाता है। अत. सापेक्ष नयों के द्वारा गृहीत एकान्तो के समूह का नाम ही

अनेकात है और अनेकांत का ग्राहक या प्रतिपादक स्याद्वाद है। इसलिये स्याद्वाद को जानने के लिए नय की ही शरण लेनी पड़ता है। यद्यपि नय वस्तु के एक अश को ग्रहण करता है इसलिये एकात है परन्तु वह दूसरे नय को सापेक्षता रखता है यदि दूसरे नय को अपेक्षा न रखे तो मिथ्या हो जाता है।

"अर्थस्यानेक रूपस्य धीः प्रमाणं तदंशधीः।
नयो धर्मान्तरापेक्षी दुर्नयस्तन्निराकृति.॥"

अनेक धर्मात्मक अर्थ के ज्ञान को प्रमाण कहते है। धर्मान्तर सापेक्ष एक धर्म के ज्ञान को नय कहते है। तथा इतर धर्म निरपेक्ष एक ही धर्म का ग्रहण-करने वाले ज्ञान का दुर्नय कहते है। विरोधी प्रतीत होने वाले इतर धर्म का निराकरण करने का नाम निरपेक्षता है और वस्तु के विचार के समय विरोधी प्रतीत होने वाले धर्म को अपेक्षा न होने से उसकी उपेक्षा करने का नाम सापेक्षता है निरपेक्ष नय मिथ्या होते है और सापेक्ष नय सम्यक् होते है क्योंकि वही कार्यकारी होते है। स्वामी समन्तभद्र ने कहा है—

"निरपेक्षा नया मिथ्या सापेक्षा वस्तु तेर्थ कृत" इसलिये जिनेन्द्र कथित नय के द्वारा एकात का निरास होता है। जैन धर्म सम्यक् एकात का विरोधी नही है मिथ्या एकात का विरोधी है। क्यो कि नय का ज्ञाता यह जानता है कि जो नय जिस धर्म का वर्णन करता है वह उतने ही अश में सत्य है, सर्वा श मे सत्य नही है। दूसरा ज्ञाता उसी वस्तु को अपने अभिप्राय के अनुसार भिन्न रूप से वर्णन करता है उनके पारस्परिक विरोध को नय दृष्टि के द्वारा ही दूर किया जा सकता है। अतः वस्तु के यथार्थ स्वरूप को समझाने वाला नय ही है नयाश्रय के बिना वस्तु का स्वरूप नही जाना जा सकता है।

यदि आकारादि अक्षर नही हो तो शास्त्रादि की रचना और लेखन सभव नही। सम्यक्त्व न हो तो तपस्वी का तप समीचीन नही होता, पारा नामक धातु नही हो तो अन्य धातुओं की शुद्धि नही होती उसी प्रकार नय विवक्षा न हो तो वस्तु की सिद्धि नही होती। लेखन का मूल, अक्षर है-अनेकात का मूल नय है।

प्रमाण वस्तु के पूर्ण रूप को ग्रहण करता है, अंश विभाजन करने की प्रवृति इसकी नही है। अतः प्रमाण नय नही है किन्तु प्रमाण से जानी हुई वस्तु के एक देश में वस्तुत्व की विवक्षा का नाम नय है।

द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक यह नय के दो मूल भेद है। अत. वस्तु द्रव्य पर्यायात्मक या सामान्य विशेषात्मक होती है। वस्तु के द्रव्याश या सामान्य रूप का ग्राही द्रव्यार्थिक नय है और पर्यायाश या विशेषात्मक रूप का ग्राही पर्यायार्थिक नय है।

वस्तु द्रव्य पर्यायात्मक या सामान्य विशेषात्मक है। द्रव्य और पर्याय अथवा सामान्य और विशेष को देखने वाली दो आखे है-द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक। जिस समय पर्यायार्थिक दृष्टिको बन्द करके केवल द्रव्यार्थिक दृष्टि से देखते है तो नारक तिर्यच देव मानव सिद्धत्व पर्याय

रूप विशेष में व्यवस्थित एक जीव सामान्य का ही दर्शन होता है पर्याय प्रतिभासित नही होती और द्रव्यार्थिक दृष्टि वन्द करके पर्याय दृष्टि से देखते है तो नर पर्याय आदि से जीव आत्मा भिन्न-भिन्न रूप से प्रतिभासित होता है । द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक दोनों दृष्टि को खोलकर के देखते है तो नरकादि पर्याय में अवस्थित जीव ओर जीव में व्यवस्थित नर नारकादि पर्याय में युगपत् दृष्टिगोचर होती है। अतः वस्तु को एक दृष्टि से देखना वस्तु का एक देश देखना है और दोनों दृष्टियो से देखना वस्तु का सर्व देश देखना है। इस प्रकार वस्तु के देखने की दो दृष्टि है। उन्ही का नाम पर्यायार्थिक और द्रव्यार्थिक नय है। जैसा सन्मति तर्क में लिखा है--

"तित्थयर वयण संग्रह विसेस पत्थार मूल वागरणी ।
द्विव्वद्विओ य पज्जवणओ य ऐसा वियप्पासि ।।

तीर्थंकरों के वचनों की सामान्य और विशेष रूप राशियों का मूल प्रतिपादक द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नय है बाकी सव इन दो नयों के ही भेद है। अनेकांत का निरूपण नयों के द्वारा ही हो सकता है। नय अनेक है क्योंकि वस्तु अनेक धर्मात्मक है और,एक एक धर्म का ग्राहक नय है परन्तु उन सवका समावेश संक्षेप मे इन्ही दो नयो में हो जाता है।

—विशेष भेद—

द्रव्यार्थिक नय के तीन भेद है—नैगम, संग्रह, और व्यवहार। तथा पर्यायार्थिक नय के चार भेद है। ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवं भूत। इन सात नयों में आदि के चार नयों को अर्थ नय कहते है। क्योंकि वे अर्थ की प्रधानता से वस्तु का ग्रहण करते है। तथा शब्द प्रधान होने से शेष तीनो नयों को शब्द नय कहते है। द्रोष्यतिगदु दुवत्तांस्तान पर्यायानिति द्रव्यं वा द्रु व्यति गच्छति तांस्तान्पर्यायान् द्रू व्यते गम्यते तैस्तैः पर्यायैरिति वा द्रव्यं। जो अपनी अपनी गुण पर्यायों को प्राप्त होते है उसको द्रव्य कहते है। "निज निज प्रदेश समूहै रखण्ड वृत्या स्वभाव विभाव पर्यायान् द्रवति द्रोष्यत्यदुद्रवतच्योति द्रव्यं।" जो अपने प्रदेश समूह के द्वारा अखण्ड वृत्ति से अपने अपने गुण पर्यायों को प्राप्त होते है उसको द्रव्य कहते है।

द्रव्यमेवार्थः प्रयोजनमस्येति द्रव्यार्थिक.। द्रव्य ही जिसका प्रयोजन हो उसको द्रव्यार्थिक कहते है वा द्रव्यं सामान्यम भेदो अन्वय उत्सर्गो अर्थो विषयो येषां ते द्रव्यार्थिक.। द्रव्य सामान्य अभेद अन्वय उत्सर्ग यह ऐकार्थ वाची है—अभेद अन्यव सामान्य का विषय करने वाला द्रव्यार्थिक नय है। अकलङ्क देवने लघीयस्त्रय में कहा है--

"चत्वारो अर्थनया ह्येते जीवाद्यर्थ व्यापाश्रयात्।
त्रयः शब्दनयाः सत्यपद विद्याँ समाश्रिताः ।।

चार अर्थ नय है जीवादि अर्थ के आश्रय है और तीन शब्द नय है सत्यपद विद्या के आश्रित है।

नैगम नय

नैकं गमः नैगम. संग्रहासग्रहस्वदयं द्रव्यार्थिको नैगम. अर्थात् जो धर्म और धर्मी मे से एक

को ही नही जानता है, किन्तु गौण और प्रधान रूप से धर्म और धर्मी दोनों का विषय करता है उसे नैगम नय कहते है। जैसे जीव अमूर्त्त है ज्ञाता है दृष्टा कर्त्ता सूक्ष्म भोक्ता परिणामी और नित्य है। यहा प्रधान रूप से जीवत्व का निरूपण करने पर सुखादि धर्म गौण हो जाते है। और सुखादि गुणो का निरूपण करने पर आत्मा गौण हो जाती है। और धर्म धर्मी को या गुण गुणी को अत्यन्त भिन्न मानना नैगमाभास है। जैन धर्म के अनुसार गुण गुणी अवयव-अवयवी क्रिया कारक और जाति व्यक्ति में अत्यन्त भेद मानने वाला न्याय वैशीषिक दर्शन नैगमाभासी है। तथा चैतन्य और सुखादि अत्यन्त भेदवादी साख्य भी नैगमाभासी है। इन दोनों दर्शनो ने निरपेक्ष तत्व स्वरूप का विवेचन किया है वह नैगम नय की दृष्टि से यथार्थ होते हुये भी निरपेक्ष है। इसलिये अयथार्थ है, क्योकि नैगम नय सत्याश है पूर्ण सत्य नही है।

नैगम का अर्थ

अनभिनी वृतार्थ सकल्पमात्र ग्राही नैगम । (स सि०)अर्थ सकल्प मात्र ग्राह नैगमः। (त० रा०)

तत्र सकल्प मात्रस्य ग्राहको नैगमो नय· । (त० श्लो० वा०) अनिष्यन्नार्थ सकल्प मात्र ग्राही नैगमः। (प्र० क० मा) - अनिष्यन्न सकल्प मात्र ग्राहक नैगम नय है।

अन्यदेव हि सामन्यमभिन्न ज्ञान कारण। विशेषो अप्यन्य एवेति मन्यते निगमो नयः। (स० त० टी) सामान्य ज्ञान भिन्न है और विशेष ज्ञान भिन्न है ऐसा मानने वाला नैगम नय है।

नैकैर्मानैर्महासत्ता सामान्य विशेष विशेष ज्ञानैर्मिमीते मिनोति वा नैकम.। एक मानस महासत्ता सामान्य विशेषज्ञान के द्वारा जो नही मानता है वह नैगम है। निगमेषु अर्थ बोधेषु कुशलो भवो वा नैगम । निगम अर्थात् पदार्थ के ज्ञान में कुशल ज्ञान नैगम है। अथवा नैके गमाः पन्थानां यस्य स नैकेगम· । एक जिसका मार्ग नही वह नैगम है।

तत्राय सर्वत्र सदित्येवमनुगता काराव बोध हेतुभूता महासत्तामिच्छति-अनुव्रत व्यावृत्ता वबोध हेतुभूत च सामान्य विशेष द्रव्यत्वादि ध्यावृत्तावबोध हेतुभूत च नित्य द्रव्यवृत्ति मन्त्य विशेषमिति ।

इस नय में सर्वत्र सत् इस प्रकार अनुगत द्रव्याकार ज्ञान की कारण भूत महासत्ता को स्वीकार करता है जो अनुव्रत और व्याव्रत रूप सामान्य विशेष रूप द्रव्य को स्वीकार करता है वह नैगम नय है।

निगम का अर्थ सकल्प भी होता है। अत अर्थ के सकल्प मात्र का ग्राही नैगम नय है। जैसे प्रस्थ बनाने के निर्मित्ति जगल से लकडी लेने के लिये कुठार लेकर जाने वाले किसी पुरुष को पूछा आप कहा जा रहे है। वह उत्तर देता है कि प्रस्थ के लिये। तथा पानी ईधन चावल आदि कार्य मे लगे पुरुष से किसी ने पूछा आप 'क्या कर रहे है ? तो वह उत्तर देता है कि रसोई बना रहा हू । किन्तु उस समय न तो प्रस्थ है और न रसोई। परन्तु उन दोनो का प्रस्थ और रसोई बनाने का सकल्प है। उस सकल्प में ही वह प्रस्थ या रसोई का व्यवहार करता है। अत. अनिष्यन्न अर्थ के सकल्प मात्र का ग्राहक नैगम नय है।

इस नैगम नय के अनेक भेद बतलाये है। नैगम नय के मूल भेद तीन है पर्याय नैगम, द्रव्य नैगम, और द्रव्य पर्याय नैगम। पर्याय नैगम के तीन भेद है। द्रव्य नैगम के दो भेद है। और द्रव्य पर्याय-नैगम के चार भेद है। इस प्रकार नैगम नय के नो भेद है।

पर्याय नैगम के तीन भेद है–

अर्थ पर्याय नैगम, व्यंजन पर्याय नैगम, अर्थ- व्यजन पर्याय नैगम।

अर्थ पर्याय नैगम

किसी वस्तु में दो अर्थ पर्यायो को गौण और मुख्यरूप से जानने के लिये ज्ञाता का जो अभिप्राय होता है वह अर्थ पर्याय नैगम है। जैसे सशरीर जीवका सुख संवेदन प्रतिक्षण नाश को प्राप्त होता है यहा प्रतिक्षण उत्पाद— व्ययरूप अर्थपर्याय तो विशेषरूप होने से गौण है और संवेदन रूप अर्थपर्याय विशेष्य होने से मुख्य है। विशेष और विशेष्य कथञ्चित् एक है कथञ्चित् अनेक है जो सुख और ज्ञान को सर्वथा परस्पर मे भिन्न मानते है वह नैगमाभास है।

व्यंजनपर्याय नैगम

एक वस्तु मे गौणता और मुख्यता से दो व्यजन पर्यायो को जानने वाला व्यजन पर्याय नैगम है। जैसे आत्मा मे सत् चैतन्य है यहा सत्व को गौण रूप मे और चैतन्य को मुख्यरूप से ग्रहण है तथा सत् और चैतन्य को कथचित् भिन्न कथचित् अभिन्न मानता है। सत्ता और चैतन्य को परस्पर मे आत्मा से सर्वथा भिन्न मानने का अभिप्राय व्यजन पर्याय नैगमाभास है।

अर्थ व्यञ्जनपर्याय नैगम

अर्थ पर्याय और व्यजन पर्याय को गौण और मुख्य रूप मे जानने का अभिप्राय अर्थ व्यंजन पर्याय नैगम है। जैसे धर्मात्मा पुरुष का सुखी जीवन है। सुख और जीवन को सर्वथा भिन्न मानने का अभिप्राय अर्थ व्यजन पर्याय नैगमाभास है। शुद्ध द्रव्य नैगम नय, अशुद्ध द्रव्य नैगम नय। सम्पूर्ण वस्तु सद् द्रव्यरूप है इस प्रकार के अभिप्राय को शुद्ध द्रव्य नैगम नय कहते है। इसमे गुण और पर्याय का वर्णन नही है। सत् और द्रव्य का गुण गुणी को सर्वथा प्रथक् मानना शुद्ध द्रव्य नैगमाभास है।

द्रव्य पर्यायी है गुणी है अर्थात् द्रव्य गुण और पर्यायवाला है ऐसा कथन करने वाला है कथंचित् गुण गुणी में पर्याय पर्यायी में भेद मानना अशुद्ध द्रव्य नैगम नय का विषय है। और गुण - गुणी मे सर्वथा भेद मानना नैगम नयाभास है। द्रव्य पर्याय नैगम के शुद्ध द्रव्यार्थ पर्याय नैगम नय अशुद्ध द्रव्यार्थ पर्याय नैगम नय शुद्ध द्रव्य व्यजन पर्याय नैगम नय अशुद्ध द्रव्य व्यजन पर्याय नैगमनय यह चार भेद है।

शुद्ध द्रव्य-अर्थ पर्याय नैगमनय

इस ससार में सुख सत्स्वरूप है तथा क्षणिक है यहा सत् द्रव्य है। और सुख अर्थ पर्याय है। इसमे सत् द्रव्य विशेष है रूप शुद्धद्रव्य तो गौण है और विशेष्य रूपअर्थ पर्याय सुख मुख्य है द्रव्य और पर्याय दोनो को गौण मुख रूप से ग्रहण करने वाला शुद्ध द्रव्य अर्थपर्याय नैगम नय है जो सुख पर्याय से सत् को सर्वथा भिन्न भिन्न मानते है वह नैगमाभास है।

अशुद्ध द्रव्य पर्यायार्थिक नय

"ससारी जीव क्षण भर सुखी है" इस प्रकार विवेचन करना अशुद्ध द्रव्य पर्यायार्थिक नय है क्योकि यह नय सुख रूप अर्थ पर्याय को गौण रूप से और अशुद्ध द्रव्य ससारी जीव को प्रधान रूप से ग्रहण करता है। सुख और ससारी जीव में कथन भेद अवश्य है परन्तु वास्तविक भेद नही है जो एकातवादी सर्वथा द्रव्य पर्याय मे भेद मानते है इस लिये उनका नयाभास है।

शुद्ध द्रव्य व्यंजन पर्याय

आत्मा सिद्ध स्वरूप है ऐसा ग्रहण करने वाला नय शुद्ध द्रव्य व्यंजन पर्याय है क्योकि आत्मा शुद्ध द्रव्य है और सिद्धावस्था शुद्ध व्यजन पर्याय है। इसमे यह नय मुख्य और गौण से दोनो का विषय करता है जो आत्मा और सिद्ध पर्याय को सर्वथा भिन्न मानता है वह नैगमाभास है।

अशुद्ध द्रव्य व्यंजन पर्याय

अशुद्ध द्रव्य और अशुद्ध व्यजन पर्याय को गौणता और मुख्यता से ग्रहण करता है वह अशुद्ध द्रव्य व्यजन पर्याय नैगम नय है। जैसे ससारी आत्मा अशुद्ध द्रव्य है और नर-नारकादि अशद्ध व्यजन पर्याय है। जो नर नारकादि पर्याय से आत्मा को सर्वथा भिन्न मानता है वह नैगमाभास है।

"नैक गमो नैगम" इस व्युत्पत्ति के अनुसार जो दो धर्मो में या दो धर्मियो मे से या धर्म धर्मो मे से विवक्षा के अनुसार केवल एक को नही जानता उसे सज्जन पुरुष नैगम नय कहते है।

नैगम शब्द की एक व्युत्पत्ति के अनुसार तो ऊपर उसका लक्षण बतलाया था यहां उसकी दूसरी व्युत्पत्ति के अनुसार अर्थ किया है जो दो धर्मो में से या दो धर्मियो में से या दो धर्म धर्मियों में से केवल एक को न जानकर गौणता और मुख्यता की विवक्षा से दोनो को जानता है वह नैगम नय है। अकलक देव ने अष्टशती में लिखा है कि—

दो मूल नयों (अर्थात् पर्यायार्थिक और द्रव्यार्थिक) की शुद्धि और अशुद्धि की अपेक्षा से नंगमादि की उत्पत्ति होती है। उसकी व्याख्या करते हुये स्वामी विद्यानन्दी ने अष्ट सहस्त्री मे लिखा है कि—मूलनय द्रव्यार्थिक की शुद्धि से सग्रह नय निष्पन्न होता है क्योंकि वह समस्त उपाधियो से रहित शुद्ध सन्मात्र को विषय करता है और सम्यक् एकत्व रूप से सबका सग्रह करता है। उसी को अशुद्धि से व्यवहार नय निष्पन्न होता है, क्यो कि वह सग्रह नय के द्वारा गृहीत अर्थो का विधि पूर्वक भेद प्रभेद करके उनको ग्रहण करता है जैसे वह सत् द्रव्य रूप है या गुणरूप है।

इसी तरह नैगम भी अशुद्धि से निष्पन्न होता है क्यो कि वह सोपाधि वस्तु को विषय करता है। उस नैगम नय की प्रवृति तीन प्रकार से होती है—द्रव्य में, पर्याय में और द्रव्य पर्याय मे।

द्रव्य नैगम के दो भेद है—१. शुद्ध द्रव्य नैगम २. अशुद्ध द्रव्य नैगम।

पर्याय नैगम के तीन भेद है —१. अर्थ पर्याय नैगम २. व्यजन पर्याय नैगम ३. अर्थ व्यजन पर्याय नैगम।

अर्थव्यजन पर्याय नैगम के तीन भेद हैं— १. ज्ञानपर्याय नैगम २. ज्ञेयार्थ पर्याय नैगम ३. ज्ञान ज्ञेयार्थ पर्याय नैगम।

व्यजनपर्याय नैगम के ६ भेद है (१) शब्द व्यंजन पर्याय नैगम, (२)समभिरूढ़ व्यजनपर्याय नैगम, (३) एवभूत व्यंजन पर्याय नैगम (४) शब्द समभिरूढ़ व्यजन पर्याय नैगम, (५) शब्द एवभूत व्यजन पर्याय नैगम, (६) समभिरूढ एवभूत व्यजन पर्याय नैगम।

अर्थ व्यंजन पर्याय नैगम के तीन भेद है (१) ऋजुसूत्र शब्द अर्थ व्यजन पर्याय नैगम (२) ऋजु सूत्र समभिरूढ अर्थ व्यंजन पर्याय नैगम (३) ऋजुसूत्र एवभूत अर्थ व्यजन पर्याय नैगम।
द्रव्य पर्याय नैगम के आठ भेद है- (१) शुद्धद्रव्य ऋजुसूत्र—द्रव्यपर्याय नैगम (२) शुद्ध द्रव्य पर्यायनैगम, (३) शुद्ध द्रव्य समभिरूढ द्रव्य पर्याय नैगम (४) शुद्ध द्रव्य एवंभूत द्रव्य पर्याय नैगम (५) अशुद्ध द्रव्य ऋजुसूत्र द्रव्य पर्याय नैगम (६) अशुद्ध द्रव्य शब्द पर्याय नैगम (७) अशुद्ध द्रव्य समभिरूढ द्रव्य पर्याय नैगम (८) अशुद्ध द्रव्य एवभूत द्रव्य पर्याय नैगम।

नैगम नय के उक्त भेदो को गिनाकर विद्यानन्द स्वामी ने लिखा है कि लोक और शास्त्र के अविरोध पूर्वक उदाहरण घटा लेना चाहिये किन्तु इनके उदाहरणादि किसी अन्य ग्रन्थ में मेरे देखने में नही आये है।

जय धवल में लिखा है—तत्र शुद्ध द्रव्यार्थिकः पर्याय कलक रहितः बहुभेद संग्रहः। अशुद्ध द्रव्यार्थिकः पर्याय कलकाकित द्रव्य विषय.। यदस्ति न तद्द्वयमतिलघ्य वर्त्तते इति नैक-गमौ नैगमः शब्द शील कर्म कार्य कारणाधाराधेय सहत्तार मानमेयोन्मेय भूत भविष्यद् वर्त्तमानादिक माश्रित्य स्थितोपचार विषयः।

पर्याय कलक से रहित शुद्ध द्रव्यार्थिक के बहुत से भेदों को ग्रहण करने वाला सग्रह नय है। अशुद्ध द्रव्यार्थिक पर्याय कलंक से युक्त द्रव्य का विषय करने वाला व्यवहार नय है। अस्ति और नास्ति दोनो का उलघन न कर अथवा एक द्रव्य वा एक पर्याय का विषय न करके गौणता और प्रधानता से दोनों का विषय करने वाला नैगम नय है। शब्द शील कर्म कार्य कारण आधार-आधेय मान-मेय उन्मेय भूत भविष्यत वर्त्तमानादि समस्त भेदों का विषय करने वाला नैगम नय है।

संग्रह नय

विधि व्यतिरिक्त प्रतिषेधानुप लंभा द्विधि मात्र मेव तत्व मित्यध्यवसाय समस्तस्यग्रहणा त्संग्रह:।

विधि (सत्ता) से व्यतिरिक (भिन्न) असत्ता नही है इसलिये विधि मात्र ही तत्व है। इस प्रकार समस्त सत्ता को ग्रहण करने वाले नय को सग्रह नय कहते है।

सद्रूपतानति क्रान्त स्व स्वभाव मिदं जगत्
सत्ता रूपतया सर्वं संगृह्लन संग्रहो मतः।

यह जगत सद् रूपता का उलघन करने वाला नही है इस प्रकार सत् रूप से सबका सग्रह करने वाला सग्रह नय है।

स्वजात्याविरोधे नैक त्व मुपनीय पर्यायानाक्रांत
भेदान विशेषेण समस्त संग्रहणात् संग्रहः।
स० सि० ६-३३

अपनी जाति का विरोध न करके पर्यायो से आक्रात भेदो को एकत्व रूप से ग्रहण करता है उसको सग्रह नय कहते है।

स्वजात्य विरोधे नैकत्वोपनयात् समस्त ग्रहणं संग्रहः।
ता० रा० वा० १-३३-४८

एकत्वेन विशेषाणां ग्रहणं सग्रहो मतः। सजातेर विरोधेन इष्टेष्टाभ्यां कथंचन।

प्रत्यक्ष और अनुमान से अपनी जाति का विरोध न करते हुए समस्त विशेषों (भेदों) को एक साथ ग्रहण करने वाला संग्रहनय कहलाता है। पर्याय को छोड़कर द्रव्य नहीं और द्रव्य को छोड़कर पर्याय नहीं है। द्रव्य पर्याय का एक ही द्रव्य क्षेत्र काल भाव है इसलिये द्रव्य ही तत्व है। इसप्रकार द्रव्य और पर्याय का भेद न करके अभेद रूप से ग्रहण करना सग्रह नय का विषय है। जैसे सत् कहने से सत्ता सम्बन्ध के योग्य द्रव्य-गुण कर्म आदि समस्त सद्व्यक्तियो का ग्रहण हो जाता है तथा द्रव्य कहने से सभी द्रव्यो का ग्रहण हो जाता है।

सग्रह शब्द दो अक्षरो के मेल से बना है उनमें से सम का अर्थ है एकीभाव या सम्यकत्व समीचीनपना ग्रह का अर्थ है ग्रहण करना, दोनो को मिलाने से सग्रह शब्द बनता है अर्थात् समीचीन एकत्वरूप से ग्रहण करना अर्थात् समस्त भेद प्रभेदों की जो जो जाति है उसके अनुसार उनमे एकत्व के ग्रहण करने वाले नय को सग्रह नय कहते है। जैसे सत् कहने पर सत्ता के आधार भूत सभी पदार्थो का सग्रह हो जाता है और द्रव्य कहने पर जीव अजीव उनके भेद प्रभेदों का सग्रह होता है। जैसे घट कहने पर समस्त घटों का सग्रह होता है।

सग्रह नय के दो भेद है परसग्रह और अपरसग्रह।

पर संग्रह नय का विषय सत्ता मात्र शुद्ध द्रव्य है। यह नय सत्ता के सम्पूर्ण भेद-प्रभेदों में सदा उदासीन रहता है अर्थात् यह नय न तो उनका निषेध करता है और न उनकी विधि ही करता है। जो नय सम्पूर्ण विशेषों का निराकरण करके केवल सत्ता द्वैत को मानता है वह परसग्रहा-भास है।

अपर संग्रह नयः—पर सग्रह नत्र के द्वारा ग्रहीत वस्तु के विशेष अंशों का ग्रहण करने वाला अपर संग्रह नय है। जैसे सत् के भेद द्रव्य और पर्याय है अतः सम्पूर्ण द्रव्यों में व्याप्त द्रव्यत्व तथा सम्पूर्ण पर्यायों में व्याप्त पर्यायत्व का ग्रहण करना अपर संग्रह नय का विषय है। यह मय अवान्तर भेदों का एकत्व रूप से सग्रह करता है किन्तु प्रतिपक्षी भेदों का निराकरण नही करता है।

व्यवहार नय

संग्रह नयाक्षिप्ताना मर्थानां विधि पूर्वक भवहरणं भेदनं व्यवहारः। व्यवहार परतन्त्रो व्यवहार नयः।

सग्रह नयके द्वारा ग्रहण किये हुये पदार्थो का विधिपूर्वक भेद करना व्यवहार नय है। जैसे परसग्रह सब सत् है, ऐसा ग्रहण करता है व्यवहार नय उसके भेदों को ग्रहण करता है वह सत् द्रव्य और पर्याय रूप हैं। जैसे अपर संग्रह नय सब द्रव्यों का द्रव्य रूप से और सर्वपर्यायों का पर्याय रूप से संग्रह करता है। व्यवहार नय उसका विभाग करता है। व्यवहार नय वहां तक भेद करता है जब तक भेदों की सभावना है।

काल्पनिक द्रव्य पर्याय के विभाग को मानने वाला नय व्यवहाराभास है। यह तीनो नय द्रव्यार्थिक है। क्योकि इन तीनों ही नयों का विशेष पर्याय न होने के कारण इन तीनों नयों के विषय में सामान्य और विशेष काल का अभाव है। इन नयों में काल को विवक्षा नही है। जिसमें काल कृत भेद है वह पर्यायार्थिक नय है और जिसमें काल कृत भेद नही है वह द्रव्यार्थिक नय है। ऋजुसूत्र नय से लेकर एवंभूत नय तक पूर्व पूर्व नय सामान्य रूप से उत्तरोत्तर नय विशेष रूप से वर्तमान कालवर्त्ती पर्याय को विषय करते है। पर्यायार्थिक नय के अर्थ नय और व्यंजन नय को अपेक्षा दो भेद है। लिग संख्या कारक पुरुष और उपग्रह के भेद से अभेद रूप वर्तमान समयवर्ती वस्तु का ग्राहक अर्थ नय है और शब्द भेद से वस्तु के भेद को ग्रहण करने वाला व्यजन नय है।

ऋजुसूत्र नय

ऋजुसूत्र अर्थ नय है। ऋजुप्रंगुणं सूत्रयति सूचयति इति ऋजुसूत्र नयः। ऋजु--सरल अर्थात् वर्तमान समयवर्ती पर्याय मात्र को ग्रहण करता है वा सूचित करता है वह ऋजुसूत्र नय है। यह नय केवल प्रधान रूप से क्षण क्षण में ध्वस होने वाली पर्याय को वस्तु रूप से विषय करता है क्योकि भूत पर्याय तो नष्ट हो चुकी है और भविष्य पर्याये अभी उत्पन्न नही हुई है इसलिये इनसे व्यवहार नही चलता है अतः यह नय त्रिकालीन द्रव्य को विवक्षा न करके केवल वर्त--मान पर्याय का ही विषय करता है इस नयको दृष्टि में समस्त पदार्थ क्षण-क्षण में उत्पन्न ध्वंस शील हैं जो नय बाह्य और अतरग द्रव्यों का सर्वथा निराकरण करता है। उसे ऋजु-सूत्र नयाभास समझना चाहिये। क्योंकि अन्वयी द्रव्य का सर्वथा निषेध करने पर कार्य कारणपना ग्राह्य ग्राहक पना और वाच्य वाचक पना नही बन सकता है ऐसी दशा में अपने इष्ट तत्त्व का साधन और पर पक्ष का दूषण कैसे बन सकेगा। तथा लोक व्यवहार सत्य और परमार्थ सत्य भी सिद्ध नही हो सकता है और सामानाधिकरण्य विशेष विशेष्य भाव साध्य साधन भाव आधाराधेय भाव सयोग, वियोग क्रिया कारक स्थिति सादृश्य विसदृशता स्वसंतान और पर सन्तान की स्थिति समुदाय मरण बन्ध मोक्ष पाप पुण्य के फल को व्यवस्था नहीं बन सकती। बौद्ध मत सर्वथा एकान्त क्षणिक वादी है इसलिये मिथ्या दृष्टि है। और सर्वथा कूटस्थ नित्य मान लेने पर भी पदार्थ में अर्थ क्रिया नही होती इसलिये एक नय कार्यकारी नही है।

इस ऋजुसूत्र नय को ही अर्थ नय कहते है। वस्तुनः स्वरूप स्वधर्म भेदेन भिदोऽर्थनयः वस्तु के स्वरूप का स्वधर्म के भेद से भेद करने वाला अर्थ नय है। अभेद को वा अभेद रूपेण सर्वं वस्तु

इयति एति गच्छति इत्यर्थनयः । अभेदक अथवा अभेद रूप से सर्व वस्तु को प्राप्त होता है उसको अर्थ नय कहते है। जय धवल अ १

शब्द पृष्ठतोऽर्थ ग्रहण प्रवणः शब्द नय' लिंग संख्या काल कारक पुरुषोपग्रह व्यभिचार निवृत्ति परत्वात् । लिंग सख्या साधनादि व्यभिचार निवृत्ति परः शब्द नयः शपत्यर्थ माह्वयति प्रत्यायर्तातिं शब्दः।

जो नय काल कारक लिग सख्या आदि के भेद से अर्थ को भेद रूप मानता है व्यवहार नय काल कारक के भेद से अर्थ भेद स्वीकार नही करता है परन्तु शब्द नय की दृष्टि मे यह सुस गत नही है । क्यों कि यह नय शब्द की प्रधानता से उसके वाच्यार्थ को भेद रूप मानता है इसलिये इसे शब्द नय कहते है । जैसे इस मानव के विश्व को देख चुका है ऐसा लडका उत्पन्न होगा जो अभी पैदा नही हुआ है वह विश्व को कैसे देख चुका है अत अतीत और अनागत का जो सामानाधिकरण्य व्यवहार में जोडा जाता है परन्तु शब्द नय की दृष्टि ,में वह योग्य नही है। इसी प्रकार यह नय लोक व्यवहार और व्याकरण शास्त्र के विरोध की चिन्ता नही करता इसलिये यह नय लिग और कारक के भेद से अर्थ भेद ग्रहण करता है । यदि अतीत काल और भविष्यत मे भेद नही माना जायेगा तो अतीत रावण और भविष्यत् में होने वाला शंख चक्रवर्ती भी एक हो जायेंगे । उसी प्रकार पुष्प तारा नक्षत्र आदि में लिग भेद होने पर भी वैयाकरण लोग एक ही मानते है अर्थ भेद नही करता है परन्तु शब्द नय भेद करता है यदि लिंगभेद से भेद नही माना जायेगा तो घर कुटी वस्त्र सब एक हो जायेंगे। इसलिये शब्द नय कारकलिग आदि के भेद से भेद ग्रहण करता है।

समभिरूढ नय

नानार्थ समभिरोहणात् समभिरूढः। शब्द भेद से अर्थ भेद मानने वाला नय समभिरूढ है जैसे इन्द्र, शक्र और पुरन्द्र शब्द इस नय की दृष्टि में भिन्न भिन्न अर्थ के वाचक है। अर्थात् क्रीड़ा करने से इन्द्र शक्तिशाली होने से शक्र और पुरो का विदारण करने से पुरन्दर है इस प्रकार यह नय शब्द भेद से एक ही इन्द्र को भेद रूप स्वीकार करता है। शब्द नय तो कारक लिंग से आदि भेद से अर्थ भेद मानता है। पर्याय भेद नही परन्तु यह नय तो प्रत्येक शब्द का भिन्न भिन्न अर्थ मानता है जितने शब्द है उतने ही इस नय के वाच्यार्थ है।

एवंभूत नय

चेनात्मनाभूतस्ते तंवा व्यवसाय यवीति एवंभूतः।

जो पदार्थ जैसा है उसका उसी प्रकार निर्णय करना एवभूत नय है अर्थात शब्द का जो वाच्यार्थ है उस रूप क्रिया परिणत अर्थ ही उस शब्द का वाच्यार्थ हो वह एवभूत नय का विषय है। जैसे जिस समय स्वर्ग का स्वामी इन्दन अर्थात् परमैश्वर्य का अनुभव करता है इस नय की अपेक्षा उसी समय वह इन्द्र कहलाने योग्य है। वह नय क्रिया प्रधान है इसलिये इस नय मे जिस त्रिया मे परिणत का उस समय उसी प्रकार कहना इस नय का कार्य है। इन सात नयो में 'नेगम सग्रह व्यवहार' यह तीन नय द्रव्यार्थिक है क्यो कि इनमें द्रव्य की प्रधानता

है जहां कालकृत भेद होता है वह पर्यायार्थिक नय है। ऋजुसूत्र शब्द समभिरूढ और एवभूत यह चार पर्यायार्थिक नय है। क्योकि इनमें पर्याय की मुख्यता है।

पर्यायार्थिक नय दो प्रकार का है— अर्थ नय और व्यजन नय। नैगम संग्रह व्यवहार और ऋजुसूत्र नय अर्थ नय है तथा शब्द समभिरूढ और एवभूत यह व्यजन शब्द नय हैं।

उक्त सात नयों में पूर्व पूर्व का नय बहुविषय वाला है क्योंकि वह कारण रूप है और उत्तर उत्तर का नय अल्प विषय वाला है, क्योंकि वह पूर्व नय का कार्यरूप है। जैसे नैगम और सग्रह नयों में से सग्रह नये वहु विषय वाला नही है, क्योकि वह नैगम से उत्तर है बल्कि संग्रह से पूर्व होने के कारण नैगमनय ही वहु विषय वाला है। सग्रह नय केवल सन्मात्र को ग्रहण करता है किन्तु नैगम नय सत् और असत् दोनों का ग्राहक है, क्योंकि जैसी सद्रूप वस्तु में सकल्प किया जाता है तथा सग्रह से व्यवहार नय अल्प विषय वाला है।

क्योकि सग्रहनय तो समस्त सत्समूह का संग्राहक है और व्यवहारनय सद्विशेष का ही ग्राहक है। व्यवहारनय से ऋजुसूत्रनय अल्प विषय वाला है। क्योकि व्यवहारनय त्रिकाल-वर्ती अर्थ को ग्रहण करता है और ऋजुसूत्र नय वर्तमान पर्याय को ग्रहण करता है। ऋजुसूत्र से शब्दनय अल्प विषय वाला है क्योंकि ऋजुसूत्र कालादि के भेद से अर्थ को भेदरूप नही मानता, किन्तु शब्दनय कालादि के भेद से अर्थ भेद मानता है। शब्दनय से समभिरूढ अल्य विषय वाला है, क्योकि शब्दनय तो पर्याय भेद होने पर भी अभिन्न अर्थ को स्वीकार करता है किन्तु समभिरूढ पर्याय भेद से अर्थ को भेदरूप स्वीकार करता है समभिरूढ नय से एवं भूतनय अल्प विषय वाला है, क्योंकि समभिरूढनय क्रिया भेद से अर्थ को भेदरूप स्वीकार करता है।

नयों के वर्णन दो प्रकार से है एक आगम भापा की अपेक्षा और एक अध्यात्म भापा की अपेक्षा। आगम भाषा की अपेक्षा भी दो भेद है द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक जिनका वर्णन ऊपर कर दिया है यहां से आध्यात्मिक की अपेक्षा वर्णन किया जाता है यद्यपि आगम भाषा का वर्णन और आध्यात्मिक भाषा का वर्णन भिन्न-भिन्न नही है केवल कथन मे अन्तर है।

णिच्छय ववहारनया मूलमभेद्या णयाण सव्वाणं।
णिच्छय साहण हेऊ दव्वय पज्जित्थया मुण्ह॥

सम्पूर्ण नयों के निश्चय नय और व्यवहारनय यह दो मूल भेद है। निश्चय का हेतु द्रव्यार्थिक नय है और साधन (व्यवहार) का हेतु पर्यायार्थिक नय है। क्योंकि निश्चयनय द्रव्य में स्थित है और व्यवहार नय पर्याय में स्थित है। श्री अमृतचन्द्र आचार्य ने भी समय सार गाथा ५६ की टीका मे—

"व्यवहारनयः किल पर्यायाश्रित्वात्" निश्चय नयस्तु द्रव्याश्रित्वात्।

व्यवहार नय पर्याय के आश्रय है और निश्चय नय द्रव्य के आश्रय है अर्थात निश्चय नय का विषय द्रव्य है और व्यवहारनय का विषय पर्याय है:

व्यवहारो य वियप्पो भेद तह पज्जओत्ति एयट्ठो गो० जी०
व्यवहारेण विकल्पेन भेदेन पर्यायेण"
—समयसार गाथा-१२

व्यवहार, विकल्प, भेद और पर्याय सब एकार्थवाची है निर्विकल्प अभेद निश्चय और द्रव्य यह एकार्थ वाची है इसलिये व्यवहारनय का दूसरा नाम पर्यायार्थिक है और निश्चय नय का दूसरा नाम द्रव्यार्थिक है। अभेद अनुपचार रूप से जो वस्तु का निर्णय करे वह निश्चय नय है। तथा भेद विकल्प सयोग रूप वा उपचार से जो वस्तु का व्यवहार करता है वह व्यवहार नय कहलाता है। आगम भाषा मे द्रव्यार्थिक नय को नैगम सग्रह और व्यवहारनय यह तीन भेद कहे है। आध्यात्म भाषा से द्रव्यार्थिक (निश्चय) नय के मूल दो भेद है-- (१) शुद्ध द्रव्यार्थिक (२) अशुद्ध द्रव्यार्थिक।

शुद्ध द्रव्यार्थिक नय के तीन भेद है.

(१) कर्म निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय—जैसे इस नय की अपेक्षा समस्त ससारी जीव सिद्धो के समान है क्योकि ससारी और मुक्त जीवो में कर्म को अपेक्षा से ही अन्तर है परम पारिणामिक भाव की अपेक्षा कोई अन्तर नही है।

कम्माणं मज्झगय जीवं जो गहइ सिद्ध संकासं।
भण्णई सो सुद्धणओ खलु कम्मोवाहि णिरवेक्खो॥

कर्मो के बीच पड़े हुये जीव को सिद्ध समान ग्रहण करने वाला नय कर्मोपाधि निरपेक्ष शुद्ध नय है।

(२) उत्पाद व्ययगौण सत्ताग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय – यह नय उत्पाद-व्यय को गौण करके केवल सत्तामात्र को ग्रहण करने वाला है। जैसे द्रव्य नित्य है।

द्रव्य का लक्षण उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य युक्त है नित्य अनित्य आत्मक है परन्तु यह नय उत्पाद-व्यय को गौण करके केवल ध्रौव्य की प्रधानता को ग्रहण करता है। अनेकात दृष्टि से इस नय का विषय यथार्थ नही है तथापि एक नित्य धर्म की अपेक्षा सत्य है।

(३) भेद कल्पना निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय—इसकी अपेक्षा गुण-गुणी पर्याय-पर्यायी में अभेद का अभिन्नत्व है। यद्यपि सज्ञा सख्या लक्षण और प्रयोजन की अपेक्षा गुण और गुणी मे द्रव्य और पर्याय में भेद है तथापि द्रव्य-क्षेत्र-काल-स्वभाव की अपेक्षा कोई भेद नही है। अनेकात दृष्टि से द्रव्य भेदाभेदात्मक है। परन्तु जो भेद को गौण कर अभेद की मुख्यता से ग्रहण करता है वह भेद कल्पना निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय है।

अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय के चार भेद है—

(१) कर्मोपाधि सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय।

(२) उत्पाद-व्यय सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय।

(३) भेद कल्पना सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय।

(४) अन्वय सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय।

(१) कर्मोपाधि सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय—

कर्मोपाधि की अपेक्षा सहित अशुद्ध जीव द्रव्य अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय का विषय है। जैसे कर्म-जनित क्रोधादि भावरूप आत्मा है। ससारी जीव अनादि काल से पोद्गलिक कर्मो से बधा हुआ है इसलिए अशुद्ध है। ससारी जीव में कर्मजनित औदयिक भाव निरन्तर होते है और वे

भाव जीव के स्वतत्त्व है। इसलिये कर्म-उपाधि अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय को अपेक्षा आत्मा क्रोधादि भाव वाला है।

(२) उत्पाद-व्यय सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय—

उत्पाद-व्यय सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय एक ही समय में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य तीनो को ग्रहण करने वाला यह नय शुद्ध द्रव्यार्थिक नय का विषय मात्र ध्रौव्य है। क्यो कि उत्पाद-व्यय पर्यार्थिक नय का विषय है। द्रव्य का लक्षण सत है और सत् का लक्षण उत्पाद-व्यय ध्रौव्य है इसलिये द्रव्य का लक्षण उत्पाद-व्यय ध्रौव्य रूप है। किन्तु उत्पाद-व्यय पर्यायार्थिक का विषय होने के कारण उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक द्रव्य को अशुद्ध द्रव्य को अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय का विषय कहा है।

(३) भेद कल्पना सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय—

यह गुण-गुणियो में द्रव्य पर्याय मे भेद ग्रहण करता है। आत्म एक अखण्ड द्रव्य है। शुद्ध निश्चय नय की अपेक्षा उसमें भेद नही है तथापि यह नय ज्ञान-दर्शन आदि गुणों को कल्पना करता है इसलिये अशुद्ध द्रव्यार्थिक है।

(४) अन्वय सापेक्ष द्रव्यार्थिक नय— ,

समस्त गुण पर्याय और स्वभाव मे द्रव्य को अन्वय रूप से ग्रहण करने वाला नय अन्वय सापेक्ष द्रव्यार्थिक नय है। जो सम्पूर्ण गुणो और पर्यायों में से प्रत्येक को द्रव्य बतलाता है वह अन्वय द्रव्यार्थिक नय है। जैसे कड़े आदि पर्यायों में तथा पीतत्व आदि गुणों में अन्वय रूप से रहने वाला स्वर्ण अथवा मनुष्य देव आदि नाना पर्यायों में यह जीव है। यह जीव है ऐसा अन्वय द्रव्यार्थिक नय का विषय है।

स्वद्रव्य ग्राहक द्रव्यार्थिक नय—

स्वद्रव्य स्वक्षेत्र स्वकाल स्वभाव की अपेक्षा द्रव्य को अस्ति रूप से ग्रहण करने वाला नय स्वद्रव्यादि ग्राहक द्रव्यार्थिक नय है। यह नय पर द्रव्यादि की विवक्षा न करके स्वद्रव्य-स्वक्षेत्र स्वक.ल और स्वभाव को अपेक्षा से द्रव्य के अस्तित्व को ग्रहण करने वाला है।

पर द्रव्य ग्राह्य द्रव्यार्थिक नय—

पर द्रव्य पर क्षेत्र-पर काल-परस्वभाव की अपेक्षा द्रव्य नास्ति है। ऐसा वर्णन करने वाला पर द्रव्य ग्राह्य द्रव्यार्थिक नय है।

परम भाव ग्राह्य द्रव्यार्थिक नय ज्ञान स्वरूप आत्मा है। ऐसा कहना परम भाव ग्राह्य द्रव्यार्थिक नय है। क्यों कि जीव के अनेक स्वभाव में से ज्ञानात्मक परम भाव ग्रहण किया गया है।

पर्यायार्थिक नय के ६ भेद—

(१) अनादि नित्य पर्यायार्थिक नय।
(२) सादि नित्य पर्यायार्थिक नयः।
(३) अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय.।
(४) नित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय।
(५) नित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय।
(६) अनित्य अशद्ध पर्यायार्थिक नय।

(१) अनादि नित्य पर्यायार्थिक नयः—

जैसे मेरु आदि पुद्गल को पर्याय नित्य है अर्थात् मेरु कुलाचल पर्वत अकृत्रिम जिनबिम्ब जिनालय आदि सब पुद्गल की पर्याय अनादि काल से है। और अनन्य काल तक रहेगी इनका कभी विनाश नही होगा इसलिये यह अनादि नित्य पर्यायार्थिक नय का विषय है।

(२) सादि नित्य पर्यायार्थिक नयः—

जैसे सिद्ध ससार अवस्था को छोडकर सिद्ध हुये इसलिये सादि है, और कभी मोक्ष अवस्था को छोडकर फिर ससार मे लौट कर नही आवेगे इसलिये यह नित्य है और दोनो मिलाकर नित्य पर्यायार्थिक नय का विषय है।

(३) अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नयः—

ध्रौव्य को गौण करके उत्पाद-व्यय को ग्रहण करने वाला नय अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय है जैसे प्रति समय मे पर्यायो का विनाश होता है।

(४) नित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नयः—

ध्रौव्य को अपेक्षा सहित द्रव्य को ग्रहण करने वाले नय को नित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय कहा है। जैसे द्रव्य एक समय मे उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक है।

(५) नित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नयः—

कर्म-उपाधि निरपेक्ष द्रव्य को ग्रहण करने वाला नय नित्य शुद्ध पर्यायार्थिक है। जैसे—अरिहन्त पर्याय सिद्ध समान है।

(६) अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नयः—

इस नय का विपय कर्म उपाधि सापेक्ष स्वभाव है। जैसे ससारी जीवो का नित्य जन्म मरण होता है।

इस नय के विषय का नाम निश्चय नय है। क्योकि निश्चय नय शुद्ध और अशुद्ध के भेद से दो प्रकार का है। अशद्ध द्रव्यार्थिक मे अशुद्ध नय और शुद्ध द्रव्यार्थिक में शुद्ध निश्चय नय गर्भित होता है।

व्यवहार नय

"भेदोपचार तथा वस्तु व्यवह्रियत इति व्यवहार" भेद और उपचार के द्वारा जो वस्तु का व्यवहार होता है वह व्यवहारनय है। व्यवहारनय का दूसरा नाम उपनय है। अर्थात् जो नयो के समीप रहे उसको उपनय कहते है। उसके तीन भेद है—सद्भूत व्यवहारनय, असद्भूत व्यवहारनय, उपचरित असद्भूत व्यवहारनय। सज्ञा संख्या लक्षण की अपेक्षा गुण गुणी मे पर्याय पर्यायी में स्वभाव स्वभावी मे कारक कारकी में भेद करने वाला सद्भूत व्यवहारनय है, जैसे—उष्ण स्वभाव है-और अग्नि स्वभावी है-इसमें भेद करना सद्भूत व्यवहारनय का काम है।

अन्यत्र प्रसिद्ध धर्म का अन्यत्र समारोप करने वाली असद्भूत व्यवहारनय है। जैसे पुद्गल आदि में जो धर्म है उसका जीवादि में समारोप करना। इसके नौ भेद है—

(१) द्रव्य में द्रव्य का उपचार
(२) पर्याय में पर्याय का उपचार
(३) गुण में गुण का उपचार
(४) द्रव्य में गुण का उपचार
(५) द्रव्य में पर्याय का उपचार
(६) गुण में द्रव्य का उपचार
(७) गुण में पर्याय का उपचार
(८) पर्याय में द्रव्य का उपचार
(९) पर्याय में गुण का उपचार

यह नौ प्रकार का उपचार असद्भूत व्यवहार नय का विषय है। जैसे— (१) पुद्गल में जीव का उपचार अर्थात् पृथ्वी आदि पुद्गल में एकेन्द्रिय जीव का उपचार। (२) दर्पण रूप पर्याय में अन्य पर्याय रूप प्रतिबिंब का उपचार। किसी के प्रतिबिंब को देखकर जिसका वह प्रतिबिंब है उसको उस प्रतिबिंब रूप बतलाना। (३) मतिज्ञान मूर्त है-यहां विजाति ज्ञानगुण में विजाति मूर्त गुण का आरोपण है। (४) जीव अजीव ज्ञेय अर्थात् ज्ञान के विषयक है। यहां जीव-अजीव द्रव्य में ज्ञान गुण का उपचार है। (५) परमाणु बहुप्रदेशी है अर्थात् परमाणु पुद्गल द्रव्य में बहुप्रदेशी पर्याय का उपचार है। (६) श्वेत प्रसाद। यहा पर श्वेत गुण में प्रसाद द्रव्य का आरोप किया गया है। (७) ज्ञान गुण के परिणमन में ज्ञान-पर्याय का ग्रहण, गुण में पर्याय का आरोपण है। (८) स्कंध को पुद्गुल द्रव्य कहना, पर्याय में द्रव्य का उपचार है। (९) इसका शरीर रूपवान है। यहाँ पर शरीर रूप पर्याय में "रूपवान" गुण का उपचार किया गया है।

मुख्य के अभाव में प्रयोजन वश या निमित्त वश जो उपचार होता है वह उपचरित असद्-भूत-व्यवहार नय है। जैसे मार्जार को सिह कहना। यहा मार्जार और सिंह में सादृश्य सम्बन्ध के बिना उपचार नही हो सकता। जैसे चूहे आदि में सिंह का उपचार नही किया जा सकता। वह सम्बन्ध अनेक प्रकार का है। जैसे अविनाभाव सम्बन्ध, सश्लेष सम्बन्ध, परिणाम-परिणामी सम्बन्ध. श्रद्धा-श्रद्धेय सम्बन्ध ज्ञान-ज्ञेय सम्बन्ध, चारित्र-चर्या सम्बन्ध इत्यादि। ये सब उप-चरित असदभूत व्यवहार नय के विषय है। "तत्वार्थ का श्रद्धान सम्यग्दर्शन है" यह उपचरित असद्भूत-व्यवहार नय का विषय है। क्योकि यहा पर श्रद्धा-श्रद्धेय सम्बन्ध पाया जाता है। "सर्वज्ञ" यह भी उपचरित असद्भूत-व्यवहारनय का विषय है, ज्ञेय ज्ञायक सम्बन्ध पाया जाता है। सर्व जो ज्ञेय उनका ज्ञायक सर्वज्ञ होता है।

इन नयो के द्वारा वस्तु का स्वरूप जाना जाता है। क्योकि जिनेन्द्र भगवान की तीर्थ प्रव-र्त्तना दो नय के आधीन है। एक नय से कार्य को सिद्धो नही होती है।

अमृत चन्द्राचार्य ने कहा है:—

व्यवहार निश्चययौ वा प्रबुद्ध तत्वेन भवति मध्यस्थः।
प्राप्नोति देशनायाः स एव फलम विकलं शिष्यः॥

जो शिष्य व्यवहार और निश्चय के द्वारा तत्व को जान कर माध्यस्थ होता है वही शिष्य देशना का निर्दोष फल प्राप्त करता है।

यदि तू जिन मत में प्रवेश करना चाहता है तो निश्चय व्यवहार दोनो को ही मत छोड। यदि व्यवहार को छोडता है तो तीर्थ का नाश करता है और निश्चय छोड़ता है तो तीर्थ फल का नाश करता है। क्योकि जीवो का अनादि अज्ञान मुख्य कथन और उपचार कथन नय के द्वारा ही दूर हो सकता है।

मुख्य कथन निश्चय नय के आश्रित है—क्योकि निश्चय नय स्वाश्रित है अर्थात् द्रव्य के अस्तित्व मे जो भाव रहते है उस द्रव्य मे उन्ही भावो का स्थापन करना, अणुमात्र भी अन्य को की कल्पना नही करना स्वाश्रित है—इसको ही मुख्य कथन कहते है। इस नय के ज्ञान से शरीरादि परद्रव्य में एकत्व श्रद्धानुरूप अज्ञान भावना का अभाव होकर भेद विज्ञान उत्पन्न होता है तथा समस्त पर द्रव्यो से भिन्न अपने शुद्ध चैतन्य स्वरूप का अनुभव होता है।

पराश्रित कथन को व्यवहार कहते है। इस नय का विषय है किंचित मात्र कारण पाकर अन्य द्रव्य के भावो का अन्य द्रव्य में आरोपित करना। अर्थात् यह नयसयोगी और आगन्तुक भावो का वर्णन करता है। इसलिये यह नय पराश्रित है। पराश्रित कथन को गौण या उपचार कहते है। इस नय के जानने से शरीर आदि के साथ सम्बन्ध रूप ससार दशा का ज्ञान होता है, तथा संसार का ज्ञान होने से संसार का कारण आस्रव बंध का त्याग कर मुक्ति के कारण सवर और निर्जरा में प्रवृति करता है। अज्ञानी जन इसको जाने बिना ही शुद्धोपयोगी होना चाहता है अतः वह व्यवहार को छोड देता है और पापाचरण में पड़कर नरकादि में दु.ख उठाता है। इसलिये व्यवहार नय के कथन को जानना भी परमावश्यक है। सिद्धान्त मे तथा अध्यात्म में प्रवेश करने के लिये नय ज्ञान बहुत आवश्यक है क्योकि दोनों नय दो आँखे है और दोनो आखो से देखने पर ही सर्वावलोकन होता है। एक आख के देखने से देश का ही अवलोकन होता है जो नय दृष्टि से विहीन है उन्हे वस्तु के स्वरूप का अवबोध नही होता और वस्तु के यथार्थ स्वरूप जाने बिना सम्यग्दर्शन कैसे हो सकता है इसलिये व्यवहार और निश्चय दोनो को जानना चाहिये। जितना अपने विषय को जानने के लिये निश्चय नय उपयोगी है उतना ही व्यवहार नय अपने विषय को जानने के लिये उपयोगी है। अपने-अपने विषय में दोनों ही समान है एक भी हीनाधिक नही है, जो एक-एक नय के विषय को लेकर विवाद करते है अथवा एक को असत्य वा हेय बताकर अवहेलना करते है वह मिथ्या दृष्टि है। वस्तु के स्वरूप से अनभिज्ञ है। यदि एक नय के आश्रित ही वस्तु का स्वरूप होता तो आचार्यो ने दोनों नयों का विषय क्यों कहा है इसलिये सविकल्प अवस्था में दोनों ही उपयोगी है और निर्विकल्प अवस्था में दोनों ही हेय है ऐसा जान कर एकान्तवाद के हठ को छोड़कर ऐसा स्याद्वाद को ग्रहण करना चाहिये।



अनेकान्त

—श्री धर्मालंकार पं० हेमचन्द्र जी जैन शास्त्री एम. ए. अजमेर—

परमागमस्य जीवं निषिद्ध जात्यन्ध सिन्धुरभिधानम् ।
सकल नय विलसितानां, विरोधमथनं नमाम्यनेकान्तम् ॥

—'अमृत चन्द्राचार्य'

विश्ववंद्य महावीर के सुप्रसिद्ध तीन सिद्धान्तों का नामकरण वर्णमाला के प्रारम्भ अक्षर अकार से होता है—

१- अहिंसा २- अनेकान्त ३- अपरिग्रह

ये तीनों ही सिद्धान्त अपनी महत्ता के लिये विश्व में प्रसिद्ध है। और इनकी उपयोगिता मानव जीवन मे अपरिहार्य है। तीनों का मूल उद्देश्य विश्वैक्य, विचार सामञ्जस्य, और सुख सम्प्राप्ति है। अहिंसा जहां सम्पूर्ण चराचर में एकता का सद्भाव पैदा करती है, वहां अनेकान्त समस्त विचारो में सद्भावनात्मक सामञ्जस्य का सृजन करता है। जीवन के प्रत्येक क्षण में अपरिग्रह भाव ही सुख और शान्ति का जनक है। सम्पूर्ण जीवों के प्रति अहिंसात्मक-भाव, सर्वजन विचार सहिष्णुता एवं संग्रहवृत्ति के अभाव से केवल व्यक्तिगत जीवन ही परिपूर्ण नही होता किन्तु समष्टिगत जीवन की पूर्ति की भी यही प्रमुख आधार शिलाएं है।

भारत एक विचारणा शील देश है। यहां की प्राकृतिक रमणीय स्थली में प्राणिमात्र अपने अपने योग्य भोग्य सामग्री सरलता से प्राप्त कर लेता था। राजा और प्रजा के मधुर सम्बन्ध थे। राजा प्रजा का पुत्रवत् पालन करता था और उसकी कर्त्तव्य निष्ठा उसके प्रजाजन की खुशियाली पर ही आंकी जाती थी। प्रकृति उन्हे भरपूर देती थी और वे सन्तोष वृत्ति से प्रकृति का दोहन कर अपनी सीमित अभिलाषाएं तृप्त कर लेते थे। विचारक दल प्रकृति की गोद में पर्वतगुफा, वन प्रदेश, नदी के कुल, आश्रम आदि शान्त वातावरण युक्त स्थलो में इसी प्रकृति के विभिन्न रूपों का चिन्तन करता था। इन चिन्तको के विभिन्न विचार ही दर्शनों की उत्पत्ति की पृष्ठभूमि थे। जिस जिस तत्व वेत्ता ने जिस जिस दृष्टि से वस्तु को जिस २ रूप में देखा, उनके विचारो का एकीकरण ही भिन्न २ दर्शनों की उत्पत्ति का कारण बना। और परम्परा सिद्ध यही विचारधाराएं मतों का रूप ले बठी। षट दर्शनों में यही अपेक्षाकृत दृष्टि आज भी अनेक ग्रन्थो में भरी उपलब्ध होती है।

दृष्टिभेद नयों का जनक होता है। एक दृष्टि अनेक गुणों का अथवा दृष्टिकोणो का किसी भी मूल्य पर कथन करने की सामर्थ्य नही रखती अतः यह आवश्यक हो जाता है कि विचारक वस्तु के गुणों को क्रमशः जानने या कथन करने का प्रयत्न करे। यदि वह सभी गुणों को एक साथ कहने का प्रक्रम करेगा तो यह उसका कार्य वचन की अशक्तता के कारण कभी भी पार नही पड़ सकता है। उसे अपनी वचन धारा क्रम से ही प्रयुक्त करनी होगी। इस वचन

को क्रमिक धारा का नाम ही नय है। जैन दर्शन का अकाट्य सूत्र है जिसमें वक्ता के अभिप्राय: दृष्टिभेद को ही नय कहा गया है, 'ज्ञातुरामे प्रायोनय ।' अथवा "वस्त्वेक देश सग्राही नय:" यह सूत्र भी इसी अभिप्राय को प्रकट करता है। वस्तु के एक अ श का कथन करने पर अनेक अ श वक्तव्य से अवशिष्ट रह जाते है, उनके न कहने पर वस्तु स्वरूप का पूरा विवेचन नही हो पाता है।

जैनाचार्यो ने अनेकान्त युक्त वस्तु की पूर्ण परीक्षा प्रमाण और नय दोनो के ही आधीन मानी है। "अनेकान्त प्रमाण नय साधन" ऐसी आचार्य समन्त भद्र की उक्ति है इनमें 'सकलादेश: प्रमाणाधीन: विकलादेश. नयाधीन: वस्तु स्वरूप को सम्पूर्ण दृष्टि या रूप से विचार करना प्रमाण के अधीन है और विकला देश (एक दृष्टि) नय के अधीन है। उदाहरणार्थ 'रसोई' शब्द से वाच्य एक ऐसा स्थान है जहा भोजन की अनेक सामग्री तैयार की जाती है। व्यवहार में रसोई का अर्थ मकान विशेष से होता है। परन्तु जब एक व्यक्ति अतिथि को निवेदन करता है कि पधारिये 'रसोई' तैयार है भोजन कीजिये। तब अतिथि प्रमाण रूप में विश्वस्त होता है कि उसे भोजन सामग्री का उपभोगकर उदर पूर्ति करना है। न कि रसोई (मकान) का। किन्तु रसोई स्वय अनेक भोजन सामग्री का संग्रह स्थान है। वहा की एक एक वस्तु अलग २ होते हुए भी स्वय का निजी अस्तित्व रखती है। और वह रसोई शब्द में गर्भित हो जाती है। यह अलग २ दृष्टि नय का रूप लेती है। रसोई सभी सामग्री का जिस प्रकार सग्रह है। उसी प्रकार प्रमाण भी अनेक नयो का सग्रह है। दोनो परस्पर सापेक्ष है, अतएव आचार्यो ने स्पष्ट कर दिया है कि—

'निरपेक्षा नया मिथ्या सापेक्षा वस्तु सार्थकृत् ।' अर्थात निरपेक्ष नय मिथ्या है और वे ही सापेक्ष होकर वस्तु स्वरूप की सिद्धि करने वाले होते है। फल यह हुआ :कि अनेक नयों से सापेक्ष कथन की गई वस्तु प्ररूपणा ही प्रमाण सिद्धि कही जा सकती है एक नयाधीन नही। इसमें यह भी पुष्ट होता है कि न तो प्रमाण ही वस्तु स्वरूप का स्वतन्त्र साधक है और न केवल नय। दोनो का समन्वय ही सत्य निर्णय हो सकता है।

'अर्पितानर्पितसिद्धे:' इस सूत्र द्वारा नय व्यवस्था को भली प्रकार हृदयगम किया जा सकता है। एक दृष्टि अर्पित (मुख्य) और दूसरी दृष्टि अनर्पित (गौण) से वस्तु तत्व को सिद्धि होती है। जिसे प्रधानता देनी है उस पर प्रधानता का दृष्टि कोण होना चाहिये। उस समय वही प्रमुख है परन्तु इसका यह अर्थ कदापि नही होना चाहिए कि दूसरी गौण दृष्टि है ही नहीं वह अवश्य है किन्तु उसका कथन गौण है। जिस प्रकार आमका फल अनेक गुणों से युक्त स्वाद है। आम के भक्षण करने वाले से पूछा गया कि यह कैसा है? (क्योकि खाने वाले की दृष्टि केवल उस आम के स्वाद पर ही है) वह उत्तर देता है कि आममीठा है। उसे उसके रग आकार, वजन आदि से कोई प्रयोजन नही है। प्रश्नकर्ता और उत्तर प्राप्त कर्त्ता दोनो ही सतुष्ट है। परन्तु क्या यह पूर्णत: सही है। विचारक सोचता है कि आम का पूर्ण रूप तो सामने आया ही नही। अभी अनेक विशेषताएं अव्यक्त बनी हुई है। तभी वह उन पर दृष्टि डालता है और सन्देह में पड़कर कहता है कि मेरे वचन की सामर्थ्य आम के सभी गुणो और रूपो को एक साथ

कहने की नही है। वस्तु का पूर्ण स्वरूप एक साथ वक्तव्य नही हो सकता। उसे तो क्रमश. ही जाना जा सकता है। क्रमशः जानने पर भी वह उतना ही वक्तव्य वना रहेगा जितना उसे जानने की इच्छा वलवती होगी।

निर्णय यह हुआ कि किसी वस्तु के अनेक गुणों या धर्मों को जानने की प्रक्रिया ही अनेकान्त है। वस्तु स्वयं अनेक-अन्त (धर्म) युक्त है और उसका प्ररूपण करने वाले वचन भी अनेक। इसलिए जैन आचार्यों की यह उक्ति पूर्णतः खरी उतरती है कि जाव दिया ताव दिया चेव होत्तिणया।

नय वाद के अनेक प्रयोग करने पर भी जव तक उन्हे परस्पर सापेक्ष नही किया जाता है तव तक वस्तु सिद्धि अधूरी है, अपूर्ण है, एकांगी है, वह प्रमाणित नही है।

उक्त अनेकान्तात्मक वस्तु स्वरूप की कथन शैली का नाम ही स्याद्वाद है। दर्शन के क्षेत्र में अनेकवाद सदा से ही प्रचलित हैं। परमात्मवाद, जडवाद, नित्यवाद, क्षणिकवाद, कर्मवाद, भौतिकवाद, अध्यात्मवाद आदि के ऊपर भारतीय धार्मिकों ने (दार्शनिकों) अनेकानेक महान तात्विक ग्रंथो का प्रणयन किया है जिसमें खण्डन मण्डनात्मक शैली की प्रमुखता है। परन्तु वस्तु स्वरूप का सर्वांगीण निर्दोष कथन करने वाला स्याद्वाद ही है जिसमें विरोधी धर्मों और दृष्टियों को भी समादर दिया गया है। इसी प्रणाली में दृष्टि भेदाश्रित सप्तभंगी का कथन है। जव किसी वस्तु के कथन को विधि रूप कथन करने का लक्ष्य है तो स्वरूप चतुष्टय से उसे 'अस्ति' कहा जाता है। और उसी को निषेध रूप कथन करने का लक्ष्य है तो पर-चतुष्टय से नास्ति' कहा जायगा। इस प्रकार अस्ति और नास्ति दो भाग हुए। स्यात (कथचित्) शब्द अन्य विरोधी दृष्टियो को समादर देता रहता है। इसी प्रकार जब विधि ओर निषेध दोनों को युगवत् कथन करने का उद्देश्य रहा तो वचना सामर्थ्य के कारण वह अवक्तव्य हो गया ये तीसरा स्वतन्त्र भग हुआ। १ स्यादस्ति २ स्यान्नास्ति ३ स्यादवक्तव्य इन मुख्य अगो को क्रमशः एवं युगपत् प्रयोग करने से ४ स्यादस्ति नास्ति ५ स्यादस्यवक्तव्य ६ स्यान्नास्त्यवक्तव्य ७ स्यादस्ति नास्त्यवक्तव्य भगो की सृष्टि होती है। यह सप्तभंगी नय प्रणाली नय सप्तभंगी और प्रमाण सप्तभंगी के कथन से भी प्रयोग में लाई जा सकती है।

उक्त सप्तभंगी जैन दर्शन का प्राण है। इसी के कारण से ही नित्यानित्य, एकानेक, भेदाभेद, स्वभाव-विभाव, अस्तिनास्ति अनेक गुणो का सामंजस्य न्याय एव सिद्धान्त ग्रन्थो में पाया जाता है जो जैनधर्म की गरिमा का ही परिचायक नही है परन्तु विचार सामञ्जस्य एवं समन्वय का मूल कारण है। जैन दर्शन में परस्पर विरोधी अनेक धर्म एकानेक धर्मात्मक वस्तु में सदा प्राप्त हो सकते है। इसमें दुराग्रह को कोई स्थान नही है। अत' जिज्ञासुओ को अनेकान्त प्ररूपणा में सहिष्णुता और सामञ्जस्य को प्रमुखता देना चाहिये, नही तो एकान्तवाद का दुराग्रह ज्यों का त्यों वना रहेगा। जो वस्तु स्वरूप विचारणा में महान वाधक है।

दुराग्रह का मूल कारण प्रायः स्वमत व्यामोह हुआ करता है। सहिष्णुता विचार-वैमनस्य को दूर करती है। व्यवहार में स्पष्ट देखा जाता है कि एकांगी दृष्टिकोण वाले अपनी ही वात

बात करते चले जाते है। दूसरो के विचारो का उनके यहाँ कोई मूल्य नही है। परिणामतः विरोध का जन्म होता है। उदाहरणार्थ तीन वयस्क छात्राये भिन्न-भिन्न स्कूलो मे पढती थी। एक कान्वैन्ट में जो अपनी जन्मदात्री को मदर या मम्मी कहती थी। दूसरी हिन्दी स्कूल में थी जो अपनी प्रसविनी को माता जी कहती थी किन्तु तीसरी गरीब थी जो अपनी मा को अम्मा कहा करती थी सयोगवश ये तीनों एक मेले मे सपरिवार आयी और आपस मे पूछने लगी कि उनको मा आई है या नही। तीनों ने मना कर दिया कि उनकी मा नही आई है। कारण तीनों ने अपने-अपने शब्दो को समझ रखा था। उनके ध्यान मे मम्मी माता जी नही हो सकती थी और माता जी अम्मा नही हो सकती थी। विवाद बढ गया और किसी एक तीसरी महिला ने, जो तीनो ही शब्दो को एकार्थवाची जानती थी, उनके विवाद को दूर किया। इस तरह भाषा भेद, अभिप्राय भेद, देश-काल भेद नाना प्रकार के विवाद और दुराग्रहो को जन्म देते है। ये विवाद दर्शन के क्षेत्र मे ही नही राष्ट्र, जाति समाज और व्यक्ति के रूप में सदा से पनप रहे है।

अनेकान्त दृष्टि न होने के कारण एक छोटे से परिवार की जो दुर्दशा हुई वह निम्न उदाहरण से स्पष्ट हो जाती है। एक सद् गृहस्थ का छोटा सा सुखी परिवार था, जिसमे विधवा माता, उसका बडा पुत्र, पुत्रवधू, छोटा भाई तथा एक छोटा पोता था। छोटा भाई तथा पुत्र दोनो समवयस्क थे। रात्रि में दूध पिलाने का कार्य वृद्धा मा किया करती थी। एक दिन वह बीमार हो गई और उसने अपनी पुत्रवधू को दूध देने के लिये कहा और सो गई। वहू ने देवर और अपने बेटे को बरावर दूध देकर सुला दिया। प्रातः वृद्धा ने अपने बच्चे से पूछा बेटा भावी ने तुझे कितना दूध दिया था। बेटा बोला मुझे भावी ने आधा गिलास दूध पिलाया था। मा के मन में पाप जागा उसने पोते को बुलाया और पूछा। क्यो मुन्नू तुम्हे तेरी मा ने कितना दूध पिलाया बच्चा बोला मुझे मेरी मा ने आधा भरा गिलास दूध पिलाया था। यह बच्चे का उत्तर सुनकर वृद्धा जल गई और घर मे वह कलह हुई कि सबका खाना पीना हराम हो गया। रसोई बन्द पडी रही। बडे भाई ने आकर जब यह सन्नाटा देखा तो वह भी समझ न पाया कि क्या वस्तु-स्थिति है। वृद्धा मा अपनी वहू को खरी खोटी सुनाती ही जा रही थी। अन्त मे रहस्य का उद्घाटन हुआ कि मा के मन की कलुषता ने आधे भरे और आधे खाली गिलास का अनर्थ कर डाला। तथ्य यह था कि दोनो ही गिलास में दूध बराबर था। मन के विकार या अभिप्राय विशेष के कारण विरोध व अशान्ति उत्पन्न होती है। विचारक यदि विचार समन्वय का ध्यान रखे तो उसे निश्चित ही दैनिक जीवन में सुख और शांति मिल सकती है। जीवन के प्रत्येक क्षण में सापेक्षवाद, समन्वयवाद, दृष्टिभेद को व्यक्ति कार्य में लेते रहे तो विरोध का शमन अनिवार्य हो हो जाता है। स्याद्वाद सिद्धान्त द्वारा साधारण विचार विरोध ही नही विश्व में सुख और शान्ति का अखण्ड साम्राज्य स्थापित किया जा सकता है। स्वामी समन्त भद्र घोषणा करते है—

अनवद्यः स्याद्वादः ॥



निमित्त उपादान मीमांसा

(श्री विद्या वाचस्पति पं वर्द्धमान पा० शास्त्री सोलापुर)

कुछ लोग निमित्त को कार्यकारी नही मानते है, उनकी दृष्टि में उपादान ही करण है। निमित्ति कार्य मे कारण नही बनता है। इस सम्बन्ध में जैनागम का क्या दृष्टिकोण हे ? और जैन आचार्यो का क्या मत है ? इसका विवेचन इस लेख में करने का हमने विचार किया है।

सबसे पहिले उपादान और निमित्त कारणो को व्याख्या क्या है उसे समझने का प्रयत्न करे।

उपादान कारण—

जो कारण कार्य रूप में परिणत होता है उसे उपादान कारण कहते है। कार्य रूप में परिणत होने के बाद कारण का काम कारण के रूप में खतम हो जाता है। वह कार्य रूप में बन जाता है।

उदाहरण के लिए हम यहां पर लोक-प्रसिद्ध दृष्टान्त लेते है। मिट्टी का घड़ा बनाने के लिये मिट्टी की जरूरत है। मिट्टी घड़े का उपादान कारण है। मिट्टी घडे के रूप में परिणत हो जाती है। घड़ा बनने के बाद मिट्टी का कारणत्व क्या करेगा, वह घड़े के कार्य रूप में परिणत हुआ, अतः वह मिट्टी उपादान कारण कहलाती है।

निमित्ति कारण—

उपादान में बलाधान करने के लिये जो सहकारी के रूप में कार्य करता है वह निमित्ति कारण है। इस घड़े के कार्य में कुम्हार, चक्र, दड, पानी आदि निमित्त कारण है, क्योंकि इन कारणो ने उस उपादान में उपादानत्व जागृत होने के लिये बलाधान व्यक्त किया, अगर कुम्हार उस मिट्टी को उठाके नही लाता, उसमें पानी नही मिलाता, चाक में उसे नही रखता, दण्ड से उसे नही फिराता तो तीन काल में भी वह घड़ा नही बनता, अर्थात् उपादान रूपी मिट्टी पडी रहती तो भी घड़ा नही बनता. उसमें घड़ा बनने की योग्यता उस निमित्तो के बिना नही हो पाती।

सो दोनों कारण अपनी-अपनी जगह महत्वपूर्ण है। किसी एक के बिना कार्य नहीं हो सकता है।

न्याय शास्त्रों में कहा गया है कि कार्य करने की शक्ति किसी एक कारण में नही है, अनेक समर्थ कारणो के मिलने पर ही कार्य होता है। इसलिए केवल उपादान कारण ही कार्य करने के लिए समर्थ है यह कहना उपयुक्त नहीं है।

इस विषय का स्पष्ट समर्थन आचार्य समत भद्र ने किया है—

बाह्येतरो पाधि समग्रतेमं, कार्येषु ते द्रव्य गतः स्वभावः।
नैवान्यथा मोक्ष विविश्च पुंसां, तेनाभिवंद्यस्त्वमृषिर्बुधानाम् ।।

बाह्य कारण (निमित्त) व अभ्यतर कारण (उपादान) इन दोनों की पूर्णता होने पर ही कार्य की उत्पत्ति होती है। जिस प्रकार मिट्टी का घडा अपने को तैयार करना है। उसमे मिट्टी उपादान कारण है। क्योकि उसमे घडे के रूप में परिणत होने की योग्यता है। इसी प्रकार बहिरग कारण कुभार चक्र, दड, पानी बगैरह है। इन दोनो की पूर्णता होने पर ही घडा बनने रूपी कार्य होता है। फिर उस कार्य में बिलब नही लगता है। हे भगवन् ! यह दोनों ही कारण द्रव्य का ही स्वभाव है, ऐसा आपने कहा है। इन दोनो कारणो की पूर्णता से ही कार्य होता है। यहा पर दूसरा उदाहरण लीजिये —

जिस प्रकार बोरे में रखे हुए उडद में पकने की शक्ति है। परन्तु जब तक आग, पानी लकडा आदि बहिरग कारण नही मिलते है। तब तक वह शक्ति व्यक्त नही हो सकती है।

एक विशेष जाति के मूग में पकने की शक्ति भी नही है बाह्य सर्व सामग्री मिलने पर भी उसमें पकने की शक्ति नही है। सो वह पक नही सकेगा।

दोनो कारणो में समर्थता होने पर ही कार्य की उत्पत्ति होती है। अत केवल उपादान से या निमित्त से कार्य नही होता है, दोनो कारणो के मिलने पर ही कार्य होता है।

आचार्य ने यहा पर दोनो कारणो को द्रव्यगत स्वभाव वतलाया है। इसलिये एक ही कारण पर्याप्त है, दूसरा कारण अकिचित्कर है इस कथन का भी कोई अर्थ नही है। इस विषय को ग्रन्थकार ने और भी स्पष्ट किया है। इस प्रकार बाह्य और अभ्यतर, निमित्ति और उपादान दोनो को कार्य मे कारण नही मानोगे तो मोक्ष का भी अभाव हो जायेगा। क्योकि मोक्ष भी बाह्य और अभ्यतर कारणो का लकर ही होता है।

मोक्ष में अभ्यतर कारण, मोक्ष प्राप्ति की योग्यता है। और बाह्य कारण दीक्षा लेना, तपश्चर्या करना, महाव्रत धारण करना, रत्नत्रय की पूर्णता करना, ध्यान की सिद्धि करना आदि है, इन दोनो कारणो को पूर्ति में ही मोक्ष रूपी कार्य होता है। अगर दीक्षा लेना बगैरे निमित्त कारणो के बिना ही मुक्ति होना माना जाय तो आगम विरोध होगा। इसलिए दोनों कारणो की पूर्ति मे ही मोक्ष की सिद्धि होगी। इन दोनो कारणो की पूर्ति एव सामर्थ्य भव्य में ही प्रगट होती है। अन्यथा अभव्य को भी मुक्ति प्राप्त हो जाती।

दूसरी बात तद्भव मोक्षगामी निश्चित रूप से मोक्ष को जाने वालो के लिए दीक्षा लेना, ध्यान, चारित्र आदि की आवश्यकता नही पडती, वे तो अपनी योग्यता से मोक्ष जाने वाले ही है। फिर वे दीक्षा आदि क्यो लेवे। इससे मालुम होता है कि कार्य करने मे उपादान में जैसे योग्यता है उसी प्रकार निमित्त कारण में भी उसमें सहकार्य करने को शक्ति है। परन्तु तीर्थकर आदिको को भी मुक्त, होने की योग्यता होने पर भी बाह्य कारणो -- दीक्षा, तपश्चर्या आदि निमित्तो को मिलाना पडता है। उसके बिना त्रिकाल मे भी मोक्ष रूपी कार्य होना सभव नही है।

इससे विषय बहुत स्पष्ट हो जाता है, आचार्य पूज्यपाद ने सर्वार्थसिद्धि में "तन्निसर्गा दधिगमाद्वा" इस सूत्र की व्याख्या करते हुए लिखा है कि— "उभयत्र सम्यग्दर्शने अतरगो हेतु

स्तुल्यो दर्शन मोहस्यो पशमः क्षयः, क्षयोपशमो वा । तस्मिन्सति यत् बाह्योपदेशाद्दते प्रादुर्भवति तन्नैसर्गिकम्, यत्परोपदेशपूर्वक जीवा अधिगम निमित्त स्यात् तदुत्तरम्"

निसर्गज सम्यग्दर्शन और अधिगमज सम्यग्दर्शन दोनो में अन्तरग कारण (उपादान कारण) दर्शन मोहनीय कर्म का क्षयोपशम, क्षय, अथवा उपशम है । उसके होने पर बाह्य उपदेशादि के अभाव में जो होता है वह नैसर्गिक सम्यग्दर्शन है, जो परोपदेश पूर्वक जीवादि अधिगम निमित्त को पाकर होता है वह अधिगमज है । अर्थात् दोनो कारणो को लेकर सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है ।

पूज्यपाद ने अनेक स्थानों पर सम्यग्दर्शन के बाह्य व अभ्यंतर कारणो का विवेचन किया है ।

सम्यग्दर्शन के साधन का विवेचन निर्देश स्वामित्वादि सूत्र मे किया है । साधन का अर्थ उत्पत्ति निमित्त है ।

वे लिखते है कि "साधन द्विविधम्, आभ्यतर बाह्य च आभ्यतरम् दर्शनमोहस्योपशमः क्षयः क्षयोपशमो वा, बाह्य नारकाणाँ प्राक् चतुर्थ्या सम्यग्दर्शनस्य साधन केषाचिज्जातिस्मरण, केषाचिद्धर्मश्रवण, केषाचिद्वेदनामिभवः, चतुर्थीमारभ्य आसप्तम्या नारकाणा जातिस्मरणं, वेदना मिभवश्च तिरश्चां केषाचिज्जातिस्मरण, केषा चिद्धर्मश्रवण केषांचित जिनबिम्ब दर्शनम् मनुष्याणामपि तथैव, देवानां, केषाचित्जातिस्मरण, केषाचिद्धर्मश्रवणम् केषाचित् जिनमहिमा दर्शनं, केषांचित् देवर्द्धि दर्शनम् एवं प्रागानतात् आनत प्राणता रणाच्युत देवाना देवर्द्धि दर्शन मुक्त्वा अन्यत् त्रितयमप्यस्ति नव ग्रैवेयक वासिनां केषाचिज्जातिस्मरण केषाचित् धर्म श्रवणम्, अनुदिशानुत्तर विमान वासिना मिद कल्पना न सभवति, प्रागेव गृहीत सम्यक्त्वानां तमोत्पत्तेः"

साधन दो प्रकार के है, एक आभ्यतर, दूसरा बाह्य । दर्शन मोहनीयका उपशम, क्षय, अथवा क्षमोपशम आभ्यंतर कारण है । बाह्य कारणो में नारकियों को चौथे नरक से पहिले पहिले बाह्य कारण किसी को जाति स्मरण है, किसी को धर्म श्रवण है किसी को वेदना की तीव्रता है । चौथे नरक से आगे सातवे नरक तक किसी को जाति स्मरण व किसी को वेदना की तीव्रता है । तिर्यञ्चों में वाह्य कारण किसो को जाति स्मरण, किसी को धर्म श्रवण वा किसी को जिन बिंबका दर्शन होना है । मनुष्यो को भी बाह्य साधन इसी प्रकार है । देवों में किसी को जाति स्मरण, किसी को धर्म श्रवण, किसो को जिन महिमा दर्शन और किसी को देवों के ऋद्धतिशय को देखना है । इस प्रकार आनत स्वर्ग से पहिले है । आनत प्राणतआरण अच्युत स्वर्ग में देवऋद्यतिशय को छोड़कर अन्य बाह्य कारण पाये जाते है । नव ग्रैवेयक वासियो में किसी को जाति स्मरण और किसी को धर्म श्रवण बाह्य कारण है । अनुदिश अनुत्तर विमान वासियों में यह बाह्य अभ्यतर कारणों की कल्पना नही हो सकती है क्याकि पहिले से सम्यक्त्व को प्राप्त करके ही वहा पर उत्पन्न होते है ।

इससे और भी विषय स्पष्ट हो जाता है कि सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति के लिये ही उपादान

व निमित्त कारणो की आवश्यकता पड़ती है, उन दोनो कारणो के बिना कार्य नही होता है। इस विषय का समर्थन आचार्य कुद कुद ने भी अपने ग्रन्थ में किया है—

सम्मत्तस्स णिमित्तं जिणसुत्तं तस्सजाणमा पुरिसा।
अंतर हेवो भडिया दंसण मोहस्स खय पहुदी ॥
—नियमसार

सम्यक्त्व उत्पन्न होने के लिए बाह्य (निमित्त) कारण दो है। एक तो जिनवाणी का स्वाध्याय और जिनागम के ज्ञाता उपदेशक आचार्य आदि। सम्यक्त्व उत्पत्ति का अतरगकारण दर्शन मोहनीय कर्म का क्षय, उपशम या क्षयोपशम है।

इस प्रतिपादन मे आचार्य कुद कुद देव ने निमित्त पद को देकर निमित्त कारण को स्वीकार किया है।

एक ही उपादान कारणत्व नही

यहा पर यह भी समझने की आवश्यकता है कि एक पदार्थ में एक ही उपादान शक्ति या गुण नही है। उसमे निमित्त को पाकर विभिन्न रूप से परिणमन करने की शक्ति है। अगर यह नही माना जाय तो पदार्थों में अनत धर्मो का अस्तित्व स्वीकार नही किया जा सकता है। अनत धर्म द्रव्य मे अगर न हो तो अनेकात की सिद्धि नही हो सकती है।

आत्मा का स्वभाव ज्ञान दर्शनमय है, वह किसी भी अवस्था मे ज्ञान दर्शन का परित्याग नही करता है। तथापि आयु कर्म की निमित्तता पाकर वह कभी नारकी बनता है और कभी तिर्यंच बन जाता है। और कभी देव व मनुष्य, यदि आयु कर्म की निमित्तता स्वीकार नही की जाये तो उस जीव में अन्यान्य पर्याय नही बन सकती है।

एक ही पदार्थ अगर पडा रहा तो गल, सडकर चला जाता है। उसे पानी में डाल रखें तो ताजा हो जाता है। अगर उसे इतर रूप रग दिया जाय तो खुलकर दिखता है। एक ही द्रव्य का उपयोग अनेक रूप से कर सकते है। इसमें निमित्त ही कारण है। इस निमित्त को नही मानने का क्या कारण है? उसका एकमात्र कारण यह है कि निमित्त मे कार्यकारिता या सहकारिता स्वीकार करने पर उपादान को पूर्ण शक्तिमान् सिद्ध करने मे आपत्ति आती है। एक द्रव्य अन्य द्रव्य के ऊपर असर नही करता है इस सिद्धान्त में भी बाधा आती है। परन्तु प्रत्यक्ष में देखा जाता है कि एक द्रव्य अन्य द्रव्य पर असर करता है।

जीव जीव का उपकार करता ही है, पुद्गल भी जीव का उपकार करता है। हर एक द्रव्य का हर एक द्रव्य के साथ उपकार सभव होता है। उस प्रकृति को इनकार नही करना चाहिए।

दूसरी बात केवली ने अपने ज्ञान से देखा उस प्रकार होता ही रहेगा, निश्चित रूप से होगा, फिर निमित्त कारण को मान कर अन्यथा रूप में परिणत होने की प्रक्रिया को क्यो माना जाय? इस भय के मारे निमित्त कारण को ही उडाने की बात सोचना उचित नही है।

केवली भले ही अपने ज्ञान से जीव के या द्रव्य के भवितव्य को देखें, परन्तु वस्तुत्व का परिणमन उपादान व निमित्त से हो जाय तो उसमें कोई हानि नही है। केवली ने उस परिणमन को उसी प्रकार देखा है। उन्होने उपादान को भी देखा है, निमित्त को भी देखा है। इसमे आपत्ति क्या है?

निमित्त निमित्त का कार्य करता है। उपादान उपादान का कार्य करता है ऐसा मानने में क्या हानि है? निमित्त उपादान का कार्य करता है ऐसा कोई नही मानते हैं। अथवा उपादान निमित्त का कार्य करता है ऐसा भी कोई नही मानते है। ऐसी स्थिति में अपनी अपनी जगह दोनो को महत्व दिया जाय तो क्या हानि हो सकती है?

निमित्त यदि अकिंचित्कर है। कार्य करने में उसका कोई भाग नही है तो उसकी उपस्थिति क्यो चाहिये, उपादान में कार्य प्रवण की योग्यता के समय वह निमित क्यों उपस्थित होता है? इन प्रश्नो का उत्तर हमारे निमित्त विरोधी बन्धु नही दे सकते हैं।

आचार्य परम्परा के विरुद्ध सिद्धान्त का प्रचार क्यों किया जाय? स्वकपोल कल्पना के लिये जैनागम परम्परा में कोई स्थान नही है। इतना हीं नही वह अनुष्ठान भी पाप मय है।

दर्पण पर धूल जमा हुआ है दर्पण अन्दर से स्वच्छ है। अर्थात् उसका उपादान उसके साथ ही है। तथापि धूल जमने के निमित्त से अपने उपादान को प्रकट नही कर सकता है।

धूल को पोंछने पर वह दर्पण स्वच्छ होकर मुख को दिखा सकता है। उस दर्पण में उपादान के होने पर भी निमित्त के कारण से उपादान की शक्ति जागृत नही हो रही थी, और प्रतिबंधक निमित्त के हटने पर एव कार्यकारी निमित्त के प्रकट होने पर उपादान ने कार्य किया। यह स्पष्टतः हमें दिखता है।

पेट्रोल समाप्त होने पर गाड़ी नहीं रुकी

पेट्रोल मोटर के चलने में सहायक है। गाड़ी चलने मे वह निमित्त है। पेट्रोल के समाप्त होने पर भी गाड़ी अपने आप रुकती है। चलने रूप उसको क्रिया नही हो सकती है। परन्तु इसे घुमाकर फिराकर यह कहना कि पेट्रोल समाप्त होने पर गाड़ी नही रुकी, गाड़ी को रुकना था इसलिए पेट्रोल समाप्त हो गया, इस शब्द की कसरत में क्या अर्थ है।

लोक प्रसिद्ध बात तो यही है कि निमित्त के अभाव में नैमित्तक द्रव्य अपने कार्य को नही करता है।

जो लोग निमित्त को स्वीकार न करते हुये या निमित्त को स्वीकार करते हुए भी उसके कार्य को स्वीकार नही करते है वे लोगों को पुरुषार्थ हीन बनाते है। जब भी जिस देश में जिस काल में जो कुछ भी भवितव्य होगा,हागा ही, उसके लिये प्रयत्न करने को क्या आवश्यकता है? मानव उसके लिये जो प्रयत्न करता है, अपने कार्य की सिद्ध के लिए निमित्तो को मिलाये रहता है, वह भूल करता है। सब कुछ उपादान से ही होवेगा। ऐसी मान्यता दैववादी की हो सकती है। पुरुषार्थवादी इसे स्वीकार नही कर सकता है।

यहा पर मरीचि कुमार का उदाहरण दिया जाता है, मरीचिकुमार को महावीर भगवान् ही होना था, सो यथा समय होना था, परन्तु इस बात का विचार नही करते है कि मोक्ष कार्य के लिए जो निमित्त चाहिए थे वह मरीचि या अन्य भवो में नही मिल सके। फिर उपादान में जागृति कैसे होती ? सिंह के भव में उपादान की जागृति के लिए निमित्त मिले, उन निमित्तो से उस जीव ने अपना कल्याण किया। सिंह की पर्याय मे हरिण के ऊपर आक्रमण करने को जाना, और उस समय अजितजय व अमितजय मुनियो का आगमन, उनका उपदेश यह सब उस जीव के उपादान की जागति के लिए निमित्ति है, उन निमित्तो के मिलने पर उस जीव का उद्धार हुआ, नही तो इससे पहिले क्यो नही हुआ ? इससे ज्ञात होता है कि निमित्तो के मिलने पर ही उपादान की शक्ति जागृत होती है।

आत्मा को किसने रोक रखा है ?

आत्मा शुद्ध है, बुद्ध है, निष्कलक है, ज्ञानस्वरूप है, ऐसी स्थिति में उसकी मुक्ति क्यों नही होती है ? उसे किसने यहा पर रोक रखा है !

यदि एक द्रव्य का असर अन्य द्रव्यो के ऊपर नही होता हो तो, निमित्त कुछ भी बनाता बिगाडता न हो तो, उसे मुक्ति जाने मे क्या आपत्ति है, उसे न कोई रोक सकता है, और न किसी दूसरे द्रव्य से वह रोका ही जा सकता है।

परन्तु कहा जाता है कि कर्मो ने इस आत्मा को ससार में रोक रक्खा है। कर्मो के निमित्त से आत्मा बधन से बद्ध हो जाता है। ज्ञानावरणादि आठ कर्मो के निमित्त से आत्मा को कर्मो का आस्रव और आस्रव के बाद बन्ध उदय व सत्वकी व्यवस्था होती है। इसे गोम्मटसार मे नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ति ने कहा है। इसी प्रकार मोक्ष मार्ग प्रकाशक में श्री प० टोडरमल जी ने इसका विवेचन करते हुये लिखा है कि—

"कर्म और आत्मा का प्रवाह रूप से अनादि सम्बन्ध है। परन्तु नवीन कर्म सयोग होने व पुराने कर्म के वियोग होने की अपेक्षा कर्म और आत्मा का सादि सम्बन्ध है। जहा तक मुक्ति न हो वहा तक तेजस शरीर और कार्मण शरीर का सम्बन्ध साथ-साथ रहता है। तेजस शरीर बिजली का शरीर है, वह कर्मण शरीर के कार्य मे अवश्य सहायक रहता है। निरर्थक नही होता है। तैजस शरीर मे भी नवीन तैजस वर्गणाये आकर मिलती है। पुरानी झड़ती जाती है। जगत मे अनेक प्रकार के पुद्गल स्कध परमाणुओ के मिलने से बनते रहते है। उन्ही को वर्गणा कहते है। उन्ही वर्गणाओ में से एक कर्म वर्गणा है। इन कर्म वर्गणाओं को आत्मा के साथ सयोग कराने में व सयोग को बनाये रखने में कारण योग और कषाय है।"

इन पक्तियो से विषय कितना स्पष्ट होता है ? तैजस स्वतन्त्र शरीर है, कार्मण स्वतन्त्र शरीर है, कार्मण शरीर के कार्य में वह तैजस शरीर सहायक क्योकर होता है ? तैजस वर्गणाओं से तैजस शरीर बनता है और कार्मण वर्गणाओ से कार्मण शरीर बनता है। फिर एकमेक में सहायता कैसी ?

इसी प्रकार औदारिक, वैक्रियक व आहारक शरीर के निर्माण में विघटन मे कर्म

निमित्तता है या नही ? यदि है तो निमित्त को स्वीकार करने मे क्या आपत्ति है ? यदि नही है तो सिद्धान्त विरुद्ध कथन कैसे मान्य होगा ?'

प्रकृति आदि बंधो का लक्षण करते हुए आचार्य स्पष्टतः कहते है —

पयडि ठिठदि अणुभाग ,प्पदेस चउ विहो बंधो।
जोगा वपडिपदेसा ठिदि अणुभागा कसाय दो होंति ॥

बंध चार प्रकार के होते है। प्रकृति बध, स्थिति बंध, अनुभाग बघ और प्रदेश बंघ। मन वचन काय रूपी योग के निमित्त से प्रकृति और प्रदेश बंघ होता है। स्थिति और अनुभाग कषाय के निमित्त से होते है।

आत्म प्रदेश का परिस्पदंन योग के लिए निमित्त है। योग प्रकृति स्थिति के लिए निमित्त है। यदि मन वचन काय रूपी योग न हो तो आस्रव ही नही हो सकता है। प्रकृति और प्रदेश बध न हो तो स्थिति और अनुभाग बघ किन कर्म परमाणुओ का होगा ? जरा सूक्ष्म दृष्टि से विचार कीजिये।

आत्म प्रदेशो का परिस्पदन का नाम ही योग है। इसमें काय योग कारण पड़ता है। वचन योग कारण पडता है, और मनोयोग भी निमित्त पड़ता है।

उस निमित्त के भी निमित्त है। काय की उत्पत्ति में अतरग निमित्त तो वीर्यांतराय कर्म का क्षयोपशम है। परन्तु बाह्य निमित्त औदारिकादि सप्त विधि काय वर्गणाओ में किसी एक काय के भी निमिरा से आत्म प्रदेशो में परिस्पदन जो होता है वह-काय योग है।

इसी प्रकार वचन के लिए अंतरंग निमित्त शरीर नाम कर्म के उदय के निमित्त से होने वाली वाग् वर्गणा है। वीर्यांतराय मत्यक्षरा आवरण होने पर बाह्य से वाक् प्रवृति में परिणत आत्मा का प्रदेश परिस्पद वाक् योग है। इसी प्रकार मनो योग में अभ्यतर निमित्त वीर्यांतराय नो इन्द्रियावरण कर्म का क्षयोपशम एव बाह्य निमित्त मनोवर्गणा के संचय से विचार परिणत आत्म प्रदेश का परिस्पंदन मनोयोग है।

अर्थात् इन तीनो योगो में बाह्य और अंतरंग निमित्त का उल्लेख आचार्यों ने किया है।

जब योग के द्वारा प्रकृति प्रदेश का बंध होता है तब उन कर्म प्रकृतियों की स्थिति बंध जाती है, वह कर्म प्रकृति आत्मा के साथ कितने काल तक रहने वाली है इसका निर्णय हो जाता है। दीर्घ काल तक रहने वाली है या अल्प काल तक रहने वाली है ? इसका निर्णय कि निमित्तक होगा ?

आचार्य ने वही उत्तर दिया है, स्थिति व अनुभाग बंध कषाय से होते है। इसमें कषाय निमित्त है।

कषाय की अधिक तीव्रता से अधिक स्थिति पडती है, कषाय की मदता से स्थिति न्यून प्रमाण मे पड़ती है। इसी प्रकार कषायो की तीव्रता से अनुभाग बध मे पाप रूप रस भाग अधिक पडता है, कषायो की मदता से अनुभाग बध मे पाप रूप रस भाग की न्यूनता होती है। पुण्य रूप रस भाग की अधिकता होती है। इसमे भी कषायो की निमित्तता है।

बाह्य निमित्ति एक ही प्रकार के कार्यो का निर्माण नही करते है। निमित्ति जिस प्रकार के भी मिलते है उसी प्रकार का कार्य भी हुआ करता है।

आस्रव में जीवाधिकरण भी कारण है, अजीवाधिकरण भी कारण है। जीवाधिकरण से होने वाले आस्रव मे अधिक तीव्रता हो सकती है। अजीवाधिकरण से होने वाले आस्रव में मदता हो सकती है। किसी मनुष्य का प्रत्यक्ष वध करने में एवं उसके फोटो के वध करने में बडा अन्तर है। हाथी को साक्षात् मारने में एव हाथी के चित्र को मारने में अन्तर हो सकता है। परिणामों में भी अन्तर हो सकता है। कषायों की तीव्र मदता में अन्तर हो सकता है।

किसी सुन्दरी स्त्री को प्रत्यक्ष देखने में जो सम्मोहन व आकर्षण हो सकता है, उतना आकर्षण किसी सुन्दर चित्र को देख कर नही हो सकता है, क्योकि मोह के निमित्त में अन्तर है। जैसे-जैसे निमित्त मिलते है उसी प्रकार के परिणाम होते है। परिणामों के सक्लेश व विशुद्धि मे भी बाह्य निमित्ति कारण पडते है, सो निमित्ति की उपेक्षा एकदम कैसे की जा सकती है ?

इसलिए इसे स्वीकार करना चाहिये कि आत्मा कर्म के निमित्त से यहा पर रुका हुआ है, उपादान उसका कितना ही प्रवल क्यो न हो, परन्तु निमित्त कर्म उससे भी अधिक बलवान है। उसे भूलकर हमे नही जाना चाहिए।

ज्ञानावरणादि कर्मो के निमित्त से अज्ञान, अदर्शन, अचारित्र, असयम, विविध रूप, निंदित कुल, श्रेष्ठ कुल, जाति, उच्च गोत्र, नीच गोत्र, कार्य में सुकरता एव कार्य में दुष्करता आदि अनेक प्रकार की बाते होती है। यह सब कार्य के निमित्त से ही होते है। कर्म बलवान है।

परमात्म प्रकाश में योगिंदु देव ने कहा है कि—

कम्मइं दिढ-घण-चिक्कणइं गरुवइं वज्जसमाइं।
णाणवियक्खणु जीवडउ उप्पहिंपाडहिं ताइं॥

यह ज्ञानावरणादि कर्म बहुत बलवान् है। जिनका नाश करना दुःसाध्य है। वे कर्म चिकने है, भारी है, एव वज्र के समान कठिन है। बुद्धिमान् जीव को भी अधः पतन के गर्त में वे डालते है।

कम्माइं बलियाइं, बलियो कम्मादु णत्थि कोइ जगे।
सव्वे बलाइ कम्मं मलेदि हत्तीव णलिणिवणम्॥

—मूलाराधना

जगत में सबसे बलवान् कर्म ही है। उससे बढकर कोई बलवान् नही है। जैसे हाथी कमल वन को मर्दित करता है उसी प्रकार कर्म सर्व प्रकार की शक्ति को मर्दित करता है।

इसमें भी कर्म के उदय को बलवान् समझकर उसकी निमित्तता स्वीकार की गई है। कर्म के बिना आत्मा को रोकने वाला इस ससार में कौन है ?

कोई कोई मिथ्यात्व के कारण रुका हुआ है ऐसा कहते है। परन्तु वह मिथ्यात्व क्या है ? इसका भी विचार करने पर निमित्त को स्वीकार करना ही पड़ता है।

निमित्त कुछ नही करता है यह कहते हुए भी सारे ससार का निमित्त कर्म ही है इसे स्वीकार करना पड़ता है। कर्म के निमित्त से ही देव नारको, मनुष्य, तिर्यंच पर्याय की प्राप्ति होती है। इसमें गति और आयु कर्म ही निमित्त है।

आचार्य कुंदकुंद कहते हैं कि—

कम्मेण विणा उदयं जीवस्स ण बिज्जदे उवसमं वा।
खइयं सवोव समियं तम्हा भावं हि कम्म कयम् ॥

कर्मों के विना इस जीव के उदय, उपशम, क्षय एव क्षयोपशम आदि नही होते है। इस लिये जीव भाव कर्म कृत है। अर्थात् कर्म के निमित्त से होते है।

आचार्य कुन्दकुन्द ने भाव प्राभृत में स्पष्ट किया है कि—

जिणवर चरणांबुरुहं णमंति जे परम भत्ति रायेण।
ते जम्म वेठ्ठि मूलं खणंति वरभाव सत्तेण ॥१५१॥

जो परम भक्ति रूपी राग से जिनेद्र के चरण कमलों को नमस्कार करते है वे (उस निमित्त से) उत्तम भाव रूपी शस्त्र से जन्म रूपी लता को मूल से उखाड़ देते है। यहां पर ससार को नाश करने वाली जिनेद्र भक्ति कही गई है।

यदि अन्य निमित्त जिनेद्र भक्ति, समवसरण, दिव्य ध्वनि आदि हमारा कुछ भी उपकार नही करते है तो उनकी निमित्तता को स्वीकार क्यो करना चाहिये?

पात्र दान, संयम, तपाराधना वगैरे से क्या प्रयोजन है ? महर्षि कुदकुद ने श्रावक व मुनियों के कर्तव्य को विभक्त किया है—

दाणं पूजा मुक्खं सावय धम्मे ण सावया तेण विणा।
झाणाज्झयणं मुक्खं जइ धम्मे तं विणा तहा सोवि ॥
— रयणसार

श्रावक धर्म में दान पूजा मुख्य है। श्रावक धर्म को पवित्र बनाने के लिए इनकी आवश्यकता है। अगर ये कर्तव्य न हो तो वह श्रावक नही कहलाता है। ध्यान व अध्ययन यति धर्म में मुख्य है। यति धर्म को सुसस्कृत करने के लिए ध्यान व अध्ययन कारण है। उसके बिना वह यति नही बन सकता है।

इस कर्तव्य निर्देश का भी यही अर्थ है कि वह गृहस्थ या त्यागी इन कार्यो के निमित्त से ही अपने-अपने पद मे सफलता प्राप्त करता है।

मुक्त जीव भी निमित्त से शून्य नहीं है।

जब कर्मो को सर्वथा क्षय करके मुक्ति को यह जीव जाता है तब वह ऊर्ध्वगमन का स्वभाव होने पर भी लोकाग्र भाग तक ही जाता है। वहा से आगे नही जाता है। इसका कारण आचार्य उमा स्वामी ने यह बताया कि "धर्मास्तिकायाभावात्" क्योकि उसमे आगे गतिपरिणत जीव पुद्गलो को गमन करने मे सहकारी (निमित्त) धर्म द्रव्य नही है। अत वह मुक्त जीव आगे गमन नही करता है।

प्रश्न—वह तो मुक्त जीव परमात्मा बन गया, सर्व शक्तिमान् है, उसे धर्म द्रव्य क्यों कर रोक सकता है ?

उत्तर—सर्व शक्तिमान् का यह अर्थ नही है कि वह वस्तुस्वरूप को ही बदल देवे, उस हालत में वह जीव अजीव हो सकना है, अजीव जीव हो सकता है, वह आग को ठण्डी कर सकेगा, पानी का स्वभाव गरम हो जायगा। यह सर्व शक्तिमान् का अर्थ नही है। द्रव्य के स्वभाव व शक्ति को अपने-अपने स्थान मे स्वीकार करना ही चाहिए। अत धर्मास्तिकाय के अभाव मे वह जीव आगे गमन नही करता है, यह निश्चित है।

तीर्थंकर, केवली श्रुत केवली के पादमूल मे कुछ समय रहने पर ही क्षायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति क्यो होती है ? क्योकि उपादान तो उस जीव मे पहिले से ही विद्यमान है। वह निमित्त है।

मुक्ति प्राप्त करने के लिए उत्तम सहनन व उत्तम सस्थान की आवश्यकता क्यो है ? उत्तम कुल मे (क्षत्रियो मे) तीर्थंकर क्यो पैदा होते है ? मुक्ति के साधक सयम को त्रिवर्णोत्थ गृहस्थ ही क्यो धारण करते है ? विरक्ति होने के बाद बाह्य वस्तुओ का त्याग क्यो करना चाहिए ? दिगम्बर अवस्था को धारण करना क्यो आवश्यक है ? परिणामो मे निर्मम वृत्ति को धारण करना पर्याप्त है। परन्तु दिगम्बर रूप को धारण किये बिना किसी भी अवस्था मे मुक्ति नही हो सकती है। ऐसे एक नही. अनेक प्रमाणो को उपस्थित कर सकते है जिनके बिना वह कार्य होही नही सकता है। इससे कार्य की उत्पत्ति मे उपादान जिस प्रकार आवश्यक है निमित्त भी उसमें सहकारिता के लिए आवश्यक है।

मोक्ष के लिए यह जीव नाना प्रकार का पुरुषार्थ करता है। सवेग की भावना, निर्वेद का प्रयोग, वस्त्र त्याग, विधि पूर्वक दीक्षा ग्रहण, महाव्रतो का पालन, समितियो का धारण, इन्द्रियो का निरोध, षडावश्यक क्रियाओ का अनुष्ठान, एक भुक्ति, भक्तिपाठ, अचेलक्य, केशलोच आदि क्रियाओ को क्यो पालन करना चाहिये ? यदि इनसे हमारी भलाई व बुराई का कोई सम्बन्ध नही है तो इनके आचरण की क्या आवश्यकता है ? मालूम होता है आत्मा के भवितव्य का सम्बन्ध इन सदाचरणो से है, ये सदाचरण आत्मोद्धार में निमित्त पडते है। इससे आत्म विशुद्धि होती है।

इसलिए आचार्य विद्यानदि ने अष्ट सहस्री में स्पष्टतः कहा है कि "मोक्षस्यापि परम पुण्यातिशय-चारित्र विशेषात्मक पौरुषाभ्यामेव सभवात्" मोक्षकार्य भी परम पुण्य अतिशय रूप चारित्र विशेष के कारण ही सिद्ध होता है। वह पौरुष ही उसके लिए निमित्त है। पुण्यातिशय आदि सर्व सर्वथा कर्म रूप है तो वह मोक्षकार्य मे कारण क्यो माना गया है। उपादान न होने पर भी वह निमित्त या सहकारी कारण अवश्य है।

कुछ लोग कहते है कि अन्य द्रव्य अन्य द्रव्य के परिणमन में निमित्त वन नही सकता है। परन्तु आचार्य उमा स्वामी ने एक द्रव्य दूसरे द्रव्य पर क्या उपकार करता है, इसका विवेचन तत्वार्थ सूत्र के ५ वे अध्याय में किया है। जव आचार्य स्वयं मानते है कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य पर उपकार करता है, अपकार करता है तो आपको स्वकपोल कल्पना का क्या अर्थ है।

मद्य के द्वारा मूर्छा आती है। काटा चुभने से वेदना होती है, कर्मो के द्वारा संसार परिभ्रमण होता है, यह जव हम प्रत्यक्ष में देखते है तो उसका निषेध क्यों किया जाता है।

शायद यह इसलिए कहा जा रहा है कि सर्व पदार्थो की परिणति नियत देश, नियत काल में अपने आप होती है, उसमें कर्म कुछ ही परिवर्तन नही करता है।

यह कहना सत्य नहीं है। पदार्थों की परिणति नियत भी होती है, अनियत भी होती है। कोई निमित्त कारण के उपस्थित होने पर कर्म के उदय में भी अनियत व्यवस्था आती है। इसे सिद्धान्त को जानने वालो ने स्वीकार किया है। तप से निर्जरा होती है, वह निर्जरा सविपाक भी होती है, अविपाक की होती है, इसका विचार करे।

अकाल मरण क्यों ?

आयुत्रभाग में भुज्यमान आयु को यह जीव वाधता है तो वीच में ही आयु खतम होने का कोई कारण नहीं है, उसे नियत पूर्ण आयु को भोग कर ही जीवन समाप्त करना चाहिए, परन्तु लोक मे अकाल मरण भी देखा जाता है।

उदाहरण के लिए किसी जीव ने ८० वर्ष की आयु का बध किया, वीच में किसी सभा से लौटते समय ३० वर्ष की अवस्था में उसका मोटर से एक्सीडेन्ट हुआ। मरण हुआ, अर्थात् यह अकाल मरण है, सकाल मरण नही है। सकाल मरण तो आयु की स्थिति पूर्ण होने पर ही हो सकता था। बीच मे ही आकस्मिक कारण से हुआ, इसलिये इसे अकाल मरण कहते हैं, यह सभव होता है।

किसी ने घड़ी को चावी दी, उस चाबी के निमित्त से वह २४ घण्टे तक वह घडी निर्धास्त होकर चलेगी, परन्तु स्प्रिग में बिगाड़ हो जाय तो वह घडी बीच में कुछ घण्टो में ही बद भी हो सकती है। उस बिगाड़ के निमित्त से उसका बीच में बंद होना सभव हो सका।

दूसरा उदाहरण लीजिए:—एक घडा पानी किसी को देकर यह कहा कि २४ घटे के लिए यह पानी आपके सर्व कार्यो के लिये पर्याप्त है। बीच में ही इधर उधर जाते हुए वह घड़ा लुढ़क गया तो एक दम पानी समाप्त हो सकता है या नही ? विचार करे।

अजी ! वह तो अकाल मरण ही नही, सकाल मरण है। क्योकि केवली ने उसे उसी प्रकार देखा है। केवली उसे किस प्रकार देखते है यह यहा प्रश्न नही है, उसकी परिभाषा केवली के दर्शन से नही हो सकती है। वह यथार्थ में सकाल मरण है या अकाल मरण है। इसका निर्णय होना चाहिये।

आयु कर्म के बध में ही निश्चित हो जाता है कि एक एक समय मे आयु का एक एक निषेक उदय में आवेगा और खिरेगा, यदि वह ८० वर्ष तक समयावच्छेद रूप से खिरता रहेगा जो वह जीव उस पर्याय में पूर्णायुष्य को प्राप्त कर पर्याय का परिवर्तन करेगा। यदि बीच में ही कोई दुरुपयोग हो गया, आकस्मिक घटना घटी तो बीच मे ही उसका मरण होता है, उसे अकाल मरण कहते है।

इस अकाल मरण को स्वीकार न करने वालो से आचार्यों ने प्रश्न किया है कि यदि अकाल मे मरण होता ही न हो तो विपभक्षण, वेदना की तीव्रता, रक्तक्षय, गिरिपात, समुद्रपात आदि से तुम डरते क्यो हो ? टायफाईड की बीमारी होने पर डाक्टरो के घर क्यो ढूढते हो ? यदि आयुष्य होगा तो मरेगा ही नही, आयु वही समाप्त होने का योग हो तो मरेगा ही, फिर प्रयत्न की क्या आवश्यकता है ? देखा जाता है कि अकाल मरण से बचाया जा सकता है, सकाल मरण से बचाने का कोई उपाय नही है।

इसलिए औषधि आदि का उपयोग (निमित्त) अकाल मरण को दूर करने मे सहकारी सिद्ध होता है, अतः निमित्त का मानना आवश्यक है।

इसे नही मानेंगे तो द्रव्य क्षेत्र काल भाव का क्या अर्थ होगा ? कार्यकारण भाव कैसे सिद्ध होगा ? यदि केवल उपादान कारण या द्रव्य की योग्यता से कार्य होता हो तो इतर अनेक कारण जो लोक में पडे है जिनके होने से कार्य होता है, जिनके न होने से कार्य नही होता है, उनका क्या होगा ?

आचार्यों ने निमित्त कारण को सर्वत्र स्वीकार किया है। कही कही उपादान का नाम ही निमित्त कहा है। हरिवंश पुराण मे आचार्य जिनसेन कहते है कि—

निमित्तमांतरं तत्र योग्यता वस्तुनि स्थिता।
बहिर्निश्चय कालस्तु निश्चित स्तत्व दर्शिभिः ॥

द्रव्य की योग्यता अभ्यतर निमित्त है। बाह्य निमित्त काल द्रव्य है। इस प्रकार तत्त्व दर्शियो ने निश्चय किया है। अर्थात् बाह्य व अभ्यतर निमित्त की आवश्यकता है, यह स्वीकार किया गया है। इसलिए जीव को हर प्रकार से अपने परिणामो के बनाने बिगाड़ने वाले कर्मों की निमित्तता को स्वीकार करना ही चाहिए।

आचार्य कुंदकुंद समयसार की गाथा ८० में कहते है—

जीव परिणाम हेदुं कम्मत्तं पुग्गला परिणमंति।
पुग्गल कम्म णिमित्तं तहेव जीवो विपरिणमदि ॥८०॥

जीव के परिणामो को कारण बनाकर पुद्गल कर्मत्व को प्राप्त करते है। पुद्गल कर्मों को निमित्त बनाकर जोव भी उसी प्रकार परिणमन करता है।

इस गाथा में आचार्य ने ससारी जीव के परिणाम को उन पुद्गल परमाणुओ को कर्म रूप में परिणमन करने के लिए कारण बताया है। इसी प्रकार उन पुद्गल कर्मो के निमित्त को पाकर जीव भी अपना परिणमन उस रूप में करता है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य के परिणमन में किस प्रकार कारण होता है इसे स्वयं कुदकुद देव ने स्वीकार किया है।

आस्रव तत्व को जिस प्रकार कुदकुद ने स्वीकार किया है, उसी प्रकार अन्य आचार्यो ने प्रतिपादन किया है। इसमें कोई मतभेद नही है, ऐसी स्थिति में इसमें निमित्त नैमित्तिक भाव को नही मानना, निमित्त को अकिंचत्कर मानना यह एक स्वतंत्र मत को प्रचलित करने का प्रयास है, अनेक मिथ्यामतो के समान यह भी व्यर्थ माना जावेगा।

आस्रव व बंध तत्व की न्यूनाधिकता की व्यवस्था में भी अतरग व बहिरंग कारण माने गये है।

आचार्य समंतभद्र इस सबध मे कहते है कि—

दोषावरणयोर्हानिः निश्शेषा स्यातिशायनात्।
क्वचिद्यथा स्वहेतुभ्यो बहिरन्तर्मलक्षयः॥

किसी जीव में दोष व आचरण का अभाव पाया जाता है। उसमें विशुद्धि या हानि पाई जाती है। गुण स्थानों के क्रम से भावो में जो विशुद्धि पाई जाती है। उन सब का कारण बाह्य व अभ्यतर दोष का नाश है। प्रत्येक कार्य में बाह्य व अभ्यतर कारण होते है।

स्वामी समतभद्र के इसी अभिप्राय का आचार्य अकलक एवं महर्षि विद्यानन्दि ने अपने ग्रंथों में समर्थन किया है। ऐसी स्थिति में इस कथन मे आचार्य परपरा के आशय का भी ध्यान रखना चाहिये।

आचार्य पूज्यपाद सर्वार्थसिद्धि में उपयोग का लक्षण करते हुए कहते है कि उभय निमित्त वशादुत्पद्यमानश्चैतन्यानु विधायी परिणाम उपयोग., बाह्य व अभ्यतर निमित्त के कारण से उत्पन्न होने वाले चैतन्य अनुविधायी परिणाम का नाम उपयोग है।

आचार्य अकलंक देव ने राजवार्तिक में इसी को समर्थन करते हुये कहा है कि—

बाह्याभ्यंतर हेतु द्वय सन्निधाने यथा सभवम् उपलब्ध चैतन्यानु विधायी परिणाम उपयोगः, अर्थात् बाह्य व अभ्यतर दोनो हेतुवो के प्राप्त होने पर यथासभव आत्म परिणाम का नाम उपयोग है। इसी प्रकार क्रिया का लक्षण करते हुये आचार्य अकलक ने निरूपण किया है।

"उभय निमित्ता पेक्ष पर्याय विशेषो द्रव्यस्य देशांतर प्राप्ति हेतु क्रिया"। अंतरंग बहिरंग के निमित्त की अपेक्षा रखकर द्रव्य के देशातर प्राप्ति में कारण विशेष या पर्याय विशेष क्रिया कहलाती है।

इसलिए एक नही, दो नही, हजारो स्थानो में इस प्रकार का उल्लेख मिलेगा कि उपादान के साथ निमित्त भी काम करता है। निमित्त उपादान को कार्य करने में कारण स्वीकार न करे तो जैन सिद्धान्त का ही अन्त हो जायेगा, मोक्ष को प्राप्ति भी जीव को नही हो सकेगी। पचास्तिकाय की गाथा नम्बर ८५ की टीका मे स्पष्ट कहा गया है—

> "रागादि दोष रहितः शुद्धात्मानुभूतिसहितो निश्चय धर्मो यद्यपि सिद्धगतेरूपादानं कारणं भव्यानां भवति तथापि निदान रहित परिणाम उपार्जित तीर्थंकर प्रकृत्युत्तम संहननादि विशिष्ट पुण्य रूप कर्मापि सहकारिकारणं भवति।"

यद्यपि भव्यो को रागादि दोष रहित शुद्धात्मा के अनुभव से युक्त निश्चय धर्म सिद्ध गति के लिए उपादान कारण है, फिर भी निदान रहित निर्मल परिणाम, तीर्थंकर प्रकृति, उत्तम संहनन, विशिष्ट पुण्य आदि सहकारी कारण होते हैं।

इससे विषय बहुत स्पष्ट हो जाता है। अपने कार्य की सिद्धि के लिए उपादान व निमित्त (उपादान में सहकारी) दोनो कारणों को मानना आवश्यक है, यह वस्तु स्थिति है।

वस्तु स्थिति को कोई बलात्कार से नही भी माने तो वह द्रव्य अपने स्वभाव के अनुसार अन्तःबाह्य कारणो से कार्य करेगा ही। अग्नि को कोई गरम माने या न माने वह आग तो स्पर्श करने पर जलायेगी ही, उसे कोई शक्ति रोक नही सकती है।





शास्त्र का लक्षण

जो जीवों का हितकारी हो, जिसका हो न कभी खण्डन।
जो न प्रमाणो से विरुद्ध हो, करता होय कुपथ खण्डन॥
वस्तु रूप को भली-भाँति से, बतलाता हो जो शुचितर।
कहा आप्त का शास्त्र वही है, शास्त्र वही है सुन्दरतर॥

तपस्वी या गुरु का लक्षण

विषय छोड़ कर निरारम्भ हो, नही परिग्रह रक्खे पास।
ज्ञान, ध्यान, तप में रत होकर, सब प्रकार की छोडे आस॥
ऐसे ज्ञान, ध्यान, तप भूषित, होते जो साँचे मुनिवर।
वही सुगुरु हैं, वही सुगुरु है, वही सुगुरु है उज्ज्वलतर॥

।। जैन–सिद्धान्त ।।

(जीव और कषाय सम्वन्धी संक्षिप्त प्रश्नोत्तर)

(१) जीव द्रव्य किसे कहते है ?	जिसमें चेतना गुण पाया जाये उसको जीव द्रव्य कहते है।
(२) एक जीव कितना वड़ा है ?	एक जीव प्रदेश की अपेक्षा लोकाकाश के बराबर है, परन्तु संकोच विस्तार के कारण अपने शरीर के प्रमाण है।
(३) लोकाकाश के वरावर कौन सा जीव है ?	मोक्ष जाने से पहिले समुद्घात करने वाला जीव लोकाकाश के बराबर है। मूल शरीर को छोड़े विना जीव के प्रदेशों के बाहर निकलने को समुद्घात कहते हैं।
(४) जीव के अनुजीवी गुण कौन से हैं ?	चेतना, सम्यक्त्व, चारित्र, सुख, वीर्य, भव्यत्व, अभव्यत्व, जोवत्व, वैभाविक, कर्तृत्व, भोक्तृत्व वगैरह अनंत गुण है।
(५) जीव के प्रति जीवी गुण कौन से है ?	अव्यावाध, अवगाह, अगुरु लघु, सूक्ष्मत्व, नास्तित्व इत्यादि।
(६) जीव के कितने भेद है ?	दो है–संसारी और मुक्त। कर्म सहित जीव को संसारी जीव कहते है। कर्म रहित जीव को मुक्त जीव कहते हैं।
(७) कषाय किसे कहते है ?	क्रोध, मान, माया, लोभ रूप आत्मा के विभाव परिणामों को कषाय कहते हैं।
(८) कषाय के कितने भेद है ?	सोलह। अनंतानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ। अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ। प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ। संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ।
(९) नो कषाय के कितने भेद है ?	नव-हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसक वेद।

—o—

श्री

चन्द्र सागर स्मृति ग्रंथ

तृतीय खण्ड

नित्य पाठ संग्रह

॥ श्री ॥



जैन नित्य पाठ संग्रह

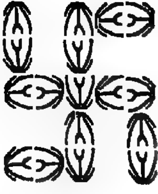


श्री महावीर जिनेन्द्राय नमः

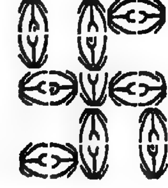
हुण्डावसर्पिणि काले-पंचमेः ॥ वीर संवत् २४५२ फाल्गुन शुक्ले २ रविवासरे प्रातः काले ६॥। कलाके पूर्व भाद्रपद नक्षत्रे लेखन प्रारम्भ करिष्याम् ।

श्री श्री १०८ दिगम्बर जैन चतुसंघाधिपति कुन्दकुन्दाचार्य मूल संघ सरस्वतीगच्छ बलात्कारगण आचार्य रत्न श्री शान्तिसागर महाराज तत्पदसेवी शिष्य "ऐल्लक चन्द्रसागर," लिखितः स्वपठणार्थं गुरूउपदेशे ।

ओं नमः सिद्धेभ्यः। ओं नमः सिद्धेभ्यः॥ ओं नमः सिद्धेभ्यः॥।



॥ मंगलाचरण ॥



ओंकारं बिंदु संयुक्तं नित्यं ध्यायंति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव ओंकाराय नमो नमः॥१॥

अविरलशब्दघनौघ प्रक्षालित सकल भूतलकलंका।
मुनिभिरुपासिततीर्था सरस्वती हरतुनो दुरितं॥२॥

अज्ञान - तिमिरांधानां ज्ञानांजन - शलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवेनमः॥३॥

परमगुरवे नमः, परंपराचार्य गुरवे नमः। सकल कलुषविध्वंसकं श्रेयसः परिवर्द्धकं धर्मसंबंधकं भव्यजीव प्रतिबोध कारकमिदं शास्त्रं श्री पुण्य प्रकाशकं पापप्रणाशनं.............नामधेयं। अस्य मूलग्रंथ कर्त्तारः श्री सर्वज्ञदेवास्तत्प्रयुत्तर ग्रंथकर्त्तारः श्रीगणधरदेवाः प्रतिगणधर देवास्तेषाँ वचोऽनुसारतामासाद्य श्रीमदाचार्य.............एन विरचितं। श्रोतारः सावधानतया श्रृण्वंतु।

मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुंदकुंदाद्यो जैन धर्मोऽस्तु मंगलम्॥

❀ तृतीय खण्ड ❀

विषय-सूची



तृतीय खण्ड

भूल सुधार

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध प्रिन्ट	शुद्ध शब्द
६	१८	पुण्याञ्जलि	पुष्पाञ्जलि
१०	१६	मष्टमोदराप्रब	मष्टमीघराग्रवं
१०	१८	भिद्ध	मिद्ध
११	२४	क्षावनाय	खंडनाय
१२	१	श्रुत बांढि	श्रुत वाद्धि
१४	२	मोल्या	मोक्त्या
१५	१७	वस्त्रे	वस्त्रे
१५	२१	सर्वांगभूषल	सर्वांगभूषित
१७	२४	मत्तवप्तितृबने	मत्तवत्पिन्हवने
१८	१	करवहे	करवहै
१८	२५	वद्यं	वेद्यं
२२	१५	प्रशमसोयुषे	प्रशमसीयुषे
२२	२१	ज्ञायिका	क्षायिका
२२	२६	संतोय	सतोप
२३	४	परमेष्टिने	परमेष्ठिने
२४	१४	परमेष्टी	परमेष्ठी
२६	१५	ब्रह्मनिष्ठः	ब्रह्मनिष्ठः
२८	३	महोदका	महोदको
३६	२	नत्रं	नत्रं:
३६	११	विभुतचिन्त्य	विभुमचिन्त्य
३६	१९	उच्चर	उच्चैर
३७	१४	भवित	भवति
३८	१२	पद्मं	पद्मं
३९	९	तास्को	तार को
४०	२०	भवता	भवतो
४१	१८	तभ्भुवन	तद्भुवन
४३	६	शालितांह	क्षालितांह
४४	१७	अगाद्य	अगाध
५४	अंतिम	शास्त्रे	शास्त्रैः
५५	,,	भद्रमुत्तय	भद्रमुक्तये
५६	४	निर्यक्षु	तिर्यक्षु
६०	११	यावमभो	पापमयो
६१	६	श्रीमत्यवित्र	श्रीमत्पवित्र
६२	२०	सर्वंत्र	सर्वंत्र
६३	१५	निचित मनुसमं	निचित मनुसम
७१	१३	क्ष्द्धान	श्रद्धान
७८	२०	एषवहित	एषवहति
७९	१७	तपोऽमावितानम्	तपोमयभावितानम
७९	२०	तपतुं	तपंतु
७९	२०	त्रितपेऽहृदाज्ञाः	त्रिपतेऽर्हदाज्ञाः
८१	२३	योगिशास्त्तांऽहं	योगिशास्तानह
८४	१३	सुप्रतिष्ठं	सुप्रतिष्ठे
८५	७	शशो	शशी
८५	८	सूकरा	सूकरो
९०	१५	अघरा	अजरा
१००	१४	वचो	वचो
१००	२६	प	परं
१०२	५	नाम्नु	नाप्नु
१०४	२४	वात्वा	वात्या
१०५	२२	वृष्टिभः	वृष्टिभिः
११२	७	मुख	सुख
११३	२४	परिमाव्य	परिभाव्य
१८८	७	औदारीकबोय	वैक्रियक

ॐ ह्रीं

श्रीः

श्री परमात्मने नमः

सुप्रभात स्तोत्रम्

यत्स्वर्गावतरोत्सवे यदभवज्जन्माभिषेकोत्सवे।
यद्दीक्षाग्रहणोत्सवे यदखिलज्ञानप्रकाशोत्सवे॥
यन्निर्वाणगमोत्सवे जिनपतेः पूजाद्भुतं तद्भवैः।
संगीतस्तुतिमंगलैः प्रसरतां मे सुप्रभातोत्सवः॥१॥

श्रीमन्नतामरकिरीट मणिप्रभा। भिरालीढ पादयुगदुर्धरकर्मदूर॥
श्रीनाभिनन्दनजिना जितशंभवाख्य। त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततंमम सुप्रभातम्॥२॥

छत्रत्रय प्रचलचामर वीज्यमान। देवाभिनंदनमुने सुमते जिनेन्द्र॥
पद्म प्रभारुणमणिद्युति भासुरांग। त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम्॥३॥

अर्हन् सुपार्श्व कदलीदलवर्णगात्र। प्रालेय तारगिरिमौक्तिक वर्णगौर॥
चंद्रप्रभस्फटिक पाण्डुर पुष्पदंत। त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम्॥४॥

संतप्तकांचनरुचे जिनशीतलाख्य। श्रेयान्विनष्ट दुरिताष्टकलंकपंक॥
बंधूकबंधुररुचे जिनवासुपूज्य। त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम्॥५॥

उद्दंडदर्पकरिपो विमलामलांग। स्थेमन्ननंत जिदनंत सुखांबुराशे॥
दुष्कर्मकल्मष विवर्जित धर्मनाथ। त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम्॥६॥

देवामरीकुसुमसन्निभ शांतिनाथ। कुन्थो दयागुण विभूषण भूषितांग॥
देवाधिदेव भगवन्नरतीर्थनाथ। त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम्॥७॥

यन्मोहमल्लमद भंजनमल्लिनाथ। क्षेमंकरा वितथशासन सुव्रताख्य॥
यत्संपदा प्रशमितो नमिनामधेय। त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततंमम सुप्रभातम्॥८॥

तापिच्छगुच्छरुचिरोज्ज्वल नेमिनाथ। घोरोपसर्गविजयिन् जिनपार्श्वनाथ॥
स्याद्वाद सूक्तिमणि दर्पणवर्द्धमान। त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम्॥९॥

प्रालेयनील हरितारुण पीतभासं। यन्मूर्तिमव्यय सुखावसथं मुनीन्द्राः॥
ध्यायंतिसत्पतिशतं जिनवल्लभानां। त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततंमम सुप्रभातम्॥१०॥

सुप्रभातं सुनक्षत्रं मांगल्यं परिकीर्तितम् ।
चतुर्विंशति तीर्थानां सुप्रभातं दिने दिने ॥११॥
सुप्रभातं सुनक्षत्रं श्रेयः प्रत्यभिनंदितम् ।
देवता ऋषयः सिद्धाः सुप्रभातं दिने दिने ॥१२॥
सुप्रभातं तवैकस्य वृषभस्य महात्मनः ।
येन प्रवर्तितं तीर्थं भव्य सत्त्व सुखावहम् ॥१३॥
सुप्रभातं जिनेन्द्राणां ज्ञानोन्मीलित चक्षुषाम् ।
अज्ञान तिमिरांधानां नित्यमस्तमितो रविः ।१४॥
सुप्रभातं जिनेंद्रस्य वीरः कमल लोचनः ।
येन कर्माटवी दग्धा शुक्ल ध्यानोग्रवह्निना ॥१५॥
सुप्रभातं सुनक्षत्रं सुकल्याणं सुमंगलम् ।
त्रैलोक्य हित कर्तॄणां जिनानामेव शासनम् ॥१६॥

इति सुप्रभातस्तोत्रम् समाप्तम



अथ दृष्टाष्टकस्तोत्रम्

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भवतापहारि, भव्यात्मनां विभवसंभव भूरिहेतुः ।
दुग्धाब्धिफेनधवलोज्ज्वलकूटकोटि, नद्धध्वज प्रकरराजिविराजमानम् ॥१॥
दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भुवनैकलक्ष्मी, धामर्द्धिवर्द्धित महामुनिसेव्यमानम् ।
विद्याधरामर वधूजन मुक्तदिव्य, पुष्पाञ्जलिप्रकरशोभितभूमिभागम् ॥२॥
दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भवनादिवासु, विख्यातनाकगणिका गणगीयमानम् ।
नानामणि प्रचयभासुररश्मिजाल, व्यालीढनिर्मल विशालगवाक्षजालम् ॥३॥
दृष्टं जिनेन्द्रभवनं सुरसिद्धयक्ष, गन्धर्व किन्नरकरार्पित वेणुवीणा ।
संगीत मिश्रितनमस्कृत धीरनादै, रापूरिताम्बर तलोरुदिगन्तरालम् ॥४॥
दृष्टं जिनेन्द्र भवनं विलसद्विलोल, मालाकुलालिललितालकविभ्रमाणम् ।
माधुर्य वाद्यलय नृत्यविलासिनीनां, लीलाद्यचलवलय नूपुरनादरम्यम् ॥५॥

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं मणिरत्नहेम, सारोज्ज्वलैः कलशचामरदर्पणाद्यैः।
सन्मंगलैः सततमष्टशतप्रभेदं, विभ्राजितं विमलमौक्तिकदामशोभम् ॥६॥
दृष्टं जिनेन्द्रभवनं वरदेवदारु, कर्पूरचन्दन तरुष्कसुगन्धि धूपैः।
मेघायमानगगने पवनाभिघात, चञ्चच्चल द्विमलके तनतुंगशालम् ॥७॥
दृष्टं जिनेन्द्रभवनं धवलातपत्र, च्छायानि मग्नतनु यक्षकुमारवृन्दैः।
दो धूयमानसितचामरपंकिभासं, भामंडल द्युतियुत प्रतिमाभिरामम् ॥८॥
दृष्टं जिनेन्द्रभवनं विविधप्रकार, पुष्पोपहार रमणीय सुरत्नभूमि।
नित्यं वसंततिलकश्रियमादधानं, सन्मंगलं सकलचन्द्रमुनिन्द्रवन्द्यम् ॥९॥
दृष्टं मयाद्य मणिकाञ्चनचित्रतुंग, सिंहासनादिजिनविम्बविभूतियुक्तम्।
चैत्यालयं यदतुलं परिकीर्तितं मे, सन्मंगलं सकलचन्द्रमुनीन्द्रवन्द्यम् ॥१०॥

इति दृष्टाष्टकस्तोत्रम् सम्पूर्णम्

अथाद्याष्टकस्तोत्रम्।

अद्य मे सफलं जन्म, नेत्रे च सफले मम।
त्वामद्राक्षं यतो देव, हेतुमक्षयसम्पदः ॥१॥
अद्य संसारगम्भीर, पारावारः सुदुस्तरः।
सुतरोऽयं क्षणेनैव, जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥२॥
अद्य मे क्षालितं गात्रं, नेत्रे च विमले कृते।
स्नातोऽहं धर्मतीर्थेषु जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥३॥
अद्य मे सफलं जन्म, प्रशस्तं सर्वमंगलम्।
संसारार्णवतीर्णोऽहं, जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥४॥
अद्य कर्माष्टकज्वालं विधूतं सकषायकम्।
दुर्गतेर्विनिवृतोहं जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥५॥
अद्य सौम्या ग्रहा सर्वे,शुभाश्चैकादश स्थिताः।
नष्टानि विघ्नजालानि,जिनेन्द्र तव दर्शनात्॥६॥
अद्य नष्टो महाबन्धः, कर्मणां दुःखदायकः।
सुखसंगमसमापन्नो, जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥७॥

अद्य कर्माष्टकं नष्टं, दुःखोत्पादनकारकम् ।
सुखाम्भोधिनिमग्नोऽहं, जिनेन्द्र तव दर्शनात्॥८॥
अद्य मिथ्यान्धकारस्यहन्ता, ज्ञानदिवाकरः ।
उदितो मच्छरीरेऽस्मिन्, जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥९॥
अद्याहं सुकृतो भूतो, निर्धूताशेषकल्मषः ।
भुवनत्रयपूज्योऽहं, जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥१०॥
अद्याष्टकं पठेद्यस्तु, गुणानन्दितमानसः ।
तस्य सर्वार्थसंसिद्धि, जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥११॥

इति अद्याष्टकस्तोत्रम् सम्पूर्णम्

-(०)-

अथ नमस्कार मंत्राः

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरीयाणं,
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ॥१॥

मन्त्रं संसारसारं त्रिजगदनुपमं सर्वपापारिमन्त्रं,
संसारोच्छेदमन्त्रं विषमविषहरं कर्मनिर्मूलमन्त्रम् ।
मन्त्रं सिद्धि प्रदानं शिवसुखजननं केवलज्ञानमन्त्रं,
मन्त्रं श्रीजैनमन्त्रं जप जप जपितं जन्मनिर्वाणमंत्रम् ॥२॥

आकृष्टिं सुरसंपदां विदधते मुक्तिश्रियो वश्यतां,
उच्चाटं विपदां चतुर्गतिभुवां विद्वेषमात्मैनसाम् ।
स्तम्भं दुर्गमनं प्रति प्रयततो मोहस्य सम्मोहनम्,
पायात्पंचनमस्क्रियाक्षरमयी साराधना देवता ॥३॥

अनन्तानन्त संसार सन्ततिच्छेद कारणम् ।
जिनराजपदाम्भोज स्मरणं शरणं मम ॥४॥
अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम ।
तस्मात्कारुण्यभावेन रक्ष रक्ष जिनेश्वर ॥५॥

न हि त्राता न हि त्राता न हि त्राता जगत्त्रये ।
वीतरागात्परो देवो न भूतो न भविष्यति ॥६॥
जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्दिने दिने ।
सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु सदामेऽस्तु भवे भवे ॥७॥

जिन धर्म विनिर्मुक्तं माभवन् चक्रवर्त्यपि ।
स्याञ्चेटोऽपि दरिद्रोऽपि जिनधर्मानुवासितम् ॥८॥
जन्म जन्म कृतं पापम् जन्म कोटिमुपार्जितम् ।
जन्म मृत्यु जरा रोगं हन्यते जिन वन्दनात् ॥९॥

○ इति ●



—:—तीर्थंकर नाम—:—

भूतकाल तीर्थंकराः

१ श्री निर्वाण २ सागर ३ महासाधु ४ विमलप्रभ ५ श्रीधर ६ सुदत्त ७ अमलप्रभ ८ उद्धर ९ अंगिर १० सन्मति ११ सिंधु १२ कुसुमांजलि १३ शिवगण १४ उत्साह १५ ज्ञानेश्वर १६ परमेश्वर १७ विमलेश्वर १८ यशोधर १९ कृष्ण २० ज्ञानमति २१ शुद्धमति २२ श्रीभद्र २३ अतिक्रान्त २४ शांताश्चेति भूतकालसंबन्धिचतुर्विशति-तीर्थंकरेभ्यो नमो नमः ॥

वर्तमानकाल तीर्थंकराः ।

१ श्री वृषभ २ अजित ३ शंभव ४ अभिनन्दन ५ सुमति ६ पद्मप्रभ ७ सुपार्श्व ८ चंद्रप्रभ ९ पुष्पदंत १० शीतल ११ श्रेयान् १२ वासुपूज्य १३ विमल १४ अनन्त १५ धर्म १६ शान्ति १७ कुंथु १८ अर १९ मल्लि २० मुनिसुव्रत २१ नमि २२ नेमि २३ पार्श्व २४ वर्द्धमानाश्चेति (वीर, महावीर, सन्मति) वर्तमानकालसम्बन्धिचतुर्वि-शतितीर्थंकरेभ्यो नमो नमः ।

भविष्यत्काल तीर्थंकराः ।

१ श्रीमहापद्म २ सुरदेव ३ सुपार्श्व ४ स्वयंप्रभ ५ सर्वात्मभूत ६ देवपुत्र ७ कुलपुत्र ८ उदंक ९ प्रोष्टिल १० जयकीर्ति ११ मुनिसुव्रत १२ अर १३ निष्पाप १४ निष्कषाय १५ विपुल १६ निर्मल १७ चित्रगुप्त १८ समाधिगुप्त

१६ स्वयंभू २० अनुवृत्तिक २१ जय २२ विमल २३ देवपाल २४ अनन्तवीर्याश्चेति-भविष्यत्कालसम्बन्धिचतुर्विशतितीर्थंकरेभ्यो नमो नमः ॥

विदेहक्षेत्र के तीर्थंकराः ।

१ श्री सीमंधर १ युगमंधर ३ बाहु ४ सुबाहु ५ सुजात ६ स्वयंप्रभ ७ वृशभानन ८ अनंतवीर्य ६ सूरप्रभ १० विशालकीर्ति ११ बज्रधर १२ चंद्रानन १३ चन्द्रबाहु १४ भुजंगम १५ ईश्वर १६ नेमप्रभ १७ वीरसेन १८ महाभद्र १६ देवयश २० अजितवीर्याश्चेति विद्यमान महाविदेहक्षेत्रेविंशतितीर्थंकरेभ्यो नमो नमः ॥

----इति नमस्कारमन्त्रा समाप्ताः----

श्री पंच परमेष्टी स्तोत्रम्

श्री शतेन्द्र योगि वृन्द वंद्य पाद पंकज,
शाश्वतेद्ध बोध दृष्टि वीर सौख्य भासुरम् ।
सु प्रशस्त योग दग्ध घाति कर्म वैरिणं,
भू प्रशस्य नाथ मर्हदीश मर्च्चयाम्यहं ॥१॥

अष्ट कर्म विप्र मुक्तमष्ट सद्गुणोज्वलं,
दुष्ट भाव दुःख दूर मष्टमीदराग्रज ।
स्पष्ट दृष्ट लोका लोकमच्युतं तुलोर्जितं,
तोषयामि निष्ट तार्त्थ भिद्ध सिद्ध संचयम् ॥२॥

आचरन्ति चारु पञ्च वृत्त कानिये स्वयं,
चारु यत्यनुग्रहोरु बुद्धितः सभाश्रितान् ।
शूरमार मल्लमान मर्दकान्गुणो ज्वलां,
स्तांच्छरण्य मंगलोत्तमान्य जामि शिक्षकान ॥३॥

द्वादशांग सांग बाह्य शास्त्र वार्द्धिपारगान्,
साधुवाद वज्र भिन्न मत्त वादि भूधरान ।
साद्य नाद्य नन्त शान्त मोक्ष मार्ग देश का,
नादरेण तान्नमामि पाठकान्गुणाम्बुधीन् ॥४॥

मोक्ष हेतु - भूतधर्म शुक्ल योग तत्परं,
दक्ष चक्षुरादि दृष्ट वादि रोधनक्षमं।
अक्षयोरु लक्षमेय सत्कटाक्ष वीक्षणं,
मोक्ष मुख्य साधु संघमाय जामि सिद्धये ॥५॥
॥ इति समाप्ताः ॥

–: श्री गोमटेशाष्टकम् :–

तुभ्यं नमोऽस्तु शिव शंकर शंकराय।
तुभ्यं नमोऽस्तु कृत कृत्य महोन्नताय॥
तुभ्यं नमोऽस्तु घनघाति विनाशनाय।
तुभ्यं नमोऽस्तु विभवे जिनगोमटाय॥१॥

तुभ्यं नमोऽस्तु नव केवल लोचनाय।
तुभ्यं नमोऽस्तु पुरुदेव सुनन्दनाय॥
तुभ्यं नमोऽस्तु जिनशासन शासनाय।
तुभ्यं नमोऽस्तु विभवे जिनगोमठाय॥२॥

तुभ्यं नमोऽस्तु मदवारण वारणाय।
तुभ्यं नमोऽस्तु सुरराज विराजिताय॥
तुभ्यं नमोऽस्तु जिन मंगल मंगलाय।
तुभ्यं नमोऽस्तु विभवे जिन गोमटाय॥३॥

तुभ्यं नमोऽस्तु गिरिमस्तक संस्थिताय।
तुभ्यं नमोऽस्तु कुमताद्रि विभेदनाय॥
तुभ्यं नमोऽतु शशिसूर्य सम प्रभाय।
तुभ्यं नमोऽस्तु विभवे जिन गोमटाय॥४॥

तुभ्यं नमोऽस्तु भव बन्ध विनाशनाय।
तुभ्यं नमोऽस्तु विषयामिषखादनाय॥
तुभ्यं नमोऽस्तु गुणरत्न करण्ड काय।
तुभ्यं नमोऽस्तु विभवे जिन गोमटाय॥५॥

तुभ्यं नमोऽस्तु श्रुतवार्द्धि विवर्द्धनाय।
तुभ्यं नमोऽस्तु परमार्त्थ समर्त्थनाय॥
तुभ्यं नमोऽस्तु परमावधि निष्कषाय।
तुभ्यं नमोऽस्तु विभवे जिन गोमटाय॥६॥

तुभ्यं नमो निरुपमाय निरञ्जनाय।
तुभ्यं नमोऽस्तु भव वार्द्धि विनाशनाय॥
तुभ्यं नमः सकल जन्तु हितंकराय।
तुभ्यं नमोऽस्तु विभवे जिन गोमटाय॥७॥

तुभ्यं नमो निखिल लोक विलोकनाय।
तुभ्यं नमोऽस्तु परमार्त्थ गुणाष्टकाय॥
तुभ्यं नमो व्यणगुणाधिप पालनाय।
तुभ्यं नमोऽस्तु विभवे जिनगोमटाय॥८॥

इति समाप्ता.

)-:-(

श्री वीतराग स्तोत्र

शिवं शुद्धबुद्धं परं विश्वनाथं, न देवो न बन्धुर्न कर्म न कर्ता।
न अंग न संगं न स्वेच्छा नकामं, चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम्॥१॥
न बन्धो न मोक्षो न रागादिलोकं, न योगं न भोगं न व्याधिर्न शोकम्।
न कोपं न मानं न माया न लोभं, चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम्॥२॥
न हस्तौ न पादौ न घ्राणं न जिह्वा, न चक्षुर्न कर्णं न वक्त्रं न निद्रा।
न स्वामी न भृत्यं न देवो न मर्त्यं, चिन्दानन्दरूपं नमो वीतरागम्॥३॥
न जन्म न मृत्युर्न मोदं न चिन्ता, न क्षुद्रोनभीतोन कार्श्यं न तंद्रा।
न स्वेदं न खेदं न वर्णं न मुद्रा, चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम्॥४॥
त्रिदंडे त्रिखंडे हरे विश्वनाथं, ऋषीकेशविध्वस्त कर्मारिजालम्।
न पुण्यं न पापं न चाक्षादिपायं, चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम्॥५॥
न बालो न वृद्धो न तुच्छो न मूढो, न खेदं न भेदं न मूर्तिन स्नेहा।
न कृष्णं न शुक्लं न मोहं न तन्द्रा, चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम्॥६॥

न आद्यं न मध्यं न अन्तं न मन्या, न द्रव्य न क्षेत्रं न दृष्टो न भावः।
न गुरुर्न शिष्यो न हीनं न दीनं, चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम् ॥७॥
इदं ज्ञानरूपं स्वयं तत्ववेदी, न पूर्णं न शून्यं न चैत्यं स्वरूपी।
न चान्योन्यभिन्नं न परमार्थमेकं, चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम् ॥८॥

आत्मारामगुणाकरं गुणनिधि चैतन्यरत्नाकरं,
सर्वे भूतगतागते सुखदुःखे ज्ञाते त्वया सर्वगे।
त्रैलोक्याधिपते स्वयंस्वमनसाध्यायन्तियोगीश्वरा,
वंदे ते हरिवंशहर्षहृदयं श्रीमान् हृदाभ्युद्यताम् ॥९॥

इति समाप्ता

– –

अध्यात्माष्टकम्

विभावाद्य भावात्स्वभावं वहंतं, सुबोधिप्रकर्षाद बोधं दहन्तम्।
नयातीतरूपं नयाम्भोधि चन्द्रं, भजेहं जगज्जीवनं श्री जिनेन्द्रम् ॥१॥
वयादेय भावावना वेय दूरं, गुणानाम भावाद् गुणाम्भोधि पूरम्।
सुचारित्र चर्ये क्षणादाव निन्द्रं, भजेहं जगज्जीवनं श्री जिनेन्द्रम् ॥२॥
शुभंवा शुभं कर्म चैकं समस्तं, नयन्निश्चितं बंधबीजं निरस्तम्।
स्वभावाप्तिरस्य स्वयं चाप्यतन्द्रं, भजेहं जगज्जीवनं श्री जिनेन्द्रम् ॥३॥
द्रयं चा द्रयं वस्त्वं नित्यं च नित्यं, त्रिधालम्यमे तत्त्व वक्तव्य चिन्त्यम्।
लसत्सप्त भंगोर्मि माला समुद्रं, भजेहं जगज्जीवनं श्री जिनेन्द्रम् ॥४॥
कुतस्त्यो विरोधादि दोषावकाशो, ध्वनिः स्यादितिस्यादहोयत्प्रकाशः।
इतीत्थं वदन्तं प्रमाणा दरिद्रं, भजेहं जगज्जीवनं श्री जिनेन्द्रम् ॥५॥
प्रमाणं यतो द्वादशांगाख्य शास्त्रं, सुवक्तृत्वतो धर्म कर्मादि पात्रम्।
फलं वातपोद्रोर भूद्भूव्य भद्रं, भजेहं जगज्जीवनं श्री जिनेन्द्रम् ॥६॥
उपादान हाने फलं चाप्युपेक्षा, परैरन्यथा वादि भाने सुशिक्षा।
तदा भा सद्दक्त्वाच्चतेषाम् मद्रं, भजेहं जगज्जीवनं श्री जिनेन्द्रम् ॥७॥
अतुल्या अनन्ता गुणास्ताव कीना, सदोषा सतुच्छामतिर्माम कीना।
पदं प्राप्यमेता वतंवार्हमिद्रं, भजेहं जगज्जीवनं श्री जिनेन्द्रम् ॥८॥

वार्धाराद्यर्हंणा ते समगति सुखदातुष्टि पुष्टयादिकर्त्री,
दिव्या वागागमोत्या श्रुति सरणि गतानंत मिथ्यात्वहर्त्री।
रागद्वेषादि मुक्तो मुनिरिह विदितः शुद्धबोधाशयालुः,
जंन्मां होवारणात्कंस्तवमिमम सृजद्वादिराजो दयालुः ॥६॥

— इति श्री वादिराज विरचितम् अध्यात्माष्टक स्तोत्रम्—

श्री महावीराष्टक स्तोत्र

छंद शिखरिणि

यदीये चैतन्ये मुकुर इव भावाश्चिदचितः,
समंभांति ध्रौव्यव्ययजनिलसंतोंतरहिताः।
जगत्साक्षी मार्गप्रकटनपरो भानुरिवयो
महावीरस्वामी नयनपथगामो भवतु मे (नः) ॥१॥

अताम्रं यच्चक्षुः कमल युगलं स्पंदरहितं,
जनान्कोपापायं प्रकटयति वाभ्यंतरमपि।
स्फुटंमूर्तिर्यस्य प्रशमितमयी वातिविमला,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥२॥

नमन्नाकेन्द्राली मुकुटमणिभाजालजटिलं,
लसत्पादांभोजद्वयमिह यदीयं तनुभृतां।
भवज्ज्वालाशांत्यै प्रभवति जलंवा स्मृतमपि,
महावीरस्वामी नयनपथगामीभवतु मे (नः) ॥३॥

यदर्च्चाभावेन प्रमुदितमना दर्दुर इह,
क्षणादासीत्स्वर्गी गुणगणसमृद्धः सुखनिधिः।
लभंते सद्भक्ताः शिवसुखसमाजं किमुदता ?
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतुमे (नः) ॥४॥

कनत्स्वर्णाभासोऽप्य पगततनुर्ज्ञान निवहो,
विचित्रात्माप्येको नृपतिवरसिद्धार्थतनयः।
अजन्मापि श्रीमान् विगतभवरागोद्भुतगतिर्,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥५॥

यदीया वाग्गंगा विविधनयकल्लोलविमला,
बृहज्ज्ञानांभोभिर्जगति जनतां यास्नपयति ।
इदानीमप्येषा बुधजनमरालैः परिचिता,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥६॥

अनिर्वारोद्रेकस्त्रिभुवनजयी काम सुभटः।
कुमारावस्थायामपि निजवलाद्येन विजितः।
स्फुरन्नित्यानंदप्रशमपदराज्याय स जिनः,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥७॥

महामोहांतक प्रशमनपराकस्मिकभिषग्,
निरापेक्षो बंधुर्विदितमहिमा मंगलकरः ।
शरण्यः साधूनां भवभयभृतामुत्तमगुणो,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥८॥

महावीराष्टकं स्तोत्रं भक्त्या भागेन्दुना कृतं,
यःपठेच्छ्रणुयाच्चापि स याति परमां गतिं ॥९॥

—समाप्तम्—

अथ श्री सरस्वती स्तोत्रं

चंद्रार्क्ककोटिघटितोज्ज्वल दिव्यमूर्ते, शुभ्र वस्त्रेश्रीचन्द्रिकाकलितनिर्मलसुप्रभासी ।
कामार्त्थदायि कलहंस समाधिरूढे, वागीश्वरि प्रतिदिनं मम रक्ष देवि ॥१॥
देवा सुरेन्द्र नत मौलि मणि प्ररोचिः, श्री मञ्जरीनिविड रञ्जितपाद पद्मे ।
नीलालके प्रमदहस्त समान याने, वागीश्वरि प्रतिदिनं मम रक्ष देवि ॥२॥
केयूर हार मणि कुण्डल मुद्रिकाद्ये, सर्वांगभूषण नरेन्द्र मुनीन्द्र वन्द्ये ।
नाना सु रत्न वर निर्मल मौलि युक्ते, वागीश्वरि प्रतिदिनं मम रक्ष देवि ॥३॥
मंजीर कोत्कनक कंकण किंकणीना, तेषां सुझंकृतरवेण विराजमाने ।
सद्धर्म वारि निधि संतत वर्द्धमाने, वागीश्वरि प्रतिदिनं मम रक्ष देवि ॥४॥
कंकेलि पल्लव विनिन्दित पाणि युग्मे, पद्मासने दिवस पद्म समान वक्त्रे ।
जैनेन्द्र वक्त्र भव दिव्य समस्त भाषे, वागीश्वरि प्रति दिनं मम रक्ष देवि ॥५॥

अर्द्धेन्दु मण्डित जटा ललित स्वरूपे, शास्त्र प्रकाशिनि समस्त कलाधिनाथे।
उन्मुद्रिका जपसरा भय पुस्तकान्ते, वागीश्वरि प्रतिदिनं मम रक्ष देवि ॥६॥
डिण्डीरपिण्ड हिमशंख तुषारहारे, पूर्णेन्दु विम्वरुचिशोभित दिव्य गात्रे।
चाञ्चल्यमान मृगशाव ललाट नेत्रे, वागीश्वरि प्रतिदिनं मम रक्ष देवि ॥७॥
सर्व पवित्रकरणोन्नत काम रूपे, नित्यं फणीन्द्र गरुड़ाधिपकिन्नरेन्द्र।
विद्याधरेन्द्र सुर यक्ष समस्त वन्द्ये, वागीश्वरि प्रतिदिनं मम रक्ष देवि ॥८॥

सम्पूर्णम्

श्री सरस्वती स्तोत्रम् (द्वितीय)

सरस्वत्याःप्रसादेन काव्यंकुर्वन्ति मानवाः। तस्मान्निश्चल भावेनपूजनियासरस्वती ॥१॥
श्रीसर्वज्ञमुखोत्पन्न भारती बहु भाषिणी। अज्ञानतिमिरंहन्ति विद्या बहुविकासिनी ॥२॥
सरस्वती मया दृष्टा विद्याकमल लोचनी। हंमस्कन्ध समारूढावेणीपुस्तकधारिणी ॥३॥
प्रथमं भारती नाम द्वितीय च सरस्पती। तृतीयं शारदादेवी चतुर्थं हंस गामिनी ॥४॥
पंचमंविदुषां माता षष्टं वागीश्वरी तथा। कौमारीसप्तमं प्रोक्ताअष्टमंब्रह्मचारिणी ॥५॥
नवमं च जगन्माता दशमं ब्रह्मणी भवेत्। एकादशं तु ब्रह्माणी द्वादशं वरदा तथा ॥६॥
वाणी त्रयोदशं माय भाषा चैव चतुर्दशं। पंचदशं श्रुतदेवी षोडशंगौर्निगद्यते ॥७॥
एतानि श्रुतनामानि प्रातरूत्थाय यःपठेत्। तस्मिन्सन्तुष्यतीदेवीशारदावरदाभवेत् ॥८॥
सरस्वति नमस्तुभ्यं वरदे कामरूपिणी। विद्यारम्भंकरिष्यामि सिद्धिर्भवतुमे सदा ॥९॥

॥ समाप्ता. ॥

श्री पार्श्वनाथ स्तोत्रम्

(अपरनाम--लक्ष्मीस्तोत्र)

लक्ष्मीर्महस्तुल्य सती सती सती। प्रवृद्धकालो विरतो रतो रतो ॥
जरारुजा जन्म हता हता हता। पार्श्वं फणे रामगिरौ गिरौ गिरौ ॥१॥
अर्च्चेय् माद्यं सुमना मना मना। यः सर्वदेशो भुविना विना विना ॥
समस्त विज्ञान मयो मयो मयो। पार्श्वं फणे रामगिरौ गिरौ गिरौ ॥२॥

विनेष्ट जंतोः शरणं रणं रणं। क्षमादितो यः कमठं मठं मठं ॥
नरामराराम क्रमं क्रमं क्रमं। पार्श्व फणे रामगिरौ गिरौ गिरौ ॥३॥
अज्ञान सत्काम लता लता लता। यदीय सद्भावनता नता नता ॥
निर्वाण सौख्यं सुगता गता गता। पार्श्व फणे रामगिरौ गिरौ गिरौ ॥४॥
विवादिता शेर्षविधि विधौ विधौ। बंभूव सर्प्यावहरी हरी हरी ॥
त्रिज्ञान सज्ञान हरो हरो हरो। पार्श्व फणे रामगिरौ गिरौ गिरौ ॥५॥
यद्विश्व लोकैक गुरुं गुरुं गुरुं। विराजिता येन वरं वरं वरं ॥
तमाल नीलांग भरं भरं भरं। पार्श्व फणे रामगिरौ गिरौ गिरौ ॥६॥
संरक्षितो दिग्भुवनं वनं वनं। विराजिता येषु दिवै दिवै दिवैः ॥
पाद द्वये नूत सुरासुराः सुराः। पार्श्व फणे रामगिरौ गिरौ गिरौ ॥७॥
रराज नित्यं सकला कला कला। ममारतृष्णो वृजिनो जिनो जिनो ॥
संहार पूज्यं वृषभा सभा सभा। पार्श्व फणे रामगिरौ गिरौ गिरौ ॥८॥

तर्के व्याकरणे च नाटक चये काव्याकुले कौशले।
विख्यातो भुवि पद्मनंदि मुनिपस्तत्वस्य कोषं निधिः ॥
गंभिरं यमकाष्टकं पठति यः संस्तूयसा लभ्यते।
श्री पद्मप्रभदेव निर्मितमिदं स्तोत्रं जगन्मंगलं ॥९॥

---समाप्तम्---

अकलंक स्तोत्र

त्रैलोक्यं सकलं त्रिकाल विषयं सालोकमा लोकितम्।
साक्षाद्येन यथा स्वयं करतले रेखात्रयं सांगुलिम् ॥
रागद्वेष भया भयान्तक जरा लोलत्व लोभादयो।
नालं यत्पदलंघनाय स महादेवो मया वंद्यते ॥१॥

दग्धं येन पुर त्रयं शरभवा तीव्रार्चिषा वह्निना।
यो वा नृत्यति मत्तवप्तितृवने यस्यात्मजोवागुहः ॥
सोऽयं किं मम शंकरो भय तृषारोषार्ति मोहक्षयं।
कृत्वा यः स तु सर्वं वित्तनु भृतां क्षेमंकरः शंकर ॥२॥

यत्नाद्येन विदारितं कररुहे दैत्येन्द्र वक्षःस्थलम्।
सारथ्येन धनंजयस्य समरे योऽमारयत्कौरवान्॥
नासौ विष्णुरनेक काल विषयं यज्ज्ञान मव्याहतम्।
विश्वं व्याप्य विजृंभते सतुमहा विष्णुः सदेष्टोमम॥३॥

उर्वश्यामुदपादि रागबहुलं चेतो यदीयं पुनः।
पात्री दंड कमण्डलु प्रभृतयो यस्या कृतार्थं स्थितिम्॥
आविर्भाव यितुं भवंतिस कथं ब्रह्मा भवेन्मादृशाम्।
क्षुत्तृष्णा श्रमराग रोग रहितो ब्रह्मा कृतार्थोऽस्तुनः॥४॥

योजग्ध्वापिशित समत्स्यकवल जीवं च शून्यंवदन्।
कर्त्ता कर्म फलं न भुंक्त इतियो वक्ता सबुद्धः कथम्॥
यज्ज्ञानं क्षणवर्त्तिवस्तुसकलं ज्ञातुं न शक्तं सदा।
यो जानन्युगपज्जगत्त्रयमिदं साक्षात्सबुद्धो मम॥५॥

इशः किं छिन्नलिंगो यदि विगतभयः शूलपाणिः कथं स्यात्।
नाथः किं भैक्ष्यचारी यतिरिति स कथं साँगना सात्मजश्च॥
आर्द्राजः किंत्वजन्मा सकल विदिति किं वेत्ति नात्मान्तरायं।
संक्षेपात्सम्यगुक्तं पशुपतिम पशुः कोऽत्र धीमानुपास्ते॥६॥

ब्रह्माचर्माक्षसूत्री सुरयुवतिरसावेश विभ्रान्तचेताः।
शम्भुः खट्वांग धारी गिरिपति तनया पांगलीलानुविद्धः॥
विष्णुश्चक्राधिपः सन्दुहितरमगमद् गोपनाथस्य मोहाद्।
अर्हन्विध्वस्तरागो जितसकल भयः कोऽयमेष्वाप्त नाथः॥७॥

एको नृत्यति विप्रसार्य कुकुमां चक्रे सहस्रं भुजा-,
नेकः शेष भुजंग भोगशयने व्यादाय निद्रायते।
दृष्टुं चारुतिलोत्तमा मुखमगादेकश्चतुर्वक्त्रता-,
मेते मुक्तिपथं वदंति विदुषा मित्येतदत्यद्भुतम्॥८॥

यो विश्वं वेद वद्यं जनन जलनिधेर्भंगिनः पारदृश्वा।
पौर्वापर्याविरुद्धं वचनमनुपमं निष्कलंकं यदीयम्॥
तं वंदे साधुवंद्यं सकलगुणनिधिं ध्वस्तदोषद्विषंतं।
बुद्धं वा वर्द्धमानं शतदलनिलयं केशवंवा शिवंवा॥९॥

माया नास्तिजटा कपाल मुकुटं चन्द्रोन मूर्द्धावली।
खट्वांगं न च वासुकिर्न च धनुः शूलं न चोग्रं मुखम्॥
कामो यस्य न कामिनी न च वृषो गीतं न नृत्यं पुनः।
सोऽस्मान्पातु निरंजनो जिनपतिः सर्वत्र सूक्ष्मः शिवः॥१०॥

नो ब्रह्मांकित भूतलं न च हरेः शम्भोर्न मुद्रांकितं।
नो चन्द्रावर्क करांकितं सुरपतेर्वज्रांकितं नैव च॥
षड्वक्त्रांकित बौद्ध देव हुत भुग्यक्षोर गैर्नांकितं।
नग्नं पश्यत वादिनो जगदिदं जैनेन्द्र मुद्रांकितं॥११॥

मौञ्जीदंड कमण्डलु प्रभृतयो नो लाञ्छन ब्रह्मणो।
रुद्रस्यापि जटा कपाल मुकुटं कोपीन खट्वांग ना॥
विष्णोश्चक्र गदादि शंखमतुलं बुद्धस्य रक्ताम्बरं।
नग्नं पश्यत वादिनो जगदिदं जैनेन्द्र मुद्रांकितम्॥१२॥

नाहंकार वशी कृतेन मनसा ना द्वेषिणा केवलं।
नैरात्म्यं प्रतिपद्य नश्यति जने कारुण्य बुद्ध्या मया॥
राज्ञः श्री हिमशीतलस्य सदसि प्रायो विदग्धात्मनो।
बौद्धौधान्सकलान् विजित्य सघटः पादेन विस्फालितः॥१३॥

खट्वांगंनैव हस्ते न च हृदिरचिता लम्बते मुण्डमाला।
भस्मांगं नैव शूलं न च गिरिदुहिता नैव हस्ते कपालं॥
चन्द्रार्द्धं नैव मूर्द्धन्यपि वृषगमनं नैव कण्ठे फणीन्द्रः।
तं वन्दे त्यक्त दोषं भवभयमथनं चेश्वरं देवदेवं॥१४॥

किं वाद्यो भगवानमेयमहिमा देवोऽकलंकः कलौ।
काले योजनता सुधर्म निहितो देवोऽकलंको जिनः॥
यस्य स्फार विवेक मुद्रलहरी जाले ऽप्रमेयाकुला।
निर्मग्ना तनुतेतरां भगवती ताराशिरः कम्पनम्॥१५॥

सा तारा खलु देवता भगवती मन्या पिमन्यामहे।
षण्मासावधि जाड्य सांख्य भगवद्भट्टाकलंक प्रभोः॥
वाकल्लोल परम्पराभिरमते नूनं मनोमज्जन।
व्यापारं सहतेस्म विस्मित मतिः सन्ताडिते तस्ततः॥१६॥

इति श्री अकलंकस्तोत्र सम्पूर्णम्

।।।।।। अथ चैत्य वंदना प्रारम्भः ।।।।।।

सद्भक्त्या देवलोके रविशशि भुवने व्यंतराणां निकाये।
नक्षत्राणां निवासे ग्रहगण पटले तारकाणां विमाने ।।
पाताले पन्नगेंद्रे स्फुटमणि किरणे ध्वस्त मिथ्यांध कारे।
श्रीमत्तीर्थंकराणां प्रति दिवस महं तत्र चैत्यानि वन्दे ।।१।।

वैताढ्येमेरुशृंगे रुचक गिरिवरे कुण्डले हस्ति दन्ते।
वक्षारे कूट नंदीश्वर कनक गिरौ नैषधे नीलवन्ते ।।
चित्रे शैले विचित्रे यमक गिरिवरे चक्रवाले हिमाद्रौ।
श्रीमत्तीर्थंकराणां प्रति दिवस महं तत्र चैत्यानि वंदे ।।२।।

श्री शैले विन्ध्य शृंगे विमल गिरिवरेह्यर्बुदे पावके वा।
सम्मेदे तारके वा कुलगिरि शिखरेऽष्टापदे स्वर्ण शैले ।।
संह्याद्रौ वैजयन्ते विपुल गिरिवरे गुर्जरेरोहणाद्रौ।
श्रीमत्तीर्थंकराणां प्रतिदिवस महं तत्र चैत्यानि वंदे ।।३।।

आषाढे मेदपाटे क्षितितट मुकटे चित्रकूटे चलाटे।
नाटे घाटे च वाटे विघनवर तटे देव कूटे विराटे ।।
कर्नाटे हेमकूटे विकटतर कटे चक्र कोटे च भोटे।
श्रीमत्तीर्थंकराणां प्रति दिवस महं तत्र चैत्यानि वंदे ।।४।।

श्रीमाले मालवे वा मलयति निखिले मेखले पीठले वा।
नेपाले नाहले वा कुवलय तिलके सिंहले मेखले वा ।।
डाहाले कौशले वाविगलित सलिले जंगले मालले वा।
श्रीमत्तीर्थंकराणां प्रति दिवस महं तत्र चैत्यानि वंदे ।।५।।

अंगे वंगे कलिंगे सुगत जनपदे सत्प्रयागेऽतिगंगे।
गौडे चौडे पुरंध्रे वर तरद्रविडे उद्रयाणे च मुद्रे ।।
आद्रे माले पुलिन्द्रे द्रवल कुवलये कर्ण कुब्जे सुराष्ट्रे।
श्रीमत्तीर्थंकराणां प्रति दिवस महं तत्र चैत्यानि वंदे ।।६।।

चम्पायां चन्द्रमुख्यां गजपुर मथुरा पत्तने चोज्जयिन्याम् ।
कौशंब्यां कौशलायाँ कनकपुर वरे देवगिर्यां च काश्यां ।।
नशिक्ये राजगेहे दशपुर नगरे भद्रडे ताम लिप्त्यां ।
श्रीमत्तीर्थंकराणां प्रति दिवस महं तत्र चैत्यानि वंदे ।।७।।

स्वर्गेमर्त्येऽन्तरिक्षे गिरि शिखर ह्रदे स्वर्नदी नीर तीरे ।
शैलाग्रे नागलोके जलनिधि पुलिनेंऽभोरुहाणां निकुंजे ।।
ग्रामेऽरण्ये वने वा स्थलजल विषमे दुर्गं मध्यें ति संध्ये ।
श्रीमत्तीर्थंकराणां प्रति दिवस महं तत्र चैत्यानि वंदे ।।८।।

इत्थं श्री जैन चैत्यं स्तुति मति मनसां भक्ति भाजां प्रसिद्धं ।
प्रोद्यत्कल्याण हेतुः कलिमल हरणं ये पठंति त्रिसंध्यं ।।
तेषां श्री तीर्थयात्रा फलम तुलमलं जायते मानवानां ।
श्रीमत्तीर्थंकराणां प्रति दिवस महं तत्र चैत्यानि वंदे ।।९।।

—समाप्त—

—: श्री जिन सहस्र नाम स्तोत्रं :—

(श्री जिनसेनाचार्य कृत)

स्वयंभुवे नमस्तुभ्य मुत्पाद्यात्मानमात्मनि ।
स्वात्मनैव तथोद्भूतंवृत्तये चित्तवृत्तये ।।१।।
नमस्ते जगतां पत्ये लक्ष्मी भर्त्रे नमो नमः ।
विदांबर नमस्तुभ्यं नमस्ते वदतांबर ।।२।।

कामशत्रुहणं देव मामनंति मनीषिणः ।
त्वामानुमः सुरैमौं लिस्रग्मालाभ्यर्चितक्रमम्।।३।।
ध्यानदुर्घणनिर्भिन्नः घनघातीमहातरूः ।
अनंत भव संतान जयोप्यासीरनंतजित् ।।४।।

त्रैलोक्य विजयेनोप्त दुर्दर्पमतिदुर्जयं ।
मृत्युराजं विजित्यासीज्जन्ममृत्युं जयोभवान् ।।५।।
विधूताशेषसंसारो बंधुर्नोभव्यबांधवः ।
त्रिपुरारिस्त्वमीशोसि जन्ममृत्युजरांतकृत् ।।६।।

त्रिकालविषयाशेषतत्त्वभेदात् त्रिधोच्छिदं।
केवलाख्यं दधच्चक्षुस्त्रिनेत्रोसि त्वमीशिता ॥७॥
त्वामंध कांतकं प्राहुर्मोहांध सुर मर्द्दनात्।
अर्द्धन्ते नारयो यस्मादर्धनारीश्वरोस्यत ॥८॥

शिवः शिवपदाध्यासाद् दुरितारिहरो हरः।
शंकरः कृतशं लोके संभवस्त्व भवन्मुखे ॥९॥
वृषभोसि जगज्ज्येष्टः गुरुर्गुरु गुणोदयैः।
नाभेयो नाभिसंभूतेरिक्ष्वाकुःकुलनंदनः ॥१०॥

त्वमेकः पुरुषस्कंधस्त्वं द्वे लोकस्य लोचने।
त्वं त्रिधाबुधसन्मार्गस्त्रिज्ञस्त्रिज्ञान धारकः ॥११॥
चतुःशरण मांगल्यमूर्तिस्त्वं चतुरहः सुधीः।
पंचब्रह्ममयो देवः पावनस्त्वं पुनीह माम् ॥१२॥

स्वर्गाव तारणे तुभ्यं सद्योजातात्मने नमः।
जन्माभिषेकवामाय वामदेव नमोस्तुते ॥१३॥
सुनिःक्रांताय घोराय परं प्रशमसीयुषे।
केवलज्ञानसंसिद्ध विषाणाय नमोस्तुते ॥१४॥

पुरु स्तुत् पुरुष स्तुभ्यं विमुक्तपदभागिने।
नमस्तत्पुरुषावस्थां भावनानघं विभ्रते ॥१५॥
ज्ञानावरण निर्हासान्नमस्ते नंतचक्षुषे।
दर्शनावरणोच्छेदान्नमस्ते विश्वदर्शिने ॥१६॥

नमो दर्शनमोहघ्नेज्ञायिकामलदृष्टये।
नमश्चारित्रमोहघ्ने विरागाय महौजसे ॥१७॥
नमस्तेऽनंतवीर्याय नमोनंतसुखाय ते।
नमस्तेअनंतलोकाय लोकालोकविलोकिने ॥१८॥

नमस्तेऽनंतदानाय नमस्तेऽनंतलब्धये।
नमस्तेऽनंतभोगाय नमो ऽनंतोय भोगिने ॥१९॥
नमः परम योगाय नमस्तुभ्यमयोनये।
नमः परमपूताय नमस्ते परमर्षये ॥२०॥

नमः परमविद्याय नमः परमतच्छिदे ।
नमः परमतत्त्वाय नमस्ते परमात्मने ॥२१॥
नमः परमरूपाय नमः परमतेजसे ।
नमः परममार्गाय नमस्ते परमेष्टिने ॥२२॥

परमर्द्धिजुषे धाम्ने परमज्योतिषे नमः।
नमः पारेतमः प्राप्तधाम्ने ते परमात्मने ॥२३॥
नमः क्षीणकलंकाय क्षीणबंध नमोस्तुते ।
नमस्ते क्षीणमोहाय क्षीणदोषाय ते नमः ॥२४॥

नमः सुगतये तुभ्यं शोभनांगतमीयुषे ।
नमस्तेतीन्द्रियज्ञान सुखायानिंद्रियात्मने ॥२५॥
कायबंधननिर्मोक्षाद कायाय नमोस्तु ते ।
नमस्तुभ्यमयोगाय योगिनामपि योगिने ॥२६॥

अवेदाय नमस्तुभ्यमकषायायते नमः।
नमः परम योगीन्द्रवंदितांध्रि द्वयायते ॥२७॥
नमः परमविज्ञान नमः परम संयम ।
नमः परमदृग्दृष्ट परमार्थाय तेनमः ॥२८॥

नमस्तुभ्यमलेश्याय शुल्क लेशांशकस्पृशे ।
नमो भव्ये तरावस्था व्यतीताय विमोक्षणे ॥२९॥
संज्ञा सज्ञिद्वयावस्था व्यतिरिक्तामलात्मने ।
नमस्ते वीतसंज्ञाय नमः ज्ञायक दृष्टये ॥३०॥

अनाहाराय तृप्ताय नमः परम भाजुषे ।
व्यतीता शेषदोषाय भवाद्धं पारमीयुषे ॥३१॥
अजराय नमस्तुभ्यं नमस्ते ऽतीत जन्मने ।
अमृत्यवे नमस्तुभ्यंमचलायाक्षरात्मने ॥३२॥

अलमास्तांगुण स्तोत्रमनन्तास्ताव कागुणाः ।
त्वन्नामस्मृतिमात्रेण परमंशं प्रशास्महे ॥३३॥

इति प्रस्तावना

प्रसिद्धाष्ट सहस्रेद्ध लक्षणं त्वां गिरां पतिम्।
नाम्नाष्टसहस्रेण तोष्टुमोऽभीष्टसिद्धये ॥१॥

श्रीमान्यस्वयंभू र्वृषभः शंभवः शंभुरात्मभूः।
स्वयंप्रभः प्रभुर्भोक्ता विश्वभूरपुनर्भवः ॥२॥

विश्वात्मा विश्वलोकेशो विश्वतश्चक्षुरक्षरः।
विश्वविद्विश्वविद्येशो विश्वयोनिरनीश्वरः ॥३॥

विश्वदृश्वा विभुर्धाता विश्वेशो विश्वलोचनः।
विश्व व्यापी विधिर्वेधाः शाश्वतो विश्वतोमुखः ॥४॥

विश्वकर्मा जगज्जेष्टो विश्वमूर्तिर्जिनेश्वरः।
विश्व दृग्विश्वभूतेशो विश्वज्योतिरनीश्वरः ॥५॥

जिनो जिष्णुरमेयात्मा विश्वरीशो जगत्पतिः।
अनन्तचिदचिन्त्यात्मा भव्य बन्धुर बन्धनः ॥६॥

युगादिपुरुषो ब्रह्मा पञ्च ब्रह्ममयः शिवः।
परः परतरः सूक्ष्मः परमेष्टी सनातनः ॥७॥

स्वयं ज्योतिरजोऽजन्मा ब्रह्मयोनिरयोनिजः।
मोहारिविजयी जेता धर्मचक्री दयाध्वजः ॥८॥

प्रशान्तारिरनन्तात्मा योगी योगीश्वरार्चितः।
ब्रह्म विद्ब्रह्म तत्त्वज्ञो ब्रह्मोद्याविद्यतीश्वरः ॥९॥

सिद्धो बुद्धः प्रबुद्धात्मा सिद्धार्थः सिद्धशासनः।
सिद्धः सिद्धान्तविद्ध्येयः सिद्ध साध्यो जगद्धितः ॥१०॥

सहिष्णुरच्युतोऽनतः प्रभविष्णुर्भवोद्भव।
प्रभूष्णुरजरोऽजर्यो भ्राजिष्णुर्धीश्वरोऽव्ययः ॥११॥

विभावसुरसंभूष्णुः स्वयं भूष्णुः पुरातनः।
परमात्मा परंज्योतिस्त्रि जगत्परमेश्वरः ॥१२॥

॥ इति श्रीमदादिशतम् ॥१॥



दिव्य भाषापतिर्दिव्यः पूतवाक्पूतशासनः।
पूतात्मा परमज्योतिर्धर्माध्यक्षो दमीश्वरः ॥१॥
श्रीपति र्भगवानर्हन्नर जाविरजाः शुचिः।
तीर्थंकृत्केवलीशानः पूजार्ह स्नातकोऽमलः ॥२॥
अनंतदीप्तिर्ज्ञानात्मा स्वयंबुद्धः प्रजापतिः।
मुक्तः शक्तो निराबाधो निष्कलोभुवनेश्वरः ॥३॥
निरंजनो जगज्ज्योति र्निरुक्तोक्तिर्निरामयः।
अचलस्थितिरक्षोभ्यः कूटस्थः स्थाणुरक्षयः ॥४॥
अग्रणीर्ग्रामणीर्नेता प्रणेता न्यायशास्त्रकृत्।
शास्ता धर्मपतिर्द्धर्म्यो धर्मात्मा धर्मतीर्थकृत् ॥५॥
वृषध्वजो वृषाधीशो वृषकेतुर्वृषायुधः।
वृषो वृषपतिर्भर्ता वृषाभांको वृषोद्भवः ॥६॥
हिरण्यनाभिर्भूतात्मा भूतभृद्भूतभावनः।
प्रभवोविभवोभास्वान्भवोभावो भवांतकः ॥ ७॥
हिरण्यगर्भः श्रीगर्भः प्रभूतविभवोद्भवः।
स्वयं प्रभुः प्रभूतात्मा भूतनाथो जगत्प्रभुः ॥८॥
सर्वादिः सर्वदृक् सार्वः सर्वज्ञः सर्वदर्शनः।
सर्वात्मा सर्व लोकेशः सर्ववित्सर्वलोकाजित् ॥९॥
सुगतिः सुश्रुतः सुश्रुक् सूरिवहुश्रुतः।
विश्रुतो विश्वतः पादो विश्वशीर्षः शुचिश्रवाः ॥१०॥
सहस्रशीर्षः क्षेत्रज्ञः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
भूतभव्यभवद्भर्ता विश्वविद्या महेश्वरः ॥११॥

इति दिव्यादिशतम् ॥२॥

स्थविष्टः स्थविरो जेष्टः पृष्टःपृष्टो वरिष्टधीः।
स्थेष्टो गरिष्टोबंहिष्टःश्रेष्टो निष्टो गरिष्टगीः ॥१॥
विश्वभृद्विश्वसृट विश्वेट् विश्वभुग्विश्वनायकः।
विश्वाशीर्विश्वरूपात्मा विश्वजिद्विजितांतकः ॥२॥

विभवो विभयो वीरो विशोको विजरो जरन।
विरागो विरतो संगो विविक्तो वीतमत्सरः ॥ ३ ॥
विनेय जनता बन्धुविलीना शेष कल्मषः।
वियोगो योग विद्विद्वान्विधाता सुविधिः सुधीः ॥ ४ ॥

क्षान्ति भाक्पृथिवी मूर्तिः शान्ति भाक् सलिलात्मकः।
वायु मूर्तिर संगात्मा वह्निमूर्तिर धर्म धृक् ॥५॥
सुयज्वा यज मानात्मा सुत्वा सुत्राम पूजितः।
ऋत्विग्यज्ञ पतिर्यज्ञो यज्ञांगम मृतं हविः ॥६॥

व्योम मूर्तिर मूर्तात्मा निर्लेपो निर्मलोऽचलः।
सोम मूर्तिः सुसौम्यात्मा सूर्य मूर्तिर्महाप्रभः ॥७॥
मंत्रविन्मन्त्र कृन्मन्त्रो मन्त्र मूर्तिरनन्तकः।
स्वतन्त्रस्तन्त्रकृत्स्वान्तः कृतान्तान्तःकृतान्तकृत् ॥८॥

कृती कृतार्थः सत्कृत्यः कृत कृत्यः कुत ऋतुः।
नित्यो मृत्युं जयो मृत्युर मृतात्मामृतोद्भवः ॥९॥
ब्रह्मनिष्टः परंब्रह्म ब्रह्मात्मा ब्रह्म सम्भवः।
महाब्रह्म पतिर्ब्रह्मेट् महाब्रह्म पदेश्वरः ॥१०॥

सु प्रसन्नः प्रसन्नात्मा ज्ञानधर्म दमप्रभुः।
प्रशमात्मा प्रशान्तात्मा पुराण पुरुषोत्तमः ॥११॥

—इति स्थविष्टादिशतम् ॥३॥—

महाशोक ध्वजो शोकः कः सृष्टा पद्म विष्टरः।
पद्मेशः पद्मसम्भूतिः पद्मनाभिरनुत्तरः ॥१॥
पद्म योनिर्जगद्यो नि रित्यः स्तुत्यः स्तुतीश्वरः।
स्तवनार्हो हृषी केशो जितजेयः कृत क्रियः ॥२॥

गणाधिपो गणज्येष्टो गण्यः पुण्यो गणाग्रणीः।
गुणाकरो गुणाम्भोधि र्गुणज्ञो गुण नायकः ॥३॥
गुणादरी गुणोच्छेदी निर्गुणः पुण्यगीर्गुणः।
शरण्यः पुण्य वाक्पूतो वरेण्यः पुण्यनायकः ॥४॥

अगण्यः पुण्यधीर्गण्यः पुण्य कृत्पुण्य शासनः।
धर्मा रामो गुण ग्रामः पुण्यापुण्य निरोधकः ॥५॥
पापापेतो विपापात्मा विपात्मा वीत कल्मषः।
निर्द्वन्द्वो निर्मदः शान्तो निर्मोहो निरूपद्रवः ॥६॥
निर्निमेषो निराहारो निःक्रियो निरुपप्लवः।
निष्कलंको निरस्तैना निर्धूतांगो निरास्रवः ॥७॥
विशालो विपुल ज्योतिरतुलो चिन्त्य वैभवः।
सुसंवृत्तः सुगुप्तात्मा सुभृत्सुनय तत्त्ववित् ॥८॥
एक विद्यो महाविद्यो मुनिः परिवृढः पतिः।
धीशो विद्यानिधिः साक्षी विनेता विहितान्तकः ॥९॥
पिता पितामहः पाता पवित्रः पावनो गतिः।
त्राता भिषग्वरो वर्यो वरदः परमः पुमान् ॥१०॥
कविः पुराण पुरुषो वर्षीयान्वृषभः पुरुः।
प्रतिष्टा प्रसवो हेतुर्भुवनैक पितामहः ॥११॥

— इति महादि शतम् ॥४॥ —

श्री वृक्ष लक्षणः श्लक्ष्णो लक्षण्यः शुभ लक्षणः।
निरक्षः पुण्डरीकाक्षः पुष्कलः पुष्करे क्षणः ॥१॥
सिद्धिदः सिद्ध संकल्पः सिद्धात्मा सिद्धि साधनः।
बुद्ध बोध्यो महाबोधि वर्धमानो महर्द्धिकः ॥२॥
वेदांगो वेद विद्वेद्यो जात रूपो विदांवरः।
वेदवेद्यः स्व संवेद्यो विवेदो वदतांवरः ॥३॥
अनादि निधनो व्यक्तो व्यक्त वाग्व्यक्त शासनः।
युगादि कृद्युगाधारो युगादिर्जगदा दिजः ॥४॥
अतीन्द्रोऽतीन्द्रियो धीन्द्रो महेन्द्रोऽतीन्द्रियार्थदृक्।
अनिन्द्रियोऽहमिन्द्राच्यों महेन्द्र महितो महान् ॥५॥
उद्भवः कारणं कर्त्ता पारगो भव तारकः।
अगाह्यो गहनं गुह्यं परार्ध्यः परमेश्वरः ॥६॥

अनन्तर्द्धिरमे यर्द्धिरचिन्त्यर्द्धिः समग्रधीः ।
प्राग्र्यः प्राग्रहरोऽभ्यग्र्यः प्रत्यग्रोऽग्र योऽग्रिमोऽग्रजः ॥७॥
महातपा महातेजा महोदर्को महोदयः ।
महायशो महाधामा महासत्त्वो महाधृतिः ॥८॥
महाधर्यो महावीर्यो महासम्पन्महाबलः ।
महाशक्ति र्महाज्योति र्महाभूति र्महाद्युतिः ॥९॥
महामति र्महानीति र्महाक्षान्ति र्महोदयः ।
महाप्राज्ञो महाभागो महानन्दो महाकविः ॥१०॥
महा महा महाकीर्ति र्महाकांति र्महावपुः ।
महादानो महाज्ञानो महायोगो महागुणः ॥११॥
महामहपतिः प्राप्तमहाकल्याण पंचकः ।
महाप्रभु र्महाप्रातिहार्याधीशो महेश्वरः ॥१२॥
— इति वृक्षादिशतम् ॥५॥—

महामुनि र्महामौनी महाध्यानी महादमः ।
महाक्षमो महाशीलो महायज्ञो महामखः ॥१॥
महाव्रतपतिर्मह्यो महाकांति धरोऽधिपः ।
महामैत्री महामेयो महापायो महोदयः ॥२॥
महा कारुण्य कोमन्ता महामन्त्रो महायतिः ।
महानादो महाघोषो महेज्यो महसांपतिः ॥३॥
महाध्वरधरो धुर्यो महौदार्यो महिष्ट वाक् ।
महात्मा महसांधाम महर्षि र्महितोदयः ॥४॥
महाक्लेशांकुशः शूरो महाभूतपतिर्गुरुः ।
महापराक्रमोऽनन्तो महाक्रोध रिपुर्वशी ॥५॥
महाभवाब्धिसंतारि र्महामोहाद्रि सूदनः ।
महागुणाकरः क्षांतो महायोगीश्वरः शमी ॥६॥
महाध्यानपतिर्ध्याता महाधर्मा महाव्रतः ।
महाकर्मारिहात्मज्ञो महादेवो महेशिता ॥७॥

सर्वक्लेशापहः साधुः सर्वदोषहरो हरः।
असंख्येयोऽप्रमेयात्मा शमात्मा प्रशमाकरः॥

सर्वयोगीश्वरोऽचित्यः श्रुतात्मा विष्टरश्रवाः।
दांतात्मा दमतीर्थेशो योगात्मा ज्ञानसर्वगः॥९॥

प्रधानमात्मा प्रकृतिपरमः परमोदयः।
प्रक्षीणबंधः कामारिः क्षेमकृत्क्षेमशासनः॥१०॥

प्रणवः प्रणयः प्राणः प्राणदः प्रणतेश्वरः।
प्रमाणं प्रणिधिर्दक्षो दक्षिणोध्वर्युरध्वरः॥११॥

आनंदो नंदनो नंदो वंद्योनिंद्योऽभिनदनः।
कामहा कामदः काम्यः कामधेनुररिञ्जयः॥१२॥

—इति महामुन्यादिशतम् ॥६॥—

असंस्कृत सुसंस्कारः प्राकृतो वै कृतांतकृत।
अंतकृत्कांतगुः कांतश्चितामणिरभीष्टदः॥१॥

अजितो जितकामारिरमितोऽमितशासनः।
जितक्रोधो जितामित्रो जितक्लेशो जितांतकः॥२॥

जिनेन्द्रः परमानंदो मुनीन्द्रोदुन्दुभिस्वनः।
महेन्द्रवंद्यो योगीन्द्रो यतीन्द्रो नाभिनंदनः॥३॥

नाभेयो नाभिजो जातः सुव्रतो मनुरुत्तमः।
अभेद्योऽनत्ययोऽनश्वानधिकोऽधिगुरुः सुधीः॥४॥

सुमेधा विक्रमी स्वामी दुराधर्षो निरुत्सुकः।
विशिष्टः शिष्टभुक् शिष्टः प्रत्ययः कर्मणोऽनघः॥५॥

क्षेमी क्षेमंकरोऽक्षय्यः क्षेज्ञधर्मपतिः क्षमी।
अग्राह्यो ज्ञाननिग्राह्यो ध्तानगम्यो निरुत्तरः॥६॥

सुकृती धातुरिज्यार्हः सुनयश्चतुराननः।
श्रीनिवासश्चतुर्वक्त्र श्चतुरास्यश्चतुर्मुखः॥७॥

सत्यात्मा सत्यविज्ञानः सत्यवाक्सत्यशासनः।
सत्याशीः सत्यसंधानः सत्यः सत्यपरायणः॥८॥

स्थेयान्स्थ वीयान्ने दीयान्द वीयान्दूरदर्शनः।
अणोरणीयान नणुर्गुरुराद्यो गरीयसाम् ॥९॥
सदायोगः सदाभोगः सदातृप्तः सदाशिवः।
सदागतिः सदासौख्यः सदाविद्यः सदोदयः ॥१०॥
सुघोषः सुमुखः सौम्यः सुखदः सुहितः सुहृत्।
सुगुप्तागुप्ति भृद्गोप्ता लोकाध्यक्षो दमीश्वरः ॥११॥
—इति असंस्कृतादिशतम् ॥७॥—

बृहन्बृहस्पति र्वाग्मी वाचस्पति रुदारधीः।
मनीषीधिषणो धीमाञ्छे मुषीशो गिरांपतिः ॥१॥
नैकरूपो नयस्तुंगो नैकात्मा नैक धर्मकृत्।
अविज्ञेयोऽप्रतर्क्यात्मा कृतज्ञः कृतलक्षणः ॥२॥
ज्ञानगर्भो दयागर्भो रत्नगर्भः प्रभास्वरः।
पद्मगर्भो जगद्गर्भो हेमगर्भः सुदर्शनः ॥३॥
लक्ष्मी वांस्त्रिदशाध्यक्षो दृढीयानिन इशिता।
मनोहरो मनोज्ञांगो धीरो गम्भीरशासनः ॥४॥
धर्मयुपो दयायागो धर्मनेमिर्मुनीश्वरः।
धर्मचक्रायुधो देवः कर्महा धर्मघोषणः ॥५॥
अमोघवागमोघाज्ञो निर्मलोऽमोघशासनः।
सुरूपः सुभगस्त्यागी समयज्ञः समाहितः ॥६॥
सुस्थितःस्वास्थ्य भावस्थो नीरजस्को निरुद्धवः।
अलेपो निष्कलङ्कात्मा वीतरागो गतस्पृहः ॥७॥
वश्येन्द्रियो विमुक्तात्मा निःसपत्नो जितेन्द्रियः।
प्रशान्तोऽनन्त धामर्षिमंगलं मलहानघः ॥८॥
अनीदृगुपमाभूतो दृष्टिर्दैवमगोचरः।
अमूर्तो मूर्तिमानेको नैको नानैकतत्त्वदृक् ॥९॥
अध्यात्मगम्यो गम्यात्मा योगविद्योगि वन्दितः।
सर्वत्रगः सदाभावीत्रिकाल विषयार्थदृक् ॥१०॥

शंकरः शंवदो दान्तोदमी क्षान्तिपरायणः।
अधिपः परमानन्दः परात्मज्ञः परात्परः ॥११॥
त्रिजगद्वल्लभोऽभ्यर्च्य स्त्रिजगन्मंगलोदयः।
त्रिजगत्पतिपूजांघ्रि स्त्रिलोकाग्र शिखामणिः ॥१२॥

— इति बृहदादिशतम् ॥८॥ —

त्रिकालदर्शी लोकेशो लोकधाता दृढ़व्रतः।
सर्वलोकातिगः पूज्यः सर्वलोकैकसारथिः ॥१॥
पुराणपुरुषः पूर्वः कृतपूर्वांग विस्तरः।
आदिदेवः पुराणाद्यः पुरुदेवोऽधिदेवता ॥२॥

युगमुख्यो युगज्येष्टो युगादिस्थितिदेशकः।
कल्याणवर्णः कल्याणः कल्य कल्याणलक्षणः ॥३॥
कल्याणः प्रकृतिर्दीप्तः कल्याणात्मा विकल्मषः।
विकलंकः कलातीतः कलिलघ्नः कलाधरः ॥४॥

देवदेवो जगन्नाथो जगद्‌बंधुर्जगाद्विभुः।
जगद्धितैषी लोकज्ञः सर्वगोजगदग्रजः ॥५॥
चराचर गुरुर्गोप्यो गूढात्मा गूढगोचरः।
सद्योजातः प्रकाशात्मा ज्वलज्ज्वलनसप्रभः ॥६॥

आदित्य वर्णो भर्माभः सुप्रभः कनक प्रभः।
सुवर्ण वर्णो रूक्माभः सूर्य कोटि सम प्रभः ॥७॥
तपनीय निभस्तुंगो बालार्काभोऽनलप्रभः।
संध्याभ्रबभ्रुर्हेमाभस्तप्त चामीकरच्छविः ॥८॥

निष्टप्त कनकच्छायः कनत्कॉचनसन्निभः।
हिरण्यवर्णः स्वर्णाभः शातकुंभनिभप्रभः ॥९॥
द्युम्नभाजातरूपाभो दीप्तजाम्बूनदद्युतिः।
सुधौतकलधौतश्री प्रदीप्तो हाटकद्युतिः ॥१०॥

शिष्टेष्टः पुष्टिदः पुष्टःस्पष्टः स्पष्टाक्षरक्षमः।
शत्रुघ्नोप्रतिघोऽमोघःप्रशास्ताशासिता स्वभूः ॥११॥

शान्तिनिष्टो मुनिजेष्टः शिवतातिः शिवप्रदः।
शान्तिदः शान्तिकृच्छान्तिः कान्तिमान्कामितप्रदः ॥१२॥
श्रेयोनिधिरधिष्टानमप्रतिष्टः प्रतिष्ठितः।
सुस्थितः स्थावरः स्थाणुः प्रथीयान्प्रथितः पृथूः ॥१३॥

इति० त्रिकालदर्श्यादिशतम् ॥६॥

दिग्वासा वातरशनो निर्ग्रन्थेशो निरम्बरः।
निष्किञ्चनो निराशंसो ज्ञानचक्षुरमोमुहः ॥१॥
तेजोराशि रनन्तौजा ज्ञानाब्धिः शीलसागरः।
तेजोमयोऽमित ज्योति ज्योतिर्मूर्तिस्तमोऽपहः ॥२॥
जगच्चूडामणिर्दीप्तः सर्वविघ्न विनायकः।
कलिघ्नः कर्मशत्रुघ्नो लोकालोक प्रकाशकः ॥३॥
अनिद्रालु रतंद्रालु जागरूकः प्रमामयः।
लक्ष्मीपति र्जगज्ज्योति धर्मराजः प्रजाहितः ॥४॥
मुमुक्षुर्बन्ध मोक्षज्ञो जिताक्षो जितमन्मथः।
प्रशांतरसशैलूशो भव्यपेटक नाटकः ॥५॥
मूलकर्ताखिल ज्योतिर्मलघ्नो मूलकारणः।
आप्तो वागीश्वरः श्रेयाञ्छ्रायसोक्तिर्निरुक्तवाक् ॥६॥
प्रवक्ता वचसामीशो मारजिद्विश्वभाववित्।
सुतनुस्तनु निर्मुक्तः सुगतो हतदुर्नयः ॥७॥
श्रीशः श्रीश्रितपादाब्जो वीतभीरभयंकरः।
उत्पन्नदोषो निर्विघ्नो निश्चलो लोकवत्सलः॥८॥
लोकोत्तरो लोकपतिर्लोकचक्षुर पारधीः।
धीरधीर्बुद्ध सन्मार्गः शुद्धः सूनृतपूतवाक् ॥९॥
प्रज्ञापारमितः प्राज्ञो यतिर्नियमितेन्द्रियः।
भदन्तो भद्रकृद्भद्रः कल्पवृक्षो वरप्रदः ॥१०॥
समुन्मूलित कर्मारिः कर्मकाष्टाशु शुक्षणिः।
कर्मण्यः कर्मठः प्रांशुर्हेयादेय विचक्षणः ॥११॥

अनन्तशक्तिरच्छेद्यस्त्रिपुरारि स्त्रिलोचनः।
त्रिनेत्रस्त्र्यम्बकस्त्र्यक्षः केवलज्ञानवीक्षणः ॥१२॥

समंतभद्रः शांतारि धर्माचार्यो दयानिधिः।
सूक्ष्मदर्शी जितानंगः कृपालुर्धर्मदेशकः ॥१३॥
शुभंयुः सुखसाद् भूतः पुण्यराशिरनामयः।
धर्मपालो जगत्पालो धर्मसाम्राज्यनायकः ॥१४॥

इति दिग्वासादिशतम् ॥१०॥

धाम्नांपते तवामूनि नामान्यागम कोविदैः।
समुच्चितान्यनुध्यायन्पुमान्पूतस्कृति र्भवेत् ॥१॥
गोचरोऽपि गिरामासां त्वमवाग्गोचरो मतः।
स्तोतातथाप्यसंदिग्धंत्वत्तोऽभीष्टफलंभवेत् ॥२॥

त्वमतोऽसिजगद्बन्धुस्त्वमतोऽसिजगद्भिषक्।
त्वमतोऽसिजगद्धाता त्वमतोऽसि जगद्धितः ॥ ३ ॥
त्वमेकं जगतां ज्योतिस्त्वं द्विरूपोपयोगभाक्।
त्वं त्रिरूपैकमुक्त्यंगं सोतथानंतचतुष्टयः ॥४॥

त्वं पंचब्रह्मतत्त्वात्मा पंचकल्याण नायकः।
षड्भेद भाव तत्त्वज्ञस्त्वं सप्तनयसंग्रहः ॥५॥
दिव्याष्टगुणमूर्तिस्त्वं नवकेवल लब्धिकः।
दशावतारनिर्धार्यो मां पाहि परमेश्वर ॥६॥

युष्मन्ना मावलीदृब्धविल सत्स्तोत्रमालया।
भवंतं वरिवस्यामः प्रसीदानुगृहाण नः ॥७॥
इदं स्तोत्रमनुस्मृत्य पूतो भवति त्राक्तिकः।
यः स पाठं पठत्येनं स स्यात्कल्याणभाजनम् ॥८॥

ततः सदेदं पुण्यार्थी पुमान्पठति पुण्यधीः।
पौरुहूतीं श्रियं प्राप्तुं परमामभिलाषुकः ॥९॥
स्तुत्वेति मघवा देवं चराचरजगद्गुरुम्।
ततस्तीर्थविहारस्यव्यधात्प्रस्तावनामिमाम् ॥१०॥

स्तुतिः पुण्यगुणोत्कीर्तिः स्तोता भव्यः प्रसन्नधीः ।
निष्ठितार्थो भवान्स्तुत्यः फलं नैश्रेयसं सुखम् ॥११॥

यः स्तुत्यो जगतांत्रयस्य न पुनस्तोता स्वयं कस्यचित् ।
.ध्येयो योगिजनस्ययश्चनितरांध्याता स्वयं कस्यचित् ॥
यो नेतृनपिते नमन्नत मलंनन्त व्ययक्षेक्षणः ।
सश्रीमाञ्जगतां त्रयस्य च गुरुर्देवः पुरुः पावनः ॥१२॥

तं देवं त्रिदशाधिपार्चित पदं घातिक्षयानन्तरं ।
प्रोत्थानन्त चतुष्टयं जिनमिमं मव्याब्ज नीनामिनम् ॥
मानस्तम्भ विलोकना नतजगन्मान्यं त्रिलोकी पति ।
प्राप्ताचिन्त्य बर्हिविभूतिमनघं भक्त्याप्रवन्दा महे ॥१३॥

—इति धाम्ना० शतम् ॥११॥—

* जिन सहस्रनाम स्तोत्रम् मपूर्णम् *

ॐ

—: भक्तामर स्तोत्रम् :—

— श्री मानतुगाचार्य विरचितं —

भक्तामर प्रणत मौलिमणि प्रभाणा, मुद्योतकं दलित पाप- तमो- वितानम् ।
सम्यक्प्रणम्य जिन—पाद—युगं युगादा, वालम्वनं भव-जले पततां जनानाम् ॥१॥
यः संस्तुतः सकलवाङ्मय-तत्त्वबोधा, दुद्भूत—बुद्धि—पटुभिः सुरलोक—नाथैः ।
स्तोत्रैर्जगत्त्रितय— चित—हरै— रुदारैः, स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम् ॥२॥
बुद्ध्या विनापि विबुधार्चित—पाद-पीठ, स्तोतुं समुद्यत—मतिर्विगत—त्रपोऽहम् ।
बालं विहाय जल-संस्थित-मिन्दु-बिम्ब, मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम् ॥३॥
वक्तुं गुणान् गुण-समुद्र शशांक-कान्तान्, कस्ते क्षमः सुर-गुरुप्रतिमोऽपि बुद्ध्या ।
कल्पान्त- काल- पवनोद्धत- नक्र-चक्रं, को वा तरीतु-मलसम्बुनिधिं भुजाभ्याम् ॥४॥
सोऽहं तथापि तव भक्ति-वशान्मुनीश, कर्तुं स्तवं विगत शक्ति—रपि प्रवृतः ।
प्रीत्यात्म-वीर्य मविचार्य्य मृगोमृगेन्द्रं, नाऽभ्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थम् ॥५॥

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहास-धाम, त्वद्भक्ति-रेव मुखरी कुरुते बलान्माम्।
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति, तच्चाम्र चारु-कलिका निकरैक--हेतु ॥६॥
त्वत्संस्तवेन भव-सन्तति सन्निबद्धं, पापं क्षणात्क्षय- मुपैति शरीर-भाजाम्।
आक्रान्त-लोक-मलिनील --मशेष माशु, सूर्यांशु-भिन्न--मिव शार्वर-मन्धकारम् ॥७॥
मत्वेति नाथ तव संस्तवनं मयेद, मारभ्यते तनुधियाऽपि तव प्रभावात्।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनी-दलेषु, मुक्ताफल-द्युति- मुपैति ननूद-बिन्दुः ॥८॥
आस्तां तव स्तवन-मस्त-समस्त दोषं, त्वत्संकथापि जगतांदुरितानि हन्ति।
दूरे सहस्र- किरणः कुरुते प्रभैव, पद्माकरेषु जलजानि विकास-भाञ्जि ॥९॥
नात्यद्भुतं भुवनं-भूषण-भूतनाथ, भूतैर्गुणर्भुवि भवन्त मभिष्टु-वन्त।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किंवा, भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति ॥१०॥
दृष्टवा भवन्त --मनिमेष-विलोकनीयं, नान्यत्र तोष-मपुयाति जनस्य चक्षुः।
पीत्वा पयः शशिकर-द्युतिदुग्ध-सिन्धोः, क्षारं जलं जलनिधे रसितुं क इच्छेत् ॥११॥
यैः शान्तराग-रुचिभिः परमाणु-भिस्त्वं, निर्मापितस्त्रिभुवनैक ललाम--भूत।
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां, यत्ते समान-मपरं न हि रूपमस्ति ॥१२॥
वक्त्रं क्व ते सुर-नरोरगनेत्र-हारि, निःशेष-निर्जित- जगत्त्रितयोपमानम्।
बिम्बं कलंक-मलिनं क्व निशाकरस्य, यद्वासरे भवति पाण्डु-पलाश-कल्पम् ॥१३॥
सम्पूर्ण मण्डल-शशांक-कला कलाप, शुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तव लङ्घयन्ति।
ये संश्रितास्त्रिजगदीश्वर- नाथमेकं, कस्तान्निवारयति संचरतो यथेष्टम् ॥१४॥
चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशांगनाभि, र्नीतं मनागपि मनो न विकार-मार्गम्।
कल्पान्त-काल-मरुता चलिता चलेन, किं मन्दराद्रि-शिखरं चलितं कदाचित् ॥१५॥
निर्धूम — र्वर्त्ति — रपवर्जित-तैलपूरः, कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटी-करोषि।
गम्यो न जातु मरुतां चलिता-चलानां, दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ जगत्प्रकाशः ॥१६॥
नास्तं कदाचिदुपयासि न राहु-गम्यः, स्पष्टी -करोषि सहसा युगपज्जगन्ति।
नाम्भोधरोदरनिरुद्ध-महा- प्रभावः, सूर्यातिशायि-महिमासि मुनीन्द्र लोके ॥१७॥
नित्योदयं दलित-मोह-महान्धकारं, गम्यं न राहु वदनस्य न वारिदानाम्।
विभ्राजतेतवमुखाब्जमनल्प-कान्ति, विद्योतयज्-जगदपूर्व-शशांक बिम्बम् ॥१८॥

किं शर्वरीषु शशिनाह्नि विवस्व तावा, युष्मन्मुखेन्दु दलितेषु तमःसु नाथ।
निष्पन्न शालि वन शालिनि जीव लोके, कार्यं कियज्जलधरैर्जल भारनम्रैः ॥१६॥
ज्ञानं यथा त्वयि विभूति कृतावकाशं, नैवं तथा हरि हरादिषु नायकेषु।
तेजो महामणिषु याति यथा महत्त्वं, नैवं तु काच शकले किरणा कुलेऽपि ॥२०॥
मन्ये वरं हरि हरादय एव दृष्टा, दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति।
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः, कश्चिन्मनो हरति नाथ भवान्तरेऽपि ॥२१॥
स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्, नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्र रश्मिं, प्राच्येव दिग्जनयति स्फुर दंशु जालम् ॥२२॥
त्वामा मनन्ति मुनयः परमं पुमांस, मादित्य वर्णं ममलं तमसः पुरस्तात्।
त्वामेव सम्य गुपलभ्य जयन्ति मृत्युं, नान्यःशिवःशिव पदस्य मुनीन्द्र पन्थाः ॥२३॥
त्वा मव्ययं विभु तचिन्त्य मसंख्य माद्यं, ब्रह्माण मीश्वर मनन्त मनंग केतुम्।
योगीश्वरं विदित योग मनेक मेकं, ज्ञान स्वरूप ममलं प्रवदन्ति सन्तः ॥२४॥
बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित बुद्धि बोधा, त्वं शंकरोऽसि भुवन त्रय शंकरत्वात्।
धातासि धीर शिव मार्ग विधेर्विधानात्, व्यक्तं त्वमेव भगवन् पुरुषोत्तमोऽसि ॥२५॥

तुभ्यं नम स्त्रिभुवनार्ति हराय नाथ, तुभ्यं नमः क्षितितलामल भूषणाय।
तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय, तुभ्यं नमो जिन भवोदधि शोषणाय ॥२६॥

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषै, स्त्वं संश्रितो निरवकाश तया मुनीश।
दोषै रुपात्त विविधाश्रयजात गर्वैः, स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिद पीक्षि तोसि ॥२७॥
उच्चैर शोक तरु संश्रित मुन्मयूख, माभाति रूप ममलं भवतो नितान्तम्।
स्पष्टोल्लसत् किरणमस्त तमोवितानं, विम्बं रवेरिव पयोधर पार्श्ववर्ति ॥२८॥
सिंहासने मणि मयूख शिखा विचित्रे, विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम्।
विम्बं वियद्विल सदंशु लता वितानं, तुंगोदयाद्रि सिरसीव सहस्र रश्मे ॥२६॥
कुन्दावदात चल चामर चारु शोभं, विभ्राजते तव वपुः कलधौत कान्तम्।
उद्यच्छशांक शुचि निर्झर वारि धार, मुच्चैस्तटं सुर गिरेरिव शात कौम्भम् ॥३०॥
छत्र त्रयं तव विभाति शशांक कान्त, मुच्चैःस्थितं स्थगित भानु कर प्रतापम्।
मुक्ता फल प्रकर जाल विवृद्ध शोभं, प्रख्यापयतः त्रिजगत परमेश्वरत्वम् ॥३१॥

गम्भीर तार रव पूरित दिग्विभाग, स्त्रैलोक्य लोक शुभ संगम भूति दक्षः।
सद्धर्म राज जय घोषण घोषकः सन्, खे दुन्दुभिर ध्वनति ते यशसः प्रवादी ॥३२॥

मन्दार सुन्दर नमेरु सुपारिजात, सन्तानकादि कुसमोत्कर वृष्टिरुद्धा।
गन्धोद बिन्दु शुभ मन्द मरुत्प्रयाता, दिव्या दिवः पतति ते वयसां ततिर्वा ॥३३॥

शुम्भत्प्रभा वलय भूरि विभा विभोस्ते, लोकत्रये द्युतिमतां द्युतिमाक्षिपन्ती।
प्रोद्यद्दिवाकर निरन्तर भूरि संख्या, दीप्त्याजयत्यपिनिशामपि सोमसौम्याम् ॥३४॥

स्वर्गा पवर्ग गममार्ग विमार्गणेष्टः, सद्धर्म तत्त्व कथनैक पटुस् त्रिलोक्याः।
दिव्य ध्वनिर् भवति ते विशदार्थ सर्व, भाषा स्वभाव परिणाम गुणैः प्रयोज्यः ॥३५॥

उन्निद्र हेम नवपंकज पुञ्ज कान्ती, पर्युल्लसन्नख मयूख शिखा भिरामौ।
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र ! धत्तः, पद्मानि तत्र विबुधा परिकल्पयन्ति ॥३६॥

इत्थं यथा तव विभूतिर भूज्जिनेन्द्र!, धर्मोपदेशन विधौ न तथा परस्य।
यादृक् प्रभा दिनकृतः प्रहतान्धकारा, तादृक्कुतो ग्रह गणस्य विकासिनोऽपि ॥३७॥

श्च्योतन् मदाविलविलोल कपोलमूल, मत्त भ्रमद् भ्रमर नाद विवृद्ध कोपम्।
ऐरावता भमिभ मुद्धत मापतन्तं, दृष्ट्वा भयंभवित नोभवदाश्रितानाम् ॥३८॥

भिन्नेभ कुम्भगल दुज्ज्वल शोणिताक्त, मुक्ताफल प्रकर भूषित भूमिभागः।
बद्ध क्रमः क्रम गतं हरिणाधिपोऽपि, नाक्रामति क्रमयुगाचल संश्रितं ते ॥३९॥

कल्पान्त काल पवनोद्धत वह्नि कल्पं, दावानलं ज्वलित मुज्ज्वलमुत्स्फुलिंगम्।
विश्वं जिघत्सुमिव सम्मुख मापतन्तं, त्वन्नाम कीर्त्तन जलं शमयत्य शेषम् ॥४०॥

रक्तेक्षणं समद कोकिल कण्ठ नीलं, क्रोधोद्धतं फणिन मुत्फण मापतन्तम्।
आक्रामति क्रमयुगेण निरस्त शंकस्, त्वन्नाम नाग दमनी हृदि यस्य पुंसः ॥४१॥

वल्गत्तुरंग गज गर्जित भीम नाद, माजौ बलं बलवतामपि भूपतीनाम्।
उद्यद् दिवाकर मयूख शिखा पविद्धं, त्वत्कीर्त्तनात्तम इवाशु भिदामुपैति ॥४२॥

कुन्ताग्र भिन्न गज शोणित वारिवाह, वेगावतार तरणातुर योध भीमे।
युद्धे जयं विजित दुर्जय जेय पक्षास्, त्वत्पाद पंकज वना श्रयिणो लभन्ते ॥४३॥

अम्भो निधौ क्षुभित भीषण नक्र चक्र, पाठीन पीठ भय दोल्बण वाडवाग्नौ।
रंगतरंग शिखर स्थित यान पात्रास्, त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद् व्रजन्ति ॥४४॥

उद्भूत भीषण जलोदर भार भुग्नाः, शोच्यां दशा मुपगताश् च्युत जीविताशाः।
त्वत्पाद पंकज रजोमृतदिग्ध देहा, मर्त्या भवन्ति मकरध्वज तुल्य रूपाः ॥४५॥
आपाद कण्ठ मुरुशृंखल वेष्टितांगा, गाढं बृहन्निगड कोटि निघृष्ट जंघाः।
त्वन्नाम मन्त्र मनिशं मनुजाः स्मरंतः, सद्यः स्वयं विगत बन्ध भया भवन्ति ॥४६॥
मत्त-द्विपेन्द्र मृगराज दवानलाहि, संग्राम वारिधि महोदर बंधनोत्थम्।
तस्याशु नाश मुपयाति भयं भियेव, यस्तावकं स्तव-मिमं मतिमान-धीते ॥४७॥
स्तोत्र स्रजं तव जिनेन्द्र गुणैर् निबद्धां, भक्त्या मया विविध वर्ण विचित्र-पुष्पाम्।
धत्ते जनो य इह कण्ठ गतामजस्रं, तं मानतुंगमवशा समुपैति लक्ष्मीः ॥४८॥

॥ इति श्री मानतुंगाचार्य विरचित भक्तामर स्तोत्रम् ॥

—०—

श्री सिद्धसेन दिवाकर प्रणीतं

कल्याण मंदिर स्तोत्रम्

कल्याणमंदिर मुदारम वद्य भेदि, भीता भय प्रदमनिंदितमंघ्रि पद्मं।
संसारसागर निमिज्ज दशेष जंतु, पोतायमानमभिनम्य जिनेश्वरस्य ॥१॥

यस्य स्वयं सुरगुरुर्गरिमांबुराशेः, स्तोत्रं सुविस्तृतमतिर्न विभुर्विधातुम्।
तीर्थेश्वरस्य कमठस्मयधूमकेतो, स्तस्याहमेष किल संस्तवनं करिष्ये ॥२॥

सामान्यतोऽपि तव वर्णयितुं स्वरूपम्, स्मादृशाः कथमधीश भवन्त्यधीशाः।
धृष्टोऽपिकौशिक शिशुर्यदि वा दिवांधो, रूपं प्ररूपयति किं किल घर्मरश्मेः ॥३॥

मोहक्षयादनुभवन्नपि नाथ मर्त्यो, नूनं गुणान्गणयितुं न तव क्षमेत।
कल्पांतवान्तपयसः प्रगटोऽपि यस्मान्, मीयेत केन जलधेर्ननुरत्नराशिः ॥४॥

अभ्युद्यतोऽस्मि तव नाथ जडाशयोऽपि, कर्तुं स्तवं लसदसंख्यगुणाकरस्य।
बालोपि किं न निजबाहुयुगं वितत्य, विस्तीर्णतां कथयति स्वधियाम्बुराशेः। ५॥

ये योगिनामपि न यान्ति गुणास्तवेश, वक्तुं कथं भवति तेषु ममावकाशः।
जाता तदेव मसमीक्षित कारितेयं, जल्पन्ति वा निजगिरा ननुपक्षिणोऽपि ॥६॥
आस्तामचिन्त्य महिमा जिन संस्तवस्ते, नामापि पाति भवतो भवतो जगन्ति।
तीव्रात पोपहत पान्थ जनान्निदाघे, प्रीणाति पद्म सरसः सरसोऽनिलोऽपि ॥७॥
हृद्वर्तिनि त्वयि विभो शिथिली भवन्ति, जन्तोः क्षणेन निबिडा अपि कर्मबन्धाः।
सद्यो भुजंग ममया इव मध्य भाग, मभ्यागते वनशिखण्डिनि चन्दनस्य ॥८॥
मुच्यन्त एव मनुजाः सहसा जिनेन्द्र, रौद्रै रुपद्रव शतैस्त्वयि वीक्षितेऽपि।
गोस्वामिनि स्फुरित तेजसि दृष्टमात्रे, चौरैरिवाशु पशवः प्रपलाय मानैः ॥९॥
त्वं तारको जिन कथं भविनांत एव, त्वामुद्व हन्ति हृदयेन यदुत्तरन्तः।
यद्वा दृतिस्तरति यज्जलमेष नून, मन्तर्गतस्य मरुतः स किलानुभावः ॥१०॥
यस्मिन्हर प्रभृतयोऽपि हतप्रभावाः, सोऽपि त्वयारति पतिः क्षपितः क्षणेन।
विध्यापिता हुतभुजः पयसाथयेन, पीतं न किं तदपि दुर्धर वाडवेन ॥११॥
स्वामिन्ननल्पगरि माणमपि प्रपन्ना, स्त्वां जन्तवः कथमहो हृदये दधानाः।
जन्मोदधिं लघु तरन्त्यति लाघवेन, चिन्त्यो न हन्तमहतां यदि वा प्रभावः ॥१२॥
क्रोधस्त्वया यदि विभो प्रथमं निरस्तो, ध्वस्तस्तदा वदकथं किलकर्म चौराः।
प्लोषत्यमुत्र यदिवा शिशिरापिलोके, नीलद्रुमाणि विपिनानिन किं हिमानी ॥१३॥
त्वां योगिनो जिन सदा परमात्मरूप, मन्वेषयन्ति हृदयाम्बुज कोषदेशे।
पूतस्य निर्मल रुचेर्यदि वाकिमन्य, दक्षस्य सम्भव पदं ननु कर्णिकायाः ॥१४॥
ध्यानाज्जिनेश भवतो भविनः क्षणेन, देहं विवाह परमात्मदशां व्रजन्ति।
तीव्रानलादुपलभाव मपास्य लोके, चामीकरत्वम चिरादिव धातुभेदाः ॥१५॥
अन्तः सदैव जिन यस्य विभाव्यसे त्वं, भव्यैः कथं तदपि नाशयसे शरीरम्।
एतत्स्वरूपमथ मध्य विवर्तिनो हि, यद्विग्रहं प्रशमयन्ति महानुभावाः ॥१६॥
आत्मा मनीषि भिरयं त्वद भेद बुध्या, ध्यातो जिनेन्द्र भवतीह भवत्प्रभावः।
पानीय मप्य मृत मित्यनु चिन्त्यमानं, किं नाम नो विषविकारमपाकरोति ॥१७॥
त्वामेव वीततमसं परवादिनोऽपि, नूनं विभोहरिहरादिधिया प्रपन्नाः।
किं काचकामलि भिरीश सितोऽपिशंखो, नो गृह्यते विविधवर्ण विपर्ययेण ॥१८॥

धर्मोपदेश समये सविधानुभावा, दास्तां जनो भवति ते तरुरप्यशोकः ।
अभ्युद्गते दिनपतौ समहीरुहोऽपि, किं वा विबोधमुपयाति न जीवलोकः ॥१६॥
चित्रं विभो कथमवाङ्मुखवृन्तमेव, विष्वक्प तत्यविरला सुरपुष्पवृष्टिः ।
त्वद्गोचरे सुमनसां यदि वा मुनीश! गच्छन्ति नूनमध एव हि बन्धनानि ॥२०॥
स्थाने गभीरहृदयोदधिसम्भवायाः, पीयूषतां तव गिरः समुदीरयन्ति ।
पीत्वा यतः परमसंमदसंगभाजो, भव्या व्रजन्ति तरसाप्य जरामरत्वम् ॥२१॥
स्वामिन्सुदूरमवनम्य समुत्पतन्तो, मन्ये वदन्ति शुचयः सुरचामरौघाः ।
येऽस्मै नतिं विदधते मुनिपुंगवाय, ते नूनमूर्ध्वगतयः खलु शुद्धभावाः ॥२२॥
श्यामं गभीरगिरिमुज्ज्वलहेमरत्न, सिंहासनस्थमिह भव्यशिखण्डिनस्त्वाम् ।
आलोकयंति रभसेन नदंतमुच्चै, श्चामीकराद्रि शिरसीव नवाम्बुवाहम् ॥२३॥
उद्गच्छता तवशितिद्युतिमण्डलेन, लुप्तच्छ दच्छविरशोक तरुर्बभूव ।
सांनिध्यतोऽपि यदिवातव वीतराग! नीरागतां व्रजति को न सचेतनोऽपि ॥२४॥

भो भोः प्रमादमवधूय भजध्वमेन, मागत्य निर्वृतपुरीं प्रति सार्थवाहम् ।
एतन्निवेदयति देव जगत्त्रयाय, मन्ये न दन्नभिनभः सुरदुन्दुभिस्ते ॥२५॥

उद्द्योतितेषु भवता भुवनेषु नाथ, तारान्वितो विधुरयं विहताधिकारः ।
मुक्ताकलाप कलितोरुसितातपत्र, व्याजात्त्रिधा धृत तनुर्ध्रुवमभ्युपेतः ॥२६॥
स्वेन प्रपूरित जगत्त्रय पिण्डितेन, कान्ति प्रताप यशसामिव सञ्चयेन ।
माणिक्य हेम रजतप्रविनिर्मितेन, सालत्रयेण भगवन्नभितो विभासि ॥२७॥
दिव्यस्रजो जिन नमत्त्रिदशाधिपाना, मुत्सृज्य रत्नरचितानपि मौलिबंधान् ।
पादौ श्रयंति भवतायदि वापरत्र, त्वत्संगमे सुमनसो नरमंतएव ॥२८॥
त्वं नाथ जन्मजलधेर्विपराङ्मुखोऽपि, यत्तारयस्यसुमतो निज पृष्टलग्नान् ।
युक्तं हि पार्थिवनिपस्य सतस्तवैव, चित्रं विभो यदसि कर्मविपाकशून्यः ॥२९॥
विश्वेश्वरोऽपि जनपालक दुर्गतस्त्वं, किं वाक्षर प्रकृतिरप्यलिपिस्त्वमीश ।
अज्ञानवत्यपि सदैव कथंचिदेव, ज्ञानंत्वयि स्फुरति विश्व विकास हेतु ॥३०॥
प्राग्भारसम्भृतनभांसिर जांसि रोषा, दुत्थापितानि कमठेन शठेन यानि ।
छायापितैस्तव न नाथ हता हताशो, ग्रस्तस्त्वमी भिरयमेव परं दुरात्मा ॥३१॥

यद्गर्जदूर्जितघनौघ मदभ्र भीम, भ्रश्यत्तडिन्मुसल मांसलघोर धारम्।
दैत्येन मुक्तमथ दुस्तरवारि दध्रे, तेनैव तस्य जिन दुस्तरवारिकृत्यम् ॥३२॥

ध्वस्तोर्ध्वकेशविकृता कृतिमर्त्यमुंड, प्रालंबभृद्भयदवक्त्रविनिर्यदग्निः।
प्रेतव्रजः प्रति भवंतमपीरितो यः, सोऽस्याभवत्प्रतिभवं भवदुःखहेतुः ॥३३॥

धन्यास्त एव भुवनाधिप ये त्रिसंध्य, माराधयंति विधिवद्विधुतान्यकृत्वा।
भक्त्योल्लसत्पुलकपक्ष्मलदेह देशाः, पादद्वयं तव विभो भुवि जन्म भाजः ॥३४॥

अस्मिन्नपारभववारिनिधौ मुनीश, मन्ये न मे श्रवणगोचरतां गतोऽसि।
आकर्णिते तु तव गोत्रपवित्रमंत्रे, किं वा विपद्विषधरी सविधं समेति ॥३५॥

जन्मांतरेऽपि तव पादयुगं न देव, मन्येमया महितमीहितदानदक्षं।
तेनेह जन्मनि मुनीश! पराभवानां, जातो निकेतनमहं मथिताशयानाम् ॥३६॥

नूनं न मोहतिमिरावृतलोचनेन, पूर्वं विभो सकृदपि प्रविलोकितोऽसि।
मर्माविधो विधुरयंति हि मामनर्थाः, प्रोद्यत्प्रबंधगतयः कथमन्यथैते ॥३७॥

आकर्णितोपिमहितोपि निरीक्षितोपि, नूनं न चेतसि मया विधृतोऽसि भक्त्या।
जातोऽस्मि तेन जनबांधव दुःखपात्रं, यस्मात्क्रियाःप्रतिफलंति न भावशून्या ॥३८॥

त्वं नाथ दुःखिजनवत्सल हे शरण्य, कारुण्य पुण्य वसते वशिनां वरेण्य।
भक्त्यानते मयिमहेश दयांविधाय, दुःखांकुरोद्दलन तत्परतां विधेहि ॥३९॥

निसंख्यसारशरणं शरणं शरण्य, मासाद्य सादित रिपुप्रथितावदानं।
त्वत्पादपंकजमपि प्रणिधान वंध्यो, वंध्योस्मि तद्भुवनपावन हा हतोस्मि ॥४०॥

देवेंद्र वंद्य विदिताखिल वस्तुसार, संसारतारक विभो भुवनाधिनाथ।
त्रायस्व देव करुणाह्रद मां पुनीहि, सीदन्तमद्य भयदव्यसनांबुराशेः ॥४१॥

यद्यस्ति नाथ भवदंघ्रिसरोरुहाणां, भक्तेः फलं किमपि संततसंचितायाः।
तन्मे त्वदेकशरणस्य शरण्य भूयाः, स्वामी त्वमेव भुवनेत्र भवांतरेपि ॥४२॥

इत्थं समाहितधियो विधिवज्जिनेंद्र, सांद्रोल्लसत्पुलककंचुकितांग भागाः।
त्वद्बिम्बनिर्मलमुखाम्बुजबद्धलक्ष्या, ये संस्तवं तव विभो रचयंति भव्याः ॥४३॥

जन नयन कुमुद चंद्र प्रभास्वराः, स्वर्गसंपदो भुक्त्वा।
ते विगलितमलनिचया अचिरान्मोक्षं प्रपद्यंते ॥४४॥

इति कल्याण मंदिर स्तोत्रम्

श्री वादिराज प्रणीतं

❀ एकीभाव स्तोत्रम् ❀

एकीभावं गत इवमया यः स्वयं कर्मबन्धो, घोरं दुःख भवभवगतो दुर्निवारःकरोति।
तस्याप्यस्य त्वयिजिनवरे भक्तिरुन्मुक्तये चे,ज्जेतुं शक्यो भवति न तयाकोऽपरस्तापहेतुः ।१।
ज्योतीरूपं दुरितनिवह ध्वान्तविध्वंसहेतुं, त्वामेवाहुर्जिनवर चिरं तत्त्वविद्याभियुक्ताः।
चेतोवासे भवसि च मम स्फारमुद्भासमान, स्तस्मिन्नंहः कथमिवतमोवस्तुतो वस्तुमोष्टे ।२।
आनन्दाश्रुस्न पित वदनं गद्गदं चाभिजल्पन्,यश्चायेत त्वयिदृढमनाःस्तोत्रमन्त्रैर्भवन्तम्।
तस्याभ्यस्तादपि च सुचिरंदेहवल्मीकमध्या,न्निष्कास्यंते विविधविषमव्याधयःकाद्रवेयाः ।३।
प्रागेवेह त्रिदिवभवनादेष्यता भव्यपुण्यात्, पृथ्वीचक्रं कनकमयतां देव निन्ये त्वयेदम्।
ध्यानद्वारं मम रुचिकरं स्वान्तगेहं प्रविष्ट, स्तत्किं चित्रं जिनवपुरिदं यत्सुवर्णीकरोषि ।४।
लोकस्यैकस्त्वमसि भगवन्निर्निमित्तेन, बन्धुस्त्वय्येवासौ सकलविषया शक्तिरप्रत्यनीका।
भक्तिस्फीतांचिरमधिवसन्मामिकांचित्तशय्यां,मय्युत्पन्नं कथमिव ततः क्लेशयूथंसहेथाः ।५।
जन्माटव्यां कथमपिमया देव दीर्घं भ्रमित्वा,प्राप्तैवेयं तव नय कथा स्फारपीयूषवापी।
तस्या मध्ये हिमकर हिमव्यूहशीते नितान्तं निर्मग्नं मां न जहित कथं दुःखदावोपतापाः ।६।
पादन्यासादपि च पुनतो यात्रया ते त्रिलोकीं,हेमाभासो भवतिसुरभिःश्रीनिवासश्च पद्मः।
सर्वांगेण स्पृशति भगवंस्त्वय्यशेषं मनो मे, श्रेयः किं तत्स्वयमहरहर्यन्न मामभ्युपैति ।७।
पश्यन्तं त्वद्वचनममृतं भक्तिपात्र्या पिबन्तं, कर्मारण्यात्पुरुषमसमानन्दधाम प्रविष्टम्।
त्वां दुर्वारस्मरमदहरं त्वत्प्रसादैकभूमिं, क्रूराकाराः कथमिव रुजाकण्टका निलुंठन्ति ।८।
पाषाणात्मा तदितरसमः केवलं रत्नमूर्ति, र्मानस्तम्भो भवति च परस्तादृशो रत्नवर्गः।
दृष्टिप्राप्तो हरति स कथं मानरोगंनराणां, प्रत्यासत्तिर्यदि न भवतस्तस्य तच्छक्तिहेतुः ।९।
हृद्यःप्राप्तो मरुदपि भवन्मूर्ति शैलोपवाही, सद्यः पुंसां निरवधिरुजाधूलिबन्धं धुनोति।
ध्यानाहूतो हृदयकमलं यस्य तुत्वं प्रविष्ट, स्तस्याशक्यः क इह भुवने देवलोकोपकारः ।१०।
जानासि त्वं मम भवभवेयच्चयादृक्च दुखंजातं यस्यस्मरणमपि मे शस्त्रवन्निष्पिनष्टि।
त्वं सर्वेशःसकृपइति च त्वामुपेतोऽस्मि भक्तया, यत्कर्तव्यंतदिहविषये देव एवप्रमाणम् ।११।
प्रापद्दैवं तव नुतिपदैर्जीवकेनोपदिष्टैः, पापाचारीमरणसमये सारमेयोऽपि सौख्यम्।
कः संदेहोयदुपलभते वासव श्रीप्रभुत्वं,जलपञ्जाप्यैर्मणिभिरमलैस्त्वन्नमस्कार चक्रम् ।१२।
शुद्धे ज्ञानेशुचिनिचरितेसत्यपित्वय्यनीचा,भक्तिर्नोचेदन वधिसुखावञ्चिकाकुञ्चिकेयम्।
शक्योद्घाटंभवति हि कथं मुक्तिकामस्य पुंसो, मुक्तिद्वारं परिदृढ़महामोहमुद्राकवाटम् ।१३।

प्रच्छन्नः खल्वयमघमयैरंधकारैः समंता, त्पंथा मुक्तेः स्थपुटितपदः क्लेशगर्तैरगाधैः।
तत्कस्तेन व्रजति सुखतो देव तत्त्वावभासी, यद्यग्रेऽग्रे न भवति भवद्भारतीरत्नदीपः।१४।
आत्मज्योति र्निधिरनवधिर्द्रष्टुरानंद हेतुः, कर्मक्षोणीपटलपिहितो योऽनवाप्यः परेषां।
हस्ते कुर्वन्त्यनतिचिरतस्तं भवद्भक्तिभाजः, स्तोत्रैर्बंध प्रकृतिपुरुषोद्दामधात्री खनित्रैः।१५।
प्रत्युत्पन्नानयहिमगिरेरायताचामृताब्धेर्या, देव त्वत्पदकमलयोः संगता भक्तिगंगा।
चेतस्तस्यां मम रुचिवशादाप्लुतं क्षालितांहः, कल्माषं यद्भवति किमियं देव संदेहभूमिः।१६।
प्रादुर्भूतस्थिरपदसुखं त्वामनुध्यायतो मे, त्वय्येवाहं स इति मतिरुत्पद्यते निर्विकल्पा।
मिथ्यैवेयं तदपि तनुते तृप्तिमभ्रेषरूपां, दोषात्मानोप्यभिमतफलास्त्वत्प्रसादाद्भवंति।१७।
मिथ्यावादं मलमपनुदन्सप्तभंगीतरंगै, र्वागंभोधिर्भुवनमखिलं देव पर्येति यस्ते।
तस्यावृत्तिं सपदि विबुधाश्चेतसैवाचलेन, व्यातन्वंतः सुचिरममृतसेवया तृप्नुवंति।१८।
आहार्येभ्यः स्पृहयति परं यःस्वभावादहृद्यः,शस्त्रग्राही भवति सततं वैरिणायश्च शक्यः।
सर्वांगेषु त्वमसि सुभगस्त्वं न शक्यः परेषां,तत्किं भूषावसनकुसुमैः किं च शस्त्रैरुदस्त्रै।१९।
इन्द्रः सेवांतव सुकुरुतां किं तया श्लाघनं ते,तस्यैवेयंभवलयकरी श्लाघ्यतामातनोति।
त्वंनिस्तारीजननजलधेःसिद्धिकांतापतिस्त्वं, त्वंलोकानांप्रभुरितितवश्लाघ्यतेस्तोत्रमित्थं।२०।
वृत्तिर्वाचामपरसदृशी न त्वमन्येन तुल्य, स्तुत्यद्गाराः कथमिव ततस्त्वय्यमीनःक्रमंते।
मैवं भूवंस्तदपि भगवन्भक्तिपीयूषपुष्टा, स्ते भव्यानामभिमतफलाःपारिजाता भवंति।२१।
कोपावेशो न तव न तव क्वापि देव प्रसादो, व्याप्तंचेतस्तव हि परमोपेक्षयैवानपेक्षं।
आज्ञावश्यं तदपि भुवनं सन्निधिर्वैरहारी, क्वैवंभूतं भुवनतिलक ! प्राभवं त्वत्परेषु।२२।
देव स्तोतुं त्रिदिवगणिकामंडलीगीतकीर्तिं,तोतूर्ति त्वां सकलविषयज्ञानमूर्तिं जनोयः।
तस्यः क्षेमं न पदमटतो जातु जोहूर्ति पंथा,स्तत्त्वग्रंथस्मरणविषये नैष मोमूर्ति मर्त्यः।२३।
चित्ते कुर्वन्निरवधिसुखज्ञानदृग्वीर्यरूपं, देव त्वां यः समयनियमादादरेण स्तवीति।
श्रेयोमार्गं सखलुसुकृतीतावता, पूरयित्वा कल्याणानांभवति विषयःपंचधा पंचितानां।२४।
भक्तिप्रह्वमहेंद्रपूजितपदत्वत्कीर्तने न क्षमाःसूक्ष्मज्ञानदृशोऽपिसंयमभृतःके हन्तमंदा वयं।
अस्माभिः स्तवनच्छलेन तु परस्त्वय्यादरस्तन्यते, स्वात्माधीनसुखैषिणां स खलु नः
कल्याणकल्पद्रुमः।२५।

वादिराज मनु शाब्दिकलोको वादिराजमनु तार्किकसिंहः।
वादिराजमनु काव्यकृतस्ते वादिराजमनु भव्य सहायः।२६।

—इति श्री वादिराज कृतमेकीभाव स्तोत्रम्—

ॐ श्री धनंजय कवि प्रणीतं । ह्रीं

विषापहार स्तोत्रं

स्वात्मस्थितः सर्वगतः समस्त, व्यापारवेदी विनिवृत्तसंगः ।
प्रवृद्धकालोप्यजरो वरेण्यः, पायादपायात्पुरुषः पुराणः ॥ १ ॥
परैरचिंत्यं युगभारमेकः, स्तोतुं वहन्योगिभिरप्यशक्यः ।
स्तुत्योऽद्यमेऽसौऽवृषभो नभानोः, किमप्रवेशे विशति प्रदीपः ॥ २ ॥
तत्याज शक्रः शकनाभिमानं, नाहं त्यजामि स्तवनानुबंधं ।
स्वल्पेन बोधेन ततोधिकार्थं, वातायनेनेव निरूपयामि ॥ ३ ॥
त्वं विश्वदृश्वा सकलैरदृश्यो, विद्वानशेषं निखिलैरवेद्यः ।
वक्तुं कियान्कीदृशमित्यशक्यः, स्तुतिस्ततो ऽशक्तिकथा तवास्तु ॥ ४ ॥
व्यापीडितं बाल मिवात्मदोषै, रुल्लाघतां लोकमवापि पस्त्वं ।
हिताहितान्वेषण मांद्य भाज्यः, सर्वस्य जंतोरसि बालवैद्यः ॥ ५ ॥
दाता न हर्ता दिवसं विवस्वा, नद्यश्व इत्य च्युत दर्शिताशः ।
सव्याजमेवं गमयत्य शक्तः, क्षणेन दत्सेऽभिमतंनताय ॥ ६ ॥
उपैति भक्त्या सुमुखः सुखानि, त्वयि स्वभावाद्विमुखश्च दुःखं ।
सदावदात द्युतिरेक रूप, स्तयोस्त्वमादर्श इवाऽऽवभासि ॥ ७ ॥
अगाद्यताऽब्धेः सयतः पयोधि, मे रोश्च तुंगाप्रकृतिः स यत्र ।
द्यावा पृथिव्यो प्रथुता तथैव, व्यापत्वदीया भुवनांतराणि ॥ ८ ॥
तवानवस्था परमार्थतत्त्वं, त्वया न गीतः पुनरागमश्च ।
दृष्टं विहाय त्वमदृष्टमैषी, विरुद्धवृत्तोऽपि समंजसस्त्वं ॥ ९ ॥
स्मरःसुदग्धो भवतैव तस्मि, न्नुद्धूलितात्मा यदि नाम शंभु ।
अशेत वृन्दोपहतोपि विष्णुः, किं गृह्यते येन भवानजागः ॥१०॥
स नीरजा स्यादपरोऽघवान्वा, तद्दोषकीर्त्यैव न ते गुणित्वं ।
स्वतोंबुराशेर्महिमा न देव, स्तोकापवादेन जलाशयस्य ॥११॥
कर्मस्थितिं जंतुरनेकभूमिं, नयत्यमुं सा च परस्परस्य ।
त्वं नेतृभावं हि तयोर्भवाब्धौ, जिनेन्द्र नौनाविक योरिवाख्यः ॥१२॥
सुखाय दुःखानि गुणाय दोषा, न्धर्माय पापानि समाचरंति ।

तैलाय बालाः सिकतासमूहं, निपीडयन्ति स्फुटमत्वदीयाः ।।१३।।
विषापहारं मणिमौषधानि, मन्त्रं समुद्दिश्य रसायनं च ।
भ्राम्यन्त्यहो नत्वमितिस्मरन्ति, पर्यायनामानि तवैव तानि ।।१४।।
चित्ते न किञ्चित्कृतवानसि त्वं, देवः कृतश्चेतसि येन सर्वम् ।
हस्ते कृतं तेन जगद्विचित्रं, सुखेन जीवत्यपि चित्तवाह्यः ।।१५।।
त्रिकालतत्त्वं त्वमवैस्त्रिलोकी, स्वामीति संख्या नियतेरमीषाम् ।
बोधाधिपत्यं प्रति नाभविष्यं, स्तेऽन्येऽपि चेद् व्याप्स्यदमूनपीदम् ।।१६।।
नाकस्य पत्युः परिकर्म रम्यं, नागम्यरूपस्य तवोपकारि ।
तस्यैव हेतुः स्वसुखस्य भानो, रुद्बिभ्रतश्छत्र मिवादरेण ।।१७।।
क्वोपेक्षकस्त्वं क्व सुखोपदेशः, स चेत् किमिच्छा प्रतिकूलवादः ।
क्वासौ क्व वा सर्वजगत्प्रियत्वं, तन्नो यथा तथ्य मवेविजं ते ।।१८।।
तुंगात्फलं यत्तदकिञ्चनाच्च, प्राप्यं समृद्धान्न धनेश्वरादेः ।
निरम्भसोऽप्युच्चत मादिवाद्रे, र्नैकापि निर्याति धुनी पयोधेः ।।१९।।
त्रैलोक्य सेवा नियमाय दण्डं, दध्रे यदिन्द्रो विनयेन तस्य ।
तत्प्रातिहार्यं भवतः कुतस्त्यं, तत्कर्मयोगाद्यदि वा तवास्तु ।।२०।।
श्रिया परं पश्यति साधु निःस्वः, श्रीमान्न कश्चित्कृपणं त्वदन्यः ।
यथा प्रकाश स्थित मन्धकार, स्थायीक्षतेऽसौ न तथातमःस्थम् ।।२१।।
स्ववृद्धिनिः श्वास निमेषभाजि, प्रत्यक्ष मात्मानु भवेऽपि मूढः ।
किं चाखिलज्ञेय विवर्तिबोध, स्वरूप मध्य क्षमवैति लोकः ।।२२।।
तस्यात्म जस्तस्य पितेति देव, त्वां येऽवगायन्ति कुलं प्रकाश्य ।
तेऽद्यापि नन्वाश्मनमित्यवश्यं, पाणौ कृतं हेम पुनस्त्यजन्ति ।।२३।।
दत्तस्त्रिलोक्यां पटहोऽभिभूताः, सुरासुरास्तस्य महान्स लाभः ।
मोहस्य मोहस्त्वयि को विरोद्धु, र्मूलस्य नाशो बलवद्विरोधः ।।२४।।
मार्गस्त्वयैको ददृशे विमुक्ते श्च, तुर्गतीनां गहनं परेण ।
सर्वं मया दृष्टमिति स्मयेन, त्वं मा कदाचिद् भुजमालुलोके ।।२५।।
स्वर्भानुरर्कस्य हविर्भुजोऽम्भः, कल्पान्त बातोम्बुनिधेर्विघातः ।
संसारभोगस्य वियोगभावो, विपक्ष पूर्वाभ्युदयास्त्वदन्ये ।।२६।।
अजानतस्त्वां नमतः फलंयत्त, ज्जानतोऽन्यं न तु देवतेति ।
हरिन्मणिं काचधिया दधानस्तं, तस्य बुद्धया वहतो न रिक्तः ।।२७।।

प्रशस्तवाचश्चतुराः कषायै, र्दग्धस्य देवव्यवहारमाहुः।
गतस्य दीपस्य हि नन्दितत्वं, दृष्टं कपालस्य च मंगलत्वम् ॥२८॥
नानार्थ मेकार्थ मदस्त्वदुक्तं, हितं वचस्ते निशमय्य वक्तुः।
निर्दोषतां के न विभावयन्ति, ज्वरेण मुक्तः सुगमः स्वरेण ॥२९॥
न क्वापि वाञ्छा ववृते चवाक्ते, कालेक्वचित्कोऽपि तथानियोगः।
नपूरयाम्यम्बुधि मित्युदंशुः, स्वयं हि शीतद्युतिरभ्युदेति ॥३०॥
गुणागभीराः परमः प्रसन्ना, वहु प्रकारा बहवस्तवेति।
दृष्टोऽयमन्तः स्तवने नतेषां, गुणो गुणानां किमतः परोऽस्ति ॥३१॥
स्तुत्या परं नाभिमतंहि भक्त्या, स्मृत्या प्रणत्या च ततो भजामि।
स्मरामि देवं प्रणमामि नित्यं, केनाप्युपायेन फलंहि साध्यम् ॥३२॥
ततस्त्रिलोकी नगराधि देवं, नित्यं परं ज्योतिरनन्त शक्तिम्।
अपुण्यपापं परपुण्यहेतुं, नमाम्यहं वन्द्यम वन्दितारम् ॥३३॥
अशब्दम स्पर्शम रूप गन्धं, त्वाँ नीरसं तद्विषयाव बोधम्।
सर्वस्य मातारममेय मन्यै, र्जिनेन्द्र मस्मार्य मनुस्मरामि ॥३४॥
अगाधमन्यै र्मनसाऽप्य लंघय, र्निष्किचनं प्रार्थित मर्थ वद्भिः।
विश्वस्य पारं तमदृष्ट पारं, पतिं जिनानां शरणं व्रजामि ॥३५॥
त्रैलोक्य दीक्षा गुरवे नमस्ते, यो वर्धमानोऽपि निजोन्नतोऽभूत।
प्राग्गण्ड शैलः पुनरद्रि कल्पः, पश्चान्नमेरुः कुलपर्वतोऽभूत् ॥३६॥
स्वयं प्रकाशस्य दिवानिशा वा, न बाध्यता यस्य न बाधकत्वम्।
नलाघवं गौरवमेक रूपं, वन्दे विभुं कालकलामतीतम् ॥३७॥
इति स्तुतिं देव विधाय दैन्या, द्वरं नयाचे त्वमुपेक्षकोऽसि।
छायातरुं संश्रयतः स्वतः, स्यात्कश्छायया याचितयात्मलाभः॥३८॥
अथास्ति दित्सा यदि वोपरोध, स्त्वय्येवसक्तांदिश भक्ति बुद्धिम्।
करिष्यते देव तथा कृपांमे, को वात्मपोष्ये सुमुखो न सूरिः ॥३९॥
वितरति विहिता यथाकथंचि, ज्जिनविनताय मनोषितानिभक्तिः।
त्वयि नुतिविषया पुनर्विशेषा, द्दिशतिसुखानि यशो धनंजयं च ॥४०॥

— इति श्रीधनजय कृत विषापहारस्तोत्रम् सम्पूर्णम् —

श्री भूपाल कवि प्रणीता

जिन चतुर्विशतिका

श्रीलीलायतनं महीकुलगृहं कीर्तिप्रमोदास्पदं ।
वाग्देवीरतिकेतनं जयरमाक्रीडानिधानं महत् ।।
सः स्यात्सर्व महोत्सवैक भवनं यः प्रार्थितार्थं प्रदं ।
प्रातः पश्यति कल्पपाद पद लच्छायं जिनांघ्रिद्वयं ।।१।।

शान्तं वपुः श्रवणहारि वचश्चरित्रं ।
सर्वोपकारि तव देव ततः श्रुतज्ञाः ।।
संसारमार व महास्थल रुद्र सान्द्र- ।
च्छाया महीरुह भवन्त मुपा श्रयन्ते ।।२।।

स्वामिन्नद्य विनिर्गतोऽस्मि जननी गर्भान्ध कूपोदरा ।
दद्योद्घाटित दृष्टिरस्मि फलवज्जन्मास्मि चाद्यस्फुटम् ।।
त्वामद्राक्षमहं यद क्षय पदानन्दाय लोकत्रयी ।
नेत्रेन्दीवर काननेन्दुम मृतस्यन्दि प्रभाचन्द्रिकम् ।।३।।

निःशेष त्रिदशेन्द्र शेखरशिखा रत्न प्रदीपावली ।
सान्द्रीभूत मृगेन्द्र विष्टरतटी माणिक्य दीपावलिः ।।
क्वेयं श्रीःक्वच निःस्पृहत्वमिद मित्यूहाति गस्त्वादृशः ।
सर्वज्ञान दृशश्चरित्र महिमा लोकेश लोकोत्तरः ।।४।।

राज्यं शासन कारिनाकपति यत्त्यक्तं तृणावज्ञया ।
हेलानिर्दलित त्रिलोकमहिमा यन्मोह मल्लोजितः ।।
लोकालोकमपि स्वबोध मुकुर स्यान्तः कृतं यत्त्वया ।
सैषाऽऽश्चर्य परम्परा जिनवर क्वान्यत्र संभाव्यते ।।५।।

दानं ज्ञानधनाय दत्तम सकृत्पात्राय सद्वृत्ताये ।
चीर्णान्युग्रतपांसि तेन सुचिरं पूजाश्च बह्वयः कृताः ।।
शीलानां निचयः सहामल गुणैः सर्वैः समासादितो ।
दृष्टस्त्वं जिन येन दृष्टि सुभगः श्रद्धापरेण क्षणम् ।।६।।

प्रज्ञापारमितः स एव भगवान्पारं स एव श्रुत,
स्कंधाब्धेर्गुणरत्नभूषण इति श्लाघ्यः स एव ध्रुवं।
नीयंते जिन येन कर्णहृदयालंकारतां त्वद गुणाः,
संसाराहिविषाप हार मणय स्त्रैलोक्य चूडामणेः ॥७॥

जयति दिविजवृंदान्दोलितैरिंदुरोचि,
निचय रुचिभि रुच्चैश्चामरैर्वीज्यमानः।
जिनपतिरनुरज्यन्मुक्ति साम्राज्य लक्ष्मी,
युवति नव कटाक्ष क्षेपलीलां दधानैः ॥८॥

देवः श्वेतातपत्र त्रयचमरिरुहाशोक भाश्चक्र भाषा,
पुष्पौघासार सिंहासन सुरपट हैरष्टभिः प्रातिहार्यैः।
साश्चर्यैर्भ्राजमानःसुरमनुजस भांभोजिनी भानुमाली,
पायान्नःपादपीठीकृत सकल जगत्पाल मौलिर्जिनेंद्रः ॥६॥

नृत्यत्स्वर्दन्तिदन्ता बुरुहवन नटन्ना कनारीनिकायः,
सद्यस्त्रैलोक्ययात्रोत्सव करनिनदातोद्यमाद्यन्निलिंपः।
हस्तां भोजातलीलाविनिहित सुमनोद्दामरम्यामरस्त्री,
काम्यः कल्याण पूजाविधिषु विजयते देवदेवागमस्ते ॥१०॥

चक्षुष्मानहमेव देव भुवने नेत्रा मृतस्यंदिनं,
त्वद्वक्रेन्दु मति प्रसाद सुभगैस्ते जोभिरुद्भासितं।
येना लोकयता मयाऽनतिचिराच्चक्षुः कृतार्थीकृतं,
द्रष्टव्या वधिवीक्षण व्यतिकरव्या जृम्भमाणोत्सवं ॥११॥

कंतोः सकांतमपि मल्लमवैति कश्चिन्,
मुग्धो मुकुंद मरविंद जमिंदुमौलि।
मोघी कृतत्रि दशायोषिद पाँगपात,
स्तस्त त्वमेव विजयी जिनराजमल्लः ॥१२॥

किसलयित मनल्पं त्वद्विलोका भिलाषा,
त्कुसुमित मतिसांद्रं त्वत्समीप प्रयाणात्।
मम फलितममंदं त्वन्मुखेंदोरिदानीं,
नयनपथ मवाप्ताद्देव पुण्य द्रुमेण ॥१३॥

त्रिभुवन वनपुष्प्यत्पुष्पको दण्डदर्प,
प्रसरदवन वाम्भो मुक्तिसूक्ति प्रसूतिः।
स जयति जिनराजव्रात जीमूतसंघः,
शतमखशिखि नृत्यारम्भ निर्बन्धबन्धुः ॥१४॥

भूपालः स्वर्गपाल प्रमुखनरसुर श्रेणिनेत्रालिमाला,
लीलाचैत्यस्य चैत्यालयमखिलजगत्कौमुदीन्दोर्जिनस्य।
उत्तंसीभूतसेवाञ्जलिपुटनलिनीकुड्मलास्त्रिः परीत्य,
श्रीपादच्छाययापस्थितभवदवथुः संश्रितोऽस्मीवमुक्तिम् ॥१५॥

देव त्वदंघ्रिनख मण्डल दर्पणेऽस्मिन्,
नर्घ्ये निसर्गरुचिरे चिरदृष्टवक्त्रः।
श्रीकीर्तिकान्ति धृतिसंगम कारणानि,
भव्यो न कानि लभते शुभमंगलानि ॥१६॥

जयति सुरनरेन्द्र श्रीसुधा निर्झरिण्याः,
कुलधरणि धरोऽयं जैनचैत्या भिरामः।
प्रविपुल फलधर्मा नोकहाग्र प्रवाल,
प्रसर शिखर शुम्भत्केतनः श्रीनिकेतः ॥१७॥

विनमद मरकान्ता कुन्तला क्रान्तिकान्ति,
स्फुरित नखमयूखद्यो तिताशान्तरालः।
दिविजमनु जराजव्रात पूज्यक्रमाब्जो,
जयति विजितकर्मारातिजालो जिनेन्द्रः ॥१८॥

सुप्तोत्थितेन सुमुखेन सुमंगलाय,
द्रष्टव्यमस्ति यदि मंगलमेव वस्तु।
अन्येन किं तदिह नाथ तवैव वक्त्रं,
त्रैलोक्य मंगल निकेतन मीक्षणीयम् ॥१९॥

त्वं धर्मोदयतापसाश्रमशुकस्त्वं काव्यबन्धक्रम,
क्रीडानन्दनकोकिलस्त्वमुचितः श्रीमल्लिकाषट्पदः।
त्वं पुन्नागकथारविन्दसरसीहंसस्त्वमुत्तं सकैः,
कैर्भूपाल न धार्यसे गुणमणिस्रङ् मालिभिर्मौलिभिः ॥२०॥

13

शिवसुखमजर श्रीसंगमं चाभिलष्य,
स्वमभि निगमयन्ति क्लेशपाशेन केचित् ।।
वयमिह तु वचस्ते भूपते र्भावयन्त,
स्तदुभयमपि शश्वल्लीलया निर्विशामः ।।२१।।

देवेन्द्रास्तवमज्जनानि विदधुर्देवांगना मंगला,
न्यापेठुः शरदिन्दुनिर्मलयशो गन्धर्व देवा जगुः ।।
शेषाश्चापि यथानियोगमखिलाः सेवां सुराश्चक्रिरे,
तत्किं देव वयं विदध्म इति नश्चित्तं तु दोलायते ।।२२।।

देव त्वज्जननाभिषेकसमये रोमाञ्च सत्कञ्चुकै,
र्देवेन्द्रै यंदनर्ति नर्तनविधौ लब्धप्रभावैःस्फुटम् ।।
किंचान्य त्सुरसुन्दरी कुच तट प्रान्ता वनद्धोत्तम,
प्रेङ्ख द्वल्लकिनादझंकृतमहो तत्केन संवर्ण्यते ।।२३।।

देव त्वप्रतिबिम्बमम्बुजदल स्मेरेक्षणं पश्यतां,
यत्रास्माकमहो महोत्सवरसो दृष्टे रियान्वर्तते ।।
साक्षात्तत्रभवन्तमीक्षितवतां कल्याणकाले तदा,
देवानामनिमेषलोचनतया वृत्तः स किं वर्ण्यते ।।२४।।

दृष्टं धाम रसायनस्य महतां दृष्टं निधीनां पदं,
दृष्टं सिद्धरसस्य सद्मसदनं दृष्टं च चिन्तामणेः ।।
किं दृष्टेरथवानुषंगिकफलैरेभिर्मयाऽद्य ध्रुवं,
दृष्टं मुक्तिविवाहमंगलगृहं दृष्टे जिनश्रीगृहे ।।२५।।

दृष्टस्त्वं जिनराजचन्द्र विकसद्भूपेन्द्रनेत्रोत्पलैः,
स्नातं त्वन्नुतिचन्द्रिकाम्भसि भव द्विद्वच्चकोरोत्सवे ।।
नीतश्चाद्य निदाघजः क्लमभरः शांतिमया गम्यते,
देव त्वद्गतचेतसैव भवतो भूयात्पुनर्दर्शनम् ।।२६।।

इति श्री भूपाल कवि प्रणीता जिनचतुर्विंशतिका



-श्रीयुत पंडित महाचन्द्र जी कृत-

सामायिक भाषा

१—अथ प्रथम प्रतिक्रमण कर्म

काल अनंत भ्रम्यो जग में सहिये दुख भारी, जन्ममरण नित किये पापको ह्वै अधिकारी।
कोटि भवांतरमांहि मिलन दुर्लभ सामायक, धन्य आज मैं भयो योग मिलियो सुखदायक ।१।
हे सर्वज्ञ जिनेश किये जे पाप जु मैं अब, ते सब मनवचकाय योग की गुप्तिविना लभ।
आपसमीप हजूरमांहि मैं खड़ो खड़ो सब, दोष कहूं सो सुनो करो नठ दुःख देहिं जब ।२।
क्रोधमानमदलोभमोह माया वशि प्राणी, दुःख सहित जे किये दया तिनकी नहिं आणी।
विना प्रयोजन एकेंद्रिय बि ति चउ पचेंद्रिय, आपप्रसादहिं मिटै दोष जोलग्यो मोहिं जिय ।३।
आपस मैं इक ठौर थापि करि जे दुख दीने, पेलि दिये पगतले दाबिकर प्राण हरीने।
आप जगत के जीव जिते तिन सबके नायक, अरज करूं मैं सुनो दोष मेटो दुखदायक ।४।
अंजन आदिक चोर महाघनघोर पापमय, तिनके जे अपराध भये ते क्षमा क्षमा किय।
मेरे जे अब दोष भये ते क्षमो दयानिधि, यह पडिकोणो कियो आदि षटकर्ममांहि विधि ।५।

इति प्रतिक्रमण कर्म।

२—अथ द्वितीय प्रत्याख्यान कर्म

जो प्रमादवशि होय विराधे जीव घनेरे, तिनको जो अपराध भयो मेरे अघ ढेरे।
सो सब झूठो होउ जगतपति के परसादै, जा प्रसादतै मिलै सर्व सुख दुःख न लाधै ।६।
मैं पापी निर्लज्ज दयाकरि हीन महाशठ, किये पाप अघढेर पापमति होय चित्त दुठ।
निंदू हूं मैं बारबार निज जियको गरहूं, सबविधि धर्म उपाय पाय फिर पापहि करहूं ।७।
दुर्लभ है नरजन्म तथा श्रावककुल भारी, सतसंगति संयोग धर्म जिन श्रद्धा धारी।
जिनवचनामृत धार समावर्तै जिनवाणी, तोहू जीव संघारे धिक धिक धिक हम जाणी ।८।
इंद्रिय लंपट होय खोय निजज्ञान जमा सब, अज्ञानीजिमि करै तिसी विधिहिंसकह्वै अब।
गमनागमन करंतो जीव विराधे भोले, ते सब दोष किये निन्दूं अब मन वच तोले ।९।
आलोचन विधि थकी दोष लागे जु घनेरे, ते सब दोष विनाश होउ तुम तैं जिन मेरे।
बारबार इस भांति मोहमद दोष कुटिलता, ईर्षादिक तैं भये निंदिये जे भयभीता ।१०।

इति प्रत्याख्यान कर्म ॥२॥

३-अथ तृतीय सामायिक कर्म

सब जीवन में मेरे समताभाव जग्यो है, सब जिय मोसम समता राखो भाव लग्यो है।
आर्त्तरौद्र द्वयध्यान छांडि करिहूं सामायिक, संयम मो कब शुद्ध होय यह भाव बधायक।११।
पृथ्वीजल अरु अग्निवायु चउकाय वनस्पति,पंचहि थावरमांहि तथात्रसजीवबसै जित।
बेइंद्रियतिय चउ पंचेंद्रियमांहि जीवसब, तिनतें क्षमाकराऊं मुझपर क्षमाकरो अब।१२।
इस अवसरमें मेरे सब समकंचन अरु तृण, महल मसान समानशत्रु अरुमित्रहिसम गण।
जामनमरण समान जानिहम समता कीनी, सामायिकका काल जितै यह भावनवीनी।१३।
मेरोहै इक आतम तामैं ममत जु कीनो, और सबै मम भिन्न जानि समतारसभीनो।
मातपिता सुतबंधु मित्र तिय आदिसबै यह, मोतैन्यारेजानि जथारथरूप कर्यो गह।१४।
मैं अनादि जगजालमांहि फंसि रूप न जाण्यो, एकेंद्रिय दे आदि जंतुको प्राण हराण्यो।
ते अब जीवसमूह सुनो मेरी यह अरजी, भवभवको अपराध क्षमा कीज्यो कर मरजी।१५।

—इति तृतीय सामायिक कर्म ॥ ३ ॥—

४-अथ चतुर्थ स्तवन कर्म

नमौ ऋषभजिनदेव अजितजिनजीतकर्मको। संभव भवदुखहरणकरणअभिनंद शर्मको।
सुमतिसुमति दातार तार भवसिंधु पारकर। पद्मप्रभपद्माभ भानिभव भीतिप्रीति धर।१६
श्रीसुपार्श्व कृतपाश नाश भव जास शुद्धकर। श्रीचंद्रप्रभ चंद्रकातिसम देह कांतिधर।
पुष्पदंत दमिदोषकोश भविपोष रोषहर। शीतल शीतल करणहरण भवताप दोषहर।१७
श्रेयरूप जिनश्रेय धेय नित सेय भव्यजन। वासुपूज्य शतपूज्य वासवादिक भवभयहन।
विमल विमलमतिदेनअंतगत हैअनंतजिन। धर्मशर्मशिवकरणशांतिजिनशांतिविधायिन।१८
कुंथुकुंथुमुख जीवपालअरनाथजाल हर। मल्लिमल्लसम मोहमल्लमारण प्रचार धर।
मुनिसुव्रतव्रतकरण नमतसुरसंघहि नमिजिन। नेमिनाथजिननेमिधर्मरथमांहि ज्ञानधन।१९
पार्श्वनाथजिन पार्श्वउपलसम मोक्ष रमापति। वर्द्धमानजिन नमूंवमूं भवदुःख कर्मकृत।
या विधि मैं जिन संघरूप चउवीस संख्यधर। स्तवूं नमूंहूं बारबार वंदूं शिव सुखकर।२०

—इति चतुर्थ स्तवन कर्म ॥ ४ ॥—

५–अथ पंचम वंदना कर्म

वंदूं मैं जिनवीर धीर महावीर सु सन्मति, वर्द्धमानअतिवीर वंदि होंमनवचतनकृत ।
त्रिशला तनुज महेश धीश विद्यापति वंदूं, वंदूं नित प्रति कनकरूपतनु पापनिकंदूं ।२१।

सिद्धारथ नृप नंदद्वंदुख दोष मिटावन, दुरित दवानल ज्वलित ज्वालजगजीवउधारन ।
कुंडलपुर करि जन्म जगतजिय आनंदकारन, वर्ष बहत्तर आयु पाय सबही दुख टारन ।२२।

सप्त हस्त तनु तुंग भंगकृत जन्म मरण भय, बालब्रह्ममय ज्ञेय हेय आदेय ज्ञानमय ।
दे उपदेश उधारितारि भवसिंधु जीवघन, आप बसे शिव माँहि ताहि वंदौ मनवचतन ।२३।

जाके वंदन थकी दोष दुखदूरहिं जावै, जाके वंदन थकी मुक्तितिय सन्मुख आवै ।
जाके वंदन थकी वंद्य होवैं सुरगनके, ऐसे वीर जिनेश वन्दि हूं क्रमयुग तिनके ।२४।

सामायिक षट्कर्ममाहिं वंदन यह पंचम, वंदे वीर जिनेंद्र इंद्रशत वंद्य वंद्य मम ।
जन्म मरणभयहरो करो अघशांति शांतिमय,मैं अघकोष सुपोषदोषको दोष विनाशय ।२५।

इति पंचम वंदना कर्म ॥५॥

६–अथ छठ्ठा कायोत्सर्ग कर्म

कायोत्सर्ग विधान करूं अंतिम सुखदाई, कायत्यजनमय होय काय सबको दुखदाई ।
पूरब दक्षिण नमूं दिशापश्चिम उत्तरमैं, जिनगृह वंदन करूं हरूं भवपापतिमिर मैं ।२६।

शिरोंनती मैं करूं नमूं मस्तककरधरिकै, आवर्तादिक क्रिया करूं मनवच मद हरिकै ।
तीनलोक जिनभवन माँहिजिन है जु अकृत्रिम, कृत्रिमहैद्वय अर्द्धद्वीप माहीं वन्दोंजिम ।२७।

आठकोडिपरिछप्पन्नलाख जुसहससत्याणूं चारिशतपकरिअसीएकजिनमंदिरजाणूं ।
व्यंतर जोतिषिमाहिं संख्यरहिते जिनमंदिर,जिनगृह वंदनकरूं हरहुममपाप संघकर ।२८।

सामायिकसम नाहिं औरकोउ वैरमिटायक,सामायिकसम नाहिऔर कोउ मैत्री दायक ।
श्रावकअणुव्रत आदि अंत सप्तमगुणथानक, यह आवश्यक किये होयनिश्चयदुखहानक ॥

जे भवि आतमकाज-करण उद्यम के धारी, ते सब काज विहायकरो सामायिक सारी ।
राग दोषमदमोहक्रोध लोभादिक जे सब,बुधमहाचन्द्रविलाय जाय तातैं कीज्यो अब ।३०।

इति छठ्ठा कायोत्सर्ग कर्म ॥६॥

—इति सामायिक पाठ भाषा समाप्त—



श्री अमितगति सूरी कृत

सामायिक पाठ

सत्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदं, - क्लिष्टेषु जीवेषु कृपा परत्वम्।
माध्यस्त भावं विपरीत वृत्तौ, - सदा ममात्मा विदधातु देव ॥१॥

शरीरतः कर्त्तुमनन्त शक्ति, - विभिन्न मात्मानम पास्त दोषम्।
जिनेन्द्र कोषादिव खड्गयष्टिं, - तव प्रसादेन ममास्तु शक्तिः ॥२॥

दुःखे सुखे वैरिणि बन्धु वर्गे, - योगे वियोगे भवने वनेवा।
निराकृता शेष ममत्व बुद्धे, - समं मनोमेऽस्तु सदापि नाथ ॥३॥

मुनीश! लीनाविव कीलिताविव, - स्थिरौ निषाताविव विम्बिताविव।
पादौत्वदीयौ मम तिष्टतां सदा, - तमोधुनानौ हृदि दीपकाविव ॥४॥

एकेन्द्रियाद्या यदि देव देहिनः, - प्रमादतः संचरता इतस्ततः।
क्षता विभिन्ना मिलिता निपीडिता, - तदस्तु मिथ्या दुर नुष्टितंतदा ॥५॥

विमुक्ति मार्ग प्रतिकूल वर्तिना, - मया कषायाक्षवशेन दुर्धिया।
चारित्र शुद्धेर्यद कारिलोपनं, - तदस्तु मिथ्या ममदुष्कृतं प्रभो ॥६॥

विनिन्दना लोचन गर्हणैरहं, - मनोवचः काय कषाय निर्मितम्।
निहन्मि पापं भव दुःखकारणं, - भिषग्विषं मंत्र गुणैरिवा खिलम् ॥७॥

अतिक्रमंयं द्विमते र्व्यतिक्रमं, - जिनातिचारं सुचरित्र कर्मण।
व्यधादना चारमपि प्रमादतः, - प्रतिक्रमं तस्यं करोमि शुद्धये ॥८॥

क्षतिमनः शुद्धि विधेरतिक्रमम्, - व्यतिक्रमं शीलव्रते विलंघनम्।
प्रभोऽतिचारं विषयेषु वर्त्तनम्, - वदन्त्यनाचार मिहाति शक्तिताम् ॥९॥

यदर्थ मात्रा पद वाक्य हीनम्, - मया प्रमादाद्यदि किंचनोक्तम्।
तन्मेक्षमित्वाविद्धातु देवी, - सरस्वती केवल बोधलब्धि ॥१०॥

बोधिः समाधिः परिणाम शुद्धिः, - स्वात्मोपलब्धि शिवसौख्य सिद्धिः।
चिन्तामणि चिंतित वस्तु दाने, - त्वाँ वंद्य मानस्य ममास्तुदेवी ॥११॥

यः स्मर्य्यते सर्व्व मुनीन्द्रवृन्दै, - यः स्तूयते सर्व नरामरेन्द्रैः।
योगी यते वेद पुराण शास्त्रे, - सदेव देवो हृदये ममस्ताम् ॥१२॥

योे दर्शन ज्ञान सुख स्वभावः, - समस्त संसार विकार बाह्यः।
समाधिगम्यः परमात्म संज्ञः, - सदेव देवो हृदये ममस्ताम् ॥१३॥

निषूदते यो भव दुःख जालम्, - निरीक्षते यो जगदन्तरालम्।
योऽन्तर्गतो योगि निरीक्षणीयः, - सदेव देवो हृदये ममस्ताम् ॥१४॥

विमुक्ति मार्ग प्रतिपादको यो, - यो जन्म मृत्यु व्यसनाद्व्यतीतः।
त्रिलोक लोकी विकलोऽकलंकः, - सदेव देवो हृदये ममस्ताम् ॥१५॥

क्रोड़ी कृताशेष शरीरिवर्गाः, - रागादयो यस्य न सन्ति दोषाः।
निरिन्द्रियो ज्ञान मयोऽनपायः - सदेव देवो हृदये ममस्ताम् ॥१६॥

यो व्यापको विश्व जनीन वृत्तेः, - सिद्धो विबुद्धो धुत कर्म बन्धः।
ध्यातो धुनीते सकलं विकारं, - सदेव देवो हृदये ममस्ताम् ॥१७॥

न स्पृश्यते कर्म कलंक दोषैः, - यो ध्वान्त संघैरिव तिग्मरश्मिः।
निरंजनं नित्य मनेकमेकं, - तं देव माप्तं शरणं प्रपद्ये ॥१८॥

विभासते यत्र मरीचि माली, - न विद्यमाने भुवनावभासी।
स्वात्मस्थितं बोधमय प्रकाशम्, - तं देव माप्तं शरणं प्रपद्ये। १९॥

विलोक्य माने सति यत्र विश्वं, - विलोक्यते स्पष्टमिदं विविक्तम्।
शुद्धं शिवं शान्त मनाद्यनन्तम्, - तं देव माप्तं शरणं प्रपद्ये ॥२०॥

ये नक्षता मन्मंथमान मूर्छा, - विषाद निद्रा भय शोक चिन्ता।
क्षयोऽनलेनेव तरू प्रपंच, - स्तं देव माप्तं शरणं प्रपद्ये ॥२१॥

न संस्तरोऽश्मान तृणं न मेदिनी, - विधानतो नोफल कोवि निर्मितम्।
यतो निरस्ताक्ष कषाय विद्विषः, - सुधी भिरात्मैव सु निर्मलोमतः ॥२२॥

न संस्तरो भद्र समाधि साधनं, - न लोक पूजां नच संघ मेलनम्।
य तस्तत्तोऽध्यात्मरतो भवानिशं, - विमुच्य सर्व्वामपि बाह्य वासनाम् ॥२३॥

नसन्ति बाह्या मम केचनार्थाः, - भवामि तेषां न कदाच नाहम्।
इत्थं विनिश्चित्य विमुच्य बाह्यं, - स्वस्थः सदात्वं भव भद्रमुक्तये ॥२४॥

आत्मान - मात्मन्य विलोक्य मानस्त्वं, - दर्शन ज्ञान मयो विशुद्धः।
एकाग्रचित्तः खलु यत्र तत्र, - स्थितोपि साधुर्लभते समाधिम् ॥२५॥

एकः सदा शाश्वति को ममात्मा, - विनिर्मलः साधिगमस्वभावः।
वहिर्भवाः सन्त्यपरे समस्ताः, - नशाश्वताः कर्मभवाः स्वकीयाः ॥२६॥

यस्यास्ति नैक्यं वपुषापि सार्द्धं, - तस्यास्ति किं पुत्र कलत्र मित्रैः।
पृथक्कृते चर्मणि रोमकूपाः, - कुतो हि तिष्टन्ति शरीर मध्ये ॥२७॥

संयोगतो दुःख मनेक — भेदं, - यतोऽश्नुते जन्म वने शरीरी।
ततस्त्रि धासौ परिवर्ज नियो, - यियासुना निर्वृति मात्मनोनाम् ॥२८॥

सर्वं निराकृत्य विकल्प जालं, - संसार कान्तार निपात हेतुम्।
विविक्त मात्मान मवेक्ष्य मानो, - निलीय से त्वं परमात्म तत्त्वे ॥२९॥

स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा, - फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्।
परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं, - स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा ॥३०॥

निजार्चितं कर्म विहाय देहिनो, - नकोपि कस्यापि ददाति किंचन।
विचार यन्नेव मनन्य मानसः, - परोद दातीति विमुच्य शेमुषीम् ॥३१॥

यैः परमात्माऽमित गति वन्द्यः, - सर्व विविक्तो भृशमनवद्यः।
शश्व दधीते मनसि लभन्ते, - मुक्ति निकेतं विभव वरं ते ॥३२॥

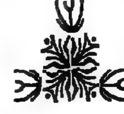
इति द्वात्रिंशता वृत्तैः, - परमात्मा न मीक्षते।
योऽनन्य गत चेतस्को, - यात्यसौ पदमव्ययम् ॥३३॥

— इति सामायिक पाठः —





कल्याणालोचनां



परमात्मानं वर्द्धितमतिं परमेष्ठिनं करोमि नमस्कारम्।
स्वक परसिद्धि निमित्तं कल्याणालोचनां वक्ष्ये ॥१॥
रे जीव ! अनंतभवे संसारे संसरता बहुवारम्।
प्राप्तो न बोधिलाभो मित्थात्व विजृंभित प्रकृतिभिः ॥२॥

संसार भ्रमण गमनं कुर्वन् आराधितो न जिन धर्मः।
तेन विना वरं दुःखं प्राप्तोऽसि अनंतवारम् ॥३॥
संसारे निवसन् अनंतमरणानि प्राप्तोऽसित्वम्।
केवलिना विना तेषां संख्या पर्याप्तिर्न भवति॥४॥

त्रीणि शतानि षट्त्रिंशानि षट्षष्टिसहस्रवार मरणानि।
अन्त – मुंहूर्त मध्ये प्राप्तोऽसि निगोद मध्ये ॥५॥
विकलेन्द्रिये ऽशीतिं षष्टिं चत्वारिंशदेवजानीहि।
पचेन्द्रिये चतुर्विशति क्षुद्रभवान् अन्त – मुंहूर्ते ॥६॥

अन्योन्यं क्रुध्यन्तो जीवा प्राप्नुवन्ति दारुणं दुःखम्।
न खलु तेषां पर्याप्तीः कथं प्राप्नोति धर्ममतिशून्यः ॥७॥
माता पिता कुटुम्बः स्वजनजनः कोऽपि नायाति सह।
एकाकी भ्रमति सदा न हि द्वितीयोऽस्ति संसारे ॥८॥

आयुः क्षयेऽपि प्राप्तेन समर्थः कोपि आयुर्दाने च।
देवोन्द्रो न नरेन्द्रः मण्यौषध मन्त्रजालानि ॥९॥
सम्प्रति जिनवर धर्म लब्धोऽसित्वं विशुद्ध योगेन।
क्षमस्व जीवान् सर्वान् प्रत्येकं समये प्रयत्नेन ॥१०॥

त्रीणिशतानि त्रिषष्टि मिथ्यात्वानिदर्शनस्य प्रतिपक्षाणि।
अज्ञानेन श्रद्धितानि मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ॥११॥
मधु मांस मद्य द्यूत प्रभृतीनि व्यसनानि सप्त भेदानि।
नियमो न कृतः च तेषां मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ॥१२॥

अणुव्रत महाव्रतानि यानि यम नियमशीलानि साधुगुरुदत्तानि ।
यानि यानि विराधितानि खलु मिथ्यामे दुष्कृतं भवतु ।।१३।।
नित्येतर धातु सप्त, तरुदश विकलेन्द्रियेषु षट्चैव सुर नारक ।
तिर्यक्षु चत्वारः चतुर्दश मनुष्ये शत सहस्राणि ।।१४।।
एते सर्वेजीवा श्चतुरशीतिलक्षयोनि वशे प्राप्ताः ।
ये ये विराधिताः खलु मिथ्यामे दुष्कृतं भवतु ।।१५।।
पृथ्वी जलाग्निवायु तेजो वनस्पतयश्च विकलत्रयाः ।
ये ये विराधिताः खलु मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ।।१६।।
मल सप्ततर्जिनोक्ता वृत विषये या विराधना विविधा ।
सामायिक क्षमादिका मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ।।१७।।
फलपुष्पत्वग्वल्ली अगालितस्नानं च प्रक्षालनादिभिः ।
ये ये विराधिताः खलु मिथ्यामे दुष्कृतं भवतु ।।१८।।
न शीलं नैवं क्षमा विनयस्तपो न संयमोपवासाः ।
न कृता न भावनी कृता मिथ्यामे दुष्कृतं भवतु ।।१९।।
कन्दफल मूल बीजानि सचित्तारजनी भोजनाहाराः ।
अज्ञानेन येऽपि कृता मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ।।२०।।
नो पूजा जिन चरणे न पात्र दानम् न चेर्या गमनम् ।
न कृता न भाविता मया मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ।।२१।।
बह्वारंभ परिग्रहसावद्यानि बहूनिप्रमाद दोषेण ।
जीवा विराधिताः खलु मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ।।२२।।
सप्तति शत क्षेत्र भवा? अतीतानागत वर्तमान जिनाः ।
ये ये विराधिताः खलु मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ।।२३।।
अर्हंत्सिद्धाचार्यो उपध्याया साधवः पंचपरमेष्टिनः ।
ये ये विराधिताः खलु मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ।।२४।।
जिनवचनं धर्मः चैत्यं जिनप्रतिमा कृत्रिमा अकृत्रिमाः ।
ये ये विराधिताः खलु मिथ्यामे दुष्कृतं भवतु ।।२५।।
दर्शन ज्ञान चारित्रे दोषा अष्टाष्ट पंच भेदाः ।
ये ये विराधिताः खलु मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ।।२६।।

मतिः श्रुत अवधिः मनः पर्ययः तथा केवलं च पंचकम् ।
ये ये विराधिताः खलु मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ॥२७॥
आचारादीन्यंगानि पूर्वं प्रकीर्णकानि जिनैः प्रणीतानि ।
ये ये विराधिताः खलु मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ॥२८॥
पंचमहाव्रतयुक्ता अष्टादश सहस्रशील कृत शोभाः ।
ये ये विराधिताः खलु मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ॥२९॥
लोके पितृसमाना ऋद्धिप्रपन्ना महागणपतयः ।
ये ये विराधिताः खलु मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ॥३०॥
निर्ग्रंथा आर्यिकाः श्रावकाः श्राविकाः च चतुर्विधः संघः ।
ये ये विराधिताः खलु मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ॥३१॥
देवा असुरा मनुष्या नारकाः तिर्यग्योनिगत जीवाः ।
ये ये विराधिताः खलु मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ॥३२॥
क्रोधो मानं माया लोभः एते राग दोषाः ।
अज्ञानेन येऽपि कृता मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ॥३३॥
परवस्त्रं परमहिला प्रमादयोगेनार्जितं पापम् ।
अन्येऽपि अकरणीया मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ॥३४॥
एकः स्वभाव सिद्धः स आत्मा विकल्प परिमुक्तः ।
अन्यो न मम शरणं शरणं स एकः परमात्मा ॥३५॥
अरसः अरूपः अगंधः अव्याबाधः अनन्तज्ञानमयः ।
अन्यो न मम शरणं शरणं स एकः परमात्मा ॥३६॥
ज्ञेय प्रमाणं ज्ञानं समयेन एकेन भवति स्वस्वभावे ।
अन्यो न मम शरणं शरणं स एकः परमात्मा ॥३७॥
एकानेक विकल्पप्रसाधने स्वक स्वभाव शुद्धगतिः ।
अन्यो न मम शरणं शरणं स एकः परमात्मा ॥३८॥
देहप्रमाणः नित्यः लोकप्रमाणः अपि धर्मतो भवति ।
अन्यो न मम शरणं शरणं स एकः परमात्मा ॥३९॥
केवल दर्शनज्ञाने समये नैकेन द्वौ उपयोगौ ।
अन्यो न मम शरणं शरणं स एकः परमात्मा ॥४०॥

स्वक रूप सहज सिद्धो विभाव गुण मुक्त कर्म व्यापारः।
अन्यो न मम शरणं स एकः परमात्मा ॥४१॥

शून्यो नै वा शून्यो नो कर्म कर्म वर्जितं ज्ञानम्।
अन्यो न मम शरणं शरणं स एकः परमात्मा ॥४२॥

ज्ञानतो यो न भिन्नः विकल्पभिन्नः स्वभावसुखमयः।
अन्यो न मम शरणं शरणं स एकः परमात्मा ॥४३॥

अच्छिन्नोऽवच्छिन्नः प्रमेयरूपत्वं अगुरुलघुत्वं चैव।
अन्यो न मम शरणं शरणं स एकः परमात्मा ॥४४॥

शुभा शुभ भाव विगतः शुद्ध स्वभावेन तन्मयं प्राप्तः।
अन्यो न मम शरणं शरणं स एकः परमात्मा ॥४५॥

न स्त्री न नपुंसको न पुमान् "णेव पुण्ण याव मओ"।
अन्यो न मम शरणं शरणं स एकः परमात्मा ॥४६॥

तव को न भवति स्वजनः त्वं कस्य न बंधुः सुजनो वा।
अत्मा भवेत् आत्मा एकाकी ज्ञायकः शुद्धः ॥४७॥

जिनदेवो भवतु सदा मतिः सुजिनशासने सदा भवतु।
सन्यासेन च मरणं भवे भवे मम सम्पत् ॥४८॥

जिनो देवो जिनो देवो जिनो देवो जिनो जिनः।
दयाधर्मो दयाधर्मो दयाधर्मो दया सदा ॥४९॥

महासाधवः महासाधवः महासाधवो दिगंबराः।
एवं तत्त्वं सदा भवतु यावन्न मुक्ति संगमः ॥५०॥

एव मेव गतः कालोऽनन्तो हि दुःखसंगमे।
जिनोपदिष्ट सन्यासे न यत्नारोहणा कृता ॥५१॥

सम्प्रति एव सम्प्राप्ताराधना जिनदेशिता।
का का न जायते मम सिद्धि सन्दोह सम्पत्तिः ॥५२॥

अहो धर्मः अहो धर्मः अहो मे लब्धिर्निर्मला।
संजाता सम्पत् सारा येन सुखं अनुपमम् ॥५३॥

एवमाराधयन् आलोचना वंदना प्रतिक्रमणानि।
प्राप्नोति फलं च तेषां निर्दिष्टम जित ब्रह्मणा ॥५४॥

— इति कल्याणालोचना। —

ईर्यापथ शुद्धि

निः संगोऽहंजिनानां सदनमनुपमं त्रिः परीत्येत्य भक्त्या।
स्थित्वा गत्वा निषद्योच्चरणपरिणतोन्तः शनैर्हस्तयुग्मम् ॥
भाले संस्थाप्य बुद्धया मम दुरितहरं कीर्तये शक्रवन्द्यं।
निन्दादूरं सदाप्तं क्षयरहितममुं ज्ञानभानुं जिनेन्द्रम् ॥१॥

श्रीमत्पविभ्रमकलंक मनन्त कल्पं। स्वायंम्भुवं सकल मंगलमादितीर्थम् ॥
नित्योत्सवं मणिमयं निलयं जिनानां। त्रैलोक्य भूषणमहं शरणं प्रपद्ये ॥२॥

श्रीमत्परमगम्भीर स्याद्वादामोघ लाञ्छनम्।
जीयात्त्रैलोक्यनाथस्य शासनं जिनशासनम् ॥३॥

श्री मुखा लोकनादेव श्रीमुखालोकनं भवेत्।
आलोकनविहीनस्य तत्सुखावाप्तयः कुतः ॥४॥

अद्याभवत्सफलता नयनद्वयस्य। देव त्वदीयचरणाम्बुजवीक्षणेन ॥
अद्य त्रिलोकतिलक प्रतिभासते मे। संसारवारिधिरयं चुलक प्रमाणं ॥५॥

अद्य मे क्षालितं गात्रं नेत्रे च विमले कृते।
स्नातोऽहं धर्मतीर्थेषु जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥६॥

नमोनमः सत्त्व हितंकराय। वीराय भव्याम्बुजभास्कराय ॥
अनन्तलोकाय सुरार्चिताय। देवाधिदेवाय नमो जिनाय ॥७॥

नमोजिनाय त्रिदशार्चिताय। विनष्टदोषाय गुणार्णवाय ॥
विमुक्ति मार्ग प्रतिबोधनाय। देवाधि देवाय नमो जिनाय ॥८॥

देवाधिदेव परमेश्वर वीतराग। सर्वज्ञ तीर्थंकर सिद्ध महानुभाव ॥
त्रैलोक्यनाथ जिनपुंगव वर्द्धमान। स्वामिन्गतोऽस्मि शरणं चरणद्वयंते ॥९॥

जितमद हर्ष द्वेषा जितमोह परीषहा जितकषायाः।
जितजन्म मरणरोगा जितमात्सर्या जयन्तु जिनाः ॥१०॥

जयतु जिनवर्द्धमान स्त्रिभुवनहितधर्मचक्र नीरज बन्धुः।
त्रिदशपति मकुट भासुर चूडामणि रश्मि रंजितारुणचरणः ॥११॥

जय जय जय त्रैलोक्य काण्ड शोभि शिखामणे,
नुद नुद नुद स्वान्तध्वान्तं जगत्कमलार्क्क नः।
नय नय नय स्वामिन् शांति नितान्तंमनन्तिमां,
नहि नहि नहि त्राता लोकैकमित्र भवत्परः ॥१२॥

चित्ते मुखे शिरसि पाणिपयोजयुग्मे, भक्ति स्तुति विनति मञ्जलि मञ्जसैव।
चेक्रीयते चरिकरीति चरीकरीति, यश्चर्करीति तव देव स एव धन्यः ॥१३॥

जन्मोन्मार्ज्यं भजतु भवतः पादपद्मं न लभ्यं,
तच्चेत्स्वैरं चरतु न च दुर्देवतां सेवतां सः।
अश्नात्यन्नं यदिह सुलभं दुर्लभं चेन्मुधास्ते,
क्षुद्व्यावृत्यै कवलयति कः कालकूटं बुभुक्षुः ॥१४॥

रूपं ते निरुपाधि सुन्दर मिदं पश्यन् सहस्रेक्षणः,
प्रेक्षाकौतुककारि कोऽत्र भगवन्नोपैत्यवस्थान्तरम्।
वाणीं गद्गदयन्वपुः पुलकयन्नेत्रद्वयं स्रावयन्,
मूर्द्धानं नमयन्करौ मुकुलयंश्चेतोऽपि निर्वापयन् ॥१५॥

त्रस्तारातिरिति त्रिकालविदित त्राता त्रिलोक्या इति,
श्रेयः सूतिरिति श्रियांनिधिरिति श्रेष्ठः सुराणामिति।
प्राप्तोऽहं शरणं शरण्य मगतिस्त्वां तत्त्यजो पेक्षणं,
रक्ष क्षेमपदं प्रसीद जिन किं विज्ञापितैर्गोपितैः ॥१६॥

त्रिलोक राजेन्द्र तिरीटकोटि प्रभाभिरालीढ पदारविन्दम्।
निर्मूल मुन्मूलित कर्मवृक्षं, जिनेन्द्र चन्द्रं प्रणमामि भक्त्या ॥१७॥

कर चरण तनु विघाता दटतो विहितः प्रमादतः प्राणी।
ईर्या पथ मिति भीत्या मुञ्चे तद्दोष हान्यर्थम् ॥१८॥

ईर्यापथे प्रचलताऽद्य मया प्रमादा देकेन्द्रिय प्रमुख जीव निकाय बाधा।
निर्वर्तिता यदि भवेद युगांतरेक्षा, मिथ्या तदस्तु दुरितं गुरुभक्तितो मे ॥१९॥

पडिक्कमामि भत्ते । इरियावहियाये । विराहणाये । अणागुत्ते । अइग्गमणे । णिग्गमणे । ठाणे । गमणे । चक्कमणे । पाणुग्गमणे । बीजुग्गमणे । हरिदुग्गमणे । उच्चारपस्सवणखेलसिंघाणयवियडिपयिट्ठावणाये । जे जीवा ।एइंदियावा बेइंदियावा । तिइंदियावा । चउरिंदियावा । पंच्चेदिवा । णोल्लिदावा । पिल्लिदावा । संघटिदा वा । संघादिदा वा । ओद्दाविदा वा । परिदाविदा वा । किरिच्छिदा वा । लेस्सिदा वा । छिंदिदा वा । भिंदिदा वा । ठाणदो वा । ठाणचक्कमणदो वा । तस्स उत्तरगुणं । तस्स पायच्छित्तकरणं । तस्स विसोहिकरणं । जावरहंताणं भयवंताणं । णमोकारं करेमि । तावकायं पावकम्मं दूच्चरियं वोस्सरामि ।

ॐ णमो अरहंताणं । णमो सिद्धाणं । णमो आयरियाणं । णमो उवज्झायाणं । णमो लोये सव्वसाहूणं ।

॥ जाप्य ९ ॥

ॐ नमः परमात्मने। नमोऽनेकान्ताय शान्तये ॥

इच्छामि भंते ! इरयावहिमालोचेउं । पुव्वुत्तर दक्खिण पच्छिम चउदिसु विदिसासु विहरमाणेण । जुगुत्तरदिठ्ठिणा । "भव्वेण दठ्ठव्वा । डवडवचरियाये । पमाददोसेण, पाणभूदजीवसत्ताणं । एदेसिं उवघादो कदो वा । कारिदो वा । किरंतो वा । समणमणुदो वा । तस्य मिच्छा मे दुक्कडं ।

पापिष्टेन दुरात्मना जडधिया मायाविना लोभिना ।
रागद्वेष मलीमसेन मनसा दुष्कर्म यन्निर्मितम् ॥

त्रैलोक्याधिपते जिनेन्द्र भवतः श्रीपाद मूलेऽधुना ।
निन्दापूर्वमहं जहामि सततं निर्वर्त्तये कर्मणाम् ॥१॥

द्वि त्रि चतुरिंद्रियाः प्राणा, भूतास्ते तरवः स्मृताः ॥
जीवाः पंचेंद्रिया ज्ञेया शेषाः सत्त्वाः प्रकीर्तिता ॥

— इति —

॥ श्री ॥ ॥ श्री ॥

प्रतिक्रमण

जिनेन्द्र मुन्मूलित कर्म बन्ध, प्रणम्यसन्मार्ग कृतस्वरूपम् ।
अनंत बोधादि भवं गुणौघं, क्रियाकलापं प्रकटं प्रवक्ष्ये ॥१॥

अथार्हत्पूजारम्भ क्रियायां पूर्वाचार्या नु क्रमेण सकल कर्म क्षयार्थंभाव पूजा वन्दना स्तव समेतं श्रीमत्सिद्ध भक्ति कायोत्सर्ग करोम्यहम् ॥

ॐ णमो अरहंताणं । णमो सिद्धाणं । णमो आयरिणाणं । णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणम् ॥१॥

चत्तारि मंगलं । अरहंत मंगलं ॥ सिद्ध मंगलं । साहू मंगलं ॥ केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं ॥ चत्तारि लोगुत्तमा । अरहंत लोगुत्तमा ॥ सिद्ध लोगुत्तमा । साहु लोगुत्तमा :। केवलि पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा ॥ चत्तारि सरणं पव्वज्जामि । अरहंत सरणं पव्वज्जामि ॥ सिद्धसरणं पव्वज्जामि । साहुसरणं पव्वज्जामि ॥ केवलि पणणत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि ॥

॥ सामायिकादि करितो असी प्रतिज्ञा करणे ॥

अढ्ढाइज्जदीव दोसमुद्दे सु, पण्णारस कम्मभूमिसु, जाव अरहंताणं भववंताणं आदियराणं तित्थयराणं जिणाणं जिणोत्तमाणं, केवलियाणं सिद्धाणं बुद्धाणं परिणिव्वुदाणं अंतयडाणं पारयडाणं, धम्माइरियाणं, धम्मेद सियाणं, धम्मेणायगाणं धम्मवर चाउरंग चक्कवट्टीणं देवाहि देवाणं,णाणाणं,दंसणाणं, चरित्ताणं सदा करेमिकिरियम्मं ॥

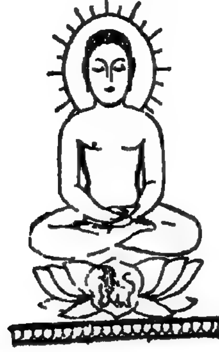
॥ सामायिक ॥

करेमि भंते सामायियं, सव्वसावज्जजोगं पच्चक्खामि । जावज्जीवं तिविहेण मणसा, वचसा, कायेण ण करेमि, ण कारेमि, करतं पिण समणुमणामि । तस्सभंते अइचारं पडिक्कमामि णिंदामि, गरहामि जाव अरहंताणं भयवंताणं पज्जुवासं करेमि तावकालं पावकम्मं, दुच्चरियं वोसरामि ॥

॥ जाप्य ९ णमोकार मंत्राचे करावे ॥

तदुक्तं:— जीविय मरणे लाहालाहे संजोग विप्प जोगेय ।
बंधुरि सुह दुक्खादो समदा सामायियं णाम ॥

-: चौबीस तीर्थंकरांची स्तुति :-



त्थोस्सामिहं जिणवरे तित्थयरे केवली अणन्त जिणे।
णरपवरलोयमहिए, विहुयरयमले महप्पण्णे ॥१॥
लोयस्सु ज्जोययरे, धम्मं तित्थंकरे जिणे वंदे।
अरहंते कित्तिस्से, चउवीसं चेव केवलिणो ॥२॥

उसहमजियं च वंदे, संभवमभिणंदणं च सुमइं च।
पउमप्पहुं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वंदे ॥३॥
सुविहिं च पुष्फयंतं, सीयल सेयं च वासुपुज्जं च।
विमलमणंतं भयवंधम्मं संतिं च वंदामि ॥४॥

कुंथुं च जिणवरिंदं, अरं च मल्लिं च सुव्वयं च णमिं।
वंदाम्यरिढ्ढणेमिं तह पासं वढ्ढमाणं च ॥५॥
एवं मअ भित्थुया विहुयरयमला पहीण जरमरणा।
चउवीसं पि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयंतु ॥६॥

कित्तिय वंदिय महिया एदे लोगोत्तमा जिणा सिद्धा।
आरोग्गणाणंलाहं, दिंतु समाहिं च मे बोहिं ॥७॥
चंदेहिं णिम्मलयरा, आइच्चेहिं अहियपहा सत्ता।
सायरमिव गंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥८॥

—::—

सिद्ध भक्तिः

सिद्धानुद्धूतकर्मप्रकृतिसमुदया, न्साधितात्मस्व भावान् ।
वंदे सिद्धिप्रसिध्द्यै तदनुपम, गुण प्रग्रहा कृष्टि तुष्टः ॥
सिद्धःस्वात्मोपलब्धिः प्रगुणगुण गणोच्छादि दोषापहारात् ।
योग्योपादानयुक्त्या दृषद इह यथा हेम भावोपलब्धिः ॥१॥

नाभावः सिद्धिरिष्टा न निजगुण हतिस्तत्तपोभिर्न युक्तेः ।
अस्त्यात्मानादिबद्धः स्वकृतजफलभुक् तत्क्षयान्मोक्षभागी ॥
ज्ञाता दृष्टा स्वदेह प्रमिति रुप समाहार विस्तार धर्मा ।
ध्रौव्योत्पत्ति व्ययात्मास्वगुणयुत इतो नान्यथा साध्य सिद्धिः ॥२॥

स त्वन्तर्बाह्यहेतु प्रभव विमल सद्दर्शन ज्ञान चर्या ।
संपद्धेति प्रघात क्षत दुरित तया व्यञ्जिता चिन्त्यसारैः ॥
कैवल्यज्ञानदृष्टि प्रवरसुख महावीर्य सम्यक्त्व लब्धि ।
ज्योति र्वातायनादि स्थिरपरम गुणरैद्भुतैर्भासमानः ॥३॥

जानन्पश्यन्समस्तं सममनुपरतं संप्रतृप्यन्वितन्वन् ।
धुन्वन्ध्वान्तं नितान्तं निचितमनुसमं प्रीणयन्नीशभावम् ॥
कुर्वन्सर्व प्रजानाम परमभिभवन् ज्योतिरात्मान मात्मा ।
आत्मन्ये वात्मनासौ क्षणमुपजनयन्सत्स्वयंभूः प्रवृत्तः ॥४॥

छिन्दन्शेषान शेषान्निगलबल कलीं स्तैरनन्तस्वाभावैः ।
सूक्ष्मत्वाग्र् यावगाहागुरुलघुकगुणैः क्षायिकैः शोभमानः ॥
अन्यैश्चान्यव्यपोह प्रवण विषय संप्राप्ति लब्धि प्रभावै ।
रुर्ध्वं व्रज्यास्वभावात्समयमुपगतो धाम्नि संतिष्टतेऽग्र्ये ॥५॥

अन्याकाराप्तिहेतुर्न च, भवति परो येन तेनाल्पहीनः ।
प्रागात्मोपात्त देह प्रतिकृति रुचिराकार एव ह्यमूर्तः ॥
क्षुत्तृष्णाश्वासकास ज्वर मरण जरानिष्ट योग प्रमोह ।
व्यापत्त्याद्युग्र दुःख प्रभव भवहतेः कोऽस्य सौख्यस्य माता ॥६॥

आत्मोपादान सिद्धं, स्वय मति शय वद्वीत बाधं विशालं।
वृद्धिन्ह्रासव्यपेतं, विषय विरहितं निः प्रति द्वन्द्व भावम् ॥
अन्य द्रव्यान पेक्षं, निरुपम ममितं शाश्वतं सर्व कालं।
उत्कृष्टा नंत सारं, परम सुखम तस्तस्य सिद्धस्य जातम् ॥७॥

नार्थः क्षुत्तृड्विनाशा द्विविध रस, युतैरन्न पानैर शुच्या।
नास्पृष्टैर्गन्ध माल्यैर्न हि, मृदु शयनैर्ग्लानि निद्राद्य भावात् ॥
आतंकार्तेर भावे तदुपशमन, सद्भेष जानर्थं तावद।
दीपा नर्थक्य वद्वा, व्यपगत तिमिरे दृश्यमाने समस्ते ॥८॥

ताहृवसम्पत्समेता विवध नय, तपः संयम ज्ञान दृष्टि।
चर्या सिद्धाः समन्ता, त्प्रविततयशसो विश्व देवाधि देवाः ॥
भूता भव्या भवंतः सकल, जगति, ये स्तूयमाना विशिष्टैः।
तान्सर्वान्नौम्य नंतान्नि, जिगभिषुररं, तत्स्वरूपं त्रिसन्ध्यम् ॥९॥

कृत्वा कायोत्सर्ग, चतुरष्ट दोष विरहितं, सुपरि शुद्धम्।
अति भक्ति संप्रयुक्तो, यो वंदते, सलघु लभते परमसुखम् ॥१॥

— कायोत्सर्ग ३२ दोष टाकून करणे ते असे —

घोडयल दाय खंभे कूडे मालेय सबरव धुणि गले।
लंबुत्तरथणदिठ्ठी वायस खलिणे जुगक विठ्ठे ॥१॥
सीक्षप कंपिय मुइयं अंगुलि भूविकार वारुणी पेई।
काउत्सग्ग मुवठ्ठिदो एदे दोसा परिहरिज्जो ॥२॥
आलोयणं दिसाणं गीवा उण्णामणं पणमणं च।
णिठ्ठुवणं आमरिसं काउस्सग्गं व वज्जेज्जो ॥३॥

— आलोचना करणे ती असी —

इच्छामि भंते सिद्धभत्ति काउस्सग्गो कओ तस्सा लोचेउं।

सम्मणाण सम्मदंसण सम्मचारित्त जुत्ताणं, अठ्ठविह कम्म विप्प मुक्काणं, अठ्ठगुण संपण्णाणं, उढ्ढलोयमच्छ्यम्मि पयठ्ठियाणं, तव सिद्धाणं, णय सिद्धाणं, संजम सिद्धाणं, अतीताणागद वट्टमाण कालत्तय सिद्धाणं, सव्व सिद्धाणं सया णिच्च कालं अंचेमि, वंदामि, पूजेमि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगईगमणं, समाहिमरणं, जिण गुण संपत्ति होउ मज्झं। * समाप्त *

अथ श्रुत भक्तिः

स्तोष्ये संज्ञानानि परोक्ष प्रत्यक्षभेद भिन्नानि।
लोकालोक विलोकन लोलित सल्लोकलोचनानि सदा ॥ १ ॥
अभिमुख नियमित बोधनमाभिनिबोधिक मनिंद्रियेन्द्रियजम्।
वह्वाद्यव ग्रहादिक कृतषट् त्रिंशत् त्रिशतभेदम् ॥ २ ॥
विविधर्द्धिबुद्धि कोष्टस्फुट बीज पदानुसारि बुद्ध्यधिकं।
संभिन्न श्रोतृतया सार्धं श्रुतभाजनं वन्दे ॥ ३ ॥
श्रुतमपि जिनवरविहितं गणधररचितं द्व्यनेकभेदस्थम्।
अंगांगबाह्य भावित मनंत विषयं नमस्यामि ॥ ४ ॥
पर्यायाक्षर पदसंघात प्रतिपत्तिकानुयोग विधीन्।
प्राभृतक प्राभृतकं प्राभृतकं वस्तुपूर्वं च ॥ ५ ॥
तेषाँ समासतोऽपि च विंशति भेदान्समश्नुवानं तत्।
वन्दे द्वादश धोक्तं गंभीर वरशास्त्र पद्धत्या ॥ ६ ॥

णिच्च णिगोद् अपज्जत्तयस्स जाद्स्स पढम समयह्मि।
हवदिहु सव्व जहण्णं णिच्चुग्घाडं णिरावरणं ॥

आचारं सूत्रकृतं स्थानं समवायनामधेयं च।
व्याख्या प्रज्ञप्ति च ज्ञातृकथो पासकाध्ययने ॥ ७ ॥
वन्देऽन्तकृद्दश मनुत्तरोप पादिकदशं दशावस्थम्।
प्रश्नव्याकरणं हि विपाकसूत्रं च विनमामि ॥ ८ ॥
परिकर्म च सूत्रं च स्तौमि प्रथमानुयोगपूर्वगते।
साद्धं चूलिकयापि च पंचविधं दृष्टिवादं च ॥ ९ ॥
पूर्वगतं तु चतुर्दश धोदित मुत्पाद पूर्वमाद्य महम्।
आग्राय णीयमीडे पुरुष वीर्यानु प्रवादं च ॥१०॥
संततमहम भिवंदे तथास्ति नास्ति प्रवादपूर्वं च।
ज्ञान प्रवाद सत्य प्रवाद मात्म प्रवादं च ॥११॥
कर्म प्रवाद मीडेऽथ प्रत्याख्यान नामधेयं च।
दशमं विद्या धारं पृथुविद्यानु प्रवादं च ॥१२॥

कल्याण नामधेयं प्राणावायं क्रिया विशालं च।
अथ लोक बिंदुसारं वंदे लोकाग्रसार पदं ॥१३॥
दश च चतुर्दश चाष्टावष्टादश च द्वयोर्द्विषट्कं च।
षोडश च विंशतिं च त्रिंशतंमपि पंचदश च तथा ॥१४॥
वस्तूनि दश दशान्येष्वनुपूर्वं भाषितानि पूर्वाणाम्।
प्रतिवस्तु प्राभृतकानि विंशतिं विंशतिं नौमि ॥१५॥
पूर्वान्तं ह्यपरान्त ध्रुवम ध्रुव च्यवनलब्धिनामानि।
अध्रुवसंप्रणिधिं चाप्यर्थं भौमावयाद्यं च ॥१६॥
सर्वार्थंकल्पनीयं ज्ञानमतीतं त्वनागतं कालम्।
सिद्धिमुपाध्यं च तथा चतुर्दशवस्तूनि द्वितीयस्य ॥१७॥
पंचम वस्तु चतुर्थ प्राभृत कस्यानुयोगनामानि।
कृतिवेदने तथैव स्पर्शन कर्म प्रकृतिमेव ॥१८॥
बंधन निबंधन प्रक्रमानुपक्रममथाभ्यु दयमोक्षौः।
संक्रमलेश्ये च तथा लेश्यायाः कर्मपरिणामौ ॥१९॥
सातमसातं दीर्घं ह्रस्वं भवधारणीय संज्ञं च।
पुरुपुद्गलात्मनाम च निधत्तम निधत्तमभिनौमि ॥२०॥
सनिकाचितमनिकाचितमथ कर्मस्थितिकपश्चिमस्कंधौ।
अल्पबहुत्वं च यजे तद्द्वाराणां चतुर्विंशम् ॥२१॥
कोटीनां द्वादश शतमष्टा पंचशतं सहस्राणाम्।
लक्षत्र्यशीतिमेव च पंच च बंदे श्रुतपदानि ॥२२॥
षोडशशतं चतुस्त्रिंशत्कोटीनां त्र्यशीतिलक्षाणि।
शतसंख्याष्टा सप्ततिमष्टा शीतिं च पदवर्णान् ॥२३॥
सामायिकं चतुर्विंशतिस्तवं वंदनां प्रतिक्रमणं।
वैनयिकं कृतिकर्म च पृथुदशवैकालिकं च तथा ॥२४॥
वरमुत्तराध्ययनमपि कल्प व्यवहार मेवमभिवन्दे।
कल्पाकल्पं स्तौमि महाकल्पं पुण्डरीकं च ॥२५॥
परिपाट्या प्रणिपतितोऽस्म्यहं महापुण्डरीकनामैव।
निपुणान्य शीतिकं च प्रकीर्ण कान्यंग बाह्यानि ॥२६॥

पुद्गल मर्यादोक्तं प्रत्यक्षं सप्रभेदमवधिं च।
देशावधि परमावधि सर्वावधि भेदमभिवंदे ॥२७॥

परमनसिस्थितमर्थं मनसापरिविद्य मंत्रिमहितगुणम्।
ऋजु विपुलमति विकल्पं स्तौमि मनःपर्ययज्ञानम् ॥२८॥

क्षायिक मनन्तमेकं त्रिकाल सर्वार्थ युगपदवभासम्।
सकलसुखधाम सततं वंदेऽहं केवलज्ञानम् ॥२९॥
एवमभिष्टुवंतो मे ज्ञानानि समस्तलोकचक्षूंषि।
लघु भवताज्ज्ञानर्द्धि ज्ञानफलं सौख्यम च्यवनं ॥३०॥

कायोत्सर्ग करुण आलोचना करणे

इच्छामि भंते ! सुदभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्य आलोचेउ। अंगोवंगपइण्णए पाहुडय परियम्म सुत्तपढमाणि ओगपुव्वगय चूलिया चेव सुत्तत्थय थुइ धम्म कहाइयं णिच्च कालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

समाप्तम्



अथ चारित्र भक्तिः

श्री पूज्यपाद स्वामी विरचित.



येनेन्द्रान्भुवनत्रयस्य विलसत्केयूर हारांगदान्,
भास्वन्मौलि मणिप्रभा प्रविसरोत्तुंगोत्तमांगान्नतान्।
स्वेषां पादपयोरुहेषु मुनयश्चक्रुः प्रकामं सदा,
वंदे पञ्चतयं तमद्य निगदन्नाचारमभ्यर्चितम् ॥१॥

अर्थव्यंजन तद्द्वया विकलता कालोपधाप्रश्रयाः,
स्वाचार्याद्यनपह्नवो बहुमतिश्चेत्यष्टधा व्याहृतम्।
श्रीमज्ज्ञातिकुलेन्दुना भगवता,तीर्थस्य कर्त्राऽञ्जसा,
ज्ञानाचारमहं त्रिधा प्रणिपताम्युद्धूतये कर्मणाम् ॥२॥

शंकादृष्टि विमोह कांक्षण विधि, व्यावृत्ति सन्नद्धतां ।
वात्सल्यं विचिकित्सना दुपरतिं, धर्मोपबृंह क्रियाम् ।।
शक्त्या शासनदीपनं, हितपथाद्भ्रष्टस्य संस्थापनम् ।
वंदे दर्शन गोचरं सुचरितं मूर्ध्ना नमन्नादरात् ।।३।।

एकान्ते शयनोपवेशन कृतिः संतापनं तानवम् ।
संख्या वृत्ति निबन्धना मानशनं विष्वाण मर्द्धोदरम् ।।
त्यागं चेन्द्रियदन्तिनो मदयतः स्वादो रसस्या निशम् ।
षोढ़ा बाह्यमहं स्तुवे शिव गति प्राप्त्यभ्युपायं तपः ।।४।।

स्वाध्यायः शुभ कर्मणश्चुतवतः सं प्रत्यवस्थापनम् ।
ध्यानं व्यापृतिरा मयाविन गुरौवृद्धे च बाले यतौ ।।
कायोत्सर्जन सत्क्रिया, विनय इत्येवं तपः षड् विधं ।
वंदेऽभ्यंतर मन्तरंग वलवद्विद्वेषि विध्वंसनम् ।।५।।

सम्यग्ज्ञान विलोचनस्य, दधतः श्रद्धान मर्हन्मते ।
वीर्यस्याविनिगूहनेन तपसि, स्वस्य प्रयत्नाद्यतेः ।।
या वृत्ति स्तरणीव नौर विवरा, लघ्वी भवो दन्वतो ।
वीर्याचार महं तमूर्जित गुणं वंदे सतामर्चितम् ।।६।।

तिस्त्रः सत्तम गुप्तयंस्तनुमनो, भाषा निमित्तो दयाः ।
पंचेर्यादि समाश्रयाः समितयः पंचव्रतानीत्यपि ।।
चारित्रो पहितं त्रयोदशतयं पूर्वं न दृष्टं परै ।
राचारं परमेष्ठिनो जिनपते वीरं न मामो वयम् ।।७।।

आचारं सह पंच मंद मुदितं तीर्थं परं मंगलं ।
निर्ग्रंथानपि सचरित्र महतो वंदे समग्रान्यतीन् ।।
आत्माधीन सुखोदया मनुपमा, लक्ष्मीम विध्वंसिनीं ।
इच्छन्केवल दर्शनावगमन प्राज्य प्रकाशो ज्वलाम् ।।८।।

अज्ञानाद्य देवीवृतं नियमिनोऽवर्तोष्यहं चान्यथा ।
तस्मिन्नर्जित मस्यति, प्रतिनवं चैनो निराकुर्वति ।।
वृत्तेः सप्त नयीं निधिं सुतपसा, मृद्धि नयत्यद्भुतम् ।
तन्मिथ्या गुरु दुष्कृतं, भवतुमे स्वं निंदतो निंदितम् ।।९।।

संसार व्यसनाहति प्रचलिता नित्योदय प्रार्थिनः,
प्रत्यासन्न विमुक्तयः सुमतयः शांतैनसः प्राणिनः।
मोक्षस्यैव कृतं विशालमतुलं सोपानमुच्चैस्तराम्,
आरोहन्तु चरित्र मुत्तमिदं जैनेंद्रमोजस्विनः ॥१०॥

कायोत्सर्ग करणे आलोचना।

इच्छामि भंते चारित्तभत्ति काउस्सगो कओ तस्य आलोचेउ। सम्मण्णाण जोयस्य, सम्मत्ताहिठ्ठियस्स, सव्वपहाणस्स, णिव्वाणमग्गस्स, कम्मणिज्जरफलस्स, खमाहारस्य, पंचमहव्वय संपण्णस्स, तिगुत्ति गुत्तस्स, पंचसमिदिजुत्तस्य, णाणज्झाण साहणस्स, समया इव पवेसयस्स, सम्मचारित्तस्स सया अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि। दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, वोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहि मरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

इति चारित्रभक्तिः समाप्त

::–::०::–::

अथ योगिभक्तिः

जाति जरोरुरोगमरणातुर शोक सहस्र दीपिताः,
दुःसह नरकपतनसन्त्रस्तधियः प्रति बुद्धचेतसः।
जीवितमंबु विंदुचपलं तडिदभ्रसमा विभूतयः,
सकलमिदं विचिन्त्यमुनयःप्रशमायवनान्तमाश्रिताः ॥१॥

व्रत समिति गुप्ति संयुताः, शमसुखमाधाय मनसि वीतमोहाः।
ध्यानाध्ययन वशंगताः, विशुद्धये कर्मणां तपश्चरन्ति ॥२॥

दिनकर किरण निकर संतप्त शिलानि चयेषु निःस्पृहा,
मलपटला वलिप्ततनवः शिथिलीकृत कर्म बंधनाः।
व्यपगत मदन दर्प रति दोष कषाय विरक्तमत्सराः,
गिरि शिखरेषु चंडकिरणाभि मुखस्थितयो दिगंबराः ॥३॥

सज्ज्ञानामृतपायिभिः क्षान्तिपय सिच्यमानपुण्यकायैः।
धृत संतोषच्छत्रकैः तापस्तीव्रोऽपि सह्यते मुनीन्द्रैः ॥४॥

शिखिगल कज्जलालिमलिनै विबुधाधिपचापचित्रितैः,
भीमरवैर्विसृष्ट चण्डाशनिशीतलवायु वृष्टिभिः ।
गगनतलं विलोक्य जलदैः स्थगितं सहसा तपोधनाः,
पुनरपि तरुतलेषु विषमासु निशासु विशंकमासते ॥५॥

जलधाराशरताडिता न चलन्ति चरित्रतः सदा नृसिंहाः ।
संसारदुःख भीरवः परीषहारातिघातिनः प्रवीराः ॥६॥

अविरत बहल तुहिन कण वारिभि रंघ्रिपपत्रपातनै,
रनवरतमुक्तसीत् काररवैःपरुषैथानिलैः शोषितगात्रयष्टयः ।
इह श्रमणा धृतिकंबलावृताः शिशिर निशाम्,
तुषार विषमां गमयन्ति चतुः पथे स्थिताः ॥७॥

इति योगत्रयधारिणः सकलतपः शालिनः प्रवृद्धपुण्यकायाः ।
परमानन्दसुखैषिणः समाधिमग्र्यं दिशं तु नो भदन्ताः ॥८॥

क्षेपक श्लोक—

गिह्मे गिरिसिहरत्था वरिसायाले रुक्खमूलरयणीसु ।
सिसरे बाहिरसयणा ते साहू वंदिमो णिच्चं ॥१॥
गिरि कंदर दुर्गेषु ये वसंति दिगंबराः ।
पाणिपात्रपुटाहारास्ते यांति परमां गतिम् ॥२॥

कायोत्सर्ग आलोचना ।

इच्छामि भंते योगभक्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सा लोचउ । अड्डाइज्जदीवदोसमुद्दे सु पण्णारसकम्मभूमीसु आदावण रुक्खमूलअब्भोवासठाण मोणविरास णेक्कपास कुक्कुडासणच उछपक्खखवणादियोग जुत्ताणं सव्वसाहूणं वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगईगमणं, समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ।

इति योगभक्तिः समाप्तम् ।

[::(::)::]

अथ आचार्य भक्तिः

सिद्धगुणस्तुतिनिरतानुद्धत रुषाग्नि जालबहुलविशेषान्।
गुप्तिभिरभिसम्पूर्णान् मुक्तियुतः सत्यवचनलक्षितभावान् ॥१॥

मुनिमाहात्म्यविशेषा ज्जिनशासनसत्प्रदीपभासुरमूर्तीन्।
सिद्धिं प्रपित्सुमनसो बद्धरजो विपुल मूलघातनकुशलान् ॥२॥

गुणमणिविरचितवपुषः षडद्रव्यविनिश्चितस्य धातृन्सततम्।
रहितप्रमादचर्यान्दर्शनशुद्धान् - गणस्य संतुष्टिकरान् ॥३॥

मोहच्छिदुग्र तपसः प्रशस्त परिशुद्ध हृदयशोभन व्यवहारान्।
प्रासुकनिलयाननघानाशा विध्वंसि चेतसो हतकुपथान् ॥४॥

धारितविलसन्मुण्डान्वर्जित, बहुदंडपिंड मंडलनिकरान्।
सकलपरीषहजयिनः क्रियाभिरनिशं प्रमादतः परिरहितान् ॥५॥

अचलान्व्ये पेतनिद्रान्स्थान युतान्कष्टदुष्ट लेश्याहीनान्।
विधिनानाश्रित वासानलिप्त देहान्विनिर्जितेद्रिय करिणः ॥६॥

अतुलानुत्कुटिका सान्विविक्त चित्तानखंडित स्वाध्यायान्।
दक्षिणभाव समग्रान्व्यपगतमद रागलोभशठ मात्सर्यान् ॥७॥

भिन्नार्तरौद्र पक्षान्संभावित धर्मशुक्ल निर्मल हृदयान्।
नित्यं पिनद्धकुगतीन्पुण्या न्गण्यो दयान्विलीन गारवचर्यान् ॥८॥

तरुमूलयोग युक्तानवकाशा तापयोगराग सनाथान्।
बहुजनहितकर चर्यानभयाननघान्महानुभाव विधानान् ॥९॥

ईदृशगुणसंपन्नान्युष्मान्भक्त्या विशालया स्थिरयोगान्।
विधिनानारतमग्र्यान्मुकुलिकृतहस्तकमलशोभितशिरसा ॥१०॥

अभिनौमि सकलकलुषप्रभवोदयजन्मजरामरणबन्धनमुक्तान्।
शिवमचलमनघमक्षयमव्याहतमुक्तिसौख्यमस्त्विति सततम् ॥११॥

—. कायोत्सर्ग आलोचना .—

इच्छामि भंते! आयरियभत्तिकाउस्सग्गो कओ तत्सालोचेउ। सम्मणाण सम्मदंसण-सम्मचारित्त जुत्ताणं पंचविहाचाराणं आयरियाणं आयारादिसुदणाणो वंदेसयाण उवज्झायाणं, तिरयणगुणपालणरयाणं, सव्वसाहूणं, सया अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, वोहिलाहो सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

(इति आचार्य भक्ति समाप्त)

अथ पंचगुरु भक्तिः

श्रीमदमरेन्द्र मुकुट प्रघटित, मणि किरण वारि धाराभिः।
प्रक्षालित् पद युगला न्प्रणमामि, जिनेश्वरान्भक्त्या ॥१॥

अष्ट गुणैः समुपेतान्प्रण वृदुष्टाष्ट, कर्मरिपुसमितीन्।
सिद्धान्सतत मनन्तान्, नमस्करोमीषृतुष्टि संसिद्धयै ॥२॥

साचारश्रुत जलधी, न्प्रतीर्य शुद्धो रु चरण निरतानाम्।
आचार्याणां पदयुग कमलानि, दधे शिरसिमेऽहम् ॥३॥

मिथ्यावादि मदोग्र ध्वान्त, प्रध्वंसि वचन संदर्भान्।
उपदेश कान्प्रपद्ये, मम दुरितारि प्रणाशाय ॥४॥

सम्यग्दर्शन दीप प्रकाशका, मेय बोध संभूताः।
भूरि चरित्र पताकास्ते, साधु गणास्तु मां पांतु ॥५॥

जिन सिद्धसूरि देशक साधु वरानमल गुण गणोपेतान्।
पंच नमस्कार पदैस्त्रि संध्यमभि नौमि मोक्षलाभाय ॥६॥

एष पंच नमस्कारः सर्व पाप प्रणाशनः।
मंगलानां च सर्वेषां प्रथमं मंगलं भवेत् ॥७॥

अर्हन्सिद्धाचार्योपाध्यायाः सर्वं साधवः।
कुर्वन्तु मंगलाः सर्वे निर्वाण परमश्रियम् ॥८॥

सर्वाञ्जिनेन्द्र चन्द्रान्सिद्धाना, चार्य पाठकान्साधून्।
रत्नत्रयं च वंदे, रत्नत्रय सिद्धये भक्त्या ॥९॥

पान्तु श्री पादपद्मानि पंचानां परमेष्ठिनां।
लालितानि सुराधीश चूडामणि मरीचिभिः ॥१०॥

प्रातिहार्यै जिनान्सिद्धान्गुणैः सूरीन्स्वमातृभिः।
पाठकान्विनयैः साधुन्यो गांगैरष्टभिः स्तुवे ॥११॥

कायोत्सर्ग आलोचना

इच्छामि भंते ! पञ्चमहागुरुभत्तिकाउसग्गो कओ तस्सालोचेउं। अठ्ठमहापाडिहेरसंजुत्ताणं अरहंताणं। अट्ठगुणसंपण्णाणं उढ्ढलोयमत्थयम्मि पइठ्ठियाणं सिद्धाणं। अठ्ठपवयणमउसंजुत्ताणं आइरियाणं। आयारादिसुदणाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं। तिरयणगुणपालणरयाणं सव्वसाहूणं। णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

—इति पचगुरु भक्ति समाप्त—



अथ तीर्थकर भक्तिः

अथ देवसिय पडिक्कमणाए, सव्वाइच्चार विसोहि णिमित्तं।
पुव्वाइ रियकमेण, चउवीसतित्थयर भत्तिकाउस्सग्गं करेमि॥

णमो अरहंताणं, मंत्रव थोस्सामीति०

(पाठ म्हणावा नतर पुढील श्लोक ह्मणावेत)

चउवीसं तित्थयरे उसहाईवीर पच्छिमे वंदे।
सव्वेसिं मुणिगण हरसिद्धे सिरसा णमंसामि॥१॥

ये लोकेऽष्ट सहस्र लक्षणधरा, ज्ञेयार्णवांतर्गता।
ये सम्यग्भव जालहेतु मथनाश्चंद्रार्क तेजोधिकाः॥
ये साध्विद्र सुराप्सरो गणशतैर्गीत प्रणुत्यार्चिताः।
तान्देवान्वृषभादि वीरचरमान्भक्त्या नमस्याम्यहम्॥२॥

नाभेयं देवपूज्यं जिनवरमजितं सर्वलोकप्रदीपम्।
सर्वज्ञं संभवाख्यं मुनिगणवृषभं नंदनं देवदेवम्॥
कर्मारिघ्नं सुबुद्धि वरकमलनिभं पद्मपुष्पाभिगंधम्।
क्षान्तं दांतं सुपार्श्वं सकलशशिनिभं चन्द्रनामानमीडे॥३॥

विख्यातं पुष्पदंतं भवभयमथनं शीतलं लोकनाथम्।
श्रेयाँसं शीलकोषं प्रवरनरगुरुं वासुपूज्यं सुपूज्यम्॥
मुक्तं दान्तेन्द्रियाश्वं विमलमृषिपति सिंहसैन्यं मुनीन्द्रम्।
धर्मं सद्धर्मकेतुं शमदमनिलयं स्तौमि शान्ति शरण्यम्॥४॥

कुंथुं सिद्धालयस्थं, श्रमणपतिमर त्यक्त भोगेषु चक्रम्।
मल्लिं विख्यातगोत्रं, खचरगणनुतं सुव्रतं सौख्यराशिम्॥
देवेन्द्रार्च्य नमीशं हरिकुल तिलकं, नेमिचंद्रं भवान्तम्।
पार्श्वं नागेन्द्र वन्द्यं, शरणमहमितो वर्द्धमानं च भक्त्या॥५॥

— कायोत्सर्ग आलोचना —

इच्छामि भंते! चउवीसतित्थयर भत्ति काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं। पञ्चमहाकल्लाण संपण्णाणं अठ्ठमहापाडिहेरसहियाणं, चउतीस अतिसय विसेस संजुत्तणं, बत्तीसदेविंदमणिमउडमत्थयमहियाणं, बलदेव वासुदेव चक्कहर रिसि मुणि जइअणगारोव गूढाणं, थुइसयसहस्सणिलयाणं, उसहाइ-वीरपछिम मंगल महापुरिसाणं, णिच्च कालं अंचेमि, पुज्जेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिण गुण संपत्ति होउ मज्झं।

— इति तीर्थंकर भक्ति समाप्त —

ॐ ॐ

अथ शान्ति भक्तिः

श्री पादपूज्य स्वामी याना नेत्र बिंदु वगैरे रोग झाले होते त्यांचे नाशाप्रत्यर्थ शान्तिनाथ जिनाचे स्तोत्र रचिले ते याप्रमाणे —

न स्नेहाच्छरणं प्रयान्ति भगवन्पादद्वयं ते प्रजाः।
हेतुस्तत्र विचित्र दुःख निचयः संसार घोरार्णवः॥
अत्यन्त स्फुरदुग्ररश्मि निकरव्याकीर्ण भूमंडलो।
ग्रैष्मः कारयतीन्दु पाद सलिलच्छायानुरागं रविः॥ १॥

क्रुद्धाशीविषदष्टदुर्जयविष ज्वाला वलो विक्रमो।
विद्याभेषज मंत्र तोय हवनैर्याति प्रशांतिं यथा॥
तद्वते चरणारुणांबुज युगस्तोत्रोन्मुखानां नृणाम्।
विघ्नाः कायविनायकाश्चसंहसा शाम्यन्त्यहो विस्मयः॥ २॥

संतप्तोत्तम कांचनक्षितिधर श्रीस्पर्द्धिगौरद्यु ते,
पुंसां त्वच्चरण प्रणामकरणात्पीडा: प्रयान्ति क्षयं ।
उद्यद्भास्करविस्फुरत्कर शतव्याघातनिष्कासिता,
नानादेहि विलोचन द्यु तिहरा शीघ्रं यथा शर्वरी ॥१॥

त्रैलोक्येश्वर भङ्गलब्ध विजया दत्यंतरौद्रात्मकान्,
नानाजन्मशतांतरेषु पुरतो जीवस्य संसारिणः ।
को वा प्रस्खलतीह केन विधिना कालोग्रदावानलान्,
नस्याच्चेत्तव पादपद्म युगलस्तुत्या पगावारणम् ॥४॥

लोकालोक निरंतरप्रवितत ज्ञानैकमूर्ते विभो,
नानारत्नपिनद्ध दंडरुचिर श्वेतातपत्रत्रय ।
त्वत्पादद्वयपूतगीतरवतः शीघ्रं द्रवन्त्या मया,
दर्पाध्मात मृगेंद्रभीम निनदाद्वन्या यथा कुंजराः ॥५॥

दिव्यस्त्री नयनाभिराम विपुलश्री मेरु चूडामणे,
भास्वद् बालदिवाकरद्युतिहर प्राणीष्टभामंडल ।
अव्याबाधमचिन्त्य सारमतुलं त्यक्तोपमं शाश्वतं,
सौख्यंत्वच्चरणार विंदयुगल स्तुत्यैव संप्राप्यते ॥६॥

यावन्नोदयते प्रभापरिकरः श्रीभास्करो भासयं,
स्तावद्धारयतीह पंकजवनं निद्राति भारश्रमम् ।
यावत्त्वच्चरण द्वयस्य भगवन्न स्यात्प्रसादोय-
स्तावज्जीवनिकाय एषवहित प्रायेण पापंमहत् ॥७॥

शांति शांतिजिनेन्द्र शांतमनसस्त्वत्पाद पद्माश्रयात्,
संप्राप्ताः पृथिवीतलेषु बहवः शान्त्यार्थिनः प्राणिनः ।
कारुण्यान्मम भक्तिकस्य च विभो दृष्टि प्रसन्नां कुरु,
त्वत्पाद द्वय दैव तस्य गदतः शांत्यष्टकं भक्तितः ॥८॥

शांति जिनं शशि निर्मल वक्त्रं, शील गुण व्रत संयम पात्रं ।
अष्टशतार्चित लक्षण गात्रं, नौमि जिनोत्तममंबुज नेत्रम् ॥९॥
पंचम मीप्सित चक्रधराणां पूजितमिन्द्र नरेन्द्रगणैश्च ।
शांतिकरं गण शांतिम भीप्सुः षोड़श तीर्थंकरं प्रणमामि ॥१०॥

दिव्यतरुः सुरपुष्प सुरवृष्टि दुंदुभिरासन योजनघोषौ।
आतपवारण चामरयुग्मे यस्य विभाति च मंडलतेजः॥
तं जगदर्चित शांति जिनेंद्रं शांतिकरं शिरसा प्रणमामि।
सर्वगणाय तु यच्छतु शांति मह्यमरं पठते परमां च॥११॥
येभ्यर्चिता मुकुट कुंडल हाररत्नैः शक्रादिभिः सुरगणैः स्तुतपादपद्माः।
ते मे जिनाः प्रवरवंश जगत्प्रदीपाः तीर्थंकराः सततशांतिकरा भवंतु॥१२॥
संपूजकानां प्रतिपालकानां यतीन्द्र सामान्य तपोधनानां।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः करोतु शांति भगवान् जिनेन्द्रः॥१३॥
क्षेमं सर्व प्रजानां प्रभवतु बलवान् धार्मिको भूमि पालः।
काले काले च सम्यग्वर्षतु मघवा व्याधयो यांतु नाशं॥
दुर्भिक्षं चौरमारिः क्षणमपि जगतां मास्मभूज्जीवलोके।
जैनेद्रं धर्मचक्रं प्रभवतु सततं सर्वं सौख्य प्रदायि॥१४॥
तद् द्रव्य मव्य यमुदेतु शुभः सदेशः, सन्तन्यतां प्रतपतां सततं सकालः।
भावः स नन्दतु सवा यदनुग्रहेण, रत्नत्रयं प्रतपतीह मुमुक्ष वर्गे॥१५॥
प्रध्वस्त घाति कर्माणः केवल ज्ञान भास्कराः।
कुर्वन्तं जगतां शान्ति वृषभाद्या जिनेश्वराः॥१६॥
शांतिः शिरोधृत जिनेश्वर शासनानां। शांति निरन्तर तपोऽभावितानम्॥
शांतिः कषाय जय जृंभित वैभवानां। शांति स्वभावमहिमानमुपागतानम्॥
जीवंतु संयम सुधारस पान तृप्ता। नंदंतु शुद्ध सहसोदय सु प्रसन्ना॥
सिध्यंतु सिद्धि सुख संग कृताभियोगा। तीव्रं तपतुं जगतां त्रितपेऽहदाज्ञाः॥
शांतिशं तनुतां समस्त जगताः संगच्छधार्मिकः श्रेयः।
श्री परिवर्धतां नयतां धुर्रो धरित्री पतिः॥
सद्विद्यारस मुद् गिरन्तु कवयो नामाप्य धस्याप्तु मा।
प्राप्यंकियेदक ऐवशिव कुद्धर्मो जयत्व हंर्ताम्॥

कायोत्सर्ग आलोचना

इच्छामि भंते शान्तिभत्ति काउस्सग्गो कओ तस्सा लोचेउं। पंच महा-कल्लाण संपण्णाणं, अठ्ठमहापाडिहेर सहियाणं, चउतीसा तिसय विसेस संजुताणं, वत्तीस देवेंद मणि मउड मत्थयमहियाणं, बलदेव वासुदेव चक्कहर रिसिमुणि जदि अणगारो व गूढाणं, थुइसय सहस्सणि लयाणं, उसहाइवीर पच्छिम मंगल महा पुरिसाणं, णिच्च कालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिण गुण संपत्ति होउ मज्झं।

— इति शान्ति भक्ति समाप्त भाली —

अथ समाधि भक्तिः

स्वात्माभि मुखसंवित्ति लक्षणं श्रुतचक्षुषा।
पश्यन्पश्यामि देवत्वां केवलज्ञान चक्षुषा॥ १॥

शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुतिः संगतिः सर्वदार्यैः।
सद्वृत्तानां गुणगण कथा दोषवादे च मौनम्॥
सर्वस्यापि प्रियहितवचो भावना चात्मतत्वे।
संपद्यंतां मम भवभवे यावदेतेऽपवर्गः॥ २॥

जैन मार्गरुचिरन्यमार्ग निर्वेगता जिनगुणस्तुतौ मतिः।
निष्कलंकविमलोक्तिभावनाः संभवन्तु मम जन्मजन्मनि॥ ३॥
गुरुमूले यतिनिचिते चैत्यसिद्धांत वार्घिसद्घोषे।
मम भवतु जन्मजन्मनि सन्यसन समन्वितं मरणम्॥ ४॥

जन्मजन्म कृतं पापं जन्मकोटि समार्जितम्।
जन्ममृत्यु जरामूलं हन्यंते जिनवंदनात्॥ ५॥

आबाल्याज्जिनदेवदेव भवतः श्रीपादयोः सेवया।
सेवासक्तविनेय कल्पलतया कालोद्यया वद्गतः॥
त्वां तस्याः फलमर्थये तदधुना प्राण प्रयाण क्षणे।
त्वन्नाम प्रतिबद्ध वर्णपठणे कण्ठोस्त्व कुण्ठो मम॥ ६॥

तव पादौ मम हृदये मम हृदयं तव पदद्वये लीनम्।
तिष्ठतु जिनेन्द्र तावद्यावन्निर्वाण संप्राप्तिः॥ ७॥
एकापि समर्थेयं जिनभक्तिर्दुर्गति निवारयितुम्।
पुण्यानि च पूरयितुं दातुं मुक्तिश्रियं कृतिनः॥ ८॥

पंच सु अ दीवणामे पंचम्मिय सायरे जिणे वंदे।
पंच जसोयर णामे पंचम्मिय मंदरे वंदे॥ ९॥
रयणत्तयं च वंदे, चव्वीस जिणे च सव्वदा वंदे।
पंचगुरूणं वंदे चारणचरणं सदा वंदे॥१०॥

अर्हमित्यक्षर ब्रह्म वाचकं परमेष्टिनः।
सिद्धचक्रस्य सद्बीजं सर्वतः प्रणिदध्महे॥

कर्माष्टक विनिर्मुक्तं मोक्ष लक्ष्मी निकेतनम् ।
सम्यक्त्वादि गुणोपेतं सिद्धचक्रं नमाम्यहम् ॥११॥

आकृष्टिं सुरसंपदांविदधते मुक्तिश्रियो वश्यतां ।
उच्चाटं विपदां चतुर्गतिभुवॉविद्वेषमात्मैनसाम् ॥१२॥
स्तंभं दुर्गमनं प्रति प्रयततोमोहस्य सम्मोहनम् ।
पायात्पंच नमास्क्रियाक्षरमयी साराधना देवता ॥१३॥

अनंतानन्त संसार संततिच्छेद कारणम्,जिनराज पदाम्भोज स्मरणं शरणं मम ॥१४॥
अन्यथा शरणं नास्तित्वमेव शरणंमम,तस्मात्कारुण्य भावेन रक्षरक्ष जिनेश्वर ॥१५॥

नहि त्राता नहि त्राता न हि त्राता जगत्त्रये ।
वीतरागात्परो देवो न भूतो न भविष्यति ॥१६॥
जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्जिने भक्ति दिने दिने ।
सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु भवे भवे ॥१७॥

याचेहं याचेहं जिन तव चरणारविन्दयोर्भक्तिम् ।
याचेहं याचेहं पुनरपि तामेव तामेव ॥१८॥

कायोत्सर्ग आलोचना

इच्छामि भंते ! समाहि भत्ति काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं । रयणत्तय परूव परमप्पज्झाणलक्खणं समाहिभत्तीये णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, वोहिलाहो, सुगईगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ।

— इति समाधि भक्ति समाप्तम् —

चतुः दिशि वन्दना

प्राग्दिग्वी दिगन्तरि केवलि जिन सिद्ध साधु गण देवा ।
ये सर्वर्द्धि समृद्धा योगि शास्तांऽहं वन्दे ॥१॥
दक्षिण दिग्वी दिगन्तरि केवलि जिन सिद्ध साधु गणदेवा ।
ये सर्वर्द्धि समृद्धा योगि शास्तॉऽहं वन्दे ॥२॥
पश्चिम दिग्वी दिगन्तरि केवलि जिन सिद्ध साधु गण देवा ।
ये सर्वर्द्धि समृद्धा योगि शास्तांऽहं वन्दे ॥३॥
उत्तर दिग्वी दिगन्तरि केवलि जिन सिद्ध साधु गण देवा ।
ये सर्वर्द्धि समृद्धा योगि शास्तांऽहं वन्दे ॥४॥

अथ निर्वाण भक्तिः

विबुधपति खगपति नरपति धनदोरग भूतयक्षयपति महितम्।
अतुल सुख विमल निरुपम शिवमचलमनामयं संप्राप्तम् ॥१॥
कल्याणैः संस्तोष्ये पंचभिरनघं त्रिलोक परम गुरुम्।
भव्य जन तुष्टि जननैर्दुरवापैः सन्मंति भक्त्या ॥२॥

गर्भ कल्याणिक वर्णन

आषाढ़ सु सित षष्ठयां हस्तोत्तर मध्य माश्रिते शशिनि।
आयातः स्वर्गसुखं भुक्त्वा पुष्पोत्तराधीशः ॥३॥
सिद्धार्थ नृपति तनयो भारतवास्ये विदेह कुंडपुरे।
देव्यां प्रियकारिण्यां सुस्वप्ना-न्संप्रदर्श्य विभुः ॥४॥

जन्म कल्याणिक वर्णन

चैत्र सित पक्षफाल्गुनि शशांक योगे दिने त्रयोदश्याम्।
जज्ञे स्वोच्चस्थेषु ग्रहेषु सौम्येषु शुभलग्ने ॥५॥
हस्ताश्रिते शशांके चैत्रज्योत्स्ने चतुर्दशी दिवसे।
पूर्वाण्हे रत्न घटैं विबुधेन्द्राश्चक्रुरभिषेकम् ॥६॥

दीक्षा कल्याणिक वर्णन

भुक्त्वा कुमारकाले त्रिंशद्वर्षाण्यनंतगुणराशिः।
अमरोपनीत भोगान्सहसा भिनि बोधि तोन्येद्युः ॥७॥
नानाविध रूपचितां विचित्रकूटोच्छ्रितां मणिविभूषाम्।
चंद्र प्रभाख्य शिविका मारुह्य पुराद्विनः क्रान्तः ॥८॥
मार्गशिर कृष्णदशमी हस्तोत्तरमध्यमाश्रिते सोमे।
षष्टेन त्वपराह्णे भक्तेन जिनः प्रवव्राज ॥९॥

केवल ज्ञान कल्याणिकाची प्राप्ति

ग्रामपुर खेट कर्वटमटंब घोषाकारा न्प्रविजहार।
उग्रैस्तपोविधानैं द्वादश वर्षाण्य मर पूज्यः ॥१०॥

ऋजुकूलायास्तीरे शालद्रुम संश्रिते शिलापट्टे ।
अपराह्णे षष्ठे नास्थितस्य खलु जृंभिकाग्रामे ॥११॥
वैशाख सित दशम्यां हस्तोत्तरमध्यमाश्रिते चंद्रे ।
क्षपकश्रेण्या रूढस्योत्पन्नं केवलज्ञानम् ॥१२॥
अथ भगवान् संप्रापद्दिव्यं वैभारपर्वतं रम्यम् ।
चातुर्वर्ण्यं सुसंघस्त त्राभूद्गौतम प्रभृति ॥१३॥
छत्राशोकौ घोषं सिंहासन दुंदुभी कुसुमवृष्टिम् ।
वरचामर भामण्डल दिव्यान्यन्यानि चावापत् ॥१४॥
दशविधमनगाराणामेकादश धोत्तरं तथा धर्मम् ।
देशयमानो व्यहरत्त्रिंश द्वर्षाण्यथ जिनेन्द्रः ॥१५॥
पद्मवन दीर्घिकाकुलविविध द्रुमखण्डमण्डिते रम्ये ।
पावानगरोद्यानेव्युत्सर्गेण स्थितः स मुनिः ॥१६॥
कार्तिक कृष्णस्यान्ते स्वातावृक्षे निहत्य कर्मरजः ।
अवशेषं संप्रापद्व्य जरामरमक्षयं सौख्यम् ॥१७॥
परिनिर्वृतं जिनेन्द्रं ज्ञात्वा विबुधाह्यथाशुचागम्य ।
देवतरुरक्तचन्दन कालागुरु सुरभिगोशीर्षैः ॥१८॥
अग्नीन्द्राज्जिनदेहं मुकुटानल सुरभिधूपवरमाल्यैः ।
अभ्यर्च्य गणधरानपि गता दिवं खं च वनभवने ॥१९॥

इत्येवं भगवति वर्धमानचंद्रे यः स्तोत्रं पठति सुसन्ध्ययोर्द्वयोर्हि ।
सोऽनंतं परमसुखं नृदेवलोके भुक्त्वांते शिवपदमक्षयं प्रयाति ॥२०॥

यत्रार्हतां गणभृतां श्रुतपारगाणां, निर्वाणभूमिरिह भारतवर्ष जानाम् ।
तामद्य शुद्धमनसा क्रियया वचोभिः, संस्तोतुमुद्यतमतिः परिणौमिभक्त्या ॥२१॥

कैलासशैलशिखरे परिनिर्वृतोऽसौ, शैलेशिभावमुपपद्य वृषो महात्मा ।
चंपापुरे च वसुपूज्यसुतः सुधीमान्, सिद्धिं परामुपगतो गतरागबंधः ॥२२॥

यत्प्रार्थ्यते शिवमयं विबुधेश्वराद्यैः, पाखंडिभिश्च परमार्थ गवेष शीलैः ।
नष्टाष्टकर्मसमये तदरिष्टनेमिः, संप्राप्तवान् क्षितिधरे बृहदूर्जयन्ते ॥२३॥

पावापुरस्य बहिरुन्नत भूमिदेशे, पद्मोत्पलाकुलवतां सरसां हि मध्ये।
श्रीवर्द्धमानजिनदेव इति प्रतीतो, निर्वाणमाप भगवान्प्रविधूतपाप्मा ॥२४॥

शेषास्तु ते जिनवरा जितमोहमल्ला, ज्ञानार्कभूरिकिरणैरवभास्य लोकान्।
स्थानं परं निरवधारितिसौख्यनिष्ठं, सम्मेद पर्वत तले समवापुरीशाः ॥२५॥

आद्यश्चतुर्दश दिनै र्विनिवृत्त योगः, षष्ठेन निष्ठितकृर्तिजिनवर्द्धमानः।
शेषा विधूत घनकर्म निवद्ध पाशाः, मासेन ते यतिवरास्त्वभवन्वियोगाः ॥२६॥

माल्यानि वाक्स्तुतिमयैः कुसुमै सुदृब्धा,न्यादाय मानसकरैरभितः किरंतः।
पर्येम आदृतियुता भगवन्निषद्याः, संप्रार्थिता वयमिमे परमां गतिं ताः ॥२७॥

शत्रुंजये - नगवरे दमितारिपक्षाः, पंडोः सुताः परम निवृतिमभ्युपेताः।
तुंग्यां तु संगरहितो बलभद्रनामा, नद्यास्तटे जितरिपुश्च सुवर्णभद्रः ॥२८॥

द्रोणीमति प्रवलकुंडलमेंद्रके च, वैभारपर्वत तले वरसिद्धकूटे।
ऋष्यद्रिके च विपुलाद्रिबलाहके च, विंध्ये च पौदनपुरे वृषदीप के च ॥२९॥

सह्याचले च हिमवत्यपि सुप्रतिष्ठै,
दंडात्मके गजपथे पृथुसारयष्टौ।
ये साधवो हतमलाः सुगतिं प्रयाताः,
स्थानानि तानि जगति प्रथितान्यभूवन् ॥३०॥

इक्षोर्विकार रसपृक्तगुणेन लोके,
पिष्टोऽधिकं मधुरतामुपयाति यद्वत्।
तद्वच्च पुण्यपुरुषैःरुषितानि नित्यं,
स्थानानि तानि जगतामहि पावनानि ॥३१॥

इत्यर्हतां शमवतां च महामुनीनां,
प्रोक्ता मयात्र परिनिवृतिभूमिदेशाः।
ते मे जिना जित भया मुनयश्च शांताः,
दिश्यासुराशु सुगतिं निरवद्यसौख्याम् ॥३२॥

क्षेपक —

कैलासाद्रौ मुनींद्रः पुरुरपदुरितो मुक्तिमाप प्रणूतः।
चंपायां वासुपूज्यस्त्रिदशपतिनुतो नेमिरप्यूर्जयंते॥
पावायां वर्धमानस्त्रिभुवनगुरवो विंशतिस्तीर्थनाथाः।
सम्मेदाग्रे प्रजग्मुर्ददतु विनमतां निर्वृतिं नो जिनेंद्राः॥३३॥

चिन्ह चौबीस तीर्थंकर

गौर्गजोश्वः कपिः कोकः, सरोजः स्वस्तिकः शशी।
मकरः श्रीयुतो वृक्षो गंडो महिष सूकरो॥
सेधा वज्र मृगच्छागाः पाठीनः कलशस्तथा।
कच्छप श्चोत्पलं शंखो नागराजश्च केसरी॥३४॥

वंश चौबीस तीर्थंकर

शांति कुन्थ्वर कौरव्या यादवौ नेमि सुव्रतौ।
उग्रनाथौ पार्श्ववीरौ शेषा इक्ष्वाकु वंशजाः॥३५॥

कायोत्सर्ग आलोचना

इच्छामि भंते! परिणिव्वाणभत्ति काउस्सगो कओ तस्सालोचेउं। इमम्मि अवसप्पिणीये, चउत्थसमयस्स पच्छिमे भाए, आउठ्ठमासहीणे, वासचउक्कम्मि सेसकालम्मि। पावाये णयरीए कत्तियमासस्स किण्ह चउदसिए। रत्तीए सादीए णक्खत्ते, पच्चूसे, भयवदो महदि महावीरो वढ्ढमाणो सिद्धि गदो। तिसुविलोएसु, भवणवासिय वाणविंतरजोयिसिय कप्पवासियत्ति चउव्विहा देवा सपरिवारा दिव्वेण गंधेण, दिव्वेण पुप्फेण, दिव्वेण धूवेण, दिव्वेण चुण्णेण, दिव्वेण वासेण, दिव्वेण ण्हाणेण, णिच्चकालं, अच्चंति, पूजंति, वंदंति, णमंसंति, परिणिव्वाण, महाकल्लाणपुज्जं करंति अहमवि इह संतो तत्थ संताइयं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

इति निर्वाण भक्ति।





अथ नंदीश्वर भक्तिः



त्रिदशपति मुकुट तटगत मणिगण, - करनिकर सलिल धारा धौत ।
क्रमकमल युगल जिनपति रुचिर, - प्रतिबिंब विलय विरहितनिलयान् ॥ १ ॥

निलयान हमिह महसाँ सहसा प्रणिपतन पूर्वमवनौम्यवनौ ।
त्रय्यां त्रय्या शुद्धया निसर्ग शुद्धान्वि शुद्धये घनरजसाम् ॥ २ ॥

भावनसुर भवनेषु द्वासप्तति शत सहस्र संख्याभ्य धिकाः ।
कोट्यः सप्त प्रोक्ता भवनानाँ भूरि तेजसाँभुवनानाम् ॥ ३ ॥

त्रिभुवन भूत विभूनाँ संख्याती तान्य संख्यगुण युक्तानि ।
त्रिभुवन जनन नयमनः प्रियाणि भवनानि भौमबिबुधनुतानि ॥ ४ ॥

यावन्ति सन्ति कान्तज्योतिर्लोकाधि देवता भिनुतानि ।
कल्पेऽनेक विकल्पे कल्पातीतेऽहमिन्द्र कल्पानल्पे ॥ ५ ॥

विंशतिरथ त्रिसहिता सहस्रगुणिता च सप्तनवतिप्रोक्ता ।
चतुरधिकाशीतिरतः पंचकशून्येन विनिह तान्यनघानि ॥ ६ ॥

अष्टा पंचाशदतश्चतुः शतानीह मानुषे च क्षेत्रे ।
लोका लोक विभाग प्रलोक नालोक संयुजाँ जयभाजाम् ॥ ७ ॥

नव नव चतुः शतानि चसप्त चनवतिः सहस्रगुणिताःषट्च ।
पंचाशत्पंच वियत्प्रहताः पुनरत्र कोटयोऽष्टौ प्रोक्ताः ॥ ८ ॥

एतावंत्येव सताम कृत्रिमाण्यथ जिनेशिनाँ भवनानि ।
भुवनत्रितये त्रिभुवन सुरसमिति समर्च्य मानसत्प्रतिमानि ॥ ९ ॥

वक्षार रुचक कुंडल रौप्य नगोत्तर कुलेषु कारनगेषु ।
कुरुषु च जिनभवनानि त्रिशतान्य धिकानि तानि षड्विंशत्या ॥१०॥

नन्दीश्वर सद्द्वीपे नन्दीश्वर जलधि परिवृते धृतशोभे ।
चन्द्रकर निकर संनिभरुन्द्र यशो विततदिङ् मही मंडलके ॥११॥

तत्रत्यांजन दधिमुख रतिकर पुरनगवराख्य पर्वत मुख्याः ।
प्रतिदिशमेषा मुपरि त्रयो दशेन्द्रा र्चितानि जिन भवनानि ॥१२॥

आषाढ़ कार्तिकाख्ये फाल्गुन मासे च शुक्ल पक्षे ऽष्टम्याः ।
आरम्याष्ट दिनेषु च सौधर्म प्रमुख बिबुधपतयो भक्त्या ॥१३॥
तेषु महामहमुचितं प्रचुराक्षतगंध पुष्पधूपैर्दिव्यैः ।
सर्वज्ञ प्रतिमानांमप्रतिमानां प्रकुर्वंते सर्वहितम् ॥१४॥
भेदेन वर्णना का सौधर्मः स्नपनकर्तृतामापन्नः ।
परिचारकभावमिताः शेषेन्द्रा रुन्द्र चन्द्र निर्मल यशसः ॥१५॥
मंगल पात्राणि पुनस्तद्देव्यो बिभ्रति स्म शुभ्रगुणाढ्याः ।
अप्सरसो नर्तक्यः शेषसुरास्तत्र लोकनाव्यग्रधियः ॥१६॥
वाचस्पति वाचामपि गोचरतांसं व्यतीत्य यत्क्रममाणम् ।
विबुध पति विहित विभवं मानुष मात्रस्य कस्य शक्तिः स्तोतुम् ॥१७॥
निष्टापित जिनपूजाश्चूर्णस्नपनेन दृष्ट विकृत विशेषाः ।
सुरपतयो नंदीश्वरजिनभवनानि प्रदक्षिणीकृत्य पुनः ॥१८॥
पंचसु मंदरगिरिषु श्रीभद्रशालनंदन सौमनसम् ।
पांडुकवनमिति तेषु प्रत्येकं जिनगृहाणि चत्वार्येव ॥१९॥
तान्यथ परीत्य तानि च नमसित्वा कृत सुपूजना स्तत्रापि ।
स्वास्पदमीयुः सर्वे स्वास्पदमूल्यं स्वचेष्टया संगृह्य ॥२०॥
सहतोरण सद्वेदीपरीत वनयाग वृक्ष मानस्तंभ ।
ध्वज पंक्ति दशक गोपुर चतुष्टय त्रितयशालमंडप वर्यैः ॥२१॥
अभिषेक प्रेक्षणिका क्रीडन संगीत नाटका लोकगृहैः ।
शिल्पिविकल्पित कल्पन संकल्पातीत कल्पनैः समुपुतैः ॥२२॥
वापीसत्पुष्करिणी सुदीर्घिकाद्यम्बु संसृतैः समुपेतैः ।
विकसित जलरुह कुसुमैर्नभस्यमानैः शशिग्रहर्क्षैः शरदि ॥२३॥
भृंगाराब्दक कलशाद्युपकरणैरष्ट शतक परिसंख्यानैः ।
प्रत्येकं चित्रगुणैः कृतझण झणनि नद वितत घंटाजालैः ॥२४॥
प्रभ्राजंते नित्यं हिरण्मयानीश्वरेशिनां भवनानि ।
गंधकुटीगतमृगपतिविष्टररुचिराणि विविध विभवयुतानि ॥२५॥
येषु जिनानां प्रतिमाः पंचशतशरासनोच्छ्रिताः सत्प्रतिमाः ।
मणिकनकरजत विकृता दिनकर कोटिप्रभाधिक प्रभदेहाः ॥२६॥

तानि सदा वंदेऽहं भानु प्रतिमानि यानि कानि च तानि।
यशसां महसां प्रतिदिश मतिशय शोभा विभांजि पापविभंजि ॥२७॥
सप्तत्यधिकशत प्रिय धर्म क्षेत्र गत तीर्थंकर वर वृषभान्।
भूत भविष्य त्संप्रतिकाल भवान्भव विहानये विनतोऽस्मि ॥२८॥
अस्याम वर्सापिण्यां वृषभजिनः प्रथमतीर्थंकर्ता भर्ता।
अष्टापद गिरि मस्तक गतस्थितो मुक्तिमाप पापान्मुक्तः ॥२९॥
श्रीवासुपूज्यभगवान् शिवासु पूजासु पूजितस्त्रि दशानां।
चम्पायां दुरितहरः परम पदं प्रापदापदामन्त गतः ॥३०॥
मुदित मति बलमुरारि प्रपूजितो जित कषाय रिपुरथजातः।
वृहदूर्जयन्तशिखरे शिखामणिस्त्रि भुवनस्य नेमिर्भगवान ॥३१॥
पावापुर वरसरसां मध्यगतः सिद्धि वृद्धि तपसां महसां।
वीरो नीरदनादो भूरिगुण श्चारुशोभमा स्पदमगमत् ॥३२॥
सम्मदकरि वनपरिवृत सम्मेद गिरीन्द्रमस्तके विस्तीर्णे।
शेषा ये तीर्थंकराः कीर्तिभृतः प्रार्थितार्थसिद्धिमवापन् ।३३॥
शेषाणां केवलिनां अशेणमत वेदिगण भृतां साधूनां।
गिरितल विवरदरी सरिदुरुवन तरु विटपिजलधिदहन शिखासु ॥३४॥
मोक्ष गति हेतु भूत स्थानानि सुरेन्द्र रुन्द्र भक्तिनुतानि।
मंगल भूतान्येतान्यंगो कृत धर्म कर्मणा म स्माकम् ॥३५॥
जिनपतयस्तत्प्रतिमा स्त दालयास्तन्निषद्यका स्थानानि।
ते ताश्च ते चतानि च भवन्तु भव घात हेतवो भव्यानाम् ।३६॥
संध्यासु तिसृषु नित्यं, पठेद्यदि स्तोत्रमेत दुतमयशसाम।
सर्वज्ञानां सार्वं लघु लभते श्रुतधरेडितं पदममितम् ॥३७॥
नित्यं निःस्वेदत्वं निर्मलता क्षीरगौररुधिरत्वं च।
स्वाद्याकृति संहनने सौरुप्यं सौरभं च सौलक्ष्यम् ॥३८॥
अप्रमित वीर्यता च प्रिय हित वादित्व मन्य दमित गुणस्य।
प्रथिता दशख्याताः स्वतिशय धर्माः स्वयंभुवो देहस्य ॥३९॥
गव्यूतिशत चतुष्टय सुभिक्षता गगन गमनम प्राणिवधः।
भुक्त्युपसर्गाभाव श्चतुरास्यत्वं च सर्व विद्येश्वरता ॥४०॥

अच्छायत्व मपक्ष्मस्पंदश्च सम प्रसिद्धनख केशत्वं।
स्वतिशयगुणा भगवतो घातिक्षयजा भवंति तेपि दशैव ॥४१॥
सार्वार्धमागधीया भाषा मैत्री च सर्वजनता विषया।
सर्वर्तु फलस्तबक प्रवालकुसुमोप शोभित तरु परिणामा ॥४२॥
आदर्शतल प्रतिमा रत्नमयी जायते महीच मनोज्ञा।
विहरण मन्वेत्यनिलः परमानंदश्च भवति सर्वजनस्य ॥४३॥
मरुतोऽपि सुरभिगंधव्यामिश्रा योजनांतरं — भूभागं।
व्युपशमितधूलि कंटक तृण कीटक शर्करोपलं प्रकुर्वन्ति ॥४४॥
तदनु स्तनितकुमारा विद्युन्माला विलासहास विभूषाः।
प्रकिरन्ति सुरभिगंधिं गंधोदक वृष्टिमाज्ञया त्रिदशपतेः ॥४५॥
वरपद्मराग केसर मतुलसुख स्पर्श हेममय दलनिचयम्।
पादन्यासे पद्मं सप्तपुरः पृष्ठतश्च सप्त भवंति ॥४६॥
फलभार नम्रशालिव्रीह्यादि समस्तसस्य धृतरोमांचा।
परिहृषितेव च भूमिस्त्रि भुवननाथस्य वैभवं पश्यंती ॥४७॥
शरदुदयविमलसलिलं सरइव गगनं विराजते विगतमलम्।
जहति च दिशस्तिमिरिकां विगतरजःप्रभृतिजिह्मताभावं सद्यः॥४८॥
एतेतेति त्वरितं ज्योतिर्व्यंतरदिवौ कसाममृत भुजः।
कुलिशभृदाज्ञापनया कुर्वन्त्यन्ये समन्ततो व्याह्वानम् ॥४९॥
स्फुरदरसहस्ररुचिरं विमल महारत्नकिरणनिकर परीतम्।
प्रहसित किरणसहस्र द्युति मंडलमग्रगामि धर्मसुचक्रम् ॥५०॥
इत्यष्टमगलं च स्वादर्शप्रभृति भक्तिराग परीतैः।
उपकल्प्यन्ते त्रिदशैरेतेऽपि निरुपमाति विशेषाः ॥५१॥
वैडूर्यरुचिरविटप प्रवाल मृदुपल्लवो पशोभितशाखः।
श्रीमानशोक वृक्षो वरमरकत पत्रगहन बहलच्छायः ॥५२॥
मंदारकुंद कुवलयनी लोत्पल कमलमालती बकुलाद्यैः।
समद भ्रमर परीतैर्व्यामिश्रा पतति कुसुमवृष्टिर्नभसः ॥५३॥
कटककटि सूत्र कुंडल केयूर प्रभृतिभूषितांगौ स्वंगौ।
यक्षौ कमलदलाक्षौ परिनिक्षिपतः सलील चामर युगलम् ॥५४॥

आकस्मिकमिव युगपद्दिवसकर सहस्रमपगत व्यवधानम्।
भामंडल मवि भावित रात्रिंदिव भेद मतित रामाभाति ॥५५॥

प्रबल पवना भिघात प्रक्षुभित समुद्र घोषमन्द्र ध्वानम्।
दंध्वन्यते सुवीणा वंशादि सुवाद्य दुन्दुभिस्ताल समम् ॥५६॥

त्रिभुवन पतिता लाँछर्नामिदुत्रय तुल्यमतुल मुक्ताजालम्।
छत्रत्रयं च सुबृहद्वैडूर्य विक्लृप्त दंडमधिक मनोज्ञम् ॥५७॥

ध्वनिरपि योजनमेकं प्रजायते श्रोत्रहृदय हारिगंभीरः।
ससलिल जलधर पटल ध्वनितमिव प्रविततान्तराशावलयम् ॥५८॥

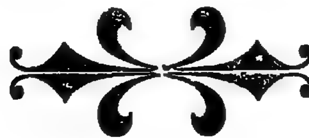
स्फुरितांशु रत्नदीधिति परिविच्छुरितामरेंद्र चापच्छायम्।
ध्रियते मृगेंद्रवर्यैः, स्फटिक्शिलाघटित सिंहविष्टरमतुलम् ॥५९॥

यस्येह चतुस्त्रिंशत्प्रवरगुणा प्रातिहार्य लक्ष्म्यश्चाष्टौ।
तस्मै नमो भगवते त्रिभुवनपरमेश्वरार्हते गुणमहते ॥६०॥

— कायोत्सर्ग आलोचना —

इच्छामि भंते! णंदीसरभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं। णंदीसरदीवम्मि, चउदिसि विदिसासु, अंचणदधिमुहरदिकरपुरणगवरेसु जाणि जिणचेइयाणि ताणि सव्वाणि तिसुवि लोएसु भवणवासिय वाणवितरजोइसिगकप्पवासियत्ति चउविहा देवा सपरिवारा दिव्वेहि गंधेहि, दिव्वेहि पुप्फेहि, दिव्वेहि धुव्वेहि, दिव्वेहि चुण्णेहि, दिव्वेहि वासेहि, दिव्वेहि ण्हाणेहि, आसाढकत्तिय फागुणमासाणं अठ्ठमिमाइं काउण जाव पुण्णिमंति णिच्चकालं अंचति, पूजंति, वंदंति, णमंसंति। णंदीसरमहाकल्लाणं करंति अहमवि इह संतो तत्थ संताइं णिच्च कालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिण गुण संपत्ति होउ मज्झं।

— इति नदीश्वर भक्ति समाप्त —



ॐ ह्रीं

चैत्य भक्तिः



ओं नमः सर्वज्ञाय।

श्रीगौतमादि पदमद्भुत पुण्यबंध, मुद्योतिता खिलम-मोघमघ प्रणाशम्।
वक्ष्ये जिनेश्वरमहं प्रणिपत्य तथ्यं, निर्वाण कारण मशेष जगद्धि तार्थम् ॥

जयति भगवान् हेमाम्भोजप्रचारविजृम्भिता।
वमरमुकुटच्छायोद्गीर्ण प्रभापरि चुम्बितौ ॥
कलुषहृदया मानोद्भ्रान्ताःपरस्परवैरिणः।
विगतकलुषाः पादौ यस्य प्रपद्य विशश्वसुः ॥१॥

तदनु जयति श्रेयान्धर्मः प्रवृद्धमहोदयः,
कुगति विपथ क्लेशाद्योसौ विपाशयति प्रजाः।
परिणत नय स्यांगी भावाद्विविक्त विकल्पितम्,
भवतु भवत स्त्रातृत्रेधा जिनेंद्रवचोऽमृतम् ॥२॥

तदनु जयताज्जैनी वित्तिः प्रभंगतरंगिणी,
प्रभव विगम ध्रौव्यद्रव्य स्वभाव विभाविनी।
निरुपमसुखस्येदं द्वारं विघट्य निरर्गलम्,
विगतरजसं मोक्षं देयान्निरत्य यमव्ययम् ॥३॥

अर्हत्सिद्धाचार्यो पाध्यायेभ्यस्तथाच साधुभ्यः।
सर्वजद्वंदेभ्यो नमोस्तु सर्वत्र सर्वेभ्यः ॥४॥
मोहादि सर्व दोषारि घातकेभ्य. सदाहतरजोभ्यः।
विरहित रहस्कृतेभ्यः पूजार्हेभ्यो नमोऽर्हद्भ्यः ॥५॥

क्षान्त्यार्जवादिगुणगणसुसाधनं सकललोकहितहेतुं।
शुभधामनि धातारं वंदे धर्म जिनेन्द्रोक्तम् ॥६॥
मिथ्याज्ञानतमोवृतलोकैकज्योतिर मितगमयोगि।
सांगोपांगमजेयं जैनं वचनं सदा वंदे ॥७॥

भवनविमानज्योतिर्व्यंतरनरलोकविश्वचैत्यानि।
त्रिजगदभिवंदितानां त्रेधा वंदे जिनेन्द्राणाम् ॥८॥

भुवनत्रयेऽपि भुवन त्रयाधिपाम्यर्च्य तीर्थ कर्तृणां ।
वन्दे भवाग्नि शान्त्यै विभवानामालयालीस्ताः ॥९॥
इति पंचमहापुरुषाः प्रणुता जिनधर्म वचन चैत्यानि ।
चैत्यालयाश्च विमलां दिशन्तु बोधिं बुध जनेष्टाम् ॥१०॥
अकृतानि कृतानि चाप्रमेय द्युतिमंति द्युतिमत्सु मंदिरेषु ।
मनुजामरपूजितानि वन्दे,प्रतिबिंबानि जगत्त्रये जिनानाम् ॥११॥
द्युति मण्डल भासुरान्गयष्टोः, प्रतिमा अप्रतिमा जिनोत्त मानाम् ।
भुवनेषु विभूतये प्रवृत्ता, वपुषा प्राञ्जलिरस्मि वन्दमानः ॥१२॥
विगतायुध विक्रिया विभूषाः, प्रकृतिस्थाः कृतिनां जिनेश्वराणां ।
प्रतिमाः प्रतिमा गृहेषु कान्त्या, प्रतिमाः कल्मष शान्तयेऽभिवंदे ॥१३॥
कथयन्ति कषाय मुक्ति लक्ष्मीं, परया शांततया भवान्तकानाम् ।
प्रणमाम्य भिरूप मूर्ति मन्ति, प्रतिरूपाणि विशुद्धये जिनानाम् ॥१४॥
यदिदं मम सिद्धभक्ति नीतं, सुकृतं दुष्कृत वर्त्मरोधि तेन ।
पटुना जिनधर्म एव भक्ति, र्भवताज्जन्मनि जन्मनि स्थिरामे ॥१५॥
अर्हतां सर्वभावानां दर्शनज्ञान संपदाम् ।
कीर्तयिष्यामि चैत्यानि यथाबुद्धि विशुद्धये ॥१६॥
श्रीमद्भावन वासस्था स्वयं भासुर मूर्तयः ।
वन्दिता नो विधेयासुः प्रतिमाः परमां गतिम् ॥१७॥
यावंति संति लोकेऽस्मिन्न कृतानि कृतानि च ।
तानि सर्वाणि चैत्यानि वन्दे भूयांसि भूतये ॥१८॥
ये व्यंतर विमानेषु स्थेयांसः प्रतिमागृहाः ।
ते च संख्यामति क्रान्ताः संतु नो दोष विच्छिदे ॥१९॥
ज्योतिषामथ लोकस्य भूतयेद्भुत संपदः ।
गृहा स्वयंभुवः संति विमानेषु नमामि तान् ॥२०॥
वंदे सुर किरीटा ग्रमणिच्छायाभि षेचनम् ।
याः क्रमेणैव सेवन्ते तदर्च्चाः सिद्धि लब्धये । २१॥
इति स्तुति पथातीत श्रीभृतामर्हतां मम ।
चैत्यानामस्तु संकीर्तिः सर्वास्रव निरोधिनी ॥२२॥

अर्हन्महानदस्य त्रिभुवन भव्यजनतीर्थ यात्रिक दुरितम्।
प्रक्षालनैक कारण मतिलौकिक कुहकतीर्थ मुत्तमतीर्थम् ॥२३॥
लोका लोक सुतत्व प्रत्यवबोधनसमर्थ दिव्यज्ञान।
प्रत्यहवहत्प्रवाहव्रतशीला मल विशाल कूल द्वितयम् ॥२४॥
शुक्ल ध्यानस्तिमितस्थितराजद्राज हंसराजितम सकृत्।
स्वाध्यायमंद्रघोषं नानागुणसमिति गुप्तिसिकतासुभगम् ॥२५॥
क्षान्त्यावर्त सहस्रं सर्वदयाविक च कुसुमविल सल्लतिकम्।
दुःसह परीषहाख्य द्रुत तररंगत्तरंग भंगुर निकरम् ॥२६॥
व्यपगत कषाय फेन रागद्वेषादि दोषशैवलरहितं।
अत्यस्तमोह कर्द्दमसति दूरनिरस्तमरण मकरप्रकरम् ॥२७॥
ऋषिवृषभ स्तुति मंद्रोद्रेकित निर्घोष विविध विहगध्वानं।
विविधतपोनिधिपुलिनं सास्रवसंवरणनिर्जरानिःस्रवणम् ॥२८॥
गणधरचक्रधरेन्द्र प्रभृति महाभव्य पुंडरीकैः पुरुषैः।
बहुभिः स्नातं भक्त्या कलिकलुषमलापकर्षणार्थममेयम् ॥२९॥
अवतीर्णवतः स्नातुं ममापि दुस्तरसमस्तदुरितं दूरम्।
व्यवहरतु परम पावन मनन्यजय्य स्वभाव भाव गंभीरम् ॥३०॥

पृथ्वी छन्द.—

आताम्रनयनोत्पलं सकल कोप वन्हेर्जयात्।
कटाक्षशर मोक्ष हीनम विकारतोद्रे कतः॥
विषादमदहानितः प्रहसितायमान सदा।
मुखं कथयतीव ते हृदय शुद्धिमात्यन्तिकीम् ॥३१॥

निराभरण भासुरं विगतरागवेगोदयात्।
निरंबरमनोहरं प्रकृति रूप निर्दोषतः॥
निरायुध सुनिर्भयं विगतहिंस्य हिंसक्रमात्।
निरामिष सुतृप्तिम द्विविधवेदनानां क्षयात् ॥३२॥

मितस्थितनखांगजं गतरजोमल स्पर्शनम्।
नवांबुरुह चंदन प्रतिमदिव्यगंधोदयम्॥
रवीन्दुकुलिशादि दिव्य बहुलक्षणालंकृतम्।
दिवाकर सहस्र भासुरम पीक्षणानां प्रियम् ॥३३॥

हितार्थपरिपंथिभिः प्रबलराग मोहादिभिः, कलंकितमना जनोयदभिवीक्ष्य शोशुध्यते।
सदाभिमुखमेव यज्जगति पश्यतां सर्वतः, शरद्विमल चन्द्रमण्डल मिवोत्थितं दृश्यते ॥३४॥

तदेतदमरेश्वर प्रचलमौलि माला मणि, स्फुरत्किरण चुंबनीयचरणार विन्दद्वयम्।
पुनातु भगवज्जिनेन्द्र तव रूपमन्धीकृतम्, जगत्सकल मन्यतीर्थ गुरुरूप दोषोदयैः ॥३५॥

मानस्तम्भाः सरांसि प्रविमलजलसत्खातिका पुष्पवाटी।
प्राकारो नाट्यशाला द्वितयमुपवनं वेदिकांतर्ध्वजाद्याः ॥

शालःकल्प द्रुमाणां सुपरिवृतवनं स्तूपहर्म्यावली च।
प्राकारः स्फाटिकोन्त र्नृसुरमुनिसभा पीठिकाग्रे स्वयंभूः ॥३६॥

वर्षेषु वर्षान्तर पर्वतेषु नंदीश्वरे यानि च मंदरेषु।
यावन्ति चैत्यायतनानि लोकेसर्वाणि वंदे जिनपुंगवानाम् ॥३७॥

अवनित लगतानां कृत्रिमाऽकृत्रिमाणां, वनभवनगतानां दिव्यवैमानिकानां।
इह मनुजकृतानां, देवराजार्चितानां जिनवर निलयानां भावतोऽहं स्मरामि ॥३८॥

जम्बू धातकि ष्पुकरार्द्ध वसुधा क्षेत्र त्रये ये भवाः।
चंद्रांभोज शिखंडि कंठ कनक प्रावृड्घनाभा जिनाः ॥

सम्यग्ज्ञान चरित्र लक्षणधरा दग्धाष्ट कर्मेन्धनाः।
भूतानागत वर्तमान समये तेभ्यो जिनेभ्यो नमः ॥३९॥

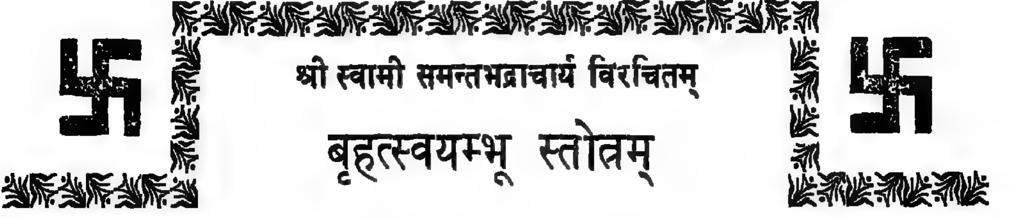
श्रीमन्मसेरौ कुलाद्रौ रजतगिरिवरे शाल्मलौ जंबुवृक्षे।
वक्षारे चैत्यवृक्षे रतिकर रुचके कुंडले मानुषांके ॥

इष्वाकारेंजनाद्रौ दधिमुख शिखरे व्यंतरे स्वर्गलोके।
ज्योतिर्लोकेऽभि वंदे भुवन महितले यानि चैत्यानि तानि ॥४०॥

देवासुरेन्द्र नरनाग समर्चितेभ्यः, पापप्रणाशकर भव्य मनोहरेभ्यः।
घंटाध्वजादिपरिवार विभूषितेभ्यो नित्यं नमो जगति सर्वजिनालयेभ्यः ॥४१॥

कायोत्सर्ग आलोचना।

इच्छामि भंते ! चेइयभत्ति काउस्सग्गो कओ तस्सा लोचेउं। अहलोयतिरिय-लोयउढ्ढलोयम्मि किट्टिमाकिट्टिमाणि जाणि जिणचेइयाणि ताणि सव्वाणि तिसुवि लोएसु भवणवासियवाणवितरजोइसिय कप्पवासियत्ति चउविहादेवा सपरिवारा दिव्वेण गंधेण, दिव्वेण चुण्णेण, दिव्वेण वासेण, दिव्वेण ण्हाणेण, णिच्चकालं अंचंति, पुज्जंति वंदंति, णमंसंति। अहमवि इह संतो तत्थ संताई णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुण संपत्ति होउ मज्झं। —इति चैत्य भक्ति समाप्तम्—



श्री स्वामी समन्तभद्राचार्य विरचितम्

बृहत्स्वयम्भू स्तोत्रम्



स्वयम्भुवा भूतहितेन भूतले, समञ्जसज्ज्ञान विभूति चक्षुषा।
विराजितं येन विधुन्वता तमः, क्षपाकरेणेव गुणोत्करैः करैः ॥ १ ॥
प्रजापतिर्यः प्रथमं जिजीविषुः, शशास कृष्यादिषु कर्मसु प्रजाः।
प्रबुद्धतत्त्वः पुनरद्भुतोदयो, ममत्वतो निर्विविदे विदांवरः ॥ २ ॥
विहाय यः सागरवारि वाससं, वधूमिवेमां वसुधावधूं सतीम्।
मुमुक्षुरिक्ष्वाकु कुलादि रात्मवान्, प्रभुः प्रवव्राज सहिष्णुरच्युतः ॥ ३ ॥
स्वदोष मूलं स्वसमाधि तेजसा, निनाय यो निर्दय भस्मसात्क्रियाम्।
जगाद तत्त्वं जगतेऽर्थिनेऽञ्जसा, बभूव च ब्रह्मपदा मृतेश्वरः ॥ ४ ॥
स विश्वचक्षुर्वृषभोऽर्चितः सतां, समग्रविद्यात्म वपुर्निरञ्जनः।
पुनातु चेतो मम नाभिनन्दनो, जिनो जित क्षुल्लक वादि शासनः ॥ ५ ॥

इत्यादि जिन स्तोत्रम् ॥१॥

यस्य प्रभावात्त्रि दिवच्युतस्य, क्रीडास्वपि क्षीवमुखार विन्दः।
अजेयशक्तिर्भुवि बन्धुवर्ग, श्चकार नामाजित इत्यवन्ध्यम् ॥ ६ ॥
अद्यापि यस्याजित शासनस्य, सतां प्रणेतुः प्रतिमंगलार्थम्।
प्रगृह्यते नाम परं पवित्रं, स्वसिद्धि कामेन जनेन लोके ॥ ७
यः प्रादुरासीत्प्रभुशक्ति भूम्ना, भव्या शयालीन कलंक शान्त्यै।
महा मुनिर्मुक्तघनो पदेहो, यथारविन्दाभ्यु दयाय भास्वान् ॥ ८ ॥
येन प्रणीतं पृथु धर्म तीर्थं, ज्येष्टं जनाः प्राप्य जयन्ति दुःखम्।
गांगं ह्रदं चंदन पंक शीतं, गज प्रवेका इव धर्मतप्ताः ॥ ९ ॥
स ब्रह्मनिष्टः सममित्रशत्रु, विद्या विनिर्वान्त कषायदोषः।
लब्धात्म लक्ष्मी रजितोऽजितात्मा, जिनः श्रियंमे भगवान् विधत्ताम् ॥१०॥

इत्याजित जिन स्तोत्रम् ॥२॥

त्वं शम्भवः संभवतर्षरोगैः, संतप्यमानस्य जनस्य लोके।
आसीरिहाकस्मिक एव वैद्यो, वैद्यो यथा नाथ रुजां प्रशान्त्यै ॥११॥
अनित्यमत्राण महं क्रियाभिः, प्रसक्त मिथ्या ध्यवसाय दोषम्।
इदं जगज्जन्मजरान्तकार्तं, निरञ्जनां शान्तिमजीगमस्त्वम् ॥१२॥
शतहृदोन्मेषचलं हि सौख्यं, तृष्णामयाप्यायनमात्रहेतुः।
तृष्णाभिवृद्धिश्च तपत्यजस्रं, तापस्तदायासयतीत्यवादीः ॥१३॥
बंधश्च मोक्षस्च तयोश्च हेतु, बद्धश्च मुक्तश्च फलं च मुक्तेः।
स्याद्वादनो नाथ तवैव युक्तं, नैकान्तदृष्टेस्त्वमतोऽसि शास्ता ॥१४॥
शक्रोऽप्यशक्तस्तव पुण्यकीर्तेः, स्तुत्यां प्रवृत्तः किमु मादृशोऽज्ञः।
तथापि भक्त्या स्तुतपादपद्मो, ममार्यं देयाः शिवतातिमुच्चैः ॥१५॥

इति शंभव जिन स्तोत्रम् ॥३॥

गुणाभिनन्दादभिनन्दनो भवान्, दयावधूं क्षान्तिसखीमशिश्रियत्।
समाधितन्त्रस्तदुपोपपत्तये, द्वयेन नैर्ग्रन्थ्यगुणेन चायुजत् ॥१६॥
अचेतने तत्कृतबन्धजेऽपि, ममेदमित्या भिनिवेशकग्रहात्।
प्रभंगुरे स्थावरनिश्चयेन च, क्षतं जगत्तत्त्वमजिग्रहद्भवान् ॥१७॥
क्षुदादि दुःख प्रतिकारतःस्थिति, नंचेन्द्रियार्थप्रभवाल्पसौख्यतः।
ततो गुणो नास्ति च देहदेहिनोरितीदमित्थं भगवान् व्यजिज्ञपत् ॥१८॥
जनोऽतिलोलोऽप्यनुबन्धदोषतो भयादकार्येष्विह न प्रवर्त्तते।
इहाप्यमुत्राप्यनुबन्धदोषवित्कथं सुखे संसजतीति चाब्रवीत् ॥१९॥
सचानुबन्धोऽस्य जनस्यताप, कृत्तृषोऽभिवृद्धिःसुखतो न च स्थितिः।
इति प्रभो लोकहितं यतोमतं, ततो भवानेव गतिः सतां मतः ॥२०॥

इत्यभिनन्दन जिन स्तोत्रम् ॥४॥

अन्वर्थसंज्ञः सुमतिर्मुनिस्त्वं, स्वयंमतं येन सुयुक्ति नीतम्।
यतश्च शेषेषु मतेषु नास्ति, सर्वक्रिया कारक तत्त्वसिद्धिः ॥२१॥
अनेममेकं च तदेव तत्त्वं भेदान्वयज्ञानमिदं हि सत्यम्।
मृषोपचारोऽन्यतरस्य लोपे, तच्छेषलोपोऽपि ततोऽनुपाख्यम् ॥२२॥

सतः कथंचित्तदसत्वशक्तिः, खे नास्ति पुष्पं तरुषु प्रसिद्धम्।
सर्वस्वभाव च्युतमप्रमाणं, स्ववाग्विरुद्धं तव दृष्टितोऽन्यत् ॥२३॥

न सर्वथा नित्य मुदेत्य पैति, न च क्रियाकारकमत्र युक्तम्।
नैवासतो जन्म सतो न नाशो, दीपस्तमः पुद्गल भावतोऽस्तिः ॥२४॥

विधिर्निषेधश्च कथंचि दिष्टौ, विवक्षया मुख्यगुण व्यवस्था।
इति प्रणीतिः सुमते स्तवेयं, मतिप्रवेकः स्तुवतोऽस्तु नाथ ॥२५॥

इति सुमति जिन स्तोत्रम् ॥५॥

पद्मप्रभः पद्मपलाशलेश्यः, पद्मालयालिंगित चारु मूर्तिः।
बभौ भवान् भव्य पयोरुहाणां, पद्माकराणामिव पद्म बन्धुः ॥२६॥

बभार पद्मां च सरस्वतीं च, भवान्पुरस्तात्प्रति मुक्ति लक्ष्म्याः।
सरस्वतीमेव समग्र शोभां, सर्वज्ञ लक्ष्मीं ज्वलितां विमुक्तः ॥२७॥

शरीर रश्मि प्रसरः प्रभोस्ते, बालार्क रश्मिच्छ विरालिलेप।
नरामराकीर्णसभां प्रभा व, च्छैलस्य पद्माभमणेः स्वसानुम् ॥२८॥

नभस्तलं पल्लव यन्निव त्वं, सहस्र पत्राम्बुज गर्भ चारैः।
पादाम्बुजैः पातित मार दर्पो, भूमौ प्रजानां विजहर्ष भूत्यै ॥२९॥

गुणाम्बुधे विप्रुषमप्य जस्रं, नाखण्डल स्तोतुमलं तवर्षेः।
प्रागेव मादृक्किमु तांति भक्ति, र्मां बाल माला पयतीद मित्थम् ॥३०॥

इति पद्मप्रभ जिन स्तोत्रम् ॥६॥

स्वास्थ्यं यदात्यन्तिक मेष पुंसां, स्वार्थो न भोगः परिभंगुरात्मा।
तृषोऽनुषंगान्न च ताप शांति, रितीद माख्यद्भगवान् सुपार्श्वः ॥३१॥

अजंगमं जंगमनेय यन्त्रं, यथा तथा जीवधृतं शरीरम्।
बीभत्सु पूति क्षयि तापकं च, स्नेहो वृथात्रेति हितं त्वमाख्यः ॥३२॥

अलंघ्य शक्ति र्भवितव्य तेयं, हेतुद्वया विष्कृत कार्यलिंगा।
अनीश्वरो जन्तुरहं क्रियार्त्तः, संहत्य कार्येष्विति साध्ववादीः ॥३३॥

विभेति मृत्योर्न ततोऽस्ति मोक्षो, नित्यंशिवं वाञ्छतिनास्य लाभः।
तथापि बालो भय काम वश्यो, वृथा स्वयं तप्यत इत्यवादीः ॥३४॥

सर्वस्य तत्त्वस्य भवान् प्रमाता, मातेव बालस्य हितानुशास्ता ।
गुणावलोकस्य जनस्य नेता, मयापि भक्त्या परिणूयसेऽद्य ।।३५।।

इति सुपार्श्वजिन स्तोत्रम् ।।७।।

चन्द्रप्रभं चन्द्रमरीचि गौरं, चन्द्रं द्वितीयं जगतीव कान्तम् ।
वन्देऽभिवन्द्यं महतामृषीन्द्रं, जिनं जितस्वान्त कषायबन्धम् ।।३६।।

यस्यांग लक्ष्मी परिवेष भिन्नं, तमस्तमोरेरिव रश्मि भिन्नम् ।
ननाश वाह्यं बहुमानसं च, ध्यान प्रदीपाति शयेन भिन्नम् ।।३७।।

स्वपक्ष सौ स्थित्य मदावलिप्ता, वार्कासिंह नार्दविमदा बभूवुः ।
प्रवादिनो यस्य मदार्द्रगण्डा, गजा यथा केशरिणो निनादैः ।।३८।।

यः सर्वलोके परमेष्टितायाः, पदं वभूवाद्भुत कर्म तेजाः ।
अनन्त धामाक्षरविश्व चक्षुः, समेतदुःख क्षय शासनश्च ।।३९।।

स चन्द्रमा भव्य कुमुद्वतीनां, विपन्न दोषाभ्र कलंकलेपः ।
व्याकोशवांगन्याय मयूखमालः, पूयात् पवित्रो भगवान्मनो मे ।।४०।।

इति चन्द्रप्रभ जिन स्तोत्रम् ।।८।।

एकान्त दृष्टि प्रतिषेधि तत्त्वं, प्रमाणसिद्धं तद तत्स्वभावम् ।
त्वया प्रणीतं सुविधे स्वधाम्ना, नैतत्स मालीढपदं त्वदन्यैः ।।४१।।

तदेव च स्यान्न तदेव च स्या, त्तथा प्रतीतेस्तव तत्कथंचित् ।
नात्यन्तम न्यत्व मनन्यता च, विधेर्निषेधस्य च शून्यदोषात् ।।४२।।

नित्यं तदे वेदमिति प्रतीतेर्न, नित्य मन्य त्प्रति पत्तिसिद्धेः ।
न तद्विरुद्धं बहिरन्तरंग, निमित्त नैमित्तिक योगतस्ते ।।४३।।

अनेकमेकं च पदस्य वाच्यं, वृक्षा इति प्रत्ययवत्प्रकृत्या ।
आकांक्षिणः स्यादिति वै निपातो, गुणानपेक्षे नियमेऽपवादः ।।४४।।

गुणप्रधानार्थमिदं हि वाक्यं, जिनस्य ते तद्द्विषतामपथ्यम् ।
ततोऽभिवन्द्यं जगदीश्वराणां, ममापि साधोस्तव पादपद्मम् ।।४५।।

इति सुविधि जिन स्तोत्रम् ।।९।।

न शीतलाश्चन्दन चन्द्र रश्मयो: न गॉगमम्भो न च हारयष्टय:।
यथा मुनेस्तेऽनघ वाक्यरश्मय:, शमाम्बुगर्भा: शिशिराविपश्चितां ।।४६।।

सुखाभिलाषा नलदाह मूर्च्छितं, मनो निजं ज्ञानमयामृताम्बुभि:।
विदिध्यपस्त्वं विषदाह मोहितं, यथा भिषग्मन्त्रगुणै: स्वविग्रहं ।।४७।।

स्वजीविते कामसुखे च तृष्णया, दिवा श्रमार्त्ता निसिशेरते प्रजा:।
त्वमार्य्य नक्तं दिवमप्रमत्तवान, जागरेवात्म विशुद्ध वर्त्मनि ।।४८।।

अपत्य वित्तोत्तर लोक तृष्णया, तपस्विन: केचन कर्म कुर्वते।
भवान्पुनर्जन्म जराजिहासया, त्रयी प्रवृति शमधीर वारुणात् ।।४९।।

त्वमुत्तम ज्योतिरज: क्वनिर्वृत:, क्व ते परे बुद्धिलवोद्ध वक्षता:।
तत: स्वनिश्रेयस भावना परै, बुंध प्रवेकैर्जिन शीतलेढ्यसे ।।५०।।

इति शीतलेजिनस्तोत्रम् ।।१०।।

श्रेयान् जिन:श्रेयसि वर्त्मनीमा:, श्रेय: प्रजा: शासव जेयवाक्य:।
भवॉश्चकासे भुवनत्रये ऽस्मिन्नेको, यथा वीतघनो विवस्वान् ।।५१।।

विधिर्विषक्त प्रतिषेध रूप:, प्रमाण मत्रान्य तरत्प्रधानम्।
गुणो परो मुख्य नियाम हेतुर्नय:, सदृष्टॉत समर्थ नरते ।।५२।।

विवक्षितो मुख्य इतीष्यतेऽन्यो, गुणो विवक्षो न निरात्म कस्ते।
तथारि मित्रानुभयादिशक्ति, र्द्वयावधि: कार्य्यकरं हि वस्तु ।।५३।।

दृष्टांत सिद्धा वुभयोर्विवादे, साध्यं प्रसिद्ध्येन्न तु तादृगस्ति।
यत्सर्वथैकान्त नियाम दृष्टं, त्वदीय दृष्टिर्विभवत्य शेषे ।।५४।।

एकान्त दृष्टि प्रतिषेध सिद्धि, र्न्यायेषु भिर्मोहरिपुं निरस्य।
असि स्म कैवल्य विभूति सम्राट, ततस्त्व मर्हन्नसि मेस्तवार्ह: ।।५५।।

इति श्रेयास जिन स्तोत्रम् ।।११।।

शिवासु पूज्योऽभ्युदय क्रियासु, त्वं वासुपूज्य स्त्रिदशेन्द्र पूज्य:।
मयापि पूज्योऽल्पधिया मुनीन्द्र, दीपार्चिषार्कि तपनो न पूज्य: ।।५६।।

न पूजयार्थस्त्वयि वीतरागे, न निन्दया नाथ विवान्तवैरे।
तथापि ते पुण्यगुण स्मृतिर्न:, पुनातु चित्तं दुरिताञ्जनेभ्य: ।।५७।।

पूज्यं जिनं त्वार्चयतो जनस्थं, सावद्यलेशो बहुपुण्यराशौ।
दोषाय नालं कणिका विषस्य, न दूषिका शीतशिवाम्बुराशौ ॥५८॥
यद्वस्तु बाह्यं गुणदोषसूते, निमित्तमभ्यन्तर मूलहेतोः।
अध्यात्म वृत्तस्य तदंगभूत, मभ्यन्तर केवलमप्यलं ते ॥५९॥
बाह्येतरोपाधि समग्रतेयं कार्येषु ते द्रव्यगतः स्वभावः।
नैवान्यथा मोक्षविधिश्च पुंसां, तेनाभिवन्द्यस्त्वमृषिबुधानाम् ॥६०॥

इति वासुपूज्य जिन स्तोत्रम् ॥१२॥

य एव नित्यक्षणिकादयो नया, मिथोऽनपेक्षाः स्वपरप्रणाशिनः।
त एव तत्त्वं विमलस्य ते मुनेः, परस्परेक्षाः स्वपरोपकारिणः ॥६१॥
यथैकशः कारकमर्थसिद्धये, समीक्ष्य शेषं स्वसहायकारकम्।
तथैव सामान्यविशेष मातृका, नयास्तवेष्टा गुणमुख्यकल्पतः ॥६२॥
परस्परेक्षान्वय भेद लिंगतः, प्रसिद्ध सामान्य विशेषयोस्तव।
समग्रतास्ति स्वपरावभासकं, यथा प्रमाणं भुवि बुद्धिलक्षणम् ॥६३॥
विशेषवाच्यस्य विशेषणं वचो, यतोविशेष्यं विनियम्यते च यत्।
तयोश्च सामान्यमतिप्रसज्यते, विवक्षितात्स्यादितितेऽन्यवर्जनम् ॥६४॥
नयास्तव स्यात्पदसत्यलाञ्छिता, रसोपविद्धा इव लोह धातवः।
भवन्त्यभिप्रेतगुणा यतस्ततो, भवन्तमार्याः प्रणिताहितैषिणः ॥६५॥

इति विमल जिन स्तोत्रम् ॥१३॥

अनन्तदोषाशयविग्रहो ग्रहो, विषंग वान्मोहमयश्चिरं हृदि।
यतो जितस्तत्त्वरुचौ प्रसीदता, त्वया ततोभूर्भगवाननन्तजित् ॥६६॥
कषायनाम्नां द्विषतां प्रमाथिनाम, शेषयन्नाम भवानशेषवित्।
विशोषणं मन्मथदुर्मदामयं, समाधिभषज्य गुणैर्व्यलीनयन् ॥६७॥
परिश्रमाम्बुर्भयवीचिमालिनी, त्वया स्वतृष्णासरिदार्य शोषिता।
असंगघर्मार्कं गभस्ति तेजसा, परं ततो निर्वृतिधाम तावकम् ॥६८॥
सुहृत्त्वयि श्रीसुभगत्वमश्नुते, द्विषंत्वयिरं प्रत्यय वत्प्रलीयते।
भवानुदासी नत मस्त योरपि, प्रभो प चित्रमिदं तवेहितम् ॥६९॥
त्वमीदृशस्तादृश इत्ययं मम, प्रलापलेशो ऽल्पमतेर्महामुने।
अशेषमाहात्म्यमनीर यन्नपि, शिवाय संस्पर्श इवामृताम्बुधेः ॥७०॥

इतिअनन्त जिन स्तोत्रम् ॥१४॥

धर्म तीर्थ मनघं प्रवर्त्तयन्, धर्म इत्यनुमतः सतां भवान् ।
कर्म कक्ष मदहत्तपोऽग्निभिः, शर्म शाश्वतमवाप शङ्करः । ७१॥
देवामानव निकाय सत्तमै, रेजिषे परिवृतो वृतो बुधैः ।
तारका परिवृत्तोऽतिपुष्कलो, व्योमनीव शशलाञ्छनोऽमलः ॥७२॥
प्रातिहार्य विभवैः परिष्कृतो, देहतोऽपि विरतो भवानभूत ।
मोक्ष मार्गमशिषन्नरामरान्नापि, शासन फलैषणातुरः ॥७३॥
काय वाक्य मनसां प्रवृत्तयो, नाऽभवंस्तव मुनेश्चिकीर्षया ।
नासमीक्ष्यभवतः प्रवृत्तयोधीर, तावकमचिन्त्य मीहितम् ॥७४॥
मानुषीं प्रकृतिमभ्यतीतवान्, देवतास्वपि च देवता यतः ।
तेन नाथ परमासि देवता, श्रेयसे जिनवृष प्रसीद नः ॥७५॥

इति धर्म जिन स्तोत्रम् ॥१५॥

विधाय रक्षां परतः प्रजानां, राजा चिरंयोऽप्रतिमप्रतापः ।
व्यधात्पुरस्तात्स्वत एव शान्ति, र्मुनिर्दया मूर्तिरिवाघ शान्तिम् ॥७६॥
चक्रेण यः शत्रुभयं करेण, जित्वा नृपः सर्वनरेन्द्र चक्रम् ।
समाधि चक्रेण पुनर्जिगाय, महोदयो दुर्जयमोह चक्रम् ॥७७॥
राजश्रिया राजसु राजसिंहो, रराज यो राजसु भोगतन्त्रः ।
आर्हन्त्यलक्ष्म्या पुनरात्मतन्त्रो, देवासुरो दारसभे रराज ॥७८॥
यस्मिन्न भूद्राजनि राजचक्रं, मुनौ दयादीधिति धर्म चक्रम् ।
पूज्ये मुहुः प्राञ्जलि देवचक्रं, ध्यानोन्मुखे ध्वंसिकृतान्तचक्रम् ॥७९॥
स्वदोषशान्त्याविहितात्मशांतिः, शान्तेर्विधाता शरणं गतानाम् ।
भूयाद्भव क्लेश भयोपशान्त्यै, शान्तिर्जिनो मे भगवान् शरण्यः ॥८०॥

इति शाति जिन स्तोत्रम् ॥१६॥

कुन्थुप्र भृत्य खिलसत्त्वदयैकतानः, कुन्थुर्जिनो ज्वरजरामरणोपशान्त्यै ।
त्वं धर्म चक्रमिह वर्त्तयसिस्म भूत्यै, भूत्वा पुरा क्षितिपतीश्वरचक्रपाणिः ॥८१॥
तृष्णार्चिषःपरिदहन्ति न शांतिरासा, मिष्टेन्द्रियार्थविभवैः परिवृद्धिरेव ।
स्थित्यैवकाऽयपरितापहरंनिमित्त,मित्यात्मवान्विषयसौख्यपराङ्मुखोऽभूत ॥८२॥

वाह्यं तपः परमदुश्चरमाचरंस्त्व, माध्यात्मिकस्य तपसः परिबृंहणार्थम्।
ध्यानं निरस्य कलुषद्वयमुत्तरस्मिन्, ध्यानद्वये ववृतिषेऽतिशयोपपन्ने ॥८३॥
हुत्वा स्वकर्मकटुक प्रकृतीश्चतस्त्रो, रत्नत्रयातिशय तेजसि जातवीर्य्यः।
विभ्राजिषे सकलवेद विधेर्विनेता, व्यभ्रे यथा वियति दीप्तरुचिर्विवस्वान् ॥८४॥
यस्मान्मुनीन्द्र तव लोकपितामहाद्या, विद्याविभूतिकणिकामपि नाप्नुवन्ति।
तस्माद् भवन्तमजम प्रतिमेय मार्याः, स्तुत्यं स्तुवन्ति सुधियः स्वहितैकतानाः ॥८५॥

इति कुन्थु जिन स्तोत्रम् ॥१७॥

गुणस्तोकं सदुल्लंघ्य तद्बहुत्वकथा स्तुतिः।
आनन्त्यात्ते गुणा वक्तुमशक्यास्त्वयि सा कथम् ॥८६॥
तथापि ते मुनीन्द्रस्य यतो नामापि कीर्तितम्।
पुनाति पुण्यकीर्तेर्नस्ततो ब्रूयाम किञ्चन ॥८७॥
लक्ष्मी विभव सर्वस्वं मुमोक्षोश्चक्र लाञ्छनम्।
साम्राज्यं सार्वभौमं ते जरतृणमिवाभवत् ॥८८॥
तव रूपस्य सौन्दर्यं दृष्ट्वा तृप्तिमनापिवान्।
द्वयक्षः शक्रः सहस्राक्षो बभूव बहुविस्मयः ॥८९॥
मोहरूपो रिपुः पापः कषाय भट साधनः।
दृष्टि सम्पदुपेक्षा स्त्रैस्त्वया धीर पराचितः ॥९०॥
कन्दर्प स्योद्धरो दर्पस्त्रै लोक्य विजयार्जितः।
हेपयामास तं धीरे त्वयि प्रतिहतोदयः ॥९१॥
आयत्यां च तदात्वे च दुःखयोर्निनिरुत्तरा।
तृष्णानदी त्वयोत्तीर्णा विद्यानावा विविक्तया ॥९२॥
अन्तकः क्रन्दको नृणां जन्मज्वरसखा सदा।
त्वामन्तकान्तकं प्राप्य व्यावृत्तः कामकारतः ॥९३॥
भूषावेषा युधत्यागि विद्यादम दया परम्।
रूपमेव तवाचष्टे धीर दोष विनिग्रहम् ॥९४॥
समन्ततोंऽगभासां ते परिवेषेण भूयसा।
तमो बाह्यमपाकीर्णम ध्यात्म ध्यान तेजसा ॥९५॥

सर्वज्ञ ज्योतिषोद् भूतस्तावको महिमोदयः।
कं न कुर्यात् प्रणम्रं ते सत्त्वं नाथ सचेतनम् ॥९६॥
तव वागमृतं श्रीमत्सर्वभाम् भाषा स्वभावकम्।
प्रणीयत्यमृतं यद्वत् प्राणिनो व्यापि संसदि ॥९७॥
अनेकान्तात्म दृष्टिस्ते सती शून्यो विपर्ययः।
ततः सर्वं मृषोक्तं स्यात्तदयुक्तं स्वघाततः ॥९८॥
ये परस्पर खलितोन्निद्राः स्वदोषे भ्रान मीलनः।
तपस्विनस्ते किं कुर्युरपात्रं त्वन्मत श्रियः ॥९९॥
ते तं स्वघातिनं दोषं शमीकर्त्तु मनीश्वराः।
त्वद्द्विषः स्वहनो बालस्तत्त्वावक्त व्यतां श्रिताः ॥१००॥
सदेकनित्य वक्तव्यास्त द्विपक्षाश्च ये नयाः।
सर्वथेति प्रदुष्यन्ति पुष्यन्ति स्यादितीहिते ॥१०१॥
सर्वथा नियमत्यागी यथा दृष्टम पेक्षकः।
स्याच्छब्दस्तावके न्याये नान्येषामात्म विद्विषाम् ॥१०२॥
अनेकान्तोऽप्य नेकान्तः प्रमाण नय साधनः।
अनेकान्तः प्रमाणान्ते तदेकान्तोऽर्पि तान्नयात् ॥१०३॥
इति निरुपम युक्तिशासनः प्रियहितयोग गुणानुशासनः।
अरजिन दमतीर्थ नायकस्त्वमिव सतां प्रतिबोधनायकः ॥१०४॥
मतिगुण विभवानुरूप तस्त्वयि वरदागम दृष्टि रूपतः।
गुणकृशमपि किञ्चनोदितं मम भवतादुरिता शनोदितम् ॥१०५॥

इत्यरजिन स्तोत्रम् ॥१८॥

यस्य महर्षेः सकल पदार्थ प्रत्यवबोधः समजनि साक्षात्।
सामरमर्त्यं जगदपि सर्वं प्राञ्जलि भूत्वा प्रणिपततिस्म ॥१०६॥
यस्य च मूर्तिः कनकमयीव स्वस्फुर दाभाकृत परिवेषा।
वागपि तत्त्वं कथयितुकामा स्यात्पदपूर्वा रमयति साधून् ॥१०७॥
यस्य पुरस्ताद्विगलितमाना न प्रतितीर्थ्या भुवि विवदन्ते।
भूरपि रम्या प्रतिपदभासीज्जात विकोशाम्बुज मृदुहासा ॥१०८॥

यस्य समन्ताज्जिन शिशिरांशोः शिष्यक साधुग्रह विभवोऽभूत् ।
तीर्थमपि स्वं जनन समुद्र त्रासित सत्त्वोत्तरण पथोऽग्रम् ॥१०६॥
यस्य च शुक्लं परम तपोऽग्निर्ध्यान मनंतं दुरित मधाक्षीत् ।
तंजिनसिंहं कृतकरणीयं मल्लिम शल्यं शरण मितोऽस्मि ॥११०॥

इति मल्लिजिन स्तोत्रम् ॥१६॥

अधिगत मुनिसुव्रत स्थितिर्मुनिवृषभो मुनिसुव्रतोऽनघः ।
मुनिपरिषदिनिर्बभौ भवानुडुपरिषत्परिवीतसोमवत् ॥१११॥
परिणत शिखि कण्ठ राग याकृतमदनिग्रहविग्रहाभया ।
भव जिन तपसः प्रसूतया ग्रह परिवेष रुचेव शोभितम् ॥११२॥
शशि रुचिशुचि सुक्तलोहितं सुरभितरं विरजो निजं वपुः ।
तव शिवमति विस्मयं यते यदपि च वाङ्मन सोऽय मीहितम् ॥११३॥
स्थिति जनन निरोध लक्षणं चरमचरं च जगत्प्रतिक्षणम् ।
इति जिन सकलज्ञ लाञ्छनं वचनमिदं वदतां वरस्यते ॥११४॥
दुरितमल कलंक मष्टकं निरुपम योगबलेन निर्दहन् ।
अभव दभव सौख्यवान् भवान् भवतु ममापि भवोप शांतये ॥११५॥

इति मुनि सुव्रत जिन स्तोत्रम् ॥२०॥

स्तुतिः स्तोतुः साधोःकुशलपरिणामाय सतदा, भवेन्मा वास्तुत्यः फलमपि ततस्तस्य चसतः
किमेवं स्वाधीनाज्जगति सुलभे श्रायसपथे, स्तुयान्न त्वां विद्वान्सततमपि पूज्यं नमिजिनम्
त्वया धीमन् ब्रह्मप्रणिधिमनसा जन्मनिगलं, समूलं निर्भिन्नं त्वमसि विदुषां मोक्षपदवी
त्वयि ज्ञानज्योतिर्विभव किरणैर्भाति भगवन्नभूवन् खद्योता इव शुचिरवावन्यमतयः
विधेयं वार्यं चानुभयमुभयं मिश्रमपि तत्, विशेषैः प्रत्येकं नियम विषयैश्चा परिमितैः
सदान्योन्यापेक्षैः सकलभुवन ज्येष्ठगुरुणा, त्वया गीतं तत्त्वं बहुनय विवक्षेतरवशात्
अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्म परमं, न सा तत्रारम्भोस्त्यणुरपि च यत्राश्रमविधौ
ततस्तत्सिध्यर्थं परमकरुणो ग्रन्थमुभयं, भवानेवात्याक्षीन्न च विकृतवेषो पधिरतः
वपुर्भूषावेष व्यवधिरहितं शान्तिकरणं, यतस्ते संचष्टे स्मरशरविषातंक विजयम्
विना भीमैः शस्त्रैरदय हृदयामर्ष विलयं, ततस्त्वं निर्मोहः शरण मसि नः शान्ति निलयः

इति नमिजिन स्तोत्रम् ॥२१॥

भगवानृषिः परमयोगदहन हुतकल्मषेन्धनम् ।
ज्ञानविपुलकिरणैः सकलं प्रतिबुध्य बुद्धःकमलायतेक्षणः ॥१२१॥
हरिवंश केतुरनवद्यविनय दमतीर्थ नायकः ।
शीलजलधिर भवोविभस्त्वमरिष्टनेमि जिनकुञ्जरोऽजरः ॥१२२॥
त्रिदशेन्द्र मौलि मणि रत्नकिरण विसरोप चुम्बितम् ।
पादयुगलममलं भवतो विकसित् कुशेशयदलारुणोदरम् ॥१२३॥
नखचन्द्र रश्मि कवचाति रुचिर शिखरांगुलिस्थलम् ।
स्वार्थनियत मनसः सुधियः प्रणमन्ति मन्त्रमुखरा महर्षय ॥१२४॥
द्यु तिमद्रथांग रविबिम्ब किरणजटिलांशु मण्डलः ।
नील जलज दलराशि वपुः सह बन्धुभिर्गरुड केतुरीश्वरः ॥१२५॥
हलभृच्च ते स्वजन भक्तिमुदित हृदयो जनेश्वरौ ।
धर्मविनय रसिकौ सुतरां चरणारविन्द युगलं प्रणेमतुः ॥१२६॥
ककुदं भुवः खचरयोषिदुषित शिखरैरलंकृतः ।
मेघपटल परिवीततटस्तव लक्षणानि लिखितानि वज्रिणा ॥१२७॥
वहतीति तीर्थमृषिभिश्च सततमभिगम्यतेऽद्य च ।
प्रीति विततहृदयैःपरितो भृशमूर्ज्जयन्त इति विश्रुतोऽचलः ॥१२८॥
वहिरन्तरप्युभयथा च करणमविघाति र्नाथकृर्ता ।
नाथ युगपदखिलं च सदा त्वमिदं तलामलकवद्विवेदिथ ॥१२९॥
अत एव ते बुधनुतस्य चरित गुण मद्भुतोदयम् ।
न्यायविहितमवधार्य जिने त्वयि सुप्रसन्नमनसःस्थिता वयं ॥१३०॥

इत्यरिष्टनेमि जिन स्तोत्रम् ॥२२॥

तमालनीलैः सधनुस्तडिद्गुणैः, प्रकीर्ण भीमाशनिवायुवृष्टिभः ।
बलाह कैर्वैरिवशैरुपद्रु तो, महामना यो न चचाल योगतः ॥१३१॥
वृहत्फणा मण्डल मण्डपेन, यं स्फुरत्तडित्पिगरुचोपसर्गिणाम् ।
जुगूह नागो धरणो धराधरं, विरागसन्ध्यातडिदम्बुदो यथा ॥१३२॥
स्वयोगनिर्स्त्रिश निशातधारया,निशात्य यो दुर्जय मोहविद्विषम् ।
आवापदार्हन्त्यम चिन्त्यमद्भुतं, त्रिलोकपूजातिशयास्पदं पदम् ॥१३३॥

यमीश्वरं वीक्ष्य विधूत कल्मषं, तपोधनास्तेऽपि तथा बुभूषवः।
वनौकसः स्वश्रमबन्ध्यबुद्धयः, शमोपदेशं शरणं प्रपेदिरे ॥१३४॥
स सत्यविद्या तपसां प्रणायकः, समग्रधीरुग्र कुलाम्बरांशुमान्।
मया सदा पार्श्वजिनः प्रणम्यते, विलीन मिथ्यापथदृष्टिविभ्रमः ॥१३५॥

इति पार्श्वजिन स्तोत्रम् ॥२३॥

कीर्त्या भुवि भासि तया वीर, त्वं गुणसमुच्छ्रया भासितया।
भासोडुसभासितया सोम इव, व्योम्नि कुन्द शोभासितया ॥१३६॥
तव जिन शासन विभवो, जयतिकलावपिगुणानुशासनविभवः।
दोषकशासन विभवः स्तुवंति चैनं, प्रभाकृशासन विभवः ॥१३७॥
अनवद्यः स्याद्वादस्तव, दृष्टेष्टा विरोधतः स्याद्वादः।
इतरो न स्याद्वादो सद्वितय विरोधान्मुनीश्वराऽस्याद्वादः ॥१३८॥
त्वमसि सुरासुरमहितो ग्रन्थिक सत्त्वाशय प्रणामामहितः।
लोकत्रय परम हितोऽनावरण ज्योति रुज्वलद्धा महितः ॥१३९॥
सभ्यानामभिरुचितं दधासि गुण भूषणं श्रिया चारु चितम्।
मग्नं स्वस्यां रुचिरं जयसि च मृगलांछनं स्वकान्त्या रुचितम् ॥१४०॥
त्वं जिन गतमदमायस्तव भावानां मुमुक्षुकामदमायः।
श्रेयान् श्रीमदमायस्त्वया समादेशि सप्रयामदमायः ॥१४१॥
गिरभित्त्यवदानवतः श्रीमत इव दन्तिनः श्रवद्दानवतः।
तव शमवादानवतो गतमूर्जितमपगत प्रमादानवतः ॥१४२॥
वहुगुण संपद सकलं परमतमपि मधुरवचन विन्यासकलम्।
नय भक्त्यवतं सकलं तव देव मतं समन्तभद्रं सकलम् ॥१४३॥

इति वीर जिनस्तोत्रम् ॥२४॥

यो निःशेष जिनोक्त धर्म विषयः श्रीगौतमाद्यैः कृतः,
सूक्तार्थैरमलैः स्तवोयमसमः स्वल्पैः प्रसन्नैः पदैः।
तद्व्याख्यानमदो यथाह्यवगतः किञ्चित्कृतं लेशतः,
स्थेयांश्चन्द्र दिवाकरावधि बुधप्रह्लादचेतस्यलम् ॥१४४॥

इति बृहत्स्वयम्भू स्तोत्रम् समाप्तम्।



श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्य विरचिता

द्वादशानुप्रेक्षा

नत्वा सर्व सिद्धान् ध्यानोत्तम क्षपित दीर्घ संसारान् ।
दश दश द्वौ द्वौ च जिनान् दश द्वौ अनुप्रेक्षा वक्ष्ये ।। १ ।।

अध्रुवम शरण मेकत्व मन्य संसारे लोकम शुचित्वं ।
आस्रव संवर निर्ज्जरा धर्म्म बोधिं च चिन्तयेत् ।। २ ।।

वर भवन यान वाहन शयनासनानि देव मनुजराज्ञाम् ।
मातृ पितृ स्वजन भृत्य सम्बन्धिमश्च पितृव्योऽनित्याः ।। ३ ।।

समग्रेन्द्रिय रूपं आरोग्यं यौवनं बलं तेजः ।
सौभाग्यं लावण्यं सुरधनुरिव शाश्वतं न भवेत् ।। ४ ।।

जलबुद्बुद शक्र धनुःक्षणरुचिघन शोभेवस्थिरं नभवेत् ।
अहमिन्द्र स्थानानि बलदेव प्रभृति पर्यायाः ।। ५ ।।

जीव निबद्धं देहं क्षीरोदक मिव विनश्यति शीघ्रम् ।
भोगोपभोग कारण द्रव्यं नित्यं कथं भवति ।। ६ ।।

परमार्थेन तु आत्मा देवासुर मनुज राज विभवैं ।
व्यतिरिक्तः स आत्मा शाश्वत इति चिन्तयेत् नित्यं ।। ७ ।।

— इत्य ध्रुवानुप्रेक्षा ।।१।। —

मणि मन्त्रौषध रक्षाः हय गज रथाश्च सकल विद्याः ।
जीवानां न हि शरणं त्रिषु लोकेषु मरण समये ।। ८ ।।

स्वर्गो भवेत् हि दुर्गं भृत्या देवाश्च प्रहरणं वज्रं ।
ऐरावणो गजेन्द्रः इन्द्रस्य न विद्यते शरणं ।। ९ ।।

नवनिधिः चतुर्दश रत्नं हयमत्त गजेन्द्र चतुरंग बलम् ।
चक्रेशस्य न शरणं पश्यत कर्दिते कालेन ।।१०।।

जाति जरा मरण रोग भयतः रक्षति आत्मनं आत्मा ।
तस्मादात्मा शरणं बन्धोदय सत्त्व कर्म व्यति रिक्तः ।।११।।

अर्हन्तः सिद्धा आचार्या उपध्यायाः साधवः पञ्च परमेष्टिनः।
ते पि हि तिष्टन्ति आत्मनि तस्मात् आत्मा हि मे शरणम् ॥१२॥
सम्यक्त्वं सद्ज्ञानं सच्चारित्रं च सत्तपश्चैव।
चत्वारि तिष्टन्ति आत्मनि तस्मात् आत्मा हि मे शरणम् ॥१३॥

— इत्यशरणानुप्रेक्षा ॥२॥ —

एकः करोति कर्म एकः हिण्डति च दीर्घ संसारे।
एकः जायते म्रियते च तस्य फलं भुंक्ते एकः ॥१४॥
एकः करोति पापं विषयनि मित्तेन तीव्र लोभेन।
नरक तिर्यक्षु जीवो तस्य फलं भुंक्ते एकः ॥१५॥
एकः करोति पुण्यं धर्म निमित्तेन पात्र दानेन।
मानव देवेषु जीवो तस्य फलं भुंक्ते एकः ॥१६॥
उत्तम पात्रं भणितं सम्यक्त्व गुणेन संयुतः साधुः।
सम्यग्दृष्टिः श्रावको मध्यम पात्रं हि विज्ञेयः ॥१७॥
निर्दिष्टः जिनसमये अविरत सम्यक्त्व जघन्यपात्रं इति।
सम्यक्त्व रत्न रहितः अपात्र मिति संपरीक्षः ॥१८॥
दर्शन भ्रष्टा भ्रष्टा दर्शन भ्रष्टस्य नास्ति निर्वाणम्।
सिद्धयन्ति चरित्र भ्रष्टादर्शनभ्रष्टानसिद्धयन्ति ॥१९॥
एकोऽहं निर्ममः शुद्धः ज्ञान दर्शन लक्षणः।
शुद्धै कत्व मुपादेयं एवं चिन्तयेत संयतः ॥२०॥

इत्येकत्वानुप्रेक्षा ॥३॥

मातृ पितृ सहोदर पुत्र कलत्रादि बन्धु सन्दोहः।
जीवस्य न सम्बन्धो निज कार्य वशेन वर्तन्ते ॥२१॥
अन्यः अन्यं शोचति मदीयोस्तिममनायकइति मन्यमानः।
आत्मनं न हि शोचतिसंसार महार्णवेपतितम् ॥२२॥
अन्यदिदं शरीरादिकं अपियत् भवति बाह्यं द्रव्यम्।
ज्ञानं दर्शनमात्मा एवं चिन्तय अन्यत्वम् ॥२३॥

— इत्यन्यत्वानुप्रेक्षा ॥४॥ —

पंच विधे संसारे जाति जरा मरण रोग भय प्रचुरे।
जिन मार्गम पश्यन् जीवः परिभ्रमति चिरकालम् ॥२४॥
सर्वेऽपि पुद्‌गलाः खलु एकेन भुक्तोञ्झिताहि जीवेन।
असकृदनंत कृत्वः पुद्‌गल परिवर्त संसारे ॥२५॥
सर्वस्मिन् लोक क्षेत्रे क्रमशः तन्नास्ति यत्र न उत्पन्नः।
अवगाहनेन बहुशः परिभ्रमितः क्षेत्र संसारे ॥२६॥
अव सर्पिण्युत्सर्पिणी समया वलिकासु निरवशेषासु।
जातः मृतः च बहुशः परिभ्रमितः काल संसारे ॥२७॥
नरकायुर्जघन्यादिषु यावत् तु उपरितनानि ग्रैवेयिकाणि।
मिथ्यात्व संश्रितेन तु बहुशः अपि भव स्थितौ भ्रमित ॥२८॥
सर्वाः प्रकृति स्थितयोऽनुभाग प्रदेश बन्धस्थानानि।
जीवः मिथ्यात्व वशात् भ्रमितः पुनः भाव संसारे ॥२९॥
पुत्रकलत्रनिमित्तं अर्थ अर्जयति पाप बुद्धया।
परिहरति दया दानं सः जीवःभ्रमति संसारे ॥३०॥
मम पुत्रो मम भार्या मम धन धान्य मिति तीव्र कांक्षया।
त्यक्त्वा धर्म बुद्धि पश्चात् परिपतति दीर्घ संसारे ॥३१॥
मिथ्यात्वोदयेन जीवः निंदन् जैन भाषितं धर्मम।
कुधर्म कुलिगं कुतीर्थ मन्य मानः भ्रमति संसारे ॥३२॥
हत्वा जीव राशि मधु मांसं सेवित्वा सुरापानम्।
पर द्रव्य पर कलत्रं गृहीत्वा च भ्रमति संसारे ॥३३॥
यत्नेन करोति पापं विसयनिमितं च अर्हनिशं जीवः।
मोहान्धकार सहितः तेन तु परिपतति संसारे ॥३४॥
नित्येतर धातु सप्त च तरुदश विकलेन्द्रियेषुषट् चैव।
सुरनारक तिर्यक्चतस्रः चतुर्दश मनुजेशत सहस्राः ॥३५॥
संयोग विप्रयोगं लाभालाभं सुखं च दुःखं च।
संसारे भूतानां भवति हि मानं तथावमानं च ॥३६॥
कर्म निमित्तं जीवः हिंडति संसारे घोर कांतारे।
जीवस्य न संसारः निश्चय नय कर्म निर्मुक्तः ॥३७॥

संसार मति क्रान्तः जीव उपादेय इति विचिन्तयनीयम्।
संसार दुःखा क्रान्तः जीवः सहेय इति विचिन्तनीयम् ॥३६॥
— इति ससारानुप्रेक्षा ॥५॥ —

जीवादि पदार्थानां समवायः स निरुच्यते लोकः।
त्रिविधः भवेत् लोकः अधोमध्य मोर्ध्वं भेदेन ॥३६॥

नरका भवंति अधस्तनै मध्ये द्वीपाम्बुराशयाः असंख्या।
स्वर्गः त्रिषष्टि भेद एतस्मात् उर्ध्वं भवेत मोक्षः ॥४०॥

एकत्रिंशत् सप्त चत्वारि द्वौ एकैकं षट्कं चतुः कल्पे।
त्रित्रिकमेकैकेन्द्र कनामानि ऋज्वादि त्रिषष्टिः ॥४१॥

अशुभेन नरक तिर्यचं शुभोपयोगेन दिविज-नर सौख्यम्।
शुद्धेन लभेत सिद्धि एवं लोकः विचि न्तनीयः ॥४२॥
— इति लोकानुप्रेक्षा ॥६॥ —

अस्थिभिः प्रतिबद्धं मांस विलिप्तं त्वचा अवच्छन्नम्।
क्रिमि संकुलैः भरितं अप्रशस्तं देहं सदाकालम् ॥४३॥

दुर्गंधं वीभत्सं कलि मल भृतं अचेतनं मूर्त्तम्।
स्खलन पतन स्वभावं देहं इति चिन्तयेत् नित्यम् ॥४४॥

रस रुधिर मांस मेदास्थिमज्जा संकुलं मूत्र पूय कृमि बहुलम्।
दुर्गन्धं अशुचि चर्ममयं अनित्यं अचेतनं पतनम् ॥४५॥

देहात् व्यति रिक्तः कर्म विरहितः अनन्त सुख निलयः।
प्रशस्तः भवेत् आत्मा इति नित्यं भावनां कुर्यात् ॥४६॥
— इति अशुचित्वानु प्रेक्षा ॥७॥ —

मिथ्यात्वं अविरमणं कषाय योगाश्च आस्रवा भवन्ति।
पंच पंच चतुःत्रिक भेदाः सम्यक् प्रकीर्तिता समये ॥४७॥

एकान्त विनय विपरीत संशयं अज्ञानं इति भवेत् पञ्च।
अविरमणं हिंसादि पञ्च विधं तत्भवति नियमेन ॥४८॥

क्रोधः मानः माया लोभः अपि च चतुर्विधः कषायः खलु।
मनोवच कायेन पुनः योगः त्रिविकल्प इति जानीहि ॥४६॥

अशुभेतर भेदेन तुएकैकं वर्णितं भवेत् द्विविधम्।
आहारादि संज्ञा अशुभ मनः इति विजानीहि ॥५०॥

कृष्णादितिस्त्रः लेश्याः करणज सौख्येषु गृद्धि परिणामः।
ईर्षा विषाद भावः अशुभ मन इति च जिना ब्रुवन्ति ॥५१॥

राग: द्वेष: मोह: हास्यादि नोकषाय परिणाम: ।
स्थूल: वा सूक्ष्म: वा अशुभ मन इति च जिना ब्रुवन्ति ॥५२॥
भक्तस्त्रीराज चौरकथा: वचनं विजानोहि अशुभमिति ।
बन्धन छेदन मारण क्रिया सा अशुभकाय इति ॥५३॥
मुक्त्वा अशुभ भावं पूर्वोक्तं निर वशेषत: द्रव्यम् ।
व्रत समिति शील संयम परिणामं शुभ मन: जानीहि ॥५४॥
संसारच्छेद कारण वचनं शुभ वचन मितिजिनोद्दिष्टम् ।
जिनदेवादिषु पूजा शुभ कायमिति च भवेत् चेष्टा ॥५५॥
जन्म समुद्रे बहुदोष वीचिके दुःख जल चरा कीर्णे ।
जीवस्य परिभ्रमणं कर्मास्रव कारणं भवति ॥५६॥
कर्मास्रवेण जीव: बूडति संसार सागरे घोरे ।
या ज्ञानवशा क्रिया मोक्ष निमित्तं परम्परया ॥५७॥
आस्रव हेतो: जीव: जन्म समुद्रे निमज्जतिक्षिप्रम् ।
आस्रव क्रिया तस्मात् मोक्ष निमित्तं न चिन्तनीया ॥५८॥
पारम्पर्येण तु आस्रव क्रियया नास्ति निर्वाणम् ।
संसार गमण कारण मिति निन्द्यं आस्रवं जानीहि ॥५९॥
पूर्वोक्तास्रव भेदा: निश्चयनयेन न सन्ति जीवस्य ।
उभयास्रव निर्मुक्तं आत्मानं चिन्तयेत् नित्यं ॥६०॥

— इत्यास्रवानुप्रेक्षा ॥८॥ —

चलमलिनम गाढं च वर्जयित्वा सम्यक्त्व दृढ कपाटेन ।
मिथ्यात्वास्रव द्वारनिरोध: भवति इतिजिनै: निर्दिष्टम् ॥६१॥
पंचमहाव्रत मनसाअविरमण निरोधनं भवेत् नियमात् ।
क्रोधादि आस्रवाणां द्वाराणि कषाय रहित परिणामै: ॥६२॥
शुभयोगेषु प्रवृत्ति: संवरणं करोति अशुभ योगस्य ।
शुभयोगस्य निरोध: शुद्धोपयोगेन सम्भवति ॥६३॥
शुद्धोपयोगेन पुन: धर्म शुक्लं च भवति जीवस्य ।
तस्मात् संवर हेतु: ध्यानमिति विचिन्तयेत् नित्यम् ॥६४॥
जीवस्य न संवरण परमार्थ नयेन शुद्ध भावात् ।
सवर भाव विमुक्तं आत्मानं चिन्तयेत् ॥६५॥

— इति सवरानुप्रेक्षा ॥९॥ —

बन्ध प्रदेश गलनं निर्ज्जरणं इति जिनैः प्रज्ञप्तं।
येन भवेत्संवरणं तेन तु निर्ज्जरण मिति जानीहि ॥६६॥
सा पुनः द्विविधा ज्ञेया खकालपक्वा तपसा क्रियमाणा।
चतुर्गति कानां प्रथमा व्रत युक्तानां भवेत् द्वितीया ॥६७॥
—इति निर्जरानुप्रेक्षा ॥१०॥—
एकादश दश भेदो धर्मो सम्यक्त्व पूर्वको भणितः।
सागारा नगाराणां उत्तम मुख सम्प्रयुक्तैः ॥६८॥
दर्शन व्रत सामायिक प्रोषध सचित्त रात्रि भुक्ताः च।
ब्रह्मारंभ परिग्रहानुमतोद्दिष्टा देश विरतस्यैते ॥६९॥
उत्तम क्षमा मार्दवार्जवसत्यशौचं संयमःच तपस्त्यागं।
आकिञ्चन्यं ब्रह्म इति दशविधं भवति ॥७०॥
क्रोधोत्पत्तेः पुनः बहिरंग यदि भवेत् साक्षात्।
न करोति किञ्चिदपि क्रोधं तस्य क्षमा भवतिधर्मइति ॥७१॥
कुल रूप जाति बुद्धिषु तप श्रुत शीलेषु गर्व किञ्चित्।
यः नैव करोति श्रमणो मार्दव धर्मो भवेत् तस्य ॥७२॥
मुक्त्वा कुटिल भावं निर्मल हृदयेन चरति यः श्रमणः।
आर्जव धर्मः तृतीयः तस्य तु संभवति नियमेन ॥७३॥
पर संतापक कारण वचनं मुक्त्वा स्वपरहित् वचनम्।
यः वदति भिक्षुः तुरीयः तस्य तु धर्म भवेत् सत्यम् ॥७४॥
कांक्षा भाव निवृति कृत्वा वैराग्य भावना युक्तः।
यः वर्तते परम मुनिः तस्य तु धर्मः भवेत् शौचम् ॥७५॥
व्रत समिति पालनेन दण्ड त्यागेन इन्द्रिय जयेन।
परिणम मानस्य पुनः संयम धर्मः भवेत् नियमात् ॥७६॥
विषय कषायविनिग्रह भावं कृत्वा ध्यान स्वाध्या येन।
यः भावयति आत्मनं तस्य तपः भवति नियमेन ॥७७॥
निर्वेगत्रिकं भावयेत् मोहं त्यक्त्वा सर्व द्रव्येषु।
यः तस्य भवेत् त्याग इति भणितं जिन वरेन्द्रैः ॥७८॥

भूत्वा च निस्सङ्गः निज भावं निगृह्य सुख दुःख दम्।
निर्द्वन्देन तु वर्तते अनागारः तस्याकिञ्चन्यम् ।।७९।।
सर्वाङ्ग पश्यन् स्त्रीणाँ तासु मुञ्चति दुर्भावम्।
स ब्रह्मचर्य्यभावं सुकृतो खलु दुर्द्धरं धरत्ति ।।८०।।
श्रावक धर्म त्यक्त्वा यति धर्मे यः हि वर्त्तते जीवः।
स न च वर्ज्जतिमोक्षं धर्म्ममिति चिन्तयेत् नित्यम् ।।८१।।
निश्चय नयेन जीवः सागारा नागार धर्मतः भिन्नः।
मध्यस्थ भावनया शुद्धात्मानं चिन्तयेत् नित्यम् ।।८२।।
इति धर्मानुप्रेक्षा ।।११।।
उत्पद्यते सद्ज्ञानं येन उपायेन तस्योपायस्य।
चिन्ताः भवेत् बोधिः अत्यन्तं दुर्ल्लभं भवति ।।८३।।
कर्मोदय जपर्याया हेयं क्षायोपशमिकज्ञानं खलु।
स्वकद्रव्य मुपादेयं निश्चितः भवतिः सद्ज्ञानम् ।।८४।।
मूलोत्तर प्रकृतयः मिथ्यात्वादयः असंख्य लोकपरिमाणाः।
परद्रव्यं स्वकद्रव्यं आत्मा इति निश्चयनयेन ।।८५।।
एवं जायते ज्ञानं हेयोपादेयं निश्चयेन नास्ति।
चिन्तयेत् मुनिः बोधिं संसारविरमणार्थं च ।।८६।।
इति बोध्यनुप्रेक्षा ।।१२।।
द्वादशानुप्रेक्षाः प्रत्याख्यानं तथैव प्रतिक्रमणम्।
आलोचनं समाधिः तस्मात् भावयेत् अनुप्रेक्षाम् ।।८७।।
रात्रिंदिव प्रतिक्रमणं प्रत्याख्यानं समाधिं सामायिकम्।
आलोचनां प्रकुर्यात् यदि विद्यते आत्म नः शक्तिः ।।८८।।
मोक्ष गता ये पुरुषा अनादिकालेन द्वादशानुप्रेक्षाम्।
परिभाव्य सम्यक् प्रणमामि पुनः पुनः तान् ।।८९।।
किं प्रलपिते न बहुना ये सिद्धा नरवरा गते काले।
सेत्स्यन्ति येऽपि भविकाः तद् जानीहि तस्याः माहात्म्यम् ।।९०।।
इति निश्चय व्यवहारं यत् भणितं कुन्दकुन्दमुनिनाथेन।
यः भावयति शुद्धमनाः स प्राप्नोति परमनिर्वाणम् ।।९१।।
इति कुन्दकुन्दाचार्य विरचिता द्वादशानुप्रेक्षा ।।९।।




आचार्य श्रीमदुमास्वामि विरचितं
तत्त्वार्थाधिगम मोक्ष शास्त्रम्

तत्त्वार्थ सूत्रं

मोक्षमार्गस्य नेतारं, भेत्तारं कर्मभूभृताम्।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां, वन्दे तत्गुणलब्धये ॥१॥

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ॥१॥ तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ॥२॥ तन्निसर्गादधिगमाद्वा ॥३॥ जीवा जीवास्रव बन्ध संवर निर्ज्जरा मोक्षास्तत्त्वम् ॥४॥ नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यासः ॥५॥ प्रमाणनयैरधिगमः ॥६॥ निर्देशस्वामित्वसाधनाऽधिकरण स्थितिविधानतः ॥७॥ सत्संख्याक्षेत्रस्पर्शन-कालान्तरभावाल्पबहुत्वैश्च ॥८॥ मतिश्रुतावधिमनः पर्ययकेवलानि ज्ञानम् ॥९॥ तत्प्रमाणे ॥१०॥ आद्ये परोक्षम् ॥११॥ प्रत्यक्षमन्यत् ॥१२॥ मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताऽभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम् ॥१३॥ तदिन्द्रियानिन्द्रयनिमित्तम् ॥१४॥ अवग्रहे-हावायधारणाः॥१५॥ बहुबहुविधक्षिप्राऽनिःसृताऽनुक्तध्रुवाणां सेतराणाम् ॥१६॥अर्थस्य ॥१७॥व्यञ्जनस्यावग्रहः॥१८॥न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम्॥१९॥श्रुतं मतिपूर्वं द्व्यनेकद्वाद-शभेदम् ॥२०॥ भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणाम् ॥२१॥ क्षयोपशमनिमित्तः षड्विकल्पः शेषाणाम् ॥२२॥ ऋजुविपुलमती मनःपर्ययः ॥२३॥ विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तद्विशेषः ॥२४॥ विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्योऽवधिमनःपर्य्ययोः ॥२५॥ मतिश्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येष्वसर्वपर्यायेषु ॥२६॥ रूपिष्ववधेः ॥२७॥ तदनन्तभागे मनःपर्ययस्य ॥२८॥ सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य ॥२९॥ एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥३०॥ मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च ॥३१॥ सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ॥३२॥ नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दसमभिरूढैवंभूता नयाः ॥३३॥

इति तत्त्वार्थधिगमे मोक्षशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिकपारिणामिकौ च ॥१॥ द्विनवाष्ठादशैकविंशति त्रिभेदा यथाक्रमम् ॥२॥ सम्यक्त्वचारित्रे ॥३॥ ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि च ॥४॥ ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्धयश्चतुस्त्रित्रिपञ्च-भेदाः सम्यक्त्वचारित्र संयमासंयमाश्च ॥५॥ गतिकषायलिंगमिथ्यादर्शनाऽज्ञाना-

ऽसंयताऽसिद्ध लेश्याश्चतुश्च तुस्त्र्येकैकैकैक षड् भेदाः ।।६।। जीव भव्याऽभव्यत्वानि च ।।७।। उपयोगो लक्षणं ।।८।। स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः ।।९।। संसारिणो मुक्ताश्च ।।१०।। समनस्काऽमनस्काः ।।११।। संसारिणस्त्रसस्थावराः ।।१२।। पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः ।।१३।। द्वींद्रियादयस्त्रसाः ।।१४।। पंचेंद्रियाणि ।।१५।। द्विविधानि ।।१६।। निर्वृत्त्युपकरणे द्रव्येंद्रियं ।।१७।। लब्ध्युपयोगो भावेंद्रियं ।।१८।। स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुः श्रोत्राणि ।।१९।। स्पर्शरस गंधवर्ण शब्दास्तदर्थाः ।।२०।। श्रुतमनिंद्रियस्य ।।२१।। वनस्पत्यंतानामेकं ।।२२।। कृमिपिपीलिका भ्रमर मनुष्यादीना मेकैकवृद्धानि ।।२३।। संज्ञिनः समनस्काः ।।२४।। विग्रहगतौ कर्मयोगः ।।२५।। अनु-श्रेणि गतिः ।।२६।। अविग्रहा जीवस्य ।।२७।। विग्रहवती च संसारिणः प्राक्चतुर्भ्यः ।।२८।। एकसमयाऽविग्रहा ।।२९।। एकं द्वौ त्रीन्वानाहारकः ।।३०।। संमूर्छनगर्भोपपादा जन्म ।।३१।। सचित्तशीतसंवृताः सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः ।।३२।। जरायुजाण्डजपो तानां गर्भः ।।३३।। देवनारकाणामुपपादः ।।३४।। शेषाणां सम्मूर्छनं ।।३५।। औदारिक वैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणानि शरीराणि ।।३६।। परं परं सूक्ष्मं ।।३७।। प्रदेशतो-ऽसंख्येय गुणं प्राक्तैजसात् ।।३८।। अनंतगुणे परे ।।३९।। अप्रतीघाते ।।४०।। अनादि संबंधे च ।।४१।। सर्वस्य ।।४२।। तदादीनि भाज्यानि युगपदे कस्मिन्नाचतुर्भ्यः ।।४३।। निरुपभोगमंत्यं ।।४४।। गर्भसंमूर्छनजमाद्यं ।।४५।। औपपादिकं वैक्रियिकं ।।४६।। लब्धिप्रत्ययं च ।।४७।। तैजसमपि ।।४८।। शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं प्रमत्त संयतस्यैव ।।४९।। नारकसंमूर्छिनो नपुंसकानि ।।५०।। न देवाः ।।५१।। शेषास्त्रिवेदाः ।।५२।। औपपादिक चरमोत्तम देहाःसंख्येय वर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः ।।५३।।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे द्वितीयोऽध्याय ।।२।।

रत्नशर्कराबालुकापंक धूमतमो महातमः प्रभा भूमयो घनांबुवाताकाशप्रतिष्ठाः सप्ताऽधोऽधः ।।१।। तासु त्रिंशत्पंचविंशति पंच दशदश त्रिपंचोनैकनर कशत सहस्राणि पंच चैव यथाक्रमं ।।२।। नारका नित्याशुभतर लेश्या परिणाम देह वेदनाविक्रियाः ।।३।। परस्परोदीरित दुःखाः ।।४।। संक्लिष्टासुरो दीरित दुःखाश्च प्राक् चतुर्थ्याः ।।५।। तेष्वेकत्रिसप्तदशसप्त दशद्वाविंश तित्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा सत्वानां परा स्थितिः ।।६।। जंबूद्वीपलवणोदादयः शुभनामानो द्वीपसमुद्राः ।।७।। द्विर्द्विर्विष्कंभाः पूर्वपूर्वपरिक्षे पिणो वलयाकृतयः ।।८।। तन्मध्य मेरुनाभिर्वृत्तो योजन शत सहस्त्रविष्कंभो जंबूद्वीपः।।९।।

भरत हैमवत हरिविदेह रम्यक हैरण्य वतैरावत वर्षाः क्षेत्राणि ॥१०॥ तद्विभाजिनः पूर्वापरायता हिमवन्महाहिम वन्निषधनील रुक्मिशिखरिणो वर्षधरपर्वताः ॥११॥ हेमार्ज्जुनतपनीयवैडूर्य रजतहेममयाः ॥१२॥ मणिविचित्रपार्श्वा उपरि मूले च तुल्य विस्ताराः ॥१३॥ पद्ममहापद्मतिगिञ्छकेसरि महापुण्डरीकपुण्डरीका ह्रदास्तेषामुपरि ॥१४॥ प्रथमो योजनसहस्रायामस्त दर्द्ध विष्कम्भो ह्रदः ॥१५॥ दशयोजनावगाहः ॥१६॥ तन्मध्ये योजनं पुष्करम् ॥१७॥ तद्विगुणद्विगुणा ह्रदा पुष्कराणि च ॥१८॥ तन्निवासिन्योदेव्यः श्रीह्रीधृतिकीर्ति बुद्धिलक्ष्म्यः पल्योपमस्थितयः ससामानिक परिषत्काः ॥१९॥ गंगासिन्धुरोहिद्रोहितास्य। हरिद्धरिकान्ता सीतासीतोदानारीनरकान्तासुवर्ण रूप्यकूलारक्तारक्तोदाः सरिस्तन्मध्यगाः ॥२०॥ द्वयोर्द्वयोः पूर्वाः पूर्वगाः ॥२१। शेषास्त्वपरगाः ॥२२॥ चतुर्दश नदी सहस्र परिवृता गंगासिन्ध्वादयो नद्यः ॥२३॥ भरतः षड्विंशति पञ्चयोजनशत विस्तारः षट्चैकोनविंशतिभागा योजनस्य ॥२४॥ तद्विगुणद्विगुणविस्तारा वर्षधरवर्षा विदेहान्ताः ॥२५॥ उत्तरा दक्षिणतुल्याः ॥२६॥भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्प्पिण्यवसर्पिणीभ्याम् ॥२७॥ ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिताः ॥२८॥ एकद्वित्रिपल्योपमस्थितयो हैमवतक हारि वर्षकदैव कुरुवकाः ॥२९॥ तथोत्तरा ॥३०॥ विदेहेषु संख्येयकालाः ॥३१॥ भरतस्य विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्य नवतिशतभागः ॥३२॥ द्विर्धातकीखण्डे ॥३३॥ पुष्करार्द्धे च ॥३४॥ प्राङ् मानुषोत्तरान्मनुष्याः ॥३५॥ आर्य्या म्लेच्छाश्च ॥३६॥ भरतैरावतविदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरूत्तरकुरुभ्यः ॥३७॥ नृस्थिती परावरे त्रिपल्योपमान्तमुहूर्ते ॥३८॥ तिर्यग्योनिजानां च ॥३९॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

देवाश्चतुर्णिकायाः ॥१॥ आदितस्त्रिषु पीतान्तलेश्याः ॥२॥ दशाष्टपञ्चद्वादश विकल्पाः कल्पोपपन्नपर्य्यन्ताः ॥३॥ इन्द्रसामानिकत्रायस्त्रिंशत्पारिषदात्मरक्षलोकपालानीकप्रकीर्णकाभियोग्यकिल्बिषिकाश्चैकशः ॥४॥ त्रायस्त्रिंशलोकपालवर्ज्याव्यन्तरजोतिष्काः ॥५॥ पूर्वयोर्द्वीन्द्राः ॥६॥ कायप्रवीचारा आऐशानात् ॥७॥ शेषाः स्पर्शरूप शब्दमनः प्रवीचाराः ॥८॥ परेऽप्रवीचाराः ॥९॥ भवन वासिनोसुरनागविद्युत्सुपर्णाग्निवातस्तनितोदधिद्वीप दिक्कुमाराः ॥१०॥ व्यन्तराः किन्नरकिम्पुरुष महोरगगन्धर्वयक्षराक्षस भूतपिशाचाः ॥११॥ ज्योतिष्काः सूर्य्याचन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च ॥१२॥ मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके ॥१३॥ तत्कृतः कालविभागः ॥१४॥ बहिरवस्थिताः ॥१५॥ वैमानिकाः ॥१६॥ कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च ॥१७॥

उपर्युपरि ॥१८॥ सौधर्म्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्टशुक्रमहा शुक्रशतारसहस्रारेष्वानत प्राणतयोरारणाच्युतयोर्नवसु ग्रैवेयकेषु विजयवैजन्तजयन्तापराजितेषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥१९॥ स्थितिप्रभावसुखद्युतिलेश्या विशुद्धीन्द्रियावधिविषयतोऽधिकाः ॥२०॥ गति शरीरपरिग्रहाभिमानतो हीनाः ॥२१॥ पीतपद्मशुक्ललेश्या द्वित्रिशेषेषु ॥२२॥ प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः ॥२३॥ ब्रह्मलोकालया लौकान्तिकाः ॥२४॥ सारस्वादित्यवह्न्यरुणगर्दतोयतुषिताव्याबाधारिष्टाश्च ॥२५॥ विजयादिषु द्विचरमाः ॥२६॥ औपपादिकमनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनयः ॥२७॥ स्थितिरसुरनागसुपर्णद्वीपशेषाणां सागरोपमत्रिपल्योपमार्द्धहीनमिताः ॥२८॥ सौधर्मैशानयोः सागरोपमे ऽधिके ॥२९॥ सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः सप्त ॥३०॥ त्रिसप्तनवैकादशत्रयोदशपञ्चदशभिरधिकानि तु ॥३१॥ आरणाच्युतादूर्ध्वमेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेष् विजियादिषुसर्वार्थसिद्धौ च ॥३२॥ अपरा पल्योपममधिकम् ॥३३॥ परतः परतः पूर्वा पूर्वानन्तराः ॥३४॥ नारकाणां च द्वितीयादिषु ॥३५॥ दशवर्षसहस्राणि प्रथमायाम् ॥३६॥ भवनेषु च ॥३७॥ व्यन्तराणां च ॥३८॥ परापल्योपममधिकं ॥३९॥ ज्योतिष्काणां च ॥४०॥ तदष्ट भागोऽपरा ॥४१॥ लौकान्तिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम् ॥४२॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे चतुर्थोऽध्याय ॥४॥

अजीवकायाधर्म्माधर्म्माकाशपुद्गलाः ॥१॥ द्रव्याणि ॥२॥ जीवाश्च ॥३॥ नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥४॥ रूपिणः पुद्गलाः ॥५॥ आ आकाशादेकद्रव्याणि ॥६॥ निष्क्रियाणि च ॥७॥ असङ्ख्येयाः प्रदेशाः धर्म्माधर्म्मैकजीवानाम् ॥८॥ आकाशस्यानन्ताः ॥९॥ संङ्ख्येयासङ्ख्येयाश्च पुद्गलानाम् ॥१०॥नाणोः ॥११॥ लोकाकाशेऽवगाहः ॥१२॥ धर्म्माधर्म्मयोः कृत्स्ने ॥१३॥ एकप्रदेशादिषु भाज्यः पुद्गलानाम् ॥१४॥ असङ्ख्येय भागादिषुजीवानाम् ॥१५॥ प्रदेशसंहारविसर्प्पाभ्यां प्रदीपवत् ॥१६॥ गतिस्थित्युपग्रहो धर्म्माधर्म्मयोरुपकारः ॥१७॥ आकाशस्यावगाहः ॥१८॥ शरीरवाङ्मनः प्राणापानाः पुद्गलानाम् ॥१९॥ सुखदुःखजीवितमरणोपग्रहाश्च ॥२०॥ परस्परोपग्रहो जीवानाम् ॥२१॥ वर्त्तनापरिणामक्रियापरत्वापरत्वे च कालस्य ॥२२॥ स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः पुद्गला ॥२३॥ शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छायाऽऽतपोद्योतवन्तश्च ॥२४॥ अणवस्कन्धाश्च ॥२५॥ भेदसंघातेभ्य उत्पद्यन्ते ॥२६॥ भेदादणुः ॥२७॥ भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषः ॥२८॥ सद्द्रव्यलक्षणम् ॥२९॥

उत्पादव्यय ध्रौव्ययुक्तं सत् ॥३०॥ तद्भावाव्ययं नित्यम् ॥३१॥ अर्पितानर्पितसिद्धेः ॥३२॥ स्निग्धरूक्षत्वाद्‌बन्धः ॥३३॥ न जघन्यगुणानाम् ॥३४॥ गुणसाम्ये सदृशानाम् ॥३५॥ द्व्यधिकादिगुणानां तु ॥३६॥ बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च ॥३७॥ गुणपर्य्ययवद्‌द्रव्यम् ॥३८॥ कालश्च ॥३९॥ सोऽनन्तसमयः ॥४०॥ द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः ॥४१॥ तद्भावः परिणामः ॥४२॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे पंचमोऽध्यायः ॥५॥

कायवाङ्‌मनः कर्म्म योगः ॥१॥ स आस्रवः ॥२॥ शुभः पुण्यस्याशुभः पापस्य ॥३। सकषायाकषाययोः साम्परायिकेर्य्यापथयोः ॥४॥ इन्द्रियकषायाव्रतक्रियाः पञ्चचतुः पञ्चपञ्चविंशतिसंख्याः पूर्वस्यभेदाः ॥५॥ तीव्रमन्दज्ञाता ज्ञात भावाधिकरण वीर्यविशेषेभ्यस्तद्विशेषः ॥६॥ अधिकरणं जीवाऽजीवाः ॥७॥ आद्यं संरम्भ समारम्भा रम्भयोगकृत कारिता नुमतकषाय विशेषैस्त्रिस्त्रिस्त्रिश्चतुश्चैकशः ॥८॥ निर्वर्तनानिक्षेपसंयोगनिसर्गा द्विचतुर्द्वित्रिभेदाः परम् ॥९॥ तत्प्रदोषनिह्नव मात्सर्यान्तराया सादनोपघाताज्ञानदर्शनावरणयोः ॥१०॥ दुःखशोकतापाक्रंदन वधपरि देवनान्यात्मपरोभयस्थानान्यसद्वेद्यस्य ॥११॥ भूतवृत्यनु कम्पादान सरागसंयमा दियोगः क्षान्तिः शौचमिति सद्वेद्यस्य ॥१२॥ केवलिश्रुतसंघधर्म्मदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य ॥१३॥ कषायोदयात्तीव्रपरिणामश्चारित्र मोहस्य ॥१४॥ बह्वारम्भपरिग्रहत्वं नारकस्यायुषः ॥१५॥ माया तैर्यग्योनस्य ॥१६॥ अल्पारम्भ परिग्रहत्वं मानुषस्य ॥१७॥ स्वभावमार्दवं च ॥१८॥ निःशीलव्रतत्वं च सर्वेषाम् ॥१९॥ सरागसंयमसंयमा संयमाऽकामनिर्ज्जरा बालतपांसि दैवस्य ॥२०॥ सम्यक्त्वं च ॥२१॥ योगवक्रताविसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः ॥२२॥ तद्विपरीतं शुभस्य ॥२३॥ दर्शनविशुद्धिर्विनयसम्पन्नता शीलव्रतेष्वनतीचारोऽभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौ शक्तितस्त्यागतपसीसाधु समाधिर्वैयावृत्यकरणमर्हदाचार्य बहुश्रुतप्रवचनभक्तिरावश्यका परिहाणिमार्गं प्रभावना प्रवचन वत्सलत्वमिति तीर्थंकरत्वस्य ॥२४॥ परात्मनिन्दाप्रशंसे सदसद्‌गुणोच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य ॥२५॥ तद्विपर्य्ययौ नीचैर्वृत्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य ॥२६॥ विघ्नकरण मन्तरायस्य ॥२७॥

— इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्ष शास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥ —

हिंसा नृतस्तेया ब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतं ॥१॥ देश सर्वतोऽणुमहती ॥२॥ तत्स्थैर्यार्थं भावनाः पंच पंच ॥३॥ वाङ्‌मनो गुप्तीर्यादान निक्षेपणसमित्या लोकितपान भोजनानि पंच ॥४॥ क्रोधलोभ भीरुत्व हास्य प्रत्याख्यानान्यनुवीचि भाषणं च पंच ॥५॥

शून्यागारविमोचितावासपरोपरोधाकरणभैक्ष्यशुद्धिसधर्म्माविसंवादाः पञ्चः ॥६॥ स्त्रीरागकथाश्रवण तन्मनोहराङ्गनिरीक्षण पूर्वरतानुस्मरण वृष्येष्टरसस्वशरीर संस्कारत्यागाः पञ्च ॥७॥ मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रियविषयरागद्वेषवर्जनानि पञ्च ॥८॥ हिंसादिष्विहामुत्रापायावद्यदर्शनं ॥९॥ दुःखमेव वा ॥१०॥ मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थानि च सत्त्वगुणाधिकक्लिश्यमानाविनयेषु ॥११॥ जगत्कायस्वभावौ वा संवेगवैराग्यार्थम् ॥१२॥ प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा ॥१३॥ असदभिधानमनृतं ॥१४॥ अदत्तादानं स्तेयम् ॥१५॥ मैथुनमब्रह्म ॥१६॥ मूर्च्छापरिग्रहः ॥१७॥ निःशल्यो व्रती ॥१८॥ आगार्यनगारश्च ॥१९॥ अणुव्रतोऽगारी ॥२०॥ दिग्देशानर्थ दण्ड विरतिसामायिक प्रोषधोपवासोपभोग परिभोग परिमाणातिथि संविभागव्रतसम्पन्नश्च ॥२१॥ मारणान्तिकी सल्लेखनां जोषिता ॥२२॥ शङ्काकाङ्क्षाविचिकित्साऽन्यदृष्टिप्रशंसासंस्तवाः सम्यग्दृष्टेरतीचाराः ॥२३॥ व्रतशीलेषु पंच पंच यथाक्रमम् ॥२४॥ बन्धवधच्छेदातिभारारोपणान्नपाननिरोधाः ॥२५॥ मिथ्योपदेशरहोभ्याख्यानकूटलेखक्रियान्यासापहारसाकारमन्त्रभेदाः ॥२६॥ स्तेनप्रयोगतदाहृतादानविरुद्ध राज्यातिक्रमहीनाधिकमानोन्मानप्रतिरूपकव्यवहाराः ॥२७॥ परविवाहकरणेत्वरिकापरिगृहीतापरिगृहीतागमनाङ्गक्रीड़ाकामतीव्राभिनिवेशाः ॥२८॥ क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्णधनधान्य दासी दास कुप्यप्रमाणातिक्रमाः ॥२९॥ ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्व्यतिक्रमक्षेत्रवृद्धिस्मृत्यन्तराधानानि ॥३०॥ आनयनप्रेष्यप्रयोगशब्दरूपानुपातपुद्गलक्षेपाः ॥३१॥ कन्दर्पकौत्कुच्यमौखर्य्यासमीक्षाधिकरणोपभोगपरिभोगानर्थक्यानि ॥३२॥ योगदुःप्रणि धाना नादर स्मृत्य नुपस्था नानि ॥३३॥ अप्रत्य वेक्षिताऽप्रमार्ज्जितोत्सर्गादानसंस्तरोपक्रमणानादरस्मृत्यनुपस्थानानि ॥३४॥ सचित्तसम्बन्धसन्मिश्राभिषवदुःपक्वाहाराः ॥३५॥ सचित्तनिक्षेपापिधानपरव्यपदेशमात्सर्य्यकालातिक्रमाः ॥३६॥ जीवितमरणाशंसामित्रानुरागसुखानुबन्धनिदानानि ॥३७॥ अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम् ॥३८॥ विधिद्रव्यदातृपात्रविशेषात्तद्विशेषः ॥३९॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे सप्तमोऽध्याय ॥७॥

मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा बन्धहेतवः ॥१॥ सकषायत्वाजीवः कर्मणो योग्यान्पुद्गलानादत्ते स बन्धः ॥२॥ प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशास्तद्विधयः ॥३॥ आद्यो ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुर्नामगोत्रान्तरायाः ॥४॥ पञ्चनवद्व्यष्टाविंशतिचतुर्द्विचत्वारिंशद्विपञ्चभेदा यथाक्रमम् ॥५॥ मतिश्रुतावधिमनःपर्य्ययकेवलानां ॥६॥ चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानां निद्रानिद्रानिद्राप्रचलाप्रचलाप्रचलास्त्यानगृद्धयश्च॥७॥

सदसद्वेद्ये ।८।। दर्शनचारित्रमोहनीयाकषायकषायवेदनीयाख्यस्त्रिद्विनवषोडशभेदाः सम्यक्त्वमिथ्यात्वतदुभयान्यऽकषायकषायौ हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सास्त्रीपुन्नपुंसकवेदा अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसंज्वलनविकल्पाश्चैकशः क्रोधमानमायालोभाः ।।९।। नारकतैर्यग्योनमानुषदैवानि ।।१०।। गतिजातिशरीराङ्गोपाङ्गनिर्माणबन्धनसंघात संस्थानसंहननस्पर्शरसगन्धवर्णानुपूर्व्याऽगुरुलघूपघातपरघातातपोद्योतो च्छ्वासविहायोगतयः प्रत्येकशरीरत्रससुभगसुस्वरशुभसूक्ष्मपर्याप्तिस्थिरादेययशःकीर्तिसेतराणि तीर्थंकरत्वं च ।।११।। उच्चैर्नीचैश्च ।।१२।। दानलाभभोगोपभोगवीर्याणाम् ।।१३।। आदितस्तिसृणामन्तरायस्य च त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्यः परास्थितिः ।।१४।। सप्ततिर्मोहनीयस्य ।।१५।। विंशतिर्नामगोत्रयोः ।।१६।। त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुषः ।।१७।। अपरा द्वादश मुहुर्ता वेदनीयस्य ।।१८।। नामगोत्रयोरष्टौ ।।१९।। शेषाणामन्तर्मुहूर्ता ।।२०।। विपाकोऽनुभवः ।।२१।। स यथानाम ।।२२।। ततश्च निर्जरा ।।२३।। नामप्रत्यया सर्वतो योगविशेषात्सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाहस्थिताः सर्वात्मप्रदेशेष्वनन्तानन्तप्रदेशाः ।।२४।। सद्वेद्यशुभायुर्नामगोत्राणि पुण्यम् ।।२५।। अतोऽन्यत्पापम् ।।२६।।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रेऽष्टमोऽध्यायः ।।८।।

आस्रवनिरोधः संवरः ।।१।। स गुप्तिसमितिधर्म्मानुप्रेक्षापरीषहजयचारित्रैः ।।२।। तपसा निर्ज्जरा च ।।३।। सम्यग्योगनिग्रहो गुप्तिः ।।४।। ईर्य्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गाः समितयः ।।५।। उत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिञ्चन्यब्रह्मचर्य्याणि धर्मः ।।६।। अनित्याशरणसंसारैकत्वान्यत्वाशुच्यास्रवसंवरनिर्ज्जरालोकबोधिदुर्ल्लभधर्म्मस्वाख्यातत्वानुचिंतनमनुप्रेक्षाः ।।७।। मार्गाच्यवननिर्ज्जरार्थंपरिषोढव्याः परीषहाः ।।८।। क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकनाग्न्यारतिस्त्रीचर्य्यानिषद्याशय्याक्रोशवधयाच्ञालाभरोगतृणस्पर्शमलसत्कारपुरस्कारप्रज्ञाऽज्ञानाऽदर्शनानि ।।९।। सूक्ष्मसाम्परायच्छद्मस्थवीतरागयोश्चतुर्दश।।१०।।एकादशजिने।।११।।वादरसाम्परायेसर्वे।।१२।।ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने।।१३।। दर्शनमोहान्तराययोरदर्शनालाभौ ।।१४।। चारित्रमोहे नाग्न्यारतिस्त्रीनिषद्याक्रोशयाच्ञासत्कारपुरस्काराः ।।१५।। वेदनीये शेषाः ।।१६।। एकादयो भाज्या युगपदेकस्मिन्नैकोनविंशतिः ।।१७।। सामायिकच्छेदोपस्थापनापरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसाम्पराययथाख्यातमिति चारित्रम् ।।१८।। अनशनावमौदर्य्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशा बाह्यं तपः ।।१९।। प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्त्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानान्युत्तरम् ।।२०।। नवचतुर्दशपञ्चद्विभेदा यथाक्रमं प्राग्ध्यानात् ।।२१।।

आलोचनप्रतिक्रमणतदुभय विवेकव्युत्सर्गतपश्छेदपरिहारोपस्थापनाः ॥२२॥ ज्ञानदर्शन चारित्रोपचाराः ॥२३॥ आचार्य्योपाध्यायतपस्विशैक्ष्यग्लानगणकुलसंघसाधुमनोज्ञानाम् ॥२४॥ वाचनापृच्छनानुप्रेक्षाम्नायधर्मोपदेशाः ॥२५॥ बाह्याभ्यन्तरोपध्योः ॥२६॥ उत्तमसंहननस्यैकाग्र चिन्तानिरोधो ध्यानमान्तर्मुहूर्तात् ॥२७॥ आर्त्त रौद्रधर्म्यशुक्लानि ॥२८॥ परे मोक्षहेतू ॥२९॥ आर्तममनोज्ञस्य सम्प्रयोगे तद्विप्रयोगायस्मृतिसमन्वाहारः ॥३०॥ विपरीतं मनोज्ञस्य ॥३१॥ वेदनायाश्च ॥३२॥ निदानं च ॥३३॥ तदविरत देश विरतप्रमत्त संयतानाम् ॥३४॥ हिंसानृतस्तेयविषयसंरक्षणेभ्यो रौद्रमविरतदेश विरतयो ॥३५॥ आज्ञापायविपाकसंस्थान विचयाय धर्म्यम् ॥३६॥ शुक्ले चाद्ये पूर्व विदः ॥३७॥ परे केवलिनः ॥३८॥ पृथक्त्वैकत्ववितर्कसूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिव्युपरत क्रियानिवर्तीनि ॥३९॥ त्र्येकयोगकाययोगायोगानाम् ॥४०॥ एकाश्रये सवितर्कवी-चारे पूर्वे ॥४१॥ अवीचारं द्वितीयम् ॥४२॥ वितर्कः श्रुतम् ॥४३॥ वीचारोऽर्थव्य-ञ्जनयोगसंक्रान्तिः ॥४४॥ सम्यग्दृष्टिश्रावकविरतानन्तवियोजकदर्शनमोहक्षपकोपशम कोपशान्त मोहक्षपकक्षीणमोह जिनाः क्रमशोऽसंख्येयगुण निर्ज्जराः ॥४५॥ पुलाकवकुश कुशीलनिर्ग्रंथस्नातका निर्ग्रंथाः ॥४६॥ संयमश्रुतप्रतिसेवनातीर्थलिंगलेश्योपपादस्थान विकल्पतः साध्याः ॥४७॥

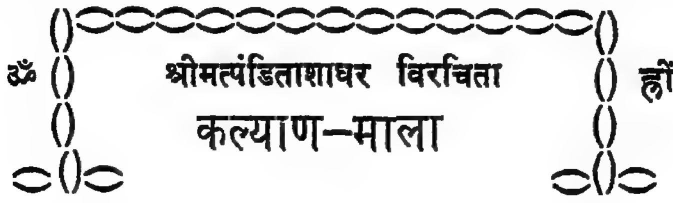
इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्ष शास्त्रे नवमोऽध्यायः।

मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलम् ॥१॥ बन्धहेत्वभावनिर्जरा भ्यां कृत्स्नकर्म्मविप्रमोक्षो मोक्षः ॥२॥ औपशमिकादिभव्यत्वानां च ॥३॥ अन्यत्र केवलसम्यक्त्वज्ञान दर्शनसिद्धत्वेभ्यः ॥४॥ तदनन्तरमूर्द्ध्वं गच्छत्यालोकान्तात् ॥५॥ पूर्वप्रयोगादसङ्गत्वाद्बन्धच्छेदात्तथागति परिणामाच्च ॥६॥ आविद्धकुलालचक्र वद्व्यपगतलेपालाबुवदेरण्डबीजवदग्निशिखावच्च ॥७॥ धर्मास्तिकायाभावात् ॥८॥ क्षेत्रकालगतिलिंग तीर्थचारित्र प्रत्येकबुद्धबोधितज्ञानावगाहनान्तरसंख्याल्पबहुत्वतः साध्याः : ॥९॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्ष शास्त्रे दशमोऽध्याय. ॥१०॥

अक्षरमात्रपदस्वरहीनं व्यञ्जनसन्धिविवर्जितरेफम्
साधुभिरत्र मम क्षमितव्यं को न विमुह्यति शास्त्र समुद्रे ॥१॥
दशाध्याये परिच्छिन्ने तत्त्वार्थे पठिते सति।
फलं स्यादुपवासस्य भाषितं मुनि पुंगवैः ॥२॥
तत्त्वार्थसूत्रकर्त्तारं गृद्ध - पिच्छोऽपिलक्षितम्।
वन्दे गणीन्द्रं संजातमुमास्वामि मुनीश्वरम् ॥३॥

इति तत्त्वार्थ सूत्रम् परनाम तत्त्वार्थाधिगम मोक्ष शास्त्र समाप्तम् ॥



श्रीमत्पंडिताशाधर विरचिता

कल्याण–माला

पुरुदेवादि वीरान्त जिनेन्द्राणं ददातु नः।
श्रीमद्गर्भादि कल्याण श्रेणी निश्रेयसः श्रियम् ॥१॥
शुचौ कृष्णे द्वितीयायां वृषभो गर्भमाविशत्।
वासुपूज्यस्तथा षष्ठ्यामष्टम्यां विमलः शिवम् ॥२॥

दशम्यां जन्म तपसी नमेः शुक्ले तु सन्मतेः।
षष्ठयां गर्भोभवन्नेमेः सप्तम्यां मोक्षमाविशत् ॥३॥
सुव्रतः श्रावणे कृष्णे द्वितीयायां दिवच्युतः।
कुन्थुर्दशम्यां शुक्ले तु द्वितीये सुमतिस्थितौ ॥४॥

जन्म निष्क्रमणे षष्ठ्यां नेमेः पार्श्वः सुनिर्वृतः।
सप्तम्यां पूर्णिमायां तुश्रेयान्निः श्रेयसं गतः ॥५॥
भाद्रे कृष्णस्य सप्तम्यां गर्भं शान्तिरवातरत्।
गर्भावतरणं षष्ठ्यां सुपार्श्वस्य सितेऽभवत् ॥६॥

पुष्पदन्तस्य निर्वाणं शुक्लाष्टम्यामजायत।
श्रितः शुक्लचतुर्दश्यां वासुपूज्यः परं पदम् ॥७॥
अश्विनेऽभूद्द्वितीयायां कृष्णे गर्भो नमेः सिते।
नेमे प्रतिपद्विज्ञानं सिद्धोष्टम्यां च शीतलः ॥८॥

अनन्तः कार्तिके कृष्णे गर्भेऽभूत्प्रतिपद्दिने।
चतुर्थ्यां शंभवाधीशः केवलज्ञानमापिवान् ॥९॥
पद्मप्रभ स्त्रयोदश्यां प्राप्तो जन्मव्रते शिवम्।
दर्शे वीरो द्वितीयायां कैवल्यं सुविधिः स्थितः ॥१०॥

षष्ठ्यां गर्भोऽभवन्नेमेर्द्वादश्यां केवलोद्भवः।
अरनाथस्य पक्षान्ते संभवेशस्य जन्म च ॥११॥
मार्गे दशम्यां कृष्णेऽगाद्वीरोदीक्षां जनिव्रते।
सुविधेः पक्षान्ते शुक्ले दशम्यांत्वर दीक्षणम् ॥१२॥

एकादश्यां जनुर्दीक्षे मल्लेर्ज्ञानं नमेस्तथा ।
अरजन्म चतुर्दश्यां पक्षान्ते सम्भवं व्रतम् ॥१३॥
पौष कृष्णे द्वितीयायां मल्लिः केवल्यमासदत् ।
चन्द्र प्रभस्तथा पार्श्व एकादश्यां जनिव्रते ॥१४॥

शीतलस्तु चतुर्दश्यां कैवल्य मुदमी मिलत् ।
शान्तिनाथो दशम्यान्तु शुक्ले कैवल्य मापिवान् ॥१५॥
एकादश्यान्तु कैवल्यमजितेशो ऽभिनन्दनः ।
चतुर्दश्यां पूर्णिमायां धर्मश्चलभते स्म तत् ॥१६॥

माघे पद्मप्रभः कृष्णे षष्ठ्यां गर्भमवातरत् ।
शीतलस्य जनुर्दीक्षे द्वादश्यां वृषभस्य तु ॥१७॥
मोक्षोऽभवच्चतुर्दश्यां दर्शे श्रेयांस केवलम् ।
शुक्लपक्षे द्वितीयाया वासुपूज्यस्य केवलम् ॥१८॥

चतुर्थ्यां विमलो जन्मदीक्षे षष्ठ्यां च केवलम् ।
नवम्यामजितो दीक्षां दशम्यां जन्म चासदत् ॥१९॥
अभिनन्दन नाथस्य द्वादश्यां जन्म निष्क्रमौ ।
धर्मस्य जन्मतपसी त्रयोदश्यां बभूवतुः ॥२०॥

चतुर्थ्यां फाल्गुने कृष्णे मुक्ति पद्मप्रभोगतः ।
षष्ठ्यांसुपार्श्वः कैवल्यं सप्तम्यां चापनिर्वृतिम् ॥२१॥
सप्तम्यामेव कैवल्य मोक्षौ चन्द्रप्रभोऽभजत् ।
नवम्यां सुविधिर्गर्भमेका दश्यांतु केवलम् ॥२२॥

वृषो जन्मव्रते तद्वच्छ्रेयान्मुक्ति तु सुव्रतः ।
द्वादश्यां वासुपूज्यस्तु चतुर्दश्यां जनिव्रते ॥२३॥
अरः शुक्ले तृतीयायां गर्भं मल्लिस्तु निर्वृतिम् ।
पंचम्यां प्रापदष्टम्यां गर्भं श्रीसंभवोऽपि च ॥२४॥

चैत्र चतुर्थ्यां कृष्णेऽभूत्पार्श्वनाथस्य केवलम् ।
पंचम्यां चन्द्रप्रभो गर्भमष्टम्यां शीतलोऽश्रयत् ॥२५॥
नवम्यां जन्म तपसी वृषभस्य बभूवतुः ।
कैवल्यंमप्य मावास्यां मोक्षोऽनन्तस्य चाभवत् ॥२६॥

शुक्ल प्रतिपदा गर्भमल्लिः कुन्थुस्तृतीयया।
ज्ञाने जितोऽभूत्पंचम्यां मोक्षोषष्ट्यां च सम्भवः ।।२७।।

एकादश्यां जनिर्ज्ञानमोक्षान्सुमति रुद्भवम् ।।
वीरः प्राप्तस्त्रयोदश्यां पद्माभोंत्येन्हि केवलम् ।।२८।।

पार्श्वः कृष्णे द्वितीयायां वैशाखे गर्भमाविशत् ।।
नवम्यां सुव्रतो ज्ञानं दशम्यां च जनिव्रते ।।२९।।

धर्मो गर्भं त्रयोदश्यां चतुर्दश्यां नमिः शिवम् ।।
शुक्ले प्रतिपदि प्राप कुन्थुर्जन्मतपः शिवम् ।।३०।।

प्राप्तोऽभिनन्दनः पष्ठ्यां शुक्लायां गर्भमोक्षणम् ।।
नवम्यां सुमतिवीरोदशम्यां ज्ञानमक्षयम् ।।३१।।

श्रेयान् ज्येष्ठे सिते षष्ठ्यां दशम्यां विमलोऽपि च ।।
गर्भं समाश्रितोऽनन्तो द्वादश्यां जन्मनिष्क्रमौ ।।३२।।

शान्तिः श्रितश्चतुर्दश्यां जन्मदीक्षाशिव श्रियः ।।
अमावश्या दिने गर्भमवतीर्णो जितेश्वरः ।।३३।।

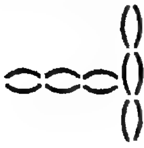
शुक्ले चतुर्थ्यां निर्वाणं प्राप्तो धर्मो जिनेश्वरः ।।
सुपार्श्वनाथो द्वादश्यां जनि प्रव्रजिते स्थितः ।।३४।।

इतिमां वृषभादीनां पुष्यत्कल्याणमालिकां ।।
करोति कण्ठे भुषां यः स स्यादाशाधरे पंडितः ।।३५।।

इत्याशाधर विरचिता कल्याणमाला समाप्ता ।।

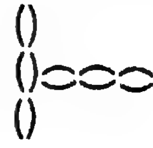
— श्री शान्ति ने नमः —





अथ श्री चन्द्रकृता

वैराग्य मणिमाला





चिंतय परमात्मानं देवं, योगिसमूहैः कृत पदसेवं।
संसारार्णववर जलयानं, केवल बोध सुधारसपानं ॥१॥
जीव जहीहिधनादिकतृष्णा, मुंच ममत्वं लेश्यां कृष्णां।
धर चारित्रं पालय शीलं, सिद्धिवधूक्रीड़ावर लीलं ॥२॥

अध्रुवमिदमाकलय शरीरं, जननीजनक धनादि सदारं।
वांछा कुरुषे जीव नितांतं, कि न हि पश्यसि मूढ़ कृतांतं ॥३॥
बाल्ये वयसि क्रीडा सक्त, स्तारुण्ये सति रमणीरक्तः।
वृद्धत्वेऽपि धनाशाकष्ट, स्त्वं भवसीह नितांतं दुष्टः ॥४॥

का ते आशा यौवन विषये, अध्रुवजल बुदबुदसमकाये।
मृत्वा यास्यसि निरय निवासं, न जहसि तदपि धनाशापाशं ॥५॥
भ्रातर्मे वचनं कुरु सारं, चेत्त्वं वांछसि संसृतिपारं।
मोह त्यक्त्वा कामं क्रोधं, त्यज भजत्वं संयमवरबोधं ॥६॥

का ते कांता कस्तव तनयः, संसारोऽपि च दुःखमयो यः।
पूर्व भवे त्वं कीदृग्भूतः, पापास्रव कर्मभि रभि भूतः ॥७॥
शरणम शरणं भावय सतत मर्थ मनर्थं चिंतय नियतं।
नश्वरकाय पराक्रम वित्ते, वांछा कुरुषे तस्यहि चित्ते ॥८॥

एको नरके याति वराकः, स्वर्गे गच्छति शुभस विवेकः।
राजाप्येकः स्याच्च धनेशः, एकः स्याद् विवेको दासः ॥९॥
एको रोगी शोकी एको, दुःख विहीनो दुःखी एकः।
व्यवहारी च दरिद्री एक, एकाकी भ्रमतीह वराकः ॥१०॥

अथिरं परिजन पुत्र कलत्रं, सर्वं मिलितं दुःखा मत्रं।
चेतसि चिंतय नियतं भ्रातः, काते जननी कस्तव तातः ॥११
भ्रातर्भूत गृहीतोऽसि त्वं, दार निमित्तं हिंससि सत्त्वं।
तेनाऽघेन च यास्यसि नरकं, तत्र सहिष्यसि घोरातंकं ॥१२॥

विषय पिशाचासंगं मुंच, क्रोध कषायौ मूलाल्लुंच।
कंदर्प प्रभोर्मानं कुंच, त्वं लुंपेन्द्रिय चौरान् पंच ॥१३॥
कुत्सित कुथित शरीर कुटीरं, स्तननाभी मांसादिविकारं।
रेतः शोणित पूयापूर्ण, जघनच्छिद्रं त्यजरे! तूर्ण ॥१४॥

संसाराब्धौ कालमनंतं, त्वंवसितोऽसि वराक! नितातं।
अद्याऽपि त्वं विषयाऽऽसक्तः, भवतेषु त्वं मूढ़! विरक्त ॥१५॥
दुर्गति दुःख समूहै भंग्न, स्तेषाँ पृष्टे पुनरपि लग्नः।
विकलो मत्तो भूताविष्टः, पापाचरणे जंतो! दुष्टः ॥१६॥

सप्त धातुमय पुद्गलपिंडः, कृमिकुल कलितामय फणिखंडः।
देहोऽयं तव निंदित कुंडः, तदपि हिमूर्ध्नि पतति यमदंड ॥१७॥
मा कुरु यौवन धन गृहगर्व, तव कालस्तु हरिष्यति सर्व।
इंद्र जाल मिदमफलं हित्वा, मोक्षपदं च गवेषय मत्वा ॥१८॥

नीलोत्पल दलगतजल चपलं, इन्द्रचाप विद्युत्सम तरलं।
किं न वेत्सि संसारमसारं, भ्रांत्या जानासि त्वं सारं ॥१९॥
शोक वियोग भयैः संभरितं, संसारारण्यं त्यज दुरितं।
कस्त्वाँ हस्ते दृढमिव धृत्वा, बोधिष्यति कारुण्यं कृत्वा ॥२०॥

मुंच परिग्रह वृन्दमशेषं, चारित्रं पालय सविशेषं।
काम क्रोधनिपीलनयंत्र, ध्यानं कुरु रे जीव! पवित्रं ॥२१॥
मुंच विनोदं कामोत्पन्नं, पश्य शिवं त्वं शुभसंपन्न।
यास्यसि मोक्षं प्राप्स्यसि सौख्यं, कृत्वा शुक्लं ध्यानं सख्यं ॥२२॥

आशा वसन वसानो भूत्वा, कामोपाधिकषायान् हित्वा।
गिरिकंदर गहनेषु स्थित्वा, कुरु सद्ध्यानं ब्रह्म विदित्वा ॥२३॥
यय नियमासन योगाभ्यासात्, प्राणायाम प्रत्याहारान्।
धारण ध्येय समाधीन धारय, संसाराब्धेर्जीवं तारय ॥२४॥

अर्हत्सिद्ध मुनीश्वर साक्षं, चारित्रं यदुपात्तं दक्षं।
तत्त्वं पालय यावज्जीवं, संसारार्णव तारण नावं ॥२५॥
सावधि वस्तु परित्यजनंयत्, रक्षय शुद्धमनाः शुद्धं तत्।
औदास्यं शाम्यं संपालय, आशा दासी संगं वारय ॥२६॥

पर्यंकादि विधेरभ्यासं, यत्नतया कुरु योगाऽभ्यासं।
दुर्धर मोह महासित सर्प, कीलय बोधय मर्दय दर्प ॥२७॥
पूरक कुंभक रेचक पवनैः, संसारेंधन दाहन दहनैः।
कृत्वा निर्मल कायं पूर्व, त्वं लभसे केवल बोधमनंतं ॥२८॥

प्राण विनिर्गत पवन समूहं, रुंधित्वा स्फोटय कलि निवहं।
दशम द्वारि विलीनं कुरु, त्वं लभसे केवल बोध मनतं ॥२९॥
हृदयादानीय च नाभिप्रति, वायुं तदनु च तं पूरयति।
योगाभ्यास चतुर योगीन्द्रा, पूरक लक्षण माहुरतन्द्राः ॥३०॥

नाभि सरोजे पवनं रुध्वा, स्थिर तरमत्र नितातं बध्वा।
पूर्णं कुंभवन्निर्भर रूपं, कथयति योगी कुंभक रूपं ॥३१॥
निस्सारयति शनैस्तं कोष्ठात्, पवनंयो योगीश्वर वचनात्।
रेचक वातं योगी कथयति, यो जीवान् मोक्षं प्रापयति ॥३२॥

नासामध्ये नगर चतुष्टय, मस्ति नितातं मूढ! विचारय।
तत्रोत्पत्तोर्वात चतुर्णां, संचरणां च कलय संपूर्णां ॥३३॥
चक्षुर्विषये श्रवसि ललाटे, नाभौ तालुनि हृत्कजनिकटे।
तत्रैकस्मिन् देशे चेतः, सद्ध्यानी धरतीत्यति शांतं ॥३४॥

योजन लक्ष प्रमितं कमलं, संचित्यं जांबून दविमलं।
कोशदेश मंदिर गिरि सहितं, क्षीरसमुद्र सरोवर सहितं ॥३५॥
तस्यो परि सिंहासन मेकं, तत्रस्थित्वा कुरु सद्ध्यानं।
चेतय सिद्ध स्वरूपम मान, प्राप्स्यसि जीव! शिवामृतपानं ॥३६॥

तदनंतर माध्येयं रम्यं, नाभी मध्ये कमलं सौम्यं।
षोडश पत्र प्रमितं सारं, स्वर मालान्वित पत्राऽऽधारं ॥३७॥
रेफकला विन्दु भिरानद्धं, तन्मध्ये संस्थाप्यं शुद्धं।
शून्यं वर्ण सत्वंतव्यं, तेजोमय माशं संदिव्यं ॥३८॥

तस्मान्निर्यान्तो धूमाली, पश्चादग्नि कणानामाऽऽली।
संचित्यानु ज्वाला श्रेणी, भव्यानां भवजलधे - द्रोणी ॥३९॥
ज्वालानां निकरेण ज्वाल्यं, कर्म कजाष्टक पत्रं शल्यं।
अवतानं हृदयस्थं चिंतय, मोक्षं यास्यसि मानय सत्यं ॥४०॥

कोणत्रितय समन्वितकुंडं, वन्हिबीज वर्णं रविखंडम् ॥
दग्धय मध्ये क्षिप्त्वा पिंडं, पश्यसि सिद्धिवधूवरतुंडं ॥४१॥
आकाशं सम्पूर्णं व्याप्य, पृथ्वीवलयं सर्व प्राप्य ॥
वातं वातं हृदि संभारय, परमानंदं चेतसि धारय ॥४२॥

तेन वातवलयेनोड्डाप्यं, भस्मवृंदमनुदिनमास्थाप्यं ॥
द्वादशांतमध्ये सद्ध्यानं, कुरु सिद्धानां परमं ध्यानं ॥४३॥
आकाशे संगर्जितमुदिरं, सेन्द्रचापमासार सुसारं ॥
नीरपूरसंप्लावितसूरं, संरोध्येति घनाघर्ननिकरं ॥४४॥

अर्धचंद्र पुट समसंराधं, वारणपुर संचित्यमबाधं ॥
अमृत-पूरवर्षण शशिसारं, तुष्ट योगिवप्पीहकनिकरं ॥४५॥
कांत्या स्नापितदश दिग्वलयं, दर्शनवोध वीर्यशिवनिलयं ॥
चिन्मयपिंडं वर्जितवलयं, स्मर निजजीवं निर्मलकायं ॥४६॥

भामण्डल निर्जितरविकोटिं, शुक्लध्यानाऽमृत संपुष्टिं ॥
तीर्थंकर परमोत्तमदेवं, स्वात्मानं स्मरकृतसुरसेवं ॥४७॥
कुंभवातेन च तं संचित्यं, ऊर्ध्वरेफ संयुक्तं नित्यं ॥
सकलबिंदुनाना हतरूपं, स्थापय चित्ते छेदितपापं ॥४८॥

कमलमेक मारोपय चाग्रे, आरोप्य स्मर तद्दलवर्गे ॥
सर्वं मंत्र बीजं हृदि नितरां, काम क्रोध कषायै विरतं ॥४९॥
शरदिंदो निर्गच्छंतं संतं, मंत्र राज माराधय सततं ॥
तालु सरोरुह मागच्छंतं, मेघाऽमृत धारा वर्षंतं ॥५०॥

भ्रूल तयोर्मध्ये चाऽऽरोप्यं, उड्डाप्य घ्राणाग्रे स्थाप्यं ॥
पुनरुद्भ्राम्य च हृदये, धार्य नेत्रोत्पल विषये तत्कार्यं ॥५१॥
सोमदेव सूरेरुपदेशः, कार्यश्चित्ते शुभ संवेशः ॥
लंबीजाक्षरमारोप्यांते, विद्वद्भिर्मुक्तय नासांते ॥५२॥

एवमादिमंत्राणां स्मरणं, कुरु जीव ! त्वं तेषां शरणं ॥
यत् सामर्थ्याद्विजहसि मरणं, संसाराब्धेः कुरुसे तरणं ॥५३॥
अविचल चित्तं धारयबंधो ! यास्यसि पारं संसृति सिंधोः ॥
त्वं च भविष्यसि केवल बोधो, हंसत्वं प्राप्स्यसि शिवसिंधो ॥५४॥

शुद्ध रूप चिन्मय चित् पिंडं, चिज्ज्योति श्चिच्छक्त्योर्नीडं ।
चिद्रम्यं चित्कौमुदि चंद्रं, स्मर बोधाधिपति गुण सांद्रं ।।५५।।
निर्मल चिद्रूपा मृतसिंधुं, शुक्लध्यानांबुजकज बंधुम् ।
सिद्धि वधू सरसीवर हंसं, पश्य शिवंशांतं च निरंशं ।।५६।।

ज्ञानार्णव कल्लोल कलापे, क्रीडति योऽजस्रं शिव रूपे ।
नव केवल लब्धिभिरापूर्णः, सेव्यंते मुनिभिर्गतवर्णः ।।५७।।
केवलकैरविणीविधेशं, मुक्तिकामिनी कर्णावतंसं ।
त्रिभुवनलक्ष्मी भाल विशेषं, लब्धि सोध रत्नानां कलशं ।।५८।।

शिवहंसी संगम सस्नेहं, अष्टगुणोपेतं च विदेहं ।
वोधि सुधारस पान पवित्रं, साम्य समुद्रं त्रिभुवन नेत्रं ।।५९।।
अनाद्य खंडा चलसद्वेद्यं, योगि वृंद वृंदारक वंद्यं ।
हरिहर ब्रह्मादि भिरभिवंद्यं, केवल कल्याणोत्सवहृद्यं ।।६०।।

श्रुतशैवलिनी सुरगिरिविधुरं, निःश्रेयसलक्ष्मीकरमुकुरं ।
कर्म्म महीधर भेदनभिदुरं, श्याम श्री ग्रीवालंकारं ।।६१।।
व्योमाकारं पुरुषमरूपं, निर्वापित संसृति संतापं ।
वर्जित कामदहन संपातं, त्रिभुवन भव्य जीव हिततातं ।।६२।।

इत्यादिक गुणगण संपूर्णं, चिंतय परमात्मानं तूर्णं ।
अष्ट प्रवचन मातुः पितरं, पारी कृता जवं जव पारं ।।६३।।
निज देहस्थं स्मररेमूढ, त्वं नो चेद् भ्रमिष्यसि गूढः ।
मूर्छणा मध्ये त्वं रूढः, त्वं च भविष्यस्यग्रे षंढः ।।६४।।

एक मनेकं स्वंसंभारय, शुद्धमशुद्धं स्वं संतारय ।
लक्ष्यमलक्ष्यं स्वं संपारय, कर्म कलंकं त्वं संदारय ।।६५।।
बद्धमबद्धं रिक्तमरिक्तं, शून्यमशून्यं व्यक्ताऽव्यक्तं ।
रुष्टमरुष्टं दुष्टादुष्टं, शिष्टमशिष्टं पुष्टाऽपुष्टं ।।६६।।

अंतर्भेदज्ञान विचारैः, व्यवहार व्यवहारा सारैः ।
वर्ण्यंते देहस्थं पुरुषं, विषय विरक्तैर्ज्ञान विशेषैः ।।६७।।
विरम विरम बाह्यादि पदार्थे, रम रम मोक्ष पदे च हितार्थे ।
कुरु कुरु निजकार्यं च वितंद्रः,भव भव केवल बोध यतीन्द्रः ।।६८।।

मुंच मुंच विषयाऽमिष भोगं, लुंप लुंप निज तृष्णा रोगं।
रुंध रुंध मानस मातंगं, धर धर जीव विमल तरयोगं ॥६९॥
चिंतय निज देहस्थं सिद्धं, आलोचय कायस्थं वुद्धं।
स्मर पिंडस्थ परम विशुद्धं, कल केवल केली शिव लब्धं ॥७०॥
वैराग्यमणि मालेयं, रचिता सप्ततिप्रमा।
ब्रह्म श्रुताब्धि शिष्येण, श्री चंद्रेण मुमुक्षुणा ॥७१॥

— समाप्तेय श्री चन्द्रकृता वैराग्य मणिमाला —

—०—

 श्रीं श्रो श्रीं श्री श्रीं श्रीं श्रीं 

देव वंदना, गुरु वंदना, स्वाध्याय वगैरे कृत्ये करावयाची असतां त्या वेली कोणत्या भक्ति म्हणा व्यालागतात या चें वर्णन

 —: जिनेन्द्र वंदन :— 

सर्वव्या संग निर्मुक्तः संशुद्धकरण त्रयः। धौत हस्त पद द्वन्द्वः परमानंद मंदिरम् ॥
चैत्य चैत्यालयादीनां स्तवनादी कृतोद्यमः। भवेदनन्त संसार संतानोच्छित्तये यतिः ॥१॥
यथा निश्चेतना श्चिन्तामणि कल्प महो रुहाः। कृत पुण्यानुसारेण तदभीष्ट फल प्रदा ॥
तथार्हदादय स्वास्त रागद्वेष प्रवृत्तयः। भक्त भवत्यनु सारेण स्वर्ग मोक्षफल प्रदाः ॥२॥
गराप हारिणी मुद्रा गरुडस्य यथा तथा। जिनस्याप्येन सो हंत्री दुरितारातिपातिनः ॥३॥
सुमनः संगमादंगतीह सूत्रं पवित्रताम्। पिष्टः प्रकृष्टमाधुर्यं प्रकृष्टे क्षुरसाद्यया ॥
चंपापावादि निर्वाण क्षेत्रादीनि पवित्रतां। वंद्यतां च व्रजन्त्येव वन्द्यसंगमस्तया ॥४॥
मत्वेति जिनगेहादिं त्रिः परीत्य कृतांजलिः। प्रकुर्वस्तच्चतुर्दिक्षु सत्यावर्ता शिरोन्नतिम् ॥
घोर संसार गंभीर वारिराशौ निमज्जताम्। दत्तहस्ता वलंबस्य जिनस्यार्चार्थमाविशेत् ॥५॥

प्रतिक्रमण व आलोचनाम्हणून

देवता स्तवने भक्तो चैत्य, पंचगुरु भयोः ॥६॥

१ १=२

आचार्य वन्दना विधि

लघ्व्या सिद्ध गणि स्तुत्या गणी वंद्यो गवसनात्।
१ १=२
सैद्धान्तोऽन्त श्रुत स्तुत्या तथान्यस्तन्नुति विनां ॥ ७ ॥ सि.आ. सि आ.श्रु सि श्रु
२+१=३ २ १ १ १ १ १ १ १=

स्वाध्याय वेली

स्वाध्यायं लघुभक्त्यात्तं श्रुत सूर्योरहर्निशे।
१ १
पूर्वेऽपरेऽपि चाराध्य श्रुतस्यैव क्षमापयेत् ॥ ८ ॥ श्रु आ लघु. व समाप्तीनंतर श्रुत.
१ १ १ १

प्रत्याख्यान व निष्ठापन - उपोषणाचे

हेयं लघ्व्या सिद्ध भक्त्याश नादौ। प्रत्याख्यानाद्याशु चादेय भक्ते ॥
१
सूरौ ताद्दग्योगिभक्त्यग्रया तद् ।ग्राह्यं वन्द्य, सूरि भक्त्या सलघ्व्या ॥ ६ ॥
१

लघुसिद्ध. आहारानतरसि. आचार्यपुढेकरणेसर. यो.ति.
१ १ १ १

चतुर्दशीच्यादिवशी

त्रिसमयवंदने भक्तिद्वयमध्ये श्रुतनुति चतुर्दश्याम् ॥
२ १
प्राहुस्तद्भक्तित्रय मुखांतयोः केपि सिद्धशांतिनूती ॥१०॥ चै. श्रु. पच.
१ १ १

चतुर्दशीचे दुसरे मत

सिद्धे चैत्ये श्रुते भक्तिस्तथा पंचगुरुस्तुतिः ॥
१ १ १ १
शांतिभक्तिस्तथा कार्या चतुर्दश्यामिति क्रिया ॥११॥
२

सि.चै.श्रु.पं.शां. नाडीतन्दुसरेदिव.
१ १ १ १ १=५

चतुर्दशीदिने धर्म व्यासंगादिना क्रिया कर्तुं न लभ्येत चेत्पाक्षिकेऽष्टम्यांक्रिया कर्तव्या ॥

अष्टमीऽथवापोर्णिमा किंवा आमावश्येस राहि ल्यास करणे —

❀ अष्टान्हिक पर्वात ❀

कुर्वंतु सिद्धनंदीश्वरगुरु शांतिस्तवैः क्रियामष्टौ ॥
१ १ १ १

शुच्यूर्जतपस्यसिताष्टम्यादि दिनानि मध्याह्ने ॥१२॥ सि.नं.पं.शां.
१ १ १ १=४

सिद्धप्रतिमा, तीर्थंकर जन्म व अपूर्व जिन प्रतिमा दर्शनी

सिद्धभक्त्यैकया सिद्धप्रतिमायां क्रियामता ॥
१

तीर्थंकृज्जन्मनि जिनप्रतिमायां च पाक्षिकी ॥१३॥
३ सिद्धप्र.दर्शनी.सि.।इतर.चै.पंच.श्रुत.
१ १ १ १=३

अपुर्व चैत्यवन्दना व नित्यवन्दना अष्टमी चतुर्दशीरोजी आल्यास

दर्शन पूजा त्रिसमयवंदन योगोष्टमीक्रियादिषु चेत् ॥

प्रात्कांहि शान्तिभक्तेः प्रयोजयेच्चैत्य पंचगुरु भक्ती ॥१४॥ चैत्य.पंचगुरु.शांतिभक्ति.
१ १ १ १ १ १=(३)

—ः अभिषेकसमयी ः—

अभिषेकवंदनायाः सिद्धचैत्य पंचगुरुशान्तिभक्तयः ॥१५॥
१ १ १ १=४

स्थिर व चल जिनबिम्ब प्रतिष्टेत चतुर्थ महाअभिषेक समयी

स्यात्सिद्ध शान्तिभक्तिः स्थिरचल जिनबिंबयोः प्रतिष्ठायां ॥
१ १

अभिषेक वंदना चल तुर्य स्नानेऽस्तुपाक्षिकी त्वपरे ॥१६॥
४

सि.शां.।सि.चै.प.शां. ।स्थिर.चवथेदि.सि.चा.भो.आलो.शो.
१ १।१ १ १ १=४ १ १ १ १ (४)

—ः पञ्चकल्याणक ः—

स्याद्यंत सिद्धशांति स्तुति जिन गर्भ जनुषोः स्तुयाद्वृत्तम् ॥

निष्क्रमणे योग्यन्तं विदि श्रुताद्यपि शिवे शिवांतमपि ॥१७॥ गर्भ,जन्म,

नि.चा र्शां । दीक्षाक सि चा यो र्शां. । ज्ञानक सि.श्रु चा यो शा. । निर्वा माग वनि.भक्ति ।
१ १ १(३) १ १ १ १(४) १ १ १ १ १(५) ५+१=(६)

—० महावीर निर्वाण त्रैली ०—

योगान्ते केंदिये सिद्ध निर्वाण गुरु शांतयः ॥

प्रणुत्या वीरनिर्वाणे कृत्यातो नित्य वंदना ॥१८॥ वर्षायोग सपवूनमुर्योदयीमि.नि प शां.
१ १ १ १(४)

म्हणून नंतर नित्य वंदना मुनी व श्रावकानी करणें —

-: श्रुतपञ्चमी :-

वृहत्या श्रुतपंचम्यां भक्त्या सिद्धश्रुतार्थया ॥
१ १ १ १

श्रुतस्कंधं प्रतिष्ठाप्य गृहीत्वा वाचनां वृहत् ॥

क्षम्यो गृहीत्वा स्वाध्यायः कृत्या शान्तिनुतिस्ततः ॥
१

यतिनां गृहिणां सिद्धश्रुतशान्तिस्तवाः पुनः ॥१९॥
१ १ १

जेष्टशु ५ रोजीसि श्रु.कथा सांगुन श्रु आ. व शां श्रावका सि श्रु.शां
१ १ १ १ १(५) १ १ १=३

= सिद्धान्तवाचन =

सिद्धान्तवाचना ग्रहणे सिद्धश्रुतभक्ती कृत्वा तदनु श्रुताचार्य भक्तीकृत्वा गृहीत
१ १ १

स्वाध्याय. तन्निष्टापने श्रुतशान्तिभक्ती करोतु । अधिकाराणा समाप्ता वेकैकं कायो-
१ १ १

त्सर्गं कुर्यात् ! क्रमेण षटकायोत्सर्गा भवन्ति ॥२०॥
६

❀ सन्यासमरणे ❀

संन्यासस्य क्रियादौ सा शान्तिभक्त्या विनासह ॥ अन्तेऽन्यदा वृहद्भक्त्या स्वाध्याय स्थापनोज्झने ॥ योगेपि ज्ञेयं तत्रात्तस्वाध्यायैः प्रतिचारकैः॥ स्वाध्यायाग्राहिणां प्राग्वत् तदाद्यन्तदिने क्रिया ॥२१॥

श्रुता प्रभाते सन्यासस्थापन करण सि.श्रु.करणे सं. स्वर्गवासा नतर शांति
१ १ १

स्वाध्याय करणारामे रात्री सन्यासघेनारा पासी रहावे

वर्षायोग ग्रहण व त्याग

ततश्चतुर्दशी पूर्वरात्रे सिद्धमुनिस्तुती । चतुर्दिक्षु परीत्यात्पाश्चैत्यभक्ति
१ १ १

गुरुस्तुतिम् ।। शान्ति भक्ति च कुर्वाणैर्वर्षायोगस्तु गृह्यताम् ।। उर्जशुक्लकृष्ण चतुर्द-
१ १

श्यांपश्चाद्ररात्रौ च मुच्यताम् ।।२२।। मुनीनीआषाढशु.१४ प्रथमरात्रेसि यो.चै.पं.शां.ग्र.त्या.
१ १ १ १ १

कार्तिक शु. १४ माग-चे रात्री समदर प्रमानेभक्ती करणे चारीदिशे प्रती दोन दोन स्वंयभूस्तात्रे म्हणुनस्तंडुलक्षेपक करणे ।

आचार्य पद ग्रहण

सिद्धाचार्यस्तुती कृत्वा सुलग्ने गुर्वनुज्ञया ।। लात्वाचार्यपदं शान्ति स्तुयात्साधुः स्फुरद्‌गु ।।२३।।
सि.आ.ननरशां.
१ १ १

प्रतिमायोग धारण करणारे मुनीचा आदर

लघीयसोऽपि प्रतिमायोगिनो योगिनः क्रियाम् ।। कुर्युः सर्वेऽपि सिद्धर्षि शान्ति भक्तिभिरादरात् ।।२४।।
सि.यो शां.
१ १ १ (३)

दिक्षासमयी लोचकरणे नेऽहां

सिद्धयोगि बृहद्भक्ति पूर्वकं लिङ्गमर्प्यताम् ।। लुञ्चाख्यानाग्न्य पिच्छात्म क्षम्यतां
१ १

सिद्धि भक्तितः ।।२५।।
१
सि.यो.सि.
१ १ १

= केशलोंच =

लोचो द्वि त्रि चतुर्मासैर्वरो मध्योऽधमः क्रमात् ।। लघु प्राग्भक्तिभिः कार्यः सोप-वासप्रतिक्रमः ।।२६।।
लघु.सि.यो.प्रतिक्र.उपवास.सि.
१ १ १ १

प्रतिक्रमण. रात्रियोग ग्र० त्याग

भक्त्या सिद्धप्रतिक्राति वीर द्विद्वादशार्हताम् ।। प्रतिक्रामेन्मलं योगं योगि-
भक्त्या भजेत् त्यजेत् ।।२७।। प्र सि.।प्रति वीर तीर्थ । ग्र.योगग्र.त्या.योगिभ ।
१ ।१ १ १ (३)। १

अतिचार वन्दनादि क्रियेत

ऊनाधिक्य विशुद्धचर्थं सर्वत्र प्रिय भक्तिकाः ।।२८।। समा.
१ १

निषिद्धिका स्थानाची व शरीराची क्रिया समयी

सामान्यर्षो मृते- सिद्धयोगि शांति । सिद्धांतवंदि साधूना-सिद्ध श्रुत योगि शान्ति भक्तयः
१ १ १ (३) १ १ १ १ (४)
सैद्धांतोत्तर योगिनासिद्ध चारित्र योग शांति भक्तयः ।। आचार्यस्य-सिद्धयोगाचार्यशांति
१ १ १ १ (४) १ १ १ १
भक्तयः सैद्धांताचार्यस्य सिद्धश्रुतयोगाचार्य शांति भक्तयः ।। उत्तरयोगिनामाचार्याणां
(४) १ १ १ १ १ (५)
सिद्धचारित्र योगाचार्य शांति भक्तयः उत्तर योगिनः सिद्धाताचार्यस्य
१ १ १ १ १ (५)
सिद्धश्रुतयोगाचार्य शांति भक्तयः ।। उत्तरयोगिनां सिद्ध चारित्र योगि शांति भक्तयः ।।
१ १ १ १ १ (५) १ १ १ १ (४)
अनंतरोक्ता अष्टौक्रियाः शरीरस्य निषद्यास्थानस्य च ।।२९।।

पाक्षिक चातुर्मासिक वगैरे प्रतिक्रमणे

पाक्षिक चातुर्मासिक सांवत्सरिक प्रतिक्रमणे सिद्ध चारित्र प्रतिक्रमण निष्ठित
१ १
करण चतुर्विंशति तीर्थंकर भक्तिश्चारित्रा लोचना गुरु भक्तयो बृहदा लोचन गुरुभक्ति-
१ १ १ १ १ १
र्लघीयस्याचार्यभक्तिश्च करणीयाः ।।३०।।

पा.चा ना.नि चा प्र चतु.चा आलो.गुरु यो आ.
१ १ १ १ १ १ १ १ १ (९)

— जाप्यकरणे कायोत्सर्ग पुर्वक —

अष्टशतं दैवसिकं कल्येर्धं पाक्षिकं च त्रीणि शतानि ।। उच्छ्वासाः कर्तव्या निय-
मांते अप्रमत्तेन ।।३१।। दै.प्र.उ. रात्री पाक्षिके उ.जा प्रत्येकभक्ती उ.जाप्य नमोकार
१०८=३६ ५४=१८ ३००—१०० २७=९

मंत्राचा जाप तीनश्वासोस्वासामधे १ पुरा करणे

चातुर्मासिक सांवत्सरिक

चातुर्मासिके चत्वारि शतानि संवत्सरे च पंचशतानि ।। कायोत्सर्गोच्छ्वासाः पंचसु स्थानेषु ज्ञातव्याः ।।३२।। चा. प्र. उ. जा. सां. प्र. उ. जा. प्राणिवधे मृषावादे
४०० = १३४ ५०० = १६७

अदत्ते मैथुने परिग्रहे चैव ।। अष्टशतं उच्छ्वासाः कायोत्सर्गे कर्तव्याः ।।३३।।
पं. अतिचारे उ.जा. भक्ते पाने ग्रामांतरे च अर्हत्श्रमणशय्यायाम् ।। उच्चारे प्रस्रवणे
१०८ = ३६

पंचविंशतिः भवंति उच्छ्वासाः ।।३४।। उ.जा. सर्वत्र- उद्देशे निर्देशे स्वाध्याये वंदनायां
२७ = ९

प्रणिधाने ।। सप्तविंशतिरुच्छ्वासाः कायोत्सर्गे कर्तव्याः ।।३५।। ग्रन्थादि प्रारम्भे कायो. स्वा. जा. ।
२७ = ९

१ गंधोदकं च शुद्धयर्थं शेषां संतति वृद्धये ।।
तिलकार्यं च सौगंध्यं गृह्यात् स्यान्नहिदोष भाक् ।।१।। संहिता वाक्य है ।। १ निर्माल्य

मनसा वचसा कायेनार्पितं यत् प्रभोः पुरः ।।
गृण्हाति तेनचात्मा वै पतितो नरको दरे ।।२।। उमा स्वामी०

१ पुष्प कोटि सम स्तोत्रं, स्तोत्र कोटिसमं जपः ।।
जपकोटि समं ध्यान, ध्यान कोटि समं क्षमा ।।३।।

ॐ ह्रां अर्हदभ्यो नमः मोक्ष-स्थान-एकांत-शांती = देवालयांत-दुष्टकार्य = स्मशानांत + + +

ॐ ह्रीं सिद्धेभ्यो नमः	पंल्लव-१ स्वाहाः होममंत्र २ स्वधाः पौष्ठीक. ३हूंफटः द्वेष.
ॐ ह्रूं आचार्येभ्यो नमः	४ हूं वषटः आकर्षण. ५ वषट् = वशीकरण. ६ठठ = स्तंभन
ॐ ह्रौं पाठकेभ्यो नमः	७ घे घेः मारण.
ॐ ह्रः सर्वसाधुभ्यो नमः	



श्रीमन्नेमिचन्द्रसिद्धान्तिदेव विरचितः

बृहद्द्रव्य संग्रहः

जीवम जीवं दव्वं जिणवर वसहेण जेण णिद्दिठ्ठं।
देविद विद वंदं वंदे त सव्वदा सिरसा ॥१॥

गाथा भावार्थ—मै (नेमिचन्द्र) जिस जिनवरों में प्रधान ने जीव और अजीव द्रव्य का कथन किया, उस देवेन्द्रादिकों के समूह से वंदित तीर्थंकर परम देव को सदा मस्तक से नमस्कार करता हूं ॥१॥

जीवो उव ओगमओ अमुत्ति कत्ता सदेह परिमाणो।
भोत्ता संसारत्थो सिद्धो सो विस्स सोड्ढगई ॥२॥

अर्थ—जो उपयोग मय है, अमूर्त्त है, कर्त्ता है, निज शरीर के बराबर है, भोक्ता है, संसार में स्थित है, सिद्ध है और स्वभाव से ऊर्ध्व गमन करने वाला है, वह जीव है।

तिक्काले चदुपाणा इंदिय बल माउ आण पाणो य।
ववहारा सो जीवो णिच्छयणयदो दु चेदणा जस्स ॥३॥

अर्थ—तीन काल में इन्द्रिय, बल, आयु, और आनपान इन चारों प्राणों को जो धारण करता है वह व्यवहार नय से जीव है और निश्चय नय से जिसके चेतना है वही जीव है ॥३॥

उवओगो दुवियप्पो दंसणणाणं च दंसणं च दुधा।
चक्खु अचक्खू ओही दसणमध केवल णेयं ॥४॥

गाथार्थ—दर्शन और ज्ञान इन भेदों से उपयोग दो प्रकार का है। उनमें चक्षु दर्शन, अचक्षु दर्शन, अवधि दर्शन और केवल दर्शन इन भेदों से दर्शनोपयोग चार प्रकार का जानना चाहिये ॥४॥

णाणं अट्ठ वियप्पं मदिसुदिओही अणाणणा णाणि।
मण पज्जव केवलमवि पच्चक्ख परोक्ख भेयं च ॥५॥

गाथार्थ—कुमति, कुश्रुत, कुअवधि मति, श्रुत, अवधि, मनः पर्यय और केवल

ऐसे आठ प्रकार का ज्ञान है। इनमें कुअवधि, अवधि, मनःपर्यय तथा केवल ये चार प्रत्यक्ष हैं और शेष चार परोक्ष हैं ॥५॥

अट्ठ चदु णाण दंसण सामण्णं जीवलक्खणं भणियं ।
ववहारा सुद्धणया सुद्धं पुण दंसणंणाणं ॥६॥

गाथार्थ—आठ प्रकार के ज्ञान और चार प्रकार के दर्शन का जो धारक है वह जीव है। यह व्यवहार नय से सामान्य जीव का लक्षण है और शुद्ध नय से शुद्ध जो ज्ञान, दर्शन है वह जीव का लक्षण कहा गया है ॥६॥

वण्ण रस पंच गधा, दो फासा अट्ठ णिच्छया जीवे ।
णो संति अमुत्ति तदो, ववहारा मुत्ति बंधादो ॥७॥

निश्चय से जीव में पांच वर्ण, पांच रस, दो गंध और आठ स्पर्श नहीं है इसलिये जीव अमूर्त्त है और बंध से व्यवहार की अपेक्षा करके जीव मूर्त्त है ॥७॥

पुग्गलकम्मादीणं, कत्ता ववहारदो दु णिच्छयदो ।
चेदणकम्माणादा, शुद्धणया सुद्ध भावाणं ॥८॥

गाथार्थः—आत्मा व्यवहार से पुद्गल कर्म आदि का कर्त्ता है, निश्चय से चेतन कर्म का कर्त्ता है। और शुद्ध नय से शुद्ध भावों का कर्त्ता है ॥८॥

ववहारा सुहदुक्खं, पुग्गलकम्मप्फलं पभुंजेदि ।
आदा णिच्छयणयदो, चेदणभावं खु आदस्स ॥९॥

गाथार्थ—आत्मा व्यवहार से सुख दुःखरूप पुद्गल कर्मो का भोगता है और निश्चय नय से आत्मा चेतन स्वभाव को भोगता है ॥९॥

अणु गुरु देह पमाणो, उवसंहारप्पसप्पदो चेदा ।
असमुहदो ववहारा, णिच्छयणयदो असंखदेसो वा ॥१०॥

गाथा भावार्थ—व्यवहार नय से समुद्घात अवस्था के बिना यह जीव संकोच तथा विस्तार में छोटे और बड़े शरीर के प्रमाण रहता है और निश्चय नय से जीव असंख्यात प्रदेशों का धारक है ॥१०॥

पुढविजलतेयवाऊ, वणप्फदी विविहथावरेइंदी ।
विगतिगचदुपचक्खा, तसजीवा होंति संखादि ॥११॥

गाथा भावार्थ—पृथिवी, जल तेज, वायु और वनस्पति इन भेदों से नाना प्रकार के स्थावर जीव हैं और ये सब एक स्पर्शन इंद्रिय के ही धारक है, तथा शंख आदिक दो तीन, चार और पांच इन्द्रियों के धारक त्रस जीव होते है ॥११॥

समणा अमणा णेया, पंचिंदिय णिम्मणा परे सव्वे ।
बादरसुहमेइन्दी, सव्वे पज्जत्त इदरा य ॥१२॥

गाथा भावार्थः—पंचेन्द्रिय जीव संज्ञी और असंज्ञी ऐसे दो प्रकार के जानने चाहिये और दो इन्द्रिय, ते इन्द्रिय चोइंद्रिय ये सब मनरहित(असंज्ञी)है एकेन्द्रिय बादर और सूक्ष्म दो प्रकार के हैं और ये पूर्वोक्त सातों पर्याप्त तथा अपर्याप्त है, एसे१४ जीव समास हैं ॥१२॥

मग्गणगुणठाणेहि य, चउदसहि हवंति तह असुद्धणया ।
विण्णेया संसारी, सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया ॥१३॥

गाथा भावार्थः—संसारी जीव अशुद्ध नय से चौदह मार्गणा स्थानों से तथा चौदह गुण स्थानों से चौदह चौदह प्रकार के होते हैं औरशुद्ध नय से तो सब संसारी जीव शुद्ध हो है ॥१३॥

णिक्कम्मा अट्ठगुणा, किंचूणा चरमदेहदो सिद्धा ।
लोयग्गठिदा णिच्चा, उप्पादवएहि संजुत्ता ॥१४॥

जो जीव ज्ञानावरणादि आठ कर्मो से रहित हैं, सम्यक्त्व आदि आठ गुणों के धारक है तथा अन्तिम शरीर से कुछ कम हैं वे सिद्ध है और उर्ध्वगमन स्वभाव से लोक के अग्रभाग में स्थित है, नित्य है तथा उत्पाद और व्यय इन दोनों से युक्त है ॥१४॥

अज्जीवो पुण णेओ, पुग्गल धम्मो अधम्म आयासं ।
कालो पुग्गल मुत्तो, रूवादिगुणो अमुत्ति सेसा हु ॥१५॥

गाथार्थः—और पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश तथा काल इन पांचों को अजीव द्रव्य जानना चाहिये इनमें पुद्गल तो मूर्तिमान् है क्योंकि, रूप आदि गुणों का धारक है, और शेष (बाकी) के चारों अमूर्त्त है ॥१५॥

सद्दो बन्धो सुहुमो, थूलो संठाण भेद तम छाया ।
उज्जोदादवसहिया, पुग्गलदव्वस्स पज्जाया ॥१६॥

गाथार्थः—शब्द, बन्ध, सूक्ष्म, स्थूल, संस्थान, भेद, तम, छाया, उद्योत और आतप इन करके सहित जो है वे सब पुद्गल द्रव्य के पर्याय है ॥१६॥

गइपरिणयाण धम्मो, पुग्गलजीवाण गमणसहयारी ।
तोयं जह मच्छाणं, अच्छंताणेव सो णेई ॥१७॥

गाथा भावार्थः--गति (गमण में) परिण जो पुद्गल और जीव हैं उनके गमन में धर्म द्रव्य सहकारी है, जैसे मत्स्यों के गमन में जल सहकारी है और नहीं गमन करते हुये पुद्गल और जीवों को वह धर्म द्रव्य कदापि गमन नहीं कराता है ॥१७॥

ठाण जुदाण अधम्मो पुग्गल जीवाण ठाण सहयारी ॥
छाया जह पहियाणं गच्छंता णेव सो धरई ॥१८॥

गाथा भावार्थः--स्थिति सहित जो पुद्गल और जीव हैं उनको स्थिति में सहकारी कारण अधर्म द्रव्य है जैसे पथिकों (बटोहियों) की स्थिति में छाया सहकारी है और गमन करते हुये जीव तथा पुद्गलों को वह अधर्म द्रव्य नहीं ठहराता है ॥१८॥

अवगा सदाण जोग्गं जीवादीणं वियाण आयासं ॥
जेण्हं लोगागासं अल्लोगागासमिदि दुविहं ॥१९॥

गाथार्थः--जो जीव आदि द्रव्यों को अवकाश देने वाला है उसको श्री जिनेन्द्र करके कहा हुआ आकाश द्रव्य जानो। वह लोकाकाश और अलोकाकाश इन भेदों से दो प्रकार का है ॥१९॥

धम्माऽधम्मा कालो पुग्गल जीवा य संति जावदिये।
आयासे सो लोगो तत्तो परदो अलोगुत्ति ॥२०॥

गाथार्थः--धर्म, अधर्म, काल, पुद्गल और जीव ये पांचों द्रव्य जितने आकाश में हैं वह तो लोकाकाश है और उस लोकाकाश के आगे अलोकाकाश है ॥२०॥

दव्व परिवट्ट रूवो जो सो कालो हवेइ ववहारो।
परिणामा दी लक्खो वट्टण लक्खो य परमट्ठो ॥२१॥

गाथार्थः--जो द्रव्यों के परिवर्तन रूप, परिणाम रूप देखा जाता है वह तो व्यवहार काल है और वर्त्तना लक्षण का धारक जो काल है वह निश्चय काल है ॥२१॥

लोयायास पदेसे इक्किक्के जे ठियाहु इक्किक्का ॥
रयणाणं रासी इव ते कालाणू असंख दव्वाणि ॥२२॥

गाथार्थः--जो लोकाकाश के एक एक प्रदेश में रत्नों की राशि के समान परस्पर भिन्न होकर एक एक स्थित है वें कालाणु है और असंख्यात द्रव्य है ॥२२॥

एवं छब्भेयमिदं, जीवाजीवप्पभेददो दव्वं ॥
उत्तं कालविजुत्तं, णादव्वा पञ्च अत्थिकाया दु ॥२३॥

गाथा भावार्थः--इस प्रकार एक जीव द्रव्य और पांच अजीव द्रव्य ऐसे छह प्रकार के द्रव्य का निरूपण किया। इन छहों द्रव्यों में से एक काल के बिना शेष पांच अस्तिकाय जानने चाहिये ॥२३॥

संति जदो तेणेदे, अत्थिति भणंति जिणवरा जह्मा ॥
काया इव बहुदेसा, तह्मा काया य अत्थिकाया य ॥२४॥

पूर्वोक्त जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म तथा आकाश ये पांचों द्रव्य विद्यमान हैं, इसलिये जिनेश्वर इनको 'अस्ति' (है) ऐसा कहते हैं और ये काय के समान बहु प्रदेशों को धारण करते हैं इसलिये इनको 'काय' कहते हैं। अस्ति तथा काय दोनों को मिलाने से ये पांचों 'अस्तिकाय' होते है ॥२४॥

होंति असंखा, जीवे, धम्माधम्मे अणंत आयासे ॥
मुत्ते तिविहि पदेसा, कालस्सेगो ण तेण सो काओ ॥२५॥

गाथार्थः—जीव, धर्म तथा अधर्म द्रव्य में असंख्यात प्रदेश है और आकाश में अनन्त है। मूर्त (पुद्गल) में संख्यात, असंख्यात तथा अनन्त प्रदेश हैं और काल के एक ही प्रदेश है, इसलिये काल काय नहीं है ॥२५॥

एयपदेसो वि अणू, णाणाखंधप्पदेसदो होदि ॥
बहुदेसो उवयारा, तेण य काओ भणंति सव्वण्हु ॥२६॥

गाथार्थः—एक प्रदेश का धारक भी परमाणु अनेक स्कन्ध रूप बहुत प्रदेशों से बहु प्रदेशी होता है इस कारण सर्वज्ञ देव उपचार से पुद्गल परमाणु को काय कहते हैं ॥२६॥

जावदियं आयासं, अविभागी पुग्गलाणु उट्ठद्धं ॥
तं खु पदेसं जाणे, सव्वाणुट्ठाण दाण रिहं ॥२७॥

गाथार्थः—जितना आकाश अविभागी पुद्गलाणु से रोका जाता है, उसको सब परिमाणुओं को स्थान देने में समर्थ प्रदेश जानो ॥२७॥

प्रथमऽधिकार समाप्त ॥१॥

परिणामि-जीव-मुत्तं, सपदेसं एय-खेत्त-किरिया य ॥
णिच्चं कारण-कत्ता, सव्वगदमिदरहि यप वेसे ॥१॥

दुण्णिय एयं एयं, पंच-त्तिय एय दुण्णि चउरो य ॥
पंच य एयं एयं, एदेसं एय उत्तरं णेयं ॥२॥युग्मम्॥

गाथा भावार्थः--पूर्वोक्त षट् द्रव्यों में से परिणामी द्रव्य जीव और पुद्गल ये दो हैं। चेतन द्रव्य एक जीव है, मूर्तिमान् एक पुद्गल है, प्रदेश सहित जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म तथा आकाश ये पांच द्रव्य है, एक संख्या वाले धर्म, अधर्म और आकाश ये तीन द्रव्य है, क्षेत्रवान् एक आकाश द्रव्य है क्रिया सहित जीव और पुद्गल ये दो द्रव्य हैं, नित्य द्रव्य धर्म, अधर्म, आकाश तथा काल ये चार है, कारण द्रव्य-पुद्गल, धर्म अधर्म, आकाश और काल ये पांच हैं, कर्त्ता द्रव्य--एक जीव है, सर्वगत (सर्व में व्यापने वाला) द्रव्य-एक आकाश है, और ये छहों द्रव्य प्रवेश रहित है अर्थात् एक द्रव्य में दूसरे द्रव्य का प्रवेश नहीं होता है ॥२७॥

आसव बंधण संवर णिज्जर मोक्खो सपुण्णपावा जे ॥
जीवाजीवविसेसा तेवि समासेण पभणामो ॥२८॥

गाथार्थः--अब जो आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा मोक्ष, पुण्य तथा पाप ये सात जीव, अजीव के भेद रूप पदार्थ है, इनको भी संक्षेप से कहते हैं ॥२८॥

आसवदि जेण कम्मं परिणामेणप्पणो स विण्णेओ ॥
भावासवोजिणुत्तो कम्मासवणं परो होदि ॥२९॥

गाथार्थः--जिस परिणाम से आत्मा के कर्म का आस्रव होता है उसको श्री जिनेन्द्र द्वारा कहा हुआ भावास्रव जानना चाहिये। और भावास्रव से भिन्न ज्ञानावरणादि रूपकर्मो का जो आस्रव है सो द्रव्यास्रव होता है ॥२९॥

मिच्छत्ताविरदिपमादजोगकोधादओद्य विण्णेया ॥
पण पण पणदस तिय चदु कमसो भेदा दु पुव्वस्स ॥३०॥

गाथार्थः--अब प्रथम जो भावास्रव है उसके मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, योग और क्रोध आदि कषाय ये पांच भेद जानने चाहिये। और मिथ्यात्वादि के क्रम से पांच, पांच, पन्द्रह, तीन, और चार भेद समझने चाहिये। अर्थात् मिथ्यात्व के पांचभेद, अविरति के पाँच भेद, प्रमाद के पन्द्रह भेद, योग के तीन भेद और क्रोध आदि कषायों के चार भेद जानने चाहिये ॥३०॥

णाणावरणादीणं जोग्गंजं पुग्गलं समासवदि ॥
दव्वासवो स णेओ अणेय भेओ जिणक्खादो ॥३१॥

गाथार्थः—ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों के योग्य जो पुद्गल आता है, उसको द्रव्यास्रव जानना चाहिये। वह अनेक भेदों सहित है ऐसे जिनेन्द्र ने कहा है ॥३१॥

बज्झदि कम्मं जेण दु चेदण भावेण भाव बंधो सो ॥
कम्माद पदेसाणं अण्णोण्ण पवेसणं इदरो ॥३२॥

गाथार्थः—जिस चेतना भाव से कर्म बंधता है वह तो भाव बंध है, और कर्म तथा आत्मा के प्रदेशों का परस्पर प्रवेशन रूप अर्थात् कर्म और आत्मा के प्रदेशों का एकाकार होने रूप दूसरा द्रव्य बंध है।

पयडिट्ठि दि अणुभाग पदेश भेदादु चहु विधो बंधो ॥
जोगा पयडिप देसा ठिदिअणु भागा कसायदो होंति ॥३३॥

गाथार्थ—प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश इन भेदों से बंध चार प्रकार का है। इनमें योगों से प्रकृति तथा प्रदेशबंध होते है। और कषायों से स्थिति तथा अनुभाग बंध होते है ॥३३॥

चेदणपरिणामो जो कम्मस्सासवणिरोहणे हेदू ॥
सो भाव संवरो खलु दव्वासव रोहणे अण्णो ॥३४॥

गाथार्थः—जो चेतन का परिणाम कर्म के आस्रव को रोकने में कारण है, उसको निश्चय से भाव संवर कहते है। और जो द्रव्यास्रव को रोकने में कारण है सो दूसरा अर्थात् द्रव्य संवर है ॥३४॥

वदसमिदीगुत्तीओ धम्माणुपेहा परीसह जओ य ॥
चारित्तं बहु भेया णायव्वा भाव संवर विसेसा ॥३५॥

गाथार्थ—पांच व्रत, पांच समिति, तीन गुप्ति, दश धर्म, बारह अनुप्रेक्षा, बाइस परीषहों का जय तथा अनेक प्रकार का चारित्र इस प्रकार ये सब भाव संवर के भेद जानने चाहिये ॥३५॥

जह कालेण तवेण य भुत्तरसं कम्म पुग्गलं जेण ॥
भावेण सडदि णेयातस्सडणं चेदि णिज्जरा दुविहा ॥३६॥

गाथार्थः— जिस आत्मा के परिणामरूप भाव से कर्मरूपी पुद्गल फल देकर नष्ट होते हैं वह तो भाव निर्जरा है और सविपाक निर्जरा की अपेक्षा से यथाकाल अर्थात् काल लब्धिरूप काल से तथा अविपाक निर्जरा की अपेक्षा से तप से जो कर्म रूप पुद्गलों का नष्ट होना है सो द्रव्य निर्जरा है ॥३६॥

सव्वस्स कम्मणो जो, खयहेदू अप्पणो हु परिणामो ।
णेयो स भावमुक्खो, दव्वविमुक्खो य कम्मपुहभावो ॥३७॥

गाथार्थः— सब कर्मों के नाश का कारण जो आत्मा का परिणाम हैं उसको भाव मोक्ष जानना चाहिये। और कर्मों की जो आत्मा से सर्वथा भिन्नता है वह द्रव्य मोक्ष है ॥३७॥

सुहअसुह भावजुत्ता, पुण्णं पावं हवंति खलु जोवा।
सादं सुहाउ णामं, गोदं पुण्णं पराणि पावं च ॥३८॥

गाथार्थः- शुभ तथा अशुभ परिणामों से युक्त जीव पुण्य और पापरूप होते हैं। सातावेदनी, शुभ आयु, शुभ नाम तथा उच्च गोत्र नामक कर्मो की जो प्रकृतिये है वे तो पुण्य प्रकृतिये है शेष सब पाप प्रकृतिये हैं ॥३८॥

इति द्वितीयोऽधिकारः

सम्मद्दंसणणाणं, चरणं मुक्खस्सं कारणं जाणे।
ववहारा णिच्छयदो, तत्तियमइओ णिओ अप्पा ॥३६॥

गाथार्थः— सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र इन तीनों के समुदायको व्यवहार से मोक्ष का कारण जानो। तथा निश्चय से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और चारित्र स्वरूप जो निज आत्मा है उसको मोक्ष का कारण जानो ॥३६॥

रयणत्तयं ण वट्टइ, अप्पाण मुइत्तु अण्णदवियह्मि।
तह्मा तत्तियमइउ होदि हु मुक्खस्स कारण आदा ॥४०॥

गाथार्थः— आत्मा को छोड़कर अन्य द्रव्यों में रत्नत्रय नहीं रहता इस कारण उस रत्नत्रयमयी जो आत्मा है वही निश्चय से मोक्ष का कारण है ॥४०॥

जीवादी – सद्दहणं, सम्मत्तं रूवमप्पणो तं तु।
दुरभिणिवेशविमुक्कं, णाणं सम्मं खु होदि सदि जह्मि ॥४१॥

गाथार्थः— जीव आदि पदार्थो का जो श्रद्धान करना है वह सम्यक्त्व है और वह सम्यक्त्व आत्मा का स्वरूप है। और इस सम्यक्त्व के होने पर संशय, विपर्यय तथा अनध्यवसाय इन तीनों दुरभिनिवेशों से रहित होकर सम्यग्ज्ञान कहलाता है ॥४१॥

संसयविमोहविब्भय — विवज्जियं अप्पपरसरूवस्स।
गहणं सम्मंणाणं, सायार – मणेयभेयं तु ॥४२॥

गाथा भावार्थ :— आत्म स्वरूप और पर पदार्थ के स्वरूप का जो संशय, विमोह (अनध्यवसाय) और विभ्रम (विपर्यय) रूप कुज्ञान से रहित जानना है वह सम्यग्ज्ञान कहलाता है यह आकार (विकल्प) सहित है और अनेक भेदों का धारक है ॥४२॥

जं सामण्णं गहणं, भावाणं णेव कट्टुमायारं।
अविसेसिदूण अट्ठे, दंसणमिदि भण्णए समए ॥४३॥

गाथार्थः— यह शुक्ल है, यह कृष्ण है इत्यादि रूप से पदार्थो को भिन्न–२ न करके और विकल्प को न करके जो पदार्थो का सामान्य से अर्थात सत्तावलोकन रूप से ग्रहण करना है उसको परमागम में दर्शन कहा गया है ॥४३॥

दंसणपुव्वं णाणं, छदमत्थाणं ण दोण्णि उवउग्गा।
जुगवं जह्मा केवलि-णाहे जुगवं तु ते दोवि ॥४४॥

गाथार्थः—छद्मस्थ जीवों के दर्शन पूर्वक ज्ञान होता है, क्योंकि छद्मस्थों के ज्ञान और दर्शन ये दोनों उपयोग एक समय में नहीं होते। तथा जो केवली भगवान हैं उनके दर्शन और ज्ञान एक ही समय में दोनों उपयोग होते है ॥४४॥

असुहादो विणिवित्ती, सुहे पवित्ती य जाण चारित्तं।
वदसमिदिगुत्तिरूवं, ववहारणयादु जिणभणियं ॥४५॥

गाथार्थः— जो अशुभ (बुरे) कार्य से दूर होना और शुभ कार्य में प्रवृत्त होना अर्थात लगना है उसको चारित्र जानना चाहिये। श्री जिनेन्द्र देव ने व्यवहार नय से उस चारित्र को ५ व्रत ५ समिति और ३ गुप्ति स्वरूप कहा है ॥४५॥

बहिरब्भंतर किरियारोहो भवकारणपणासट्ठं ॥
णाणिस्स जं जिणुत्तं तं परमं सम्मचारित्तं ॥४६॥

गाथार्थः— ज्ञानी जीव के जो संसार के कारणों को नष्ट करने के लिये बाह्य और अन्तरङ्ग क्रियाओं का निरोध है, वह श्री जिनेन्द्र से कहा हुआ उत्कृष्ट सम्यक्-चारित्र है ॥४६॥

दुविहं पि मुक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा ॥
तह्मा पयत्तचित्ता जूयं झाणं समब्भसह ॥४७॥

गाथार्थः— मुनि ध्यान के करने से जो नियम से निश्चय और व्यवहार इन दोनों स्वरूप मोक्ष मार्ग को पाता है। इस कारण से हे भव्यो ! तुम चित्त को एकाग्र करके ध्यान का अभ्यास करो ॥४७॥

मा मुज्झह मा रज्जह मा दूसह इट्ठणिट्ठअट्ठेसु ॥
थिर मिच्छहि जह चित्तं विचित्त झाणप्प सिद्धोए ॥४८॥

गाथार्थः— हे भव्यजनो ! यदि तुम नाना प्रकार के ध्यान अथवा विकल्प रहित ध्यान की सिद्धिके लिये चित्त को स्थिर करना चाहते हो इष्ट तथा अनिष्ट रूप जो इन्द्रियों के विषय है उनमें राग द्वेष और मोह को मत करो ॥४८॥

पण तीस सोल छप्पण चउदुगमेगं च जवह ज्झाएह ॥
परमेट्ठि वाचयाणं अण्णं च गुरूवएसेण ॥४९॥

गाथार्थः— पंच परमेष्टियों को कहने वाले जो पैंतीस, सोलह, छह, पांच, चार, दो और एक अक्षररूप मन्त्रपद है उनका जाप्य करो और ध्यान करो इनके सिवाय अन्य जो मन्त्रपद है उनको भी गुरू उपदेशानुसार जपो और ध्यावो ॥४९॥

णट्ठचदुघाइ कम्मो दंसण सुहणाण वीरियम इओ ॥
सुहदेहत्थो अप्पा सुद्धो अरिहो विचिंतिज्जो ॥५०॥

गाथार्थः— चार घातिया कर्मो का नष्ट करनेवाला, अनंत दर्शन, सुख, ज्ञान और वीर्य का धारक, उत्तम देह में विराजमान और शुद्ध ऐसा जो आत्मा है वह अरहंत है उसका ध्यान करना चाहिये ॥५०॥

णट्ठट्ठ कम्मदेहो लोया लोयस्स जाणओ दट्ठा ॥
पुरिसायारो अप्पा सिद्धो झाएह लोयसिह रत्थो ॥५१॥

गाथार्थः— नष्ट हो गया है अष्टकर्म रूप देह जिसके, लोकाकाश तथा अलोकाकाश का जानने देखने वाला, पुरुष के आकार का धारक— और लोक के शिखर पर विराजमान ऐसा जो आत्मा है वह सिद्ध परमेष्टी है इस कारण तुम उसका ध्यान करो ॥५१॥

दंसणणाए पहाणे वीरिय चारित्त वरत वायारे ॥
अप्पं परं च जुंजइ सो आयरिओ मुणी झेओ ॥५२॥

गाथार्थः— दर्शनाचार १ ज्ञानाचार २ वीर्याचार ३ चारित्राचार ४ और तपश्चचरणाचार ५ इन पांचों आचारों में जो आप भी तत्पर होते है और अन्य शिष्यों को भी लगाते हैं ऐसे आचार्य मुनि ध्यान करने योग्य है ॥५२॥

जो रयणत्तय जुत्तो णिच्चं धम्मो वदेसणे णिरदो ॥
सो उवज्झाओ अप्पा जदिवर वसहो णमो तस्स ॥५३॥

गाथार्थः— जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्ररूप रत्नत्रय से सहित हैं, निरन्तर धर्म का उपदेश देने में तत्पर है, वह आत्मा मुनीश्वरों में प्रधान उपाध्याय परमेष्ठी कहलाता है। इसलिये उसके अर्थ मैं नमस्कार करता हूं ॥५३॥

दंसणणाण समग्गं मग्गं मोक्खस्स जो हु चारित्तं ॥
साधयदि णिच्चसुद्धं साहू स मुणी णमो तस्स ॥५४॥

गाथार्थः— जो दर्शन और ज्ञान से पूर्ण, मोक्ष का मार्ग भूत, और सदाशुद्ध ऐसे चारित्र को प्रकट रूप से साधते है वे मुनि साधु परमेष्ठी हैं उनके अर्थ मेरा नमस्कार हो ॥५४॥

जं किंचिवि चितंतो णिरीहवित्ती हवे जदा साहू ॥
लद्धूणय एयत्तं तदाहु तं तस्स णिच्छयं झाण ॥५५॥

गाथा भावार्थः— ध्येय पदार्थ में एकाग्र चित्त होकर जिस किसी पदार्थ को ध्यावता हुआ- साधु जब निस्पृह वृत्ति (सब प्रकार की इच्छाओं से रहित) होता है उस समय वह उसका ध्यान निश्चय ध्यान है ऐसा आचार्य कहते है ॥५५॥

मा चिट्ठह मा जंपह मा चिंतह किंवि जेण होइ थिरो ॥
अप्पा अप्पम्मि रओ, इणमेव परं हवे झाणं ॥५६॥

गाथार्थः—हे ज्ञानी जनो ! तुम कुछ भी चेष्टा मत करो अर्थात् काय के व्यापार को मत करो। कुछ भी मत बोलो और कुछ भी मत विचारो। जिससे कि तुम्हारा आत्मा अपने आत्मा में तल्लीन स्थिर होवे, क्योंकि जो आत्मा में तल्लीन होना है वही परम ध्यान है ॥५६॥

तवसुदवदवं चेदा, झाणरह धुरंधरो हवे जम्हा ॥
तह्मा तत्तियणिरदा, तल्लद्धीए सदा होह ॥५७॥

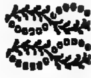
गाथार्थः—क्योंकि तप, श्रुत और व्रत का धारक जो आत्मा है वही ध्यान रूपी रथ की धुरा को धारण करने वाला होता है, इस कारण हे भव्य जनो ! तुम उस ध्यान की प्राप्ति के अर्थ निरन्तर तप, श्रुत और व्रत इन तीनों में तत्पर होवो ॥५७॥

दव्वसंगहमिणं मुणिणाहा, दोससंचयचुदा सदपुण्णा ॥
सोधयंतु तणुसुत्तधरेण, णेमिचंदमुणिणा भणियं जं ॥५८॥

गाथार्थः—अल्प ज्ञान के धारक मुझ (नेमिचन्द्र मुनी) ने जो यह द्रव्य संग्रह कहा है इसको दोषों रहित और ज्ञान से परिपूर्ण ऐसे आचार्य शुद्ध करैं ॥५८॥

इति श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्ति देव विनिर्मितो बृहद् द्रव्य संग्रहः समाप्तः



 # अथ लघु तत्वार्थ सूत्र 

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

त्रैकाल्यं द्रव्यषट्कं नव पदसहितं जीवषट्काय लेश्याः।
पंचान्ये चास्ति काया व्रतसमितिगति ज्ञान चारित्रभेदाः॥
इत्येतन्मोक्षभूतं त्रिभुवन महितैः प्रोक्त मर्हद्भिराप्तैः।
प्रत्येति श्रद्दधाति स्पृशति च मतिमान्यः सवैशुद्ध दृष्टिः॥१॥

सिद्धे जयप्पसिद्धे चउव्विहाराहणाफलं पत्ते॥
वंदिता अरहंते वोच्छं आराहणं कमसो॥२॥
उज्जोवण मुज्जोवण णिव्वहणं साहणं च णिच्छरणं॥
दंसण णाण चरित्तं तवाण माराहणाभणिदा॥३॥

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

दृष्टा चराचरं येन केवलज्ञान चक्षुषा॥
प्रणमामि महावीरं वेदिकांते प्रवक्ष्यते॥४॥

—अथातोऽर्हत्प्रवचने तत्वार्थ सूत्रे व्याख्यास्यामः—

तत्रे मे षट् जीवनिकायाः॥ पंचमहा व्रतानि॥ पंचाणु व्रतानि॥ त्रीणि गुणव्रतानि॥ चत्वारिशिक्षा व्रतानि॥ तिस्त्रो गुप्तयः॥ पंच समितयः॥ दशविधो धर्मः॥ षोडश भावनाः॥ द्वादशानुप्रेक्षाः॥ द्वाविंशति परिषहाः॥

इति तत्वार्थ सूत्रे अर्हत्प्रवचने प्रथमोऽध्यायः॥१॥

सप्ततत्वानि॥ नव पदार्थाः॥ चतुर्विधोन्यासः॥ द्विविधाः सप्तनयाः॥ चत्वारिप्रमाणानि॥ पंचास्तिकायाः॥ षट्द्रवाणि॥ द्विविधोगुणाः॥ पंच ज्ञानानि॥ त्रीणिऽज्ञानाणि॥ चत्वारि दर्शनानि द्वादशाङ्गानि॥ चतुर्दशपूर्वाणि॥ द्विविधतपः॥ द्वादश प्रायश्चित्तानि॥ चतुर्विधौ विनयः॥ दश वैयावृत्यानि॥ पंचविधः स्वाध्यायः॥ चत्वारि ध्यानानि॥ द्विविधोव्युत्सर्गः॥

॥इति तत्वार्थसूत्रे अर्हत्प्रवचने द्वितीयोऽध्याय.॥२॥

त्रिविधःकालः॥ षट्विधःकाल समयः॥ त्रिविधो लोकः॥ अर्ध तृतीया द्वीपसमुद्रामनुष्यक्षेत्राः॥ पंचदश क्षेत्राणि॥ चतुस्त्रिंश दूर्षधर पर्वताः॥ पंचदश

कर्मभूमयः ।। त्रिंशद्भोग भूमयः।। सप्ताधोभूमयः ।। सप्तै व महानरकाः ।। चतुर्दश कुलकराः ।। चतुर्विंशति तीर्थकराः ।। नव वासु देवाः ।। नवबलदेवाः ।। नव प्रतिवासु देवाः ।। द्वादश चक्रवर्तिनः ।। एकादश रुद्राः ।। नव निधयः ।। चतुर्दश रत्नानि ।। द्विविधिः पुद्गलः ।।

।। इति तत्वार्थ सूत्रे अर्हं त्प्रवचने तृतीयोऽध्यायः ।।३।।

देवाश्चतुर्णिकायाः ।। भुवन वासिनो दशविधाः।। व्यंतराअष्टविधाः ।। जोतिष्काः पंचविधाः।। द्विविधा वैमानिका कल्पांतिका द्वादशविधाः।। अहमिंद्राश्चेति आत्मसद्भाव ।। पंचधा जीवगतिः ।। षट् पुद्गल गतयः ।। अष्टविध आत्मसद्भावः ।। पंच विधानिशरिराणि ।। पंचेन्द्रियाणि अष्टगुणाः सिद्धानाम ।। षट्लेश्याः ।। द्विविधं शीलम् ।।

।। इति तत्वार्थ सूत्रे अर्हंत्प्रवचने चतुर्थोऽध्यायः ।।४।।

त्रिविधोयोगः ।। चत्वारः कषायाः ।। त्रयोदोषाः, पंचऽस्रवाः ।। द्विविधः संवरः ।। द्विविधा निर्जरा ।ः पंच लब्धयः ।। चतुर्विधो बंधः ।। पंच बंध हेतवः ।। अष्टौ कर्माणि ।। द्विविधो मोक्षः ।। चत्वारोमोक्षहेतवः ।। त्रिविधो मोक्ष मार्गः ।। पंचविधा निर्ग्रंथाः ।। द्वादशसिद्धस्यानुयोगद्वाराणि ।। द्विविधाः सिद्धाः ।। वैराग्यंचेति—

।। इति तत्वार्थ सूत्रे अर्हंत्प्रवचने पचमोऽध्यायः ।।५।।

मोक्षमार्गस्यनेतारं भेत्तारं कर्म भूभृतां ।।
ज्ञातारं विश्व तत्वानां वंदे तद्गुणलब्धये ।।१।।

।। अथो नमोस्तु ।।

श्री आचार्य वंदना पूर्वाचार्यानुक्रमेण ।। सकल कर्मक्षयार्थं ।। भावपूजा वन्दना स्तव समेतं ।। श्री श्रुतज्ञानभक्ती ।। कायोत्सर्गं करोम्यहम् ।। ॐ नमो अरहंताण इत्यादि ।।

कोटिशतं द्वादश चैव कोटयो, लक्षाण्यशिति स्त्र्यधिकानि चैव ।
पंचाशदष्टौ च सहस्र संख्या मेतच्छ्रुतं पंच पदं नमामि ।। १ ।।
अरहंत भासियंपुण गणहरदेवेहिं गुंथियं सम्मं ।
पणमामि भत्तिजत्तो, सुअणाणमहोवयं सिरसा ।।२।।
अक्षरमात्रपदस्वरहीनं व्यंजन संधि विवर्जितरेफम् ।
साधुभिरत्र मम क्षमितव्यं को न विमुह्यति शास्त्रसमुद्रे ।।३।।

दशाध्याये परिच्छन्ने तत्वार्थे पठिते सति ।
फलं स्यादुपवासस्य भाषितं मुनि पुंगवैः ॥ ४ ॥

तत्वार्थ सूत्रकर्त्तारं गृद्धपिच्छो पलक्षितम् ।
वंदे गणीन्द्र संजात मुमास्वामि मुनीश्वरम् ॥ ५ ॥

जं सक्कइ तं किरई, ज्जं चण सक्केइ तंच सद्दहणं ।
सद्दहमाणो जीवो पावई, अजरामरं ठ्ठाणं ॥ ६ ॥

तव यरणं वयधरणं, संयमसरणं च जीवदयाकरणं ।
अंते सभाहिमरणं, चउगई दुक्खं णिवारेई ॥ ७ ॥

पढम चउक्के पढमं पंचमे पुद्गल ज्ञानं ।
छ्ह सप्तमे सु आश्रवः अठ्ठमे तह बंधणायव्वा ॥ ८ ॥

णवमे संवर निज्जरा, दसमे मोख्कं वीहाणेइ ॥
इह सत्त तत्त्व भणियं, जिण परिणतं दह सुत्ते ॥ ९ ॥

— तत्त्वार्थ सिद्धात लघु सूत्र सम्पूर्णम् —

जिन बिम्ब निर्मापणं विधि

श्री वीरं देव देवाच्यं, स्वर्ग मोक्ष सुख प्रदं ।
प्रणम्य बिम्ब निर्माण, पद्यार्थान्सं लिखाम्यहम् ॥ १ ॥
अथ विम्बं जिनेन्द्रस्य, कर्त्तव्यं लक्षणान्वितम् ।
ऋज्वायत सुसंस्थानं, तरुणांगं दिगम्बरम् ॥ २ ॥

अर्थ— जिनेन्द्र भगवान का प्रतिबिम्ब सरल लम्बा सुन्दर समचतुरस्र संस्थान तरुण अवस्थाधारी नग्न जात लिंग धारी सर्वलक्षण संयुक्त करणां योग्य है ॥ २ ॥

श्री वत्स भूषितोर एकं, जानु प्राप्त कराग्र जं ।
निजांगुल प्रमाणेन, साष्टांगुल शतायुतम् ॥३॥

अर्थ—श्री वत्स चिन्ह करि भूषित है उर स्थल जाका और गोडा पर्यंत लम्बाय मान है भुजा जाकी ऐसा निजांगुल के प्रमाण से १०८ भाग प्रमाण जिन बिम्ब करणा चाहिये ॥३॥

मानं प्रमाण मुन्मानं चित्रलेप शिलादिषु।
प्रत्यंग परिएा होर्द्ध यथा संख्य मुदीरितम् ॥४॥

अर्थ—जिनेन्द्र की प्रतिमा चित्र की लेपकी शिला की धातु की वणावै उसके अंग अंग की गुलाई तथा ऊंचाई तथा चौड़ाई यथा क्रम कहते हैं। उनका मान प्रमाण उन्मान भी कहते हैं ॥४॥ उक्तं च ॥

न मृत्तिका काष्ठ विलेप नादि, जातं जिनेन्द्रैः प्रति पूज्य मुक्तम् ॥५॥

अर्थ—मृत्तिका, काष्ठ विलेपनादि की प्रतिमा पूज्य नहीं ॥५॥

कक्षादि रोम हीनांगं श्मश्रु रेखा विवर्जितं ॥
ऊर्द्ध प्रलंबकं दत्वा समात्पंतंच धारयेत् ॥६॥

अर्थ—कांख आदि स्थानों के रोमों करि रहित तथा मूंछ डाढी के केश रहित प्रारम्भ से अंत तक प्रलंबक अर्थात ऊंचाई को लिये हुये प्रतिबिंब वणावै ॥६॥ उक्तंच।

वृद्धत्व बाल्य रहितांग मुपेत शांति, श्री वृक्ष भूषित् हृदं नख केश हीनं ॥
सद्धातु चित्र हृषदां समसूत्र भागं, वैराग्य भूषित गुणं तपसि प्रशक्तं ॥७॥

अर्थ—वृद्ध बाल अंग करके रहित शान्त मुद्रा श्री वृक्ष करके हिरदै शोभायमान नख केश रहित धातु चित्र विचित्र पाषाण वैराग्य करके भूषित तपश्चरण में तत्पर जिन बिम्ब वणावै ॥७॥

तालं मुख वितस्तिः स्यादेकार्थं द्वादशांगुलं।
तेन मानेन तद् बिंबं नवधा प्रविकल्पयेत् ॥८॥

अर्थ—ताल मुख वितस्ति द्वादशांगुल ये शब्द एकार्थी हैं, इस मान करिये जिन बिम्ब ९ भागों में कल्पना करण ॥८॥

१०८ भाग का कथन

ताल मात्रं मुखं तत्र ग्रीवाश्चतुरंगुला।
कंठतो हृदयं यावदं तरं द्वादशां गुलम् ॥९॥

अर्थ—तहां १०८ भाग में १२ भाग मुख रखें ४ भाग ग्रीवा रखै, ग्रीवासों हृदय पर्यंत बारह भाग रखै ॥९॥

ताल मात्रं ततो नाभि र्नाभि मेंद्रांतरं मुखं।
मेद्र जान्वंतरंतज्ञैर्हस्त मात्रं प्रकीर्त्तितम् ॥१०॥

अर्थः—हृदय से १२ भाग प्रमाण नाभी रखै । नाभी से लिंग का मूल गुदा पर्यंत १२भाग पेडू रक्खैं,लिंगका मूल से गोडा तक जंघा २४भाग काअंतर रखे ॥१०॥

वेदांगुलं भवे जानु । जानु गुल्फां तरं करः ॥
वेदाँगुलं समाख्यातं । गुल्फ पाद तलां तरं ॥११॥

अर्थ.—४ भाग प्रमाण गोडा रखै, गोडा से टिकूण्यां तक २४ भाग का अन्तर रखै । टिकूण्यां से पाद तल पर्यंत ४ भाग का रखै । ऐसे ६ स्थान १०८ भाग प्रमाण करै ॥११॥

द्वादशांगुल विस्तीर्ण । मायतं द्वादशां गुलं ॥
मुखं कुर्यात्स्व के शांतं । त्रिधातच्च यथा क्रमम् ॥१२॥

अर्थः—डाढी से मस्तक के केश पर्यन्त १२ भाग ऊंचा १२ भाग ही चौडा मुख करै, ऊँचाई के यथा क्रम से ३ विभाग करै ॥१२॥

वेदाँगुलायतं कुर्या । ल्लालटं नासिका मुखं ।
घोणारंध्रं यवाष्टार्द्ध । घोणा पाली चतुर्यवा ॥१३॥

अर्थः—उन १२ भागों में चार भाग प्रमाण ललाट रखैं ४ भाग नासिका करै । नासिका से ठोडी तक ४ भाग करै । नासिका का रंध्र ४ यव अर्थात आधा भाग करै । इसी प्रकार नाशिका पाली अर्थात रंध्र का ऊपरला भाग भी ४ यव प्रमाण करै ॥१३॥

ललाट का कथन

किंचि लिम्नोन्नतं कुर्या । दिग्रं कोटिं च न्नाम येत् ॥
तिर्यग ष्टांगुलायामं । भाल मर्द्धेंदु सन्निभम् ॥१४।

अर्थः—ललाट ४ भाग ऊँचा ८ भाग चौड़ा अर्ध चन्द्राकार बणावै । वह ललाट किंचित निचा व ऊँचा दीखता हुवा करै और ललाट की अग्र कोटि नम्र अर्थात नैती हुई रखे ॥१४॥

केश का कथन

केश स्थानं जिनेन्द्रस्य । प्रोक्तं पंचांगुलायतं ॥
उत्मीषं च ततो ज्ञेय । मंगुल द्वय मुन्नतम् ॥१५॥

अर्थः—ललाट के ऊपर केश स्थान ५ भाग रखै उत्पीष भी ५ भाग रखै । तिस ऊपर चोटी २ भाग क्रम रूप चूडा उतार रखै । ऐसे ललाट से चोटी तक १२ भाग

रखै, पिछाडी ग्रीवा के केश से भी चोटी पर्यन्त १२ भाग रखै ॥१५॥

शंखौ वेदी गुलायामौ भ्रूलेते चतुरंगुले ॥
मध्यास्थूले कृशाग्रे च स्वारोपित धनुर्निभे ॥१६॥

अर्थ–मस्तक के दोउ पार्श्व में शंख नाम २ हाड ४ भाग चौड़ा रखै । भंवारे ४ भाग लंबे, मध्य में मोटा दोउ अग्र में कृश चढ़ाये हुये धनुष के आकार शोभनीक करै ॥१६॥

भवारा और नेत्र का कथन

पादांगुलं प्रविस्तीर्णं, स्वार्धांगुलम थोत्तरं ।
भ्रू चाप मध्य केशांत, स्यांतरं द्वचंगुलं मतं ॥१७॥

अर्थ–भवारा डेढ़ भाग चौडा आदि में पाव भाग चौड़ा अंत में रखै बाकी शोभनीक बनावै दोउ भंवारा के मध्य में केशनिका अन्तर २ भाग रखै ॥१७॥

कर वीर युतायामस्त्रयंगुलो नेत्रयो र्भवेत् ।
केवलो द्वयंगुलः कुर्यान्नेत्रे पद्मदला कृती ॥१८॥

अर्थ–नेत्रनि कीलंबाई सफेदी सहित ३ भाग करै तथा केवल सफेदी का प्रमाण द्वयंगुल अर्थात २ भाग करै दोनूं हो नेत्र कँवल पुष्प के दल समान मनोहर करै ॥१८॥

नेत्र मध्येंगुलं व्यास स्त्रिभागः कृष्न तारिका ॥
नेत्रांधः पक्ष्मणीयावद्भ्रूमध्यं द्वयंगुलं मतं ॥१६॥

अर्थ--नेत्रनि की सफेदी के मध्य में श्याम तारा १ भाग रखै इसके बीच तारिका जो छोटी कनिका गोल श्याम १ भाग का तीसरा हिस्सा चौडी रखै भ्रकुटी के मध्य से नीचली बांफणी तक ३ भाग चौड़े नेत्र रखै ॥१६॥

अन्तर नासिका मूले नेत्रयोर्द्वचंगुलं मतं ॥
उत्तरोष्ठोपिता वांस्तु तथैकांगुल मुच्छ्रितः ॥२०॥

अर्थ--नासिका के मूल में दोउ नेत्रनि के बीच २ भाग अन्तर रखै। ऊपर का होठ २ भाग लंबा १ भाग ऊंचा रखै ॥२०॥

मुखस्य विवरं तिर्यग् निर्दिष्टं चतुरंगुलं ॥
अर्धांगुलाय तागो जी त्रिभगांगुल विस्तृता ॥२१॥

अर्थः—मुह फाड तिरछी ४ भाग लम्बी रखै। उपरले होठ के नासिका के नीचली ऊपरली गोजी अर्थात् प्रणाली अर्ध भाग लम्बी और १ भाग का तीसरा हिस्सा चौडी रखै ॥२१॥

एकाॅगुल विस्तीर्णस्तथैकांगुल मुछ्रितः।
आयनो द्व्यंगुलस्तज्ञैरधरः परि कीर्तितः ॥२२॥

अर्थः—नीचे का होठ १ अंगुल मोटा १ अंगुल विस्तीर्ण अर्थात् चौडा २ अंगुल लम्बा रखै ॥२२॥

सृक्विरणी वांगुलायामा विज्ञेया र्धागुलं पृथुः ॥
चिबुकं द्व्यंगुलं ज्ञेय विस्ताराया मतस्तधा ॥२३॥

अर्थः—सृविवरणी अर्थात ओष्ट की वाम दक्षिण बगल १ भाग लम्वी अर्ध भाग मोटी रखै चिबुक अर्थात अधरोष्ट के नीचला भाग २ भाग चौडा २ भाग लम्बा रखै ॥२३॥

अन्तर हनुमूला त्स्याच्चिवुक स्यांगुलाष्टकं।
हनुद् वयस्य विस्तारो द्वयंगुलस्यात्पृथक् पृथक् ॥२४॥

अर्थः—हनूकामूल से चिवुकके ८ भाग अन्तर रखै हनूगाल के नीचे कानों के नजीक के हाड का नाम है वो हाड दो दो भाग मोटा रखै ॥२४॥

द्व्यंगुलं च पृथुत्वे न दीर्घत्वं चतुरंगुलं ॥
कर्णयोः लंवितौ पाशावंगु लानां चतुष्टयम् ॥२५॥

अर्थः—कान २ भाग चौडा ४ भाग लम्बा कान की विचली करडी नस नेत्र के अन्त की सीध में पर नाली रूप खाल का नाम पाश है वो ४ भाग लम्बी रखै ॥२५॥

अर्धागुल प्रविस्तीर्णौ कुर्याच्छोभान्वितौ श्रुभ्मै ॥
कर्णपूरोंगुलार्द्धस्यात्पादं करणोर्द्धं वर्त्तिका ॥२६॥

अर्थः—दोनों पाश अर्धागुल चौडी शोभनीक करै। कर्णपूर अर्धागुल प्रमाण करै परनाली रूप पाश की ऊपर की वर्त्तिका कहिए गोट सो. १ भाग का चतुर्थांश चौडी रखै ॥२६॥

कर्णशष्कुलिकारंध्र मर्धागुल मुदीरितं ॥
कर्ण नेत्रांतर सार्धमंगु लानां चतुष्टयम् ॥२७॥

अर्थः—कर्ण के मध्य छिद्र जवकी नाली समान अर्ध भाग रखै कर्ण के और नेत्र के साढ़े ४ भाग का अन्तर रखै ।।२७।। उक्तं च

कर्णौचषड् भागयुतौ प्रलंबौ । वेदांगुल व्यासयुतौ तदंतः ।।
छिद्रे तु नाली यवनालिकाभा । त्वर्धागुलं चांतर मुच्यतेथ ।।२८।।

अर्थः—कर्ण छै भाग लंबे ४ भाग चौडे करै बीच में छिद्र की नाली यव की नाली समान करै । इसका अन्तर अर्धागुल प्रमाण करै ।।२८।।

उछ्र् यस्य समत्वेन, कर्णवर्त्तिनियो जयेत् ।।
तथा नेत्रांत तुल्येन, कर्णपूरौ सरंध्रकौ ।।२९।।

अर्थः—नेत्रों को ऊँचाई अर्थात् भंवारे की ऊँचाई के सीध में कर्ण वर्त्तिका बणावै वैसे ही नेत्रों के अंत्य भाग की सीध में छिद्र रहित कर्ण पूर बनावै ।।२९।।

।। नासिका कथन ।।

करवीर समं कुर्यान्नासापुट निबंधनं ।।
तस्य पर्यंत तुल्येन तारिके विनयो जयेत् ।।३०।।

अर्थः—कर बीर अर्थात नेत्र की सफेदी के समान नासा पुटको रचना करै । नासिका के पर्यन्त भाग के तुल्य तारिका बनावै ।।३०।।

अष्टा दशांगुलं ज्ञेयं, कर्णयोः पूर्व मंतरं ।।
चतुर्दशा परे भागे, द्वात्रिंशन्मिलितं भवेत् ।।३१।।

अर्थः—दोड कर्णनि के अंतर १८ भाग अगाडी सें रखै । १४ भाग पिछाडी से रखै । ऐसें दोनू मिलें ३२ भाग होते हैं ।।३१।।

शिरसः परिणा होयं ग्रीवा या द्वादशांगुलः ।।
विस्तारः कर्प्पू र स्योक्तः सत्यंशांगुल पंचकं ।।३२।।

अर्थः—कोहनी की परिधि १६ भाग की रखै । कोहनी से पौंछा तक क्रम से हानि रूप चूडा उतार रखै ।।३२।।

भुजा कथन

परिणाहः पुनस्तस्य विज्ञेयः षोडशांगुलः ।।
कुर्या त्कूर्प्पर तो हानि मणि बंधा वधिक्रमात् ।।३३।।

अर्थः—कोहनी की परिधि १६ भाग की रखै । कोहनी से पौछा तक क्रम से हानि रूप चूडा उतार रखै ।।३३।।

पंचागुलं त्रिभागोनं प्रवाहो मध्य विस्तरः।
परिणाहो भवेत्तस्य त्वंगुलानि चतुर्दश ॥३४॥

अर्थः—कोहनी के नीचे भुजा का मध्य १ भाग का त्रिभाग घाटि ५ भाग रखै। परिधि १४ भाग रखै ॥३४॥

मणि बंधस्य विस्तारो विज्ञेयश्चतुरंगुलः।
परिणाहः पुनस्तस्य कीर्त्तितो द्वादशांगुलः ॥३५॥

अर्थ—पौंछा का विस्तार ४ भाग रखै। परिधि १२ भाग रखै ॥३५॥

अगुली कथन

तस्य मध्यांगुला ग्रस्य चॉतरं द्वादशांगुलं।
अंगुली मध्य माहस्ते ज्ञेया पंचांगुलायता ॥३६॥

अर्थ—पौछा से मध्य अंगुली का अग्र भाग तक १२ भाग रखै। हाथ के मध्य को अंगुली ५ भाग रखै ॥३६॥

अनामिकापि तत्रैव हीना मध्यार्ध पर्वणा।
अनामिका समाकार्या स्वाया मेन प्रदेशिनी ॥३७॥

अर्थ—अनामिका अर तर्जुनी बोऊ अंगुली मध्यमा से अर्ध पर्व घाटि रखै ॥३७॥

कनीयस्यापि विज्ञेया पर्व्व हीनात्व नामिका।
मणि बंधात्कनिष्टाया मूलं पंचागुलं भवेत ॥३८॥

अर्थ—कनिष्टिका अनामिका से १ पोरवा घाटि रखै। पौछा से कनिष्टिका के मूल के पांच भाग अन्तर रखे ॥३८॥

तर्जुनी मध्यमा नाम मानतोऽर्धागुलामता।
कनिष्ठिका विशेषोन त्रिगुणा परिणाहतः ॥३९॥

अर्थ—तर्जनी तथा मध्यमा का प्रमाण से कनिष्टा मुटाई में अर्ध भाग घाटि रखै। चौड़ाई में त्रिगुणी करै ॥३९॥

आयामतो विनिर्दिष्टा वंगुष्टौ चतुरंगुलौ।
विस्तारेण समाख्यातौ सधिकं चैक मंगुलं ॥४०॥

अर्थ—अंगुष्ट ४ भाग लम्बा रखै विस्तार १ भाग से कुछ अधिक रखै ॥४०॥

अंगुष्ट को द्वि पर्व्वः स्याद्दृष्ट तं चतुरंगुलं।
समांसलाः प्रकर्त्तव्या शेषां गुल्य स्त्रिपर्विकाः ॥४१॥

लिंग का कथन दूसरा

द्वयंगुलो मेढ्रविस्तारो मूलेमध्येंगुलं भवेत् ॥
अग्रेऽगुंल चतुर्भागो व्यासान्नाहस्त्रिसंगुलः ॥५४॥

अर्थ–लिंग का विस्तार मूल में २ भाग मध्य में १ भाग अग्र भाग में चतुर्थ भाग रखै तिसकी गुलाई त्रिगुणी करै ॥५४॥

उक्तंच

लिंग पंचागुलायामं द्वयंगुलातत्ततिर्भवेत् ॥५५॥

अर्थ–लिंग ५ भाग लंबा २ भाग चौडा बणावै ॥५५॥

समांसलौ समौकार्यो, पोत्रौ पंचागुलायतौ ॥
आम्रास्थि सन्निभौयुक्तौ, विस्तृतौ चतुरंगुलौ ॥५६॥

अर्थ–दोउ पोता पुष्ट व समान ५ भाग लंबा ४ भाग चौडा आम की गुठली समान करै ॥५६॥

जंघा कथन चरण तक

वितस्ति द्वितयायास्त मुरु युग्मं समांसलं ॥
एकादश प्रविस्तीर्णं मूलेमध्ये नवांगुलं ॥५७॥

अर्थ—२४ भाग लंबा दोउ जंघा पुष्ट करै ११ भाग तो मूल में ९ भाग मध्य में विस्तार रूप करै ॥५७॥

सप्तजानुद्वये नाहः स्वक व्यासस्त्रिसंगुणः ॥
गूढे वृत्तेसुसंश्लिष्टेमांसले जानुनीसमे ॥५८॥

अर्थ—७ भाग गोडा के पास चौडा करै इनकी परिधि त्रिगुणी करै गोडा दोउ समान गोल जंघा से मिले हुए पुष्ट बणावै ॥५८॥

ततो जंघा द्वये वृत्तं वितस्ति द्वितयायतं ॥
जंघायाः पिंडिका मध्ये बिस्तारः स्यात्षडंगुलः ॥५९।

अर्थ—गोडा से नीचे जंघा अर्थात् पीडीगोल २४ भाग लंबी करै जंघा के मध्य पीडी का विस्तार छै भाग प्रमाण करै ॥५९॥

पंचांगुलस्त्रिभागोनो गुल्फदेशे च विस्तरः ॥
उभयोः परिधी ज्ञेयोस्वविस्तारास्त्रि संगुणौ ॥६०॥

अर्थः—और टिकूण्यां के पास ५ भाग १ भाग का त्रिभाग घाटि ५ भाग रखे इनकी गुलाई विस्तार से त्रिगुणी करै ।।६०।।

अंगुलं गुल्फविस्तारः स्त्र्यंगुलः परिधिर्भवेत् ।।
पादौ चतुर्दशायामौ गूढ़गुल्फौ सुलक्षणौ ।।६१।।

अर्थ–दोउ टिकूण्यां एक भाग रखै इनकी गुलाई विस्तार में त्रिगुणी करै चरणपग थली ऐडी से गूंठा तक १४ भाग लंबी शुभ लक्षण सहित करै ।।६१।।

गुल्फादंगुष्टकाग्रं च विज्ञेयं द्वादशांगुलं ।।
गुल्फयो पश्चिमे भागे द्व्यंगुला पाष्णिका भवेत् ।।६२।।

अर्थ–टिकूण्यां से अंगुष्ठका अग्रपर्यन्त १२ भाग रखै टिकूण्यां के पीछै एडी २ भाग रखै इनकी गुलाई विस्तार से त्रिगुणी करै ।।६२।।

तलं निम्नोन्नतं तस्या द्व्यंगुलं विस्तृतंमतं ।।
कार्यं समांसलं तस्य परिणाहः षडंगुलः ।।६३।।

अर्थ—एडी नीचे से २ भाग बल में किंचित न्यून मध्य में ऊंचो गोल रखै तिसकी गुलाई छै भाग रखै ।।६३।।

अंगुष्टस्त्र्यं गुलायामस्तावतीच प्रदेशिनी ।।
षोडशाष्टाष्ट भागेनशेषा हीनास्त्वनुक्रमात् ।।६४।।

अर्थ—अंगुष्ट और प्रदेशिनी ३ भाग लंबो करै प्रदेशिनी से मध्यमा १ भाग का सौ भाग लंबा छोटो करै मध्यमा से अनामिका १ भाग का आठवां भाग छोटी रखै अनामिका से कनिष्टका भी १ भाग का आठवां भाग छोटो रखै ।।६४।।

अंगुल द्वितयं मध्ये विस्तारोंगुष्ठकस्य च ।।
मूलेग्रे न्यूनकः किंचिच्छेषांगुल्योंगुलः प्रभाः ।।६५।।

अर्थ–अंगुष्ट मध्य में २ भाग चौडा रखै मूल में तथा मध्य में किंचित् न्यून करै बाकी च्यारूं ही अंगुली १ भाग चौडी रखै ।।६५।।

सर्वासांत्रिगुणो नाहो यथाशोभं निरूपयेत् ।।
पर्वद्वितयमंगुष्टे शेषांगुल्यस्त्रि पर्विका ।।६६।।

अंगुलं नखमंगुष्टे शेषाणां तद्दल प्रभं ।।
किंचित्न्यूनं कनिष्टां तमुत्तरोत्तरमीरितं ।।६७।।

अर्थ—अंगुष्ट का नख १ भाग रखै प्रदेशिनी का नख १ भाग का आधा भाग रखै बाकी तीन अंगुलियों का नख अनुक्रम से किंचित् किंचित्न्यून करै ।।६७।।

तलेपादस्य विस्तारः पार्ष्ण्याः स्याच्चतुरंगुलः ।।
मध्ये पंचांगुलस्तस्य पादस्यांते षडंगुल ।।६८।।

अर्थ—पादतल एडी के पास ४ भाग मध्य में ५ भाग अन्त में ६ भाग चौडा रखै ।।६८।।

पादयुग्मं सुसंश्लिष्टं कार्यंनिच्छिद्र सुस्थितं ।।
शंख चक्रांकुशांभोजय व छत्राद्यलंकृतं ।।६६।।

अर्थ—चरण युगल पुष्ट इकसार छिद्र रहित सुंदर शंख चक्र अंकुश कमलयवछत्र आदि शुभ चिन्ह युक्त करै ।।६६।।

पद्मासन प्रतिमा कथन

ऋज्वाय तस्य रूपस्यत्वेषमार्गो निरूपितः ।।
शेष स्थान विकल्पेषु यथाशोभं विकल्पयेत् ।।७०।।

अर्थ—इस प्रकार कायोत्सर्ग प्रतिमा बनावे बाकी के उपांग शोभनीक पुष्ट करै ।।७०।।

कायोत्सर्गा स्थितस्यैव लक्षणं भाषितंबुधैः ।।
पर्यंकस्थस्य चाप्येवंकितु किंचिद्विशिष्यते ।।७१।।

अर्थ—इस प्रकार कायोत्सर्ग प्रतिमा के लक्षण है पद्मासन के भी कितने क भाग ये ही है किंतु जहाँ भेद है सो विशेषकरि कहिए हैं ।।७१।।

ऊर्धनस्तस्यमानार्धमुत्सेधं परि कल्पयेत् ।।
पर्यंकमपिता वत्कं तिर्यगायामसंस्थितं ।।७२।।

अर्थ—कायोत्सर्ग के १०८ भाग कीण्ये तिनके अर्ध ५४ भाग पद्मासन प्रतिमा के करै पलोठी दोनों गोडा पर्यन्त चौडाई रखै आयाम अर्थात् चौडाई तिरछी गोडे के बीच से खवे के बीच तक नापै पलोठी के उपर से शिर के केश तक ५४ भाग नापै। भावार्थ चारू भाग ५४ नापै शोभनीक बनावै प्रक्षालका जल निकलने का स्थान चरण चोकी के ऊपर रखै लिंग ८ भाग नाभी से नीचा बणावैगा जब पाणीका निकास चरण चौकी के नीचै आवेगा। लिंग के मुख के नीचै कर पाणी का निकास करना। तब प्रतिमा शुद्ध बणैगी ।।७२।।

बाहुयुग्मांतरुद्द शे भासयेच्चतुरंगुलं ।।
प्रकोष्टात् कूर्प्परंयावद्वच ंगुलं वर्द्धयेत्सदा ।।७३।।

अर्थ--दोनों हाथों की अंजुली के ओर पेडू के अन्तर ४ भाग का रखै पौंछा से कोहनी पर्यन्त यथा शोभित हानि रूपी अन्तर रखै कोहनी के पास २ भाग का उदर से अन्तर रखै ।।७३।।

प्रातिहार्याष्टकोपेतं संपूर्णावयवशुभं ।।
भावरूपानुविद्धांगंकारयेद् बिंबमर्हतः ।।७४।।

अर्थ--ऐसे कायोत्सर्ग तथा पद्मासन रूप प्रतिमा अरहंत की अष्ट प्रातिहार्ययुक्त संपूर्ण अवयवनि करिपूर्ण शुभभावनि करियुक्त करै ।।७४।।

प्रातिहार्यैविना शुद्ध ंसिद्ध बिंबमपीदृशं ।।
सूरीणां पाठकानां च साधूनां च यथागमं ।।७५।।

अर्थ--पूर्वोक्त लक्षण संयुक्त प्रातिहार्य रहित होय सो सिद्ध प्रतिमा है आचार्य उपाध्याय साधू की भी प्रतिमा आगम प्रमाण सुन्दर करै ।।७५।।

यक्ष की प्रतिमा कथन

यक्षाणां देवतानांच सर्वालंकार भूषितं ।।
सुवाहनायुधोपेतं कुर्यात्सर्वांग सुन्दर ।।७६।।

अर्थ--ऐसें हीं यक्ष देवता आदि की भी संपूर्ण अलंकार करिभूषितसवारी शस्त्रायुधादिकरि संयुक्त सर्वांग सुन्दर प्रतिमा बनावै ।।७६।।

प्रतिमा जी के शुभाशुभ कथन

लक्षणीरपि संयुक्त ं बिंबंदृष्टिविवर्जितं ।।
नशोभते यतस्तस्मा त्कुर्यादृष्टि प्रकाशनं ।।७७।।

अर्थ--संपूर्ण लक्षणों करि संयुक्त जिन बिंबदृष्टि करके रहित नहीं शोभा पावै तातै दृष्टि को प्रकाशन करै ।।७७।।

नात्यंतोन्मीलितास्तब्धा न विस्फारितमीलिता ।।
तिर्यगूर्धमधो दृष्टि वर्जयित्वा प्रयत्नतः ।।७८।।

अर्थ--न तो अत्यन्त उघडी करै न मींची करै अर्धोन्मीलित शान्ति रूप दृष्टि करै तिरछी ऊंची नीची न करै ।।७८।।

नाशाग्रनिहिताशाँता प्रसन्ना निर्विकारिका ॥
वीतरागस्य मध्यस्था कर्त्तव्या चोत्तमातथा ॥७६॥

अर्थ—नासिका की अणीपर दृष्टि पड़ती शांत प्रसन्न निर्विकार मध्यस्थ ऐसी उत्तम प्रतिमा बनावै ॥७६॥

अर्थं नाशं विरोधं चतिर्यग्दृष्टिर्भयं तथा ॥
अधस्तात्पुत्र नाशं च भार्यामरण मूर्द्धगा ॥८०॥

अर्थ—जोतिरछो दृष्टि होय तो अर्थ का नाश विरोध करै नीचि दृष्टि रहै तो पुत्र का नाश होय ऊंची दृष्टि रहै तो भार्या का नाश होय ॥८०॥

शोक मुद्वेग संतापंस्तब्धा कुर्याद्धनं क्षयं ॥
शाँता सौभाग्य पुत्रार्था शाँतिवृद्धि प्रदाभवेत् ॥८१॥

अर्थ—स्तब्ध कहिए गुम्म दृष्टि होय तो शोक उद्वेग संताप धन का क्षय करै शांत दृष्टि होय तो सौभाग्य पुत्र धन आदि शांति की वृद्धि कर्ता होय ॥८१॥

सदोषा चन कर्त्तव्यायतः स्यात शुभावहा ॥
कुर्या द्रौद्राप्रभो नाशं कृशाँगी द्रव्य संक्षयं ॥८२॥

अर्थ—सदोष प्रतिमा नहीं करणा कि जो अशुभ की देने वाली है जो रौद्र रूप प्रतिमा होय तो राजा जा नाश करै दुर्बल अंगयुक्त होय तो द्रव्य का नाश करै ॥८२॥

संक्षिप्ताँगीक्षयं कुर्याच्चिपिटा दुःख दायिनी ॥
विनेत्रा नेत्र विध्वंसं हीन वक्रात्व शोभिनी ॥८३॥

अर्थ—सूक्ष्म अंग की धारक होय तो क्षय करै चिपटा मुख को होय तो दुःख को दाता होय नेत्र रहित होय तो नेत्र विध्वंस करै छोटा मुख को होय तो अशोभित होय ॥८३॥

व्याधिं महोदरी कुर्यात हृद्रोगं हृदये कृशा ॥
अंश हीनातु जंहन्यात् शुष्कं जंघा नरेंद्रहा ॥८४॥

अर्थ—बड़ा उदर होय तो उदर रोग करै। कृश उदर की होय तो हृदय रोग करै कांधा हीन होय तो पुत्र को नाश करै शुष्क जंघा होय तो नरेंद्र का नाश करै ॥८४॥

पादहिना जनहन्यात्कटिहिनाँ च वाहन ॥
ज्ञात्वै वकारये ज्जैनी प्रतिमा दोप वर्जिताँ ॥८५॥

अर्थ—पादहीन होय तौ प्रजा को हनैं कटिहीन होय तो वाहन को हनैं इस प्रकार दोष जानि अर्हंत की प्रतिमा दोष वर्जित करें ॥८५॥

सामान्येनेदमा ख्यात प्रतिमा लक्षणा मया ॥
विशेषत. पुनर्ज्ञेयं श्रावकाध्ययने स्फुट ॥८६॥

अर्थ—सामान्यतया ये प्रतिमा का लक्षण मंने कहा है। विशेषतया श्रावकाचारादि ग्रन्थों में स्फुटतया वर्णित है वहां से देख लेणां ॥८६॥

चिन्ह कथन

ऋषहादीनं चिन्हं, गोपति गज तुरंग वानरा ॥
कोक पद्मं नंद्यावद्यं, अर्धशशीमगर श्रीवृक्षम् ॥८७॥
गंडा महिषवराहं, सेईवज्रं हिरणा छगरायं ॥
मीनचिन्हयुगकलशं,कच्छ कमलशंखअहिसिंह ॥८८॥

प्रतिमा के वर्ण कथन

द्वौ कुंदेंदु तुषाहार धवलौ द्वाविन्द्र नील प्रभौ
द्वौबंधूक सम प्रभौ जिन वृषौ द्वौच प्रियंगु प्रभौ ॥
शेषाः षोडश जन्ममृत्यु रहिताः संतप्त हेमप्रभा ॥
स्ते संज्ञान दिवाकराः सुरनुताः सिद्धि प्रयछंतुनः ॥८९॥

उक्त च

तत्तद्वर्णा विधेयास्युस्तीर्थं कृत्प्रतिमा. समाः ॥
पार्ष्णी पादतले धर्म चक्र रेखा प्रकल्पयेत् ॥९०॥

अर्थ—प्रतिमा जिस वर्ण की तीर्थंकर की होवे,उसी रंग की प्रतिमा बनावना चाहिए। पाद् तल में धर्म चक्र रेखाकी कल्पना करना ॥ पैर के दाहेंऽगूंठे पर भी चिन्ह बणावैं और नीचे की चौकी पर चिन्ह बनवावै ॥९०॥

वर्तमान काल के तीर्थंकरों के नाम, वंश, चिन्ह तथा वर्ण का कथन

अनु० नाम	वंश	चिन्ह	वर्ण	अनु० नाम	वंश	चिन्ह	वर्ण
१. आदिनाथ	इक्ष्वा	बैल	सुवर्ण	१३. विमलनाथ	इक्षु	वराह	सुवर्ण
२. अजितनाथ	इक्ष्वा	हाथी	सुवर्ण	१४. अनंतनाथ	इक्षु	सेहरां	सुवर्ण
३. शंभवनाथ	इक्षु	घोड़ा	सुवर्ण	१५. धर्मनाथ	इक्षु	वज्र	सुवर्ण
४. अभिनंदन	इक्षु	वानर	सुवर्ण	१६. शाँतिनाथ	कौरव्य	हिरण	सुवर्ण
५. सुमितिनाथ	इक्षु	चकवा	सुवर्ण	१७. कुंथुनाथ	कौरव्य	बकरा	सुवर्ण
६. पद्मप्रभ	इक्षु	अष्टपांखुडी	लाल	१८. अरनाथ	कौरव्य	मांछला	सुवर्ण
७. सुपार्श्वनाथ	इक्षु	साँथिया	हरित	१९. मल्लिनाथ	इक्षु	कलश	सुवर्ण
८. चंद्रप्रभ	इक्षु	चंद्रमा	सफेद	२०. मुनिसुब्रतनाथ	यादव	कछवा	श्याम
९. पुष्पदंत	इक्षु	मगर	सफेद	२१. नमिनाथ	इक्षु	शतपत्र	सुवर्ण
१०. शीतलनाथ	इक्षु	श्रीवृक्ष	सुवर्ण	२२. नेमिनाथ	यादव	शंख	श्याम
११. श्रेयांशनाथ	इक्षु	गेंडा	सुवर्ण	२३. पार्श्वनाथ	उर्ग	सर्प	हरित
१२. बासपुज्य	इक्षु	भैंसा	लाल	२४. महावीरस्वामी	नाथ	सिंह	सुवर्ण

एकादशांगुलं बिंबं सर्वकामार्थसाधकं ॥
एतत् प्रमाणमाख्यातं यत ऊर्द्ध न कारयेत् ॥ ११ ॥

अर्थ—गृहस्थी अपने गृह चैत्यालय में ११ अंगुल से अधिक जिन बिंब न करावै उणें नाप से बणावै ॥ ११ ॥ उक्तंच।

भालनाशाहनुग्रोवाहृन्नाभीगुह्यमूरुके ॥
जानुजंघांघ्रिचैत्येकाद शांक स्थानकानितु ॥ १२ ॥

अर्थ—भाल १ नाशा २ हनु ३ ग्रीवा ४ हृत् ५ नाभि ६ नयन ७ गुह्यांग ८ ऊरु ९ जानु १० जंघा ११ चरण १२ कर्ण १३ हस्त १४ ॥ १२ ॥

उद्र्ध्वा घोर युतं सबिंदु सपरं ब्रह्मा स्वरावेष्टितं।
वर्गापूरित दिग्ग ताम्बुज दलं तत्संधि तत्त्वान्वितम् ॥
अन्तः पत्र तटेष्व नाहत युतं ह्रींकार संवेष्टितं।
देवं ध्यायति यत्समुक्ति सवगौ वैरींभ कंण्ठीरव ॥



अनाहत स्वरूप

श्री प्रतिमा जी खड़गासन वा पद्मासन की नाप की सूचनिका

शरीर के भाग	लम्वाई	चौडाई	गोलाई	विशेष खुलासा
१	२	३	४	५
मुख	१२ केश स्थान से ठोडी तक	१२ दोनो नेत्रों के अन्त तक	०	ललाट के ऊपर १२ भाग में केश स्थान व चोटी रखै अर्थात १० भाग परै २ भाग प्रमाण चोटी का स्थान बणे ललाट से चोटी का स्थान तक क्रम से २ भाग ऊंचाई । दिखावै और चोटी के स्थान से पिछाड़ी १० भाग में केश स्थान बणावै १८ भाग तौ कानो के आगै १४ भाग कानों के पीछै रखै ।
ललाट	४	८	०	अर्ध चंद्राकार ।
नाक	४	३	३	ऊंची शोभनीक ढलाऊ ।
ठोडी	२	२	०	मुह फाड ४ लम्बी होठ २ भाग
कर्ण	६	४	०	कानों के ऊपर वर्त्तिका भंवारे की ऊंचाई के सीध में बीच में करडी नस नेत्र के अन्त की सीध में कर्ण का अन्त भाग मुख की फाड की सीध में बणावै ।
नेत्र	३ भंवारे से वाफणी	३	०	नेत्रों में सफेदी २ भाग श्याम तारा १ भाग रखै विचतारोका गोल ०।० भाग नेत्र १ भाग मिचै १ भाग खुला रखै भवारे दोनों ४ भाग लम्बे मध्य मोटा मूल में १।। भाग वीच में १भाग अन्तमें १भाग

१	२	३	४	५
ग्रीवा	४	१२	०	—
ग्रीवा से वक्ष स्थल के नीचे हृदय तक	१२	२४	५६	वक्ष स्थल के बीच श्रीवत्स का चिन्ह करै वक्ष स्थल २४ भाग चौड़ा बणावै जिसमें दोनों चूंची के बीच १२ भाग दोनों चूंची से बगल छै-छै भाग चौड़ाई रखै दोनों भुजा छै-छै भाग चौड़ी करै इस भुजा से उस भुजा तक ३६ भाग चौड़ाई नापै।
हृदय से नाभि तक	१२	०	०	कमर १८ भाग चौड़ी ४८ भाग गोल बास का हाड स्कन्ध से गुदा तक ३६ भाग लंबा करै।
नाभि से लिंग तक	८	०	०	नाभी का मुख एक भाग चौड़ा गोल शंख का मध्य भाग समान उंडा दक्षिण वर्त मनोहर करै नीचै ८ भाग में ८ रेखा बणावै।
लिंग से गुदा तक	८	०	०	—
भुजा	६० कंधे से बीच की अंगुली तक	६ ४	०	कोहनी ५।।। भाग चौडी गुलाई खड़गासन प्रतिमा में १६ भाग पद्मासन में १८ भाग करै पोछा ४ भाग चौडा १२ भाग गोल पंजा ७ भाग लंबा व ५ भाग चौड़ा बीच की अंगुली ५ भाग दोनों बगल की ४।। भाग कनिष्ठा ३।। भाग ३ पेरू रखै नख ०।।० पेरू प्रमाण करै।
लिंग	५	२	०	लिंग की चौड़ाई मूल से २ भाग मध्य में १ भाग अग्र में चतुर्थ

१	२	३	४	५
				भाग रखै तिसकी गुलाई त्रिगुणी करै ।
पोता	५	४	०	दोउ पोता पुष्ट आम की गुठली समान करै ।
कूला	०	०	६	बैठक का हाड त्रिकोण ८ भाग लंबा करै ।
जंघा गोडे से ऊपर	२४	६ ७	०	चौडाई मूलमें ११ भाग मध्यम ६ भाग गोडा के पास ७ भाग करै ।
गोडा	४	४	०	दोउ गोडा समान गोल जंघा से मिले हुये पुष्ट बणावै ।
गोडा से टिकूण्या	२४	७ ६ ५	०	मूल में गोडा के पास ७ भाग मध्य में ६ भाग टिकूण्यां के पास ५ भाग चौडा करै ।
टिकूण्यां से ऐड़ी तक	४	०	०	टिकूण्यां १ भाग रखै चौड़ाई त्रिगुणी करै एड़ो २ भाग प्रमाण करै पग थलो एडी से अंगुष्ठ तक १४ भाग लवी, चौड़ी एड़ो के पास ४ भाग बीच में ५ भाग पंजे पर ६ भाग बणावै ।
अंगुली	३	२	०	अंगुष्ट का नख १ भाग प्रमाण करै ।
अंगुष्ठ	३	२	०	अंगुष्ठ से अंगुलियां और नख क्रम से घाटि घाटि बणावै ।

कुल १०८ भाग खड़गासन प्रतिमा के कल्पना कर उक्त लेखानुसार हर १ अंग प्रत्यंगी नाप करै । और जहां नाप नहीं लिखी है वहां यथा संभव सुन्दर उत्तमोत्तम वणाना चाहिए । यहां १०८वां भाग का ही नाम १ अंगुल है । अंगुल और भाग १ ही

समझना चाहिए। दोनों चरणों के बीच ४ भाग अन्तर रखै। खड्गासन प्रतिमा में पद्मासन प्रतिमा की नाप ५४ भाग प्रमाण इस तरह है (चरण चौको के ऊपर से मस्तक के केश स्थान तक), बाम गोडे के बीच से दक्षिण गोडे के बीच तक)। (बाम गोडे के बीच से दक्षिण भुजा के स्कन्ध के बीच तक)। (दक्षिण गोडे के बीच से वांम भुजा के स्कंध के बीच तक)। इस प्रकार ५४ भाग प्रमाण नाप करे। दोनों हाथों की अंगुली और पेडू का अन्तर ४ भाग रखै। कोहनी पास २ भाग का उदर से अंतर रखै। पौछा से कोहनी पर्यन्त यथाशोभित हानि रूप अंतर रखै। नाभी से लिंग ८ भाग नीचा ५ भाग लंबा बणावे। लिंग के मुख के नीचे से प्रक्षाल के जल का निकास दोनों पैरों के नीचे से चरण चौको के ऊपर करै ॥श्री शुभं ॥

☼ समाप्त ☼

समय सार के अंतिम सवैया

पं० जयचन्द कृत

जीव अजीव अनादी संयोग मिलै लखिमूढ न आतम पावैं ॥
सम्यक् भेद विज्ञान भये बुध भिन्न गहै निज भाव सुदावैं ॥
श्री गुरु के उपदेश सुनैरु भलै दिन पाय अग्यान गमावै ॥
ते जगमाँहि महंत कहाय वसैं शिव जाय सुखी नित थावैं ॥१॥

जीव अनादि अज्ञान वसाय विकार उपाय वणै करता सौ।
ताकरि बंधन आन तणूं फल ले सुख दुःख भवाश्रम वासो ॥
ज्ञान भये करता न वणे तब बंध न होय खुलै परपासो।
आतममाहि सदा सुविलास करै सिव पाय रहै निति थासो ॥२॥

आश्रव कारण रूप सवादसुं भेद विचारि गिने दोऊ न्यारे।
पुण्य और पाप शुभाशुभ भावनि बंध भये सुख दुःख करा रे ॥
ज्ञान भये दोऊ एक लखै बुध आश्रय आदि समान विचारे।
बंध के कारण हैं दोऊ रूप इन्हें तजि श्री जिन मुनि मोक्ष पधारे ॥३॥

योग कषाय मिथ्यातव असंयम आस्त्रव द्रव्य तै आगम गाये।
राग विरोध विमोह विभाव अज्ञानमयी यह भावि तजाये ॥

जे मुनिराज करैं इनि पाल सुरिद्धि समाजलये सिव थाये।
काय नवाय नमूं चित लाय कहूं जय पाय लहूं मन भाये ॥४॥

भेद विज्ञान कला प्रगटै तब शुद्ध स्वभाव लहै अपनाही।
राग द्वेष विमोह सबही गलि जाय इमै झुठ कर्म रुकाही ॥
उज्वल ज्ञान प्रकाश करै बहुतोष धरै परमातममाही।
यो मुनिराज भली विधि धारत केवल पाय सुखी शिव जाही ॥५॥

सम्यकवंत महंत सदा समभाव रहै दुख संकट आये।
कर्म नवीन बंधे न तवै अर पूरव बंध झडे बिन भाये ॥
पूरण अंग सुदर्शन रूप धरै निति ज्ञान बढ़ै निज पाये।
यो शिवमारग साधि निरंतर आनन्द रूप निजातम थाये ॥६॥

जो नर कोय परै रजमाहि सचिक्कण अंग लगै वह गाढै।
त्यौं मतिहीन जुराग विरोध लिये विचरे तव बंधन वाढै ॥
पाय समै उपदेश यथारथ राग विरोध तजै निज चाटै।
नांहि बंधै तब कर्म समूह जु आप गहै परभावनि काटै ॥७॥

ज्यों नर कोय परचो दृढ़ बंधन बंधस्वरूप लखै दुखकारी।
चिंत करै निति केम कटै यह तौऊ छिदै नहि नै कटिकारि ॥
छेदनकूं गहि आयुधधाय चलाय निशंक करै दुय धारि।
यों बुध बुद्धि धसाय दुधाकरि कर्मरु आतम आप गहारी ॥८॥

सर्वविशुद्धज्ञानरूप सदा चिदानन्द करता न भोगता न परद्रव्यभाव को।
मूरत अमूरत जे आनद्रव्य लोकमांहि तेभी ज्ञानरूपनांहि न्यारेन अभावको ॥
यहै जानि ज्ञानी जीव आपकूं भजै सदीव ज्ञानरूप सुखतूप आन न लगावको।
कर्म कर्म फलरूप चेतनाकूं दूरि टारी ज्ञानचेतना अभ्यास करै शुद्धभावको ॥९॥

दोहाः—समयसार अविकारका, वर्णन कर्ण सुनन्त।
द्रव्यभाव नोकर्म तजि, आतम तत्त्व लखंत ॥१०॥

॥ समाप्त ॥

चर्चा शतक

—श्री द्यानतराय कृत—

—सवैया—

जय सर्वज्ञ, अलोक लोक एक उड्डुवत देखै।
हस्तामल ज्यों, हातलीक ज्यों सरव विशेषै॥
छहों द्रव्य गुण, परज कालत्रय, वर्तमान सम।
दर्पण जेम प्रकाश, नाशिमल कर्म महातम॥
परमेष्ठी पाँचों विघन हर मंगलकारी लोक में।
मन वचन काय, सिर लाय भुव, आनंद सों द्यो धोक मैं॥१॥

॥ स्तुति सिद्ध वर्णन ॥

लोक ईश तनु बात शीस, जगदीश विराजैं।
एक रूप, वसु रूप गूण अनंतातम छाजे॥
अस्ति वस्तु परमेय, अगुरुलघु द्रव्य प्रदेशी।
चेतन अमूर्तिक, आठ गुण अमल सुदेशी॥
उत्कृष्ट जघन्य अवगाहना, पदमासन खड्गासन लसै।
सब ज्ञायक लोक अलोक विधी, नमौ सिद्ध भवभय बसै॥२॥

आचारिज उवझाय साध, तीनों मन ध्याऊं।
गुण छत्तीस पचीस बीस अरु आठ मनाऊं॥
तीन को पद साध, मुगति को मारग साधै।
भवतन भोग विराग, राग सिव ध्यान अराधै॥
गुण सागर अविचल मेरु सम, धीरज सों परिषह सहै।
मैं नमों पाँय जुगलाय मन, मेरो जिव वांछित फल लहै॥३॥

सम्यग्दर्शन वर्णन

तिहूं काल, षट द्रव्य, पदार्थ नव, तुम भाषै।
सप्त तत्व, पंचास्ति काय षट कायक राखै॥

आठ करम, गुण आठ भेद, लेश्या षट् जाने।
पंच, पंच व्रत, समित चरितगति ज्ञान बखाने॥
सरधै प्रतीत रुचि मन धरै मुकतिमूल समकित यही।
पद नमो जोर कर सीसधर धन्य सर्वज्ञ यह विधि कही॥४॥

६ काल, ६ सहनन, १४ गुण स्थान, वर्णन

प्रथम द्वितिय अरु तृतिय काल में पहिला जानों।
चौथे षट संहनन पंच में तीन बखानों॥
करम भूमि तिय तीन, एक छट्टे के माहीं।
बिकल चतुष्कँयेक इन्द्रिके नाहीं॥
षट कहे सात गुण, स्थान लग, तीन अग्यारेलौ लहे।
इक क्षपक श्रेणी गुण ते रहै, धन जिन वाणी में कहे॥

॥ सह० गती॥

छहौ तिसरे जाई, पांच चौथे, पंचमलग।
चारि संहनन छटे इक सात नरक मग॥
छहौ आठमें स्वर्ग, पंच बारस सुर जावे।
चारि सोलमें लोक तीन नौ ग्रैवेक पावै॥
दो संहनन नउनउत्तरे, इक पंच पंचोत्तरे।
इक चरम शरीरी शिवलहै, बंदौ जैन बचन खरे॥६॥

१६९ पुण्य पुरुष

चौबीसौ जिनराय पाय वंदौ सुख दायक।
काम देव चौवीस ईश सुमरो शिव नायक॥
भरतआदि चक्रेश दुदश, दुहुसुर नरकै स्वामी।
नारद पद्म मुरारि और प्रति हरि जगनामी॥
जिनमात तात कुलकर पुरुष शंकर उत्तम जिय धरो।
कुछ तदभव कुछ भव धरत मुकति रूप वंदन करो॥७॥

॥प्रसिद्ध पुरुष॥

वंदौ पारसनाथ, नमौ वलि रामचन्द्र वर।
कामदेव हनुमंत, प्रगट रावण मानीनर॥

दानेश्वर श्रेयांस, शील में सीता नामी ।
तप बाहूबली नाम, भाव भरतेश्वर स्वामी ॥
जग महादेव है रुद्र पद कृष्ण नाम हरि जानिये ।
द्यानत कहे, कुलकर में नाभि नृप भीमबली भुज मानिये ॥८॥

॥ तीर्थंकर वर्ण ॥

पुष्पदंत प्रभुचंद, चंदसम सेत विराजे ।
पारिसनाथ सुपार्श्व, हरित पन्नामय छाजै ॥
वासुपूज्य अरुपदम, रकत माणिक द्युति सोहै ।
मुनिसुव्रत अरु नेमि, स्याम सुन्दर मन मोहे ॥
बाकी सोले कंचन वरण, यह व्यवहार शरीर युत ।
निहचै अरूप चेतन विमल, दरसन ज्ञान चरित ज्ुत ॥९॥

॥ चौ० तीर्थंकरों के अंतर ॥

पचास, तीस, दस, नौ, करोर लाख, निब्बै, नौ सहसकोर, निब्बै, नौकोर है ॥
सो सागर वर्ष लाख छ्यासठ सहस छबीस घाटि को, सागर चौवन, तीस, और है ॥
र,चारि तीनघाट पौणपल्ल, अर्द्ध पाप घाट, लाखैलाख वर्ष लाखैलाख वर्ष लाखैलाख जोर है ॥
त्रौवन, छ पांच लाख, सहस पौने चौरासो पांव अंतरा जीनेश गावै नीसिभोर है ॥१०॥

॥ ६ निगोदनाही, ४ सासादन नाही, तीर्थंकर सत्तानाही वर्णन ॥

भूमी, नीर, आगि, पौन, केवली, औ आहारक । नर्क स्वर्ग आठमें नीगोद नहीं पाईये ॥
सूक्ष्म, नरक, तेज, वाय में न सासादन, भौन त्रीक पशू में न तीर्थंकर पाईये ॥
सबही सूक्षम अंग कहै हैं कापोत रंग, कारमान देह को सूपेद रंग गाईये ॥
विपूल मतिमनः पर्यय परमावधि, ठीक लहै मोक्ष ईतै सीस को नमाईये ॥११॥

॥ इन्द्रिय विषय मर्यादा वर्णन ॥

स्पर्श चार सै धनुष्य, असैनोलौ दुगुना गिनो ।
रसना चौसठ धनुष, घ्राणसो तेइन्द्रीभनि ॥
लख योजन उनतोस शतक चौवन परबानो ।
कान आठसै धनुष्य सुनै, सैनीसो जानो ॥
नव योजन घ्राण, रसना स्पर्श कान दुवादश योजना ।
चख संतालिस सहस दुसै तेसठि देखे जिनभणा ॥१२॥

॥ उत्कृष्ट आयुष्य वर्णन ॥

मृदु भूमी बारै, खरभू बाईस, जल सात, वात तीन, तरु काय की दस हजार है ॥
पंखी की वहत्तर सहस, बीयालीस साप, आगदीन तीन, बे इन्द्री बरष बार है ॥
ते इन्द्रि दीन उनपचास, चौइंद्री छमास, सोरी सर्प पूरवांग नव आयु धार है ॥
मच्छ कोटि पूरव, मनुष्य, पशु तीन पल्ल, सागर तेतीस देव नारकी सार है ॥१३॥

॥ अल्प आयुष्य वर्णन ॥

भू जल पावक पौन साधारण पंच भेद, सूक्षम वादर दस परतेक ग्यार है ॥
छ हजार बारै बारै जामन मरन धारै, बेते चौइंद्री अस्सि साठ चालिस धार है ॥
चोवीस पंचेन्द्रि सब छयासठ सहस तीन सै छत्तीस सेतीस सै तेहत्तर सास है ॥
छत्तीससै पिचासि स्वास अधिक तीजा अंस, नमोनाथ योही सब दुख सौ उधारे है ॥१४॥

॥ ८४ लक्ष जाती वर्णन ॥

सात लाख पृथ्वी काय, सात लाख आपकाय, सात लाख तेजकाय, सात लाख वात है ॥
सात लाख नित्य, और इतर सात, साधारण दस लाख प्रत्येक, एके इन्द्रि गात है ॥
बेते चव, इंद्रि दोदो, मानूष चौदह लाख, नर्क, स्वर्ग, पशू चार-चार लाख जात है ॥
चवरचासी लाख जाति मो उपरि क्षमा करो, हमहू ने क्षमाकरी वैर कीये घात है ॥१५॥

॥ कुल वर्णन ॥

पृथ्वी काय वीस दोय, जल सात, तेज तीन, वात सात, तरु वीस आठ वखानिये ॥
बेते चव इंद्रि सात, आठ नव, खग बारै, जलचर, साडे बारै, पशु दस जानिये ॥
सीरि सर्प नव, नारकी पचीस, नर चौदे, देवता छबीस लाख कोटि कूल मानीये ॥
दोय कोडा कोड माहि आधलाख कोड नाहि सबको निहारकंजु दया भाव आनीये ॥१६॥

॥ आलोका काश वर्णन ॥

अमल अनादि अनंत अकृत अनयित अखंड सब।
अचल अजीव अरूप पंचनहि, इक अलोक नभ ॥
निराकार अविकार, अनंत प्रदेश विराजै।
शुद्ध सगुण अवगाह, दसौदिशि अनंत पाजै ॥
उया मध्यें लोक नभ तीन विधि, अकृत अनमिट अन ईससे।
अविचल अनादि अनन्त, सब भाषो श्री आदिश्वरो ॥१७॥

॥ तीन लोक वर्णन ॥

पूरब पश्चिम सात नर्क तले राजु सात अग्रै, घटा मध्य लोक राजु एक रहा है ॥
ऊंचे बढिगया ब्रह्मलोक राजु पांच भया आगै घटा अंत एक राजु सर दहा है ॥
दक्षिण उत्तर आदि मध्ये अन्त राजु सात ऊंचा चौदे राजु षट दरब से भरा है ॥
असंख्यात परदेश मुरतीक कियो भेष करै धरै हरै कौन स्वयं सिद्ध कहा है ॥१८॥
तीनौं लोक तीनौ वात वलै वेढै सब ठोर वृक्ष छाल अंड जाल तन चाम देखिये ॥
अधो लोक वेत्रासन मध्य लोक थालिभन उरध मृदंग घन ऐसोहि विशेखिये ॥
करकटि धारि पाउकौं पसारि नराकार डेढ मूरज आकार अविनासी पेखिये ॥
घर मांहि छीकौं जैसें लोक है अलोक बीच छोकेकौ आधार यह निराधार लेखिये ॥१६॥

॥ घन ३४३ ॥

तीनसै तेताल राजु घनाकार सबलोक घनोदधि घन तनु वात के आधार है ॥
तामै चौदे चौकूटि त्रसनालि त्रसथावर परै तीन से उनतीस थावर सदा रहै ॥
दक्षिण उत्तर डोरि बीयालीस राजु सब पूरब पश्चिम उनताल को विचार है ॥
राजू अंस विसासौ तेतालीस अधिक है लोक सीस सिद्धनकूं मेरा नमस्कार है ॥२०॥
उखल में छेक वंशनाल लोक त्रसनालि उंचि चौदे चौरि एक राजु त्रस भरि है ॥
या में त्रस बाहिर थावर आउ बांधिकहु मरण सो आगा गयो त्रस चाल करि है ॥
बाहीर थावर कोय त्रस आवबांधि होय मरण समै कारमाण त्रस रीति धरि है ॥
केवलसमुदघात त्रसरूप तहां जात तीनौ भांति ऊहा त्रस जैन वानि खरी है ॥२१॥

पूर्व पश्चिम तलैसात मध्य एक बखानी, पंच स्वर्ग में पांच अंत में एक प्रवानी ॥
चहुं मिलाय चहूं अंश तीन साढे परमानो, दक्षिण उत्तर सातसाढे चौबीस बखानो ॥

ऊंचा चौदे राजू गुणौं अधिक तेतालीस तीनसै ॥
यह घनाकार तिहुलोकमें केवल ज्ञानविषै लसै ॥२२॥

पूरब पश्चिम तलै सात, मध्य एके गाई, उभय मिले से आठ अर्ध करि चारि बताई ।
दक्षिण उत्तर सात गुणौं, अठाइस राजू, उंचा राजू सात, सतक छयानवै भयाजू ॥

यह अधोलोक का सब कहा घनाकार जिन धरम में ।
मति परो नरक में पाप करी रहो सुमारग परम में ॥२३॥

॥उर्ध्व लोक वर्णन॥

मध्य लोक इक ब्रह्म पांच दुहुमिलो भये षट ।
पूरब पश्चिम दिशा अर्ध करि तीन राजु रट ॥
दक्षिण उत्तर सात गुणो इकइस बखानो ।
ऊंचा साढे तीन साढ तिहतरी जानी ॥
साढ तिहत्तर विधि यही लोक अन्तसौ ब्रह्मलग ।
राजू इकसो सैंतालिस धरम करै पावै सुमग ॥२४॥
छियालीस चालिस, और चौतीस, अढाई ।
बाईस, सौलै, दस, उनीस साढे बतलाई ॥
साढे सैंतीस, साढे सोला, साढे सोलह् भनो ।
आगे दो दो हीन अंत ग्यारा राजू गिनी ॥
इस सात नरक आठौ जुगल ऊपरि, सोलैथानमे ।
राजू तेतालिस तीन सें घनाकार है कहि ज्ञानमें ॥२४॥

॥ त्रय वातवलय ॥

तलै वात वलै मोटे योजन सहस साठ उंचा एक राजुलौ साठि सहस धारनै ॥
आगै सात पांच चार तीनु सोला जोजन के मध्य पांच चार तीन बारके विचारने ॥
ब्रह्म लोक तीनौ सोल अंतमाहि तीनों बारै सीस दोय कोश एक कोशके बिचारनै ॥
तनुवात धनूष पौने सोलेसै ताकै भाग पंद्रह से सिद्धयेक भाग में निहारनै ॥२६॥

॥ जंबूद्वीप ॥

जंबूद्वीप एक लाख मेरू दस ही हजार भद्रशाल वन दो सहस छीयालीस के ॥
वाको छीयालीस आधोआध दोनूही विदेही देवारण्यवन ऊनतीससै बाईस के ॥
तीनू नदी पौने चारसत चारौही वक्षार दो हजार आनैही विदेह् वच ईस के ॥
सतरै सहस सात सत तीन योजन के नमौ चार तीर्थंकर स्वामी जगदीश के ॥२७॥
जंबुद्वीप दक्षिण उत्तर लाख योजन को, भाग येकसो निव्वे, येक भरत भाईयो ॥
दोय हीमवान शैल, चार हेमवत खेत महा हीमवान आठ, सौलै हरि गाईयो ॥
वत्तीस नोषध है ये त्रेसठ, उधै त्रेसठ बीचि में विदेह भाग चौसठ बताईयो ॥
भाग पांचसै छव्वीस, कलाछह्, उन्नीस कि अठत्तर चैना लेहै सदासीस नमाईयो ॥२६॥

45

॥ लवण समुद्र ॥

मेरू लाख एक जड, उंचा निन्यानौ हजार, चूलिका चालीस बाल अंतर विमान है ॥
नीचे भद्रशाल वन दिशाचारि जिन भवन, पांचसै पै नंदन चैत्याले चार वान है ॥
साढे सासठ हजार है सौमनस बन चौ चैत्याले उंचे सहस छत्तीस बखान है ॥
तहां बन पांडुक चैत्याले चार सब सोलै मन वच काय सेति वंदी पाप हानि है ॥२६॥

॥ मेरु वर्णन ॥

मेरु गोल जड तलै दस हजार निचेकौ, भूपै है हजार दस, नंदपै लहा है ॥
नौ हजार नौसे चौवन भाग कहै, तहां सौमनस बीयालिससै बहत्तरी रहा है ॥
पांडुक हजार एक, बीचे बारह चूलिका, चारोसै चौरानु बन, पांडुक सदंहा है ॥
सौमनस नंदन है, पांचसे के भद्रशाल, बाईस हजार पूर्व पश्चिम में कहा है ॥३०॥

॥ जोतिष मडल ॥

सातशतक अरु निवे तास पर तारे राजे। ताऊपर दस भान, असीपरचंद बिराजे ॥
चार नखत, बुधचार, तीन परशुक्र बतायो। तीन गुरू कुजतीन, तीन पर शनी ठरायो ॥
इम नौसे योजन भूमिते जोतिष चक्र बखानिये।
इकसौ दसजोजन गगन में फैलि रह्यो परमानिये ॥३१॥

॥ अडीच द्विपातील ज्योतिष मडल ॥

इक चन्द इकसूर्य अठासीग्रह, अठाईस नक्षत्र बखान।
छयासठ सहस नवसे पिचहत्तार कोडाकोडी तारे जान ॥
इकसौ बत्तिस चंद इही विधी ढाई द्वीप मध्ये परवान।
सब चैताले प्रतिमा मंडित बंदन करौ जोरि जुगपान ॥३२॥

॥ चन्द्र सख्या ॥

जंबु द्वीप दोय, लवणांबुधी में चारचंद,
धातुखण्ड बारै कालो दधि बीयालीस हैं ॥
पुष्कर के भाग दोय इधर बहत्तरि हैं,
उधै बारे से चौसठ भाखै जगदीस हैं ॥
पुष्कर जलधिसार दोसत, ग्यारै हजार,
आगै आगै चौगुने बखाने जगदीस हैं ॥
जेते लाख तेते वले दूने दूने अधिक हैं,
सब असंख्य चैताले बंदत मुनीश हैं ॥३३॥

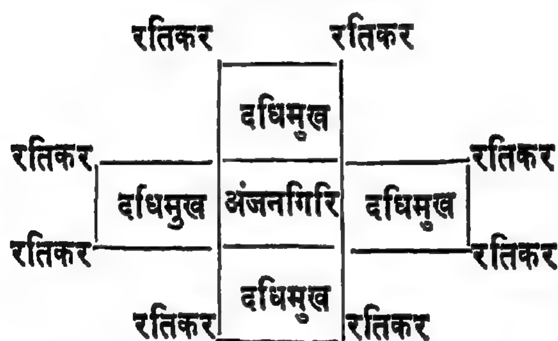
वडवानल वर्णन

लवणोदधि वीच चारि दिशामाहि चार कूप कहे मृदंग जेम तीन को प्रमान है।
पेट और उंचे येक-येक लाख जोजन के, नीचे ऊंचे मूखाकौ दस हजार मान है ॥
चारि विदीशा में चार, पेट है उंचे दश हजार येक नीचै उंचे मूखकौ बखान है।
अंतर दीशा हजार, पेट उंचे हैं हजार नीचे उंचे मूख सौ को धन्य जैन ज्ञान है ॥३४॥

मानुषोत्तर पर्वत

मानुषोत्तार पर्वत चौराई भूपर एक सहस बाईस।
मध्य सातसै तेईस जोजन, उपर चार शतक चौबीस ॥
सत्तारहसै इकवीस उचाई, जडा चारसै पावत्तीस।
ऋजुविमान कहि भाँति मिल्यो है जोजन लाख कह्यो जगदीस ॥३५॥

नंदीश्वर द्वीप वर्णन



इकसो त्रेसठ कोडि चवरासि लाख जोडि जोजन का चौडा दीप पावन पहाड़ हैं।
दिशाचारि अंजन हजार चवरचासि, सोलह दधिमूख योजन हजार दस ऊंचे हैं ॥
रतीकर है बत्तीस योजन हजार एक, लंबे चौडे उंचे सब ढोल के आकार हैं।
सव परि जीनभवन बावन विराजत हैं, वर्ष तीन वार देव करै जयजय कार हैं ॥३६॥

अवो लोक मदिर

चौसठ लाख असुर जिनमंदिर, लाख चौरासी नाग कुमार।
हेमकुमार के लाख बहत्तार छहविधिकेलख छिहत्तार धार।
लाख छानवै वात कुमार हैं, पाताल लोक भवन दससार।
सात कोटि अरु लाख बहत्तार जिनचैत्यालये बंदौ सुख कार ॥३७॥

।। मध्य लोक के अकृत्रिम जिन मन्दिर ।।

पंचमेरु के असी असी वक्षार विराजे,।
गजदंतन पै वीस, तोस कुल पर्वत छाजै।।
सौसत्तर वैताढच धार, कुरु भूमि दसोत्तार।
इक्ष्वाकार पहाड़ चार, चार मानुषोत्तार पर ।।
नदिश्वर बावन रुचकमें चार, चार कुंडल सिखर ।।
इम मध्यलोक में चारसे ठावन बंदौ विघ्न हर ।।३८।।

।। नक्षत्र विमान में मन्दिर वर्णन ।।

षट, पांच, तीन, एक, षट,तीन, षट, चार,दो, दो, दो, पांच, एक,एक, चौसट, तिन, लहै ।।
नव, चौ, चौ तीन, तीन, पांच, एकसौ, ग्यारह, होय दोय, वत्तीस, पांच तारे तिन लहै ।।
कृत्तिकादी ठाईस कै सब दोसे इकताल, ईक ईक के ग्याराग्यारह में सरद है ।।
दोय लाख सतसठ हजार नवसे व्यानु, है चैताले प्रतिबिंव जीनवानी में कहै ।।३९।।

।। उर्ध्व लोकांतील चैत्यालय ।।

प्रथम बत्तीस, दूजे अठ्ठावीस, तीज बारें, चौथे आठ, पांचै छट्टै चौलाख विख्यात है ।।
सातें आठमें पच्चास नौमे दसमें चालिस, ग्यारे वारें छहजार चार सत सात हैं ।।
आधो एक सत ग्यारे, मध्ये एक सतासत, उरध इक्यानु नव नऊ जरे जात है ।।
पंच पंचोत्तारें चवयासि लाख सत्यानु हजार तेईस चैत्याले बंदौ अघ घात हैं ।।४०।।

सात किरोड़ बहत्तर लाख पाताल विषै जिन मन्दिर जानो।
मध्यहि लोक में चारसे ठावण, व्यंतर ज्योतिक के अधिकानो ।।
लाख चौरासि हजार सत्तानवै, तेईस उरध लोक बखानो ।।
ईकी कमे प्रतिभाशत आठ, नमै तिहु जोग त्रिकाल शहानो ।।४१।।

वंदौ आठ किरोड़ लाख छप्पन सत्यानौ, सहस चारसे असि येक जिन मंदिर जग्नौ ।।
नवसै पचीस कोटि लाख त्रेपन, सताईस, बंदौ प्रतिमा सबै सहस नौसे अठतालिस ।।

व्यंतर ज्यौतिक अगणित सकल चैत्याले प्रतिमा नमौ ।।
आनंदकार दुःखहार सब फेर नहीं भववन भमौ ।।४२।।

त्रैलोक्य पटल

एक तीन पन सात और नवग्यार तेर जिय।
इकतीस सायसु चार दोय इक-इक तीन तीय ॥
तीन-तीन अरु तीन एक इक पटल बताये।
इक सौ बारै सरब थानक के गाये ॥
सब सात नरक आठौ जुगल त्रय ग्रीवक द्वय उत्तरे।
उनचास नरक, त्रेसठ सुरग धन दोन्यौ समकित भरै ॥४३॥

पाताल वर्णन

सात नर्क भूमि उनचास पाथडे नीवास इन्द्रकभि उनचास बीचमाहि बीले है।
पहले सीमंतक चारि दीसा सेनि ऊनचास चारि वीदिशामे आठतालीस बीले है ॥
आठ दीशा श्रेणिबद्ध तीनसे अठ्यासी भये आगै घटै आठ-आठ अंति चार मीले है।
सब छ्यानवैसे चारि जोजन असंख्य धारि दया धर्म करै तोन्है नर्क दुःख टले है ॥४४॥

स्वर्ग वर्णन

उरध तीरेसठ पटल कहे आगम में त्रेसटहि इन्द्रक विमान बीचि जानीये।
पहलो जूगलताके पहले है ऋजुनाम जाके चारि दीसा श्रेणी बासट प्रवानीये ॥
चारो दौसे आठ ताल आगै छूटै चार-चार अंत रहै चार उंचे चार ठीकठानीये।
श्रेणीवद्ध ठंतरसै सोले, जोजन असंख्य सिद्ध बारै जोजन पै ध्यान महि आनीये ॥४५॥
पैतालीस लाख को है इन्द्रक ऋजुविमान, सर्वारथ सिद्धि अंतको एक का कहा।
चवालीस घटे है तेसठमे, बासठठोर उंचे-उंचे एक-एक केता घटतो लहा ॥
सत्तारह हजार नौसे सतसठि योजना है तेईस अधीक भाग इकतीसका गहा।
त्रेसठ इन्द्रक नाम त्रेसठहि जिनधाम वंदो मन बच काय तीनकि शोभा महा ॥४६॥

इन्द्र की सेना वर्णन

इन्द्रसेना सात, हाथि, घोरे, रथ, प्यादे, बैल, गंधरव, नृति सात-सात परकार हैं।
आदि चौरासी हजार, आगै घट् दूने-दूने एक कोटि छह लाख अडसठ हजार हैं ॥
येते गज तेते-तेते छह भेद सबके ते, सातूकोट छीयालीस लाख निरधार है।
सहस छिहत्तर है और एक अवतार न्योम पुण्य कर्म भोगि मोक्ष को सीधारे हैं ॥४७॥

देव भोग वर्णन

दोय सुरगमें काय भोग है, दोय सुरग में स्परस निहार।
चार सुरगमें रूप निहारे, चार सुरग में शब्द विचार ॥

46

चार सुरग में मन को विकलप, आगै सहजशील निरधार ।
अहमिन्द्र सब महा सुखी हैं, वंदौ सिद्ध मुखी अविकार ।।४८।।

।। स्वर्ग नरक मे गमणागमण वर्णन ।।

साततै नीकले पशु छट्ठे नरव्रत नाहि, पांचै महाव्रत, चौथेसेति मोक्षोत्तर है ।।
तीजै दूजै पहिले ते आय जीनराय होय, भुवनत्रक सुर्ग दोय येकेन्द्रि धार है ।।
द्वादशम स्वर्ग ताई पंचेद्रि पशु होय उपर को आयो येक नर को औतार है ।।
दक्षिणेंद्र सोधर्मराणि, लोकपाल, लौकांतीक सर्वार्थ सिद्धि मोक्षलहै नमस्कार है ।।४६।।

।। कर्म प्रकृति वर्णन—स्तुति ।।

वंदौ नेमिजिनंद चंद सबको सुखदाई । बल नारायण वंदि मुकुट मणि शोभा पाई ।।
व्यंतर इंद्र बत्तीस भुवन चालीसूं आवै । रवि शशिचक्री सिंह स्वर्ग चौवीसौ ध्यायै ।।
सब देवनि के सिरदेव जिन सुगुरुनि के गुरुराय हो ।
हूजौ दयाल मम हाल पै गुण अनंत समुदाय हो ।।५०।।

इंद फणिंद पूजि, नमि भगति वढावै ।
बल नारायण बंदि मुकुट मणि शोभा पावै ।।
बिन जानै जगवन भमै, जानिछिन सुर्ग बसावै ।
ध्यान आन रिधवान अमर पद आप कहावै ।।
सब देवनि के सिरदेव जिन, सुगुरुनिके गुरुराय हौ ।
हूजौ दयाल मम हाल पै, गुण अनन्त समुदाय हो ।।५१।।

एक समै माहि एक समै परबद्ध बंधै, एक समै एक समै परबद्ध झरे है ।।
वर्गना जघन्य में अभव्य सो अनन्त गुणि, उत्किष्ट सिद्ध को अनंत भाग धरे है ।।
जैसे एक गास खाय सात धात होय जाय, तैसे एक सात कर्म रूप अनुसरे है ।।
यौन लहै मोक्ष कोई जाके उर ग्यान होई, एक समै बहु खोई, सोई सीव वरै है ।।५२।।
देव पै परचो है पट रूप को न ज्ञान होय, जैसे दरबान भूप देखनौ निवारे है ।।
सहेत लपेटि असिधार सूख दुःख कारा, मदिराज्यों जीवनीको मोहनि विधारे है ।।
काठमें दीयो है पाव करै थीतिकौ सुभाव, चित्रकार नाना नाम चित्र को समारे है ।।
चक्री ऊंच नीच करै, भूप दीयो मना करै, येहि आठ कर्म हरै सोहि हमें तारे है ।।५३।।

॥ कर्म भेद ॥

ज्ञानवरणकि पांच, दर्शनावरणी नौविधी।
दोय वेदिनी जानि, मोहनी अट्ठावीसी मिली॥
आयु चार परकार, नामकि प्रकृती तिरानौ।
तथा येकसोतीन गोत्र दोय भेद प्रवानो॥
कही अंतराय की पांच, सबसौ अठताल जानिये।
इस आठ करम अठतालसौ, भिन्न रूप निज मानिये॥५४॥

मति, श्रुति, अवधि, मनपर्यय, केवल ज्ञान पांच आवरण ज्ञानार्वाणिय पंच भेद है॥
चक्षु औ अचक्षु, अवधि, केवल, दरस चार, आवरण चार निद्रा निद्रा निद्रा खेद है॥
प्रचला प्रचला प्रचला थानगृद्ध नौ भेद, दरसनावर्णी, मोह अठाईस भेद है॥
दान, लाभ, भोग, उपभोग, बल, अंतराय पांच, सब सैंतालिस घातिया निषेध है॥५५॥
मिथ्यात, समैमिथ्या, समै प्रकृति मिथ्यात, तीनों दरसन मोह दर्शन कौ चौभ है॥
अनंतानुबंधि औ अप्रत्याख्यानि, प्रत्याख्यानि, संज्वलन चारौ क्रोध, मान, मायालोभ है॥
हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, नारिनर, षंड, ये पचीस चारीतको छोभे है॥
अठाईस मोहनि जीवनीकौ मोहत है, नाशै यथा ख्यात संजम क्षायकको शोभे है॥५६॥

॥ सोला कषाय ॥

पाथरि की रेख, थंभ पाथरको, वास वीडा, कृमिरंग, समचारौ नर्क मांहि ले धरे॥
हल लीक, हाड थंभ, मेषसिंग, गाड़ीमल, क्रोध, मान, माया, लोभ, तीरजंच में परे॥
रथलीक, काठथंभ, गोमूतर, देहमैल, से कषाय भरे जीव मानुष में औतरै॥
जलरेखा, वेतदंड, खूरपा, हलदरंग, द्यानत ये चारि भाव सुगं सिद्धी को करै॥५७॥

साता औ असाता दोय, वेदनि, नरक, पशु,
नर, सुर, अउ, चार, उंच, नीच गोत हैं॥
नाम कि, तीरानु, एकसत एक अघातीया,
आदि तीन अंतराय थीति तीस होत है॥
नाम गोत वीस, मोहकि सत्तरि कोडाकोडि दधि,
आउ कि सागर तेतीस उदोत है॥
वेदनि चौवीस घडि सोलै नाम, गोत, पांचौ,
अंतर महूरत, विनासै ज्ञान जोत है॥५८॥

तन बंधन संघात, वरण, रस, जाति, पंच, संस्थान, संहनन, षट आठ फास है।
गति आनुपूरु विहैचार, दो विहाय गंध तीन पैंसठ्येत्रस, थूल भास है।।
पर्यापति, थीर, सूभ सूभग, प्रत्येक, जस, सुस्वर, आदर दो-दो, नीरमान स्वास है।
अपघात परघात, अगुरु लघु, आताप, उदोत, तीर्थंकर को वंदी अघनाश है।।५६।।
वरणादिक बीस, संस्थान संहनन बार बंधन संघात देह आंगोपांग ठार है।
अगुरु लघु, आताप, अपघात, परघात, नीरमान, परतेक साधारण सार है।।
अथीर उद्योत थीर सूभ अशूभ, वासठ पुग्गल विपाकि भौविपाकी आउचार है।
क्षेत्र विपाकी है चार अनुपूरवि अठत्तर वाकी जीव विपाकी धारे अव टार है।।६०।।
केवल दरस ज्ञान आवरण बाकि दोय मिथ्यात समै मिथ्यात निद्रा पाँच भानिये।
तीनौ चौकरीकि बारै सर्वघाति ईकइस संज्वलन चार नव नोकपाय मानिये।।
ज्ञानावरण चार दरसनावर्ण तीन अंतराय पाँच सम्यक मिथ्यात ठानीये।
देश घातीया छब्बीस बाकि ईकसौ अघाति तीनो घानकर्म घात आप शुद्ध जानोये।।६१।।

१०० पाप प्रकृति वर्णन

घाति सैंतालीस दुःख, नीच, नरक आयु पंच संस्थान, संहनन, वर्ण, रस, मानीये।
नर्क पशुगति, अनुपूरवि, फरस आठ, गंध दोय, इन्द्रि चार बूरि चाल ठानीये।।
अथीर, अपर्यापत, सूक्ष्म और साधारण परिघात, थावर अशुभ पर मानीये।
दुर्भग, दुःश्चर औ अनादर, आजसरूप, पाप प्रकृती सौ भेद त्याजि धर्म जानीये।।६२।।

पुण्य प्रकृति वर्णन

सूर नर पशु आव साता, उंच भलिचाल, सुरनर आनुपूर्वि निरमान खास है।
बंधन, संघात, देह, वरण, रसन पंच, तीन अंग, शूभ गंध दोय आठ फास है।।
अगुरु लघु, पंचेंद्रि, संस्थान, संहन, बादर, प्रतेक, थीर पर्यापत जस त्रास है।
आताप, उद्यौत, परघात, सुस्वर, सुभघ आदर तीर्थंकर को बंदी अघनाश है।।६३।।

कर्म बंध, उदय, सत्ता वर्णन

बंध एकसौ बीस, उदय सो बाईस आवै।
सत्ता सौ अठताल पापकी सौ कहिलावै।।
पुण्य प्रकृती अठसठि अठत्तर जीव विपाकी।
वासट देह विपाकि खेतभव चवचव बाकी।।
इकईस सर्वघाति प्रकृति देशघाति छब्बीस है।
बाकी अघात इकशत भिन्न सिद्ध सिव ईस है।।६४।।

वर्णादि चार, सोलनाहि, देहादीक पांच, दसनाहि मिथ्यात एक दोय बंधनाही हैं।
सोलै दस दोय बीना बंध एक शत वीस मिथ्या उदै तीन दोय बढ़ै उदै याही है॥
उदै औ उदीरना एक शत बाईस कि आठ ताल विशेष सत्ता नाना जाव ठाही है।
मिथ्या गुण सो छियाल काहु सत सत्ताईस पांचो तोर भंगि सौ असंगि आपमाही है॥६५

बंध के १० प्रकार

जीव कर्म मिलि बंध, देय रस तास, उदै मनि।
उदीरणा उपाय, रहे जबलौ सत्तागिणो॥
उत्कर्षण तिथि बढ़ै, घटै अपकर्षण कहियत।
संक्रमण परूपण उदीरन विन उपशम मत॥
संक्रमण उदीरण विन निधत्त, घटि बधि उदीरण संक्रमन।
चहु विना निःकाचित बंध दस, भिन्न आप पद जानि मन॥६६॥
आउ अंस पैंसठिस इकसठि-इकइससै सित्यासी जानि।
सात शतक उनतीस दोयसै तेतालिस इक्यासि मानि॥
सताईस और नौ, तीन-एक आठवा भेद बखान।
नौमि अंतकाल में बांधै अगलो गति की आठ निदान॥६७॥

पंच परावर्तन

भाव परावर्तन अनंतु तै कर जीव एक भावसौ अनंत भवके परावर्त है।
एक भौसेति अनंत काल परावर्त करै कालते अनंत खेत परावर्त कर्त है॥
एक खेततै अनंत पुग्गल परावर्तन पंच फेरा बीधै आप मिथ्यावस वर्ते है।
सातको विनाश जौनै सम्यक प्रकाशतेइ दर्प खेत काल भव भावते निकर्त है॥६८।
भाव परावर्तन अनंत भाग भव काल, भव परावर्तन अनंत भाग काल है।
कालपरावर्तन अनंत भाग क्षेत्र कह्यो, खेतको अनंत भाग पुग्गल विशाल है॥
ताको आधो नाम अर्ध पुग्गल परावर्तन, फिरनो रह्यो है योंहि ज्ञानी भाल है।
ताहि समै सम्यक उपजवे को जोग भयो, और कहां सम्यकत लरकाको ख्याल है॥६९।

केवल ज्ञान वर्णन

नरक पशुगति, आनुपूर्वि प्रकृति चार पंचेंद्रि बीनाचार, आताप उद्योत है।
साधारण सूक्षम, थावर प्रकृति. तेरे नर आव बीना तीन मोलि सोलह होत हैं॥

सैंतालीस घातियाकि त्रेसठ प्रकृति सर्वनाम भये तीर्थंकर ज्ञानमई जोत है ॥
देवनिके देव अरहंत हैं परम पूज्य तीन होको बिंब पूजि होहि ऊंच गोत है ॥७०॥

॥ गुण स्थान वर्णन स्तुति ॥

बंदौ नेमि जिनंद, नमो चोबीस जिनेश्वर,
महावीर बंदामि, बंदौ सब सिद्ध महेश्वर ॥
शुद्ध जीव प्रणमामि, पंच पद प्रणमो सुख अति।
गोमट सार नमामि नेमिचंद आचार जर्निति ॥
जिन, सिद्ध शुद्ध अकलंक वर, गुण मणि भूषण उदयधर।
कहूं वीस परूपणा भवसौ यह मंगल, सब विघन हर ॥७१॥

॥ १४ मार्गणा ॥

जीव समास, परजापत, मनवचश्वास, इंद्रि काय मांहि आउ गति में बखानिये ॥
क्रोधमांहि भय अरु वेदमाहि, मैथुन है ज्ञानमाहि दर्श दर्शमाहि जानिये ॥
कामबल, जोगमाहि इंद्रि पांच प्राण माहि आहारक, परिग्रह, लोभ में बखानिये ॥
पांचौ परूपणा इह चौवह में गर्भित है, गुण ठाण मारगणा दोय भेद मानिये ॥७२॥

॥ जिवसमास ॥

भू जल, पावक, वाउ, नीत, ईतर साधारण।
सूक्ष्म, वादर, करत होत द्वादश उच्चारण ॥
सुप्रतिष्ठ अप्रतिष्ठ मिलि चौदे परवानो।
परज अपरज, अलब्ध, गुणीब्यालीस बखानो ॥
गुणवे,ते, चौ, इंद्री,त्रिविधि,सर्व एक पच्यास भनी।
मन रहित तिहुं भेदसू सत्तावन धरि दया मनी ॥७३॥

॥ ९८ जिव समास ॥

इक्कावन थान जान थावर विकल त्रयक, गर्भज दोय तीन सम्मूर्च्छन गाये हैं ॥
पांच सैनि औ असैनि जल, थल, नभचर, भोग भूमि भूचर खेचर दो दो पाये हैं।
दो दो नारकि हैं देव, नवविध मनुष हैं, चव भौग भू म्लेछ बताये हैं ॥
दोय दोय दोय तीन आरजमें राजत हैं, अठाणवै दयाकरै, साधुते कहाये हैं ॥७४॥

॥ ५३ भाव ॥

चौतिस बत्तिस तेतिस छत्तिस इकतिस इकतिस जान ॥

अठाईस अठाईस बाईस बाईस बीस बार में थान ॥
तेरै चौदे अंत में स्थानक पंचभाव सिद्धाले जान ॥
सम्यक् ज्ञान दरस बल जीवित निहचै सो तूं आप पिछान ॥७५॥

पहले मिथ्यात अभव्य, दूसरे विभंग तीन, लेश्या तीन नर्क अव्रत देव चार में ॥
पशु पाचै, लेश्या दोय सातै लोभ दसैलग, क्रोध मान माया तीन वेदनौ विचार में ॥
सेस तेरै, नरभव्व जीवित असिद्ध चौदे पंचलब्धि, अज्ञान चख अचख वार में ॥
चवतीसो भाव कहै चौदे गुण थानक में, वे उनीस बारहमैं हो अविकार में ॥७६॥

॥ १२ गुण घटे १६ ॥

उपशम चौथे ग्यारे, वेदक चौथे सातै, क्षायक चौथे चोदहै, देशविरत पांचमे ॥
ज्ञान तीन तीजै बारै, मन पर्यय छट्टे बारे, चारीतसराग, छट्टे दसै कह्यो साचमे ॥
अवधि तीजै बारै, उपशम चारीत ग्यारेहि, क्षायिक चारीत बारै चौदे कर्म वाचमे ॥
पंच लब्धि क्षायीक दर्श ज्ञान तेरै चौदे नमो भाव उनइस छूटै नरक आवमै ॥७७॥

॥ ४ गती ५३ ॥

साततौ स्वभाव पंच भाव सिद्ध वंदत हो, तीनों गति वीना नरकै पचास दोस है ॥
क्षायककै आठवीना, मन परजै, चारित है दोय ग्यारे वीना पशु ऊनतालीस है ॥
शुभ लेश्या तीन अर नर नारि वेद देशव्रत छही भाववीना. नारक तेतीस है ॥
हीन तीन लेश्या खंड वेदचारो भाववोना, शुभ लेश्या नरनारि सूरि के चौतीस है ॥७८॥

॥ आस्रव ॥

पचपन पचास तेतालिस छियालिस सेतीस चोवीस जाना ॥
बाईस सोलै दस अरु नव नव सात अंत वखाना ॥
चौदे गुण थानक में इह विधि आश्रव द्वार कहै भगवाना ॥
मूल चार उत्तर सत्तावन नाश करो धरि संवरज्ञाना ॥७६॥

पहिले पांच मिथ्यात, दूजै अनंतानु वंधि, ग्यारह अविरत प्रत्याख्यानि पांच गहै ॥
वैक्रियक औ अप्रत्याख्यानि त्रसवध चौथे, आहारक छट्टे षट हास्य आठ लील है ॥
तीन वेद तीन संज्वलन नौमे, लोभ दसै असत उभै वचन मन बारहे कहे ॥
सत अनुभय वच मन औदारीक तेरे मिश्र कारमान चारि गुणस्थाने सदंहै ॥८०॥

॥ चार गती में ५७ आश्रव ॥

वैक्रियक दोयबिना नर पचपन द्वार, आहारक दोयबिना त्रेपन त्रियंच है ॥
औदारीक दोय, दोय आहारक, षंड वेद पाँचवीना देवनी के बावन को संच है ॥
आहारक दोय, दोय औदारिक, नरनारि, छहोवीना इक्यावन नर्क में प्रपंच है ,।
चारौ गति माहि ऐसे आश्रवसरूप जानि नमौ सिद्ध भगवान जहा नाहि रंच है ॥८१॥

॥ चार गती में १२० बंध ॥

औदारीक दोय, आहारक दोय, नर्क देवगति आयु अनुपूरवि दसौ बखानि है ॥
विकलत्रै सूक्षम साधारण अपर्याप्त सोलैंवीन सतचार देव के प्रवानि है ॥
एकेंद्रि थावर आताप तीन प्रकृति वीना नर्क एकसत एक, बंध जोग ठानि है ॥
तीर्थंकर आहारकवीना पशु सो सत्तरै, नरके विसासौ सवनासो शीव थानि है ॥८२॥

इकसौ सतरह, येक येकसौ, चौहत्तरि सत्तहतरि माना ॥
सतसठ, तेसठ, उनसठ, ठावण, बाईस, सत्तरै दसमे थाना ॥
ग्यारम बारम तेरम साता येक बंध नहि अंत निदाना ॥
सब गुण स्थानक बंध प्रकृतो, इस निहचै आप अबंध पिछाना ॥८३॥

॥ उदय १२२ गुण ॥

इकसौ सतरै, एकसौ ग्यारै, सो अरुचौसो, सत्तासीय ॥
इक्यासी छहत्तरि, बहत्तरि, छयासठ, अरु साठ उदीय ॥
उनसठ, सत्तावन, बियालिस, प्रकृती बारै उदय है जीय ॥
चौदे गुण स्थानक की रचना उदं भिन्न तूं सिद्ध सुकीय ॥८४॥

॥ उदीरणा ॥

इकसौ सतरै, इकसौ ग्यारै, सोंचौ सतासि जान ।
इक्यासी, तिहत्तरि, उनहत्तरि, तेसठि, सत्तावन, मान ॥
छप्पन, चौवन, उनतालिस, तेरमे अंत नहीं परवान ॥
यह उदीरणा चौदे थानक करै ज्ञानबल सो सुज्ञान ॥८५॥

॥ १४८ सत्ता वर्णन ॥

पहले सो अठताल, दूजे में सो पैताल, तीजै माहि सो सैताल, चौथे अठतालसो ॥
पाँचै गून सो सैताल, छट्ठे सातै आठें नौमें दशमें ग्यारमें उपशम है छीयालसो ॥
आठे नौमे सो अठतीस, दशे इकसो दोय, बार में इकसोईक आगे पंद्रै टालसो ॥
चौदे तेरमें पीचासी सत्तानाश अविनाशि नमोलोक घन उर्ध्व राजु है सैतालसो ॥८६॥

॥ बंध उदय वर्णन ॥

देवगति आउ आनु पुरवि प्रकृति तीन वैक्रियक अंग आहारक अंग चार है ॥
अजस ये आठो उंचे बंधे नीचे उदे देय संज्वलन लोभ-वीना पंद्रेको नीहार है ॥
हास रति भे गिलानि नर वेदनर आउ सुक्षम अपर्याप्त साधारण धार है ॥
आताप मिथ्यातमे छब्बीस बंध उदे साथ नीचे बंध उंचे उदे छीयासि विचार है ॥८७॥

विकलत्रै सूक्ष्म साधारण अपर्यापत नरकगति आनुपूर्वी नरक आव है ॥
मिथ्यामाहि लेश्यातीन बांधे इकसोसतरै नऊ वीना पांतके आठत्तरसी भाव है ॥
एकेन्द्रिय थावर ओ आताप ईन तीन विना पदम एकसौ पांच बंध को उपाव है ॥
पशुगति आठ आनुपूरवि उदोत वीना सुकल एकसौ एक बंध पुन्यचाव है ॥८८॥

॥ (१४) गुण स्थान मे आयु बंध ॥

नरक आयु पहिले बंधै चौथे लेहैं, पशु आउ दूजे, बंधे, उदै पांचमें कहि ॥
नर आयु चौथे लग बंध उदै चौदह लौ, सुरआउ सात बंद उदं चार में लहि ॥
नर पशु जीव नरक पशु नर आउ बंध, चौथेते आगै चढवेकि सक्ति न गहि ॥
चारौ आउ तीजे गुण थानकमे बंधै नाहि आउ नास भये सिद्ध तिनको वंदी साहि ॥८९॥

॥ उपशम श्रेणीगीत ॥

मिथ्या मारग चार, तीन चउ पांच सात भनि।
द्वितीय एक मिथ्यात तृतीय चौथे पहिलो भनि ॥
अव्रत मारग पांच तीन दोय एक सातपन ॥
पंचम पंचमु सात चार तिय दोय एक भन ॥
छट्ठे पट एक पंचम अधिक सात आठ नव दस सुनो ॥
निय अध उरध चौथे मरन ग्यार वार विन दो मुनो ॥९०॥

मिश्र छीन संजोग तीनमें मरन न पावै।
सात आठ नव दसम ग्यार मरि चौथे आवै ॥
प्रथम चहूंगति जाय दुतिय विन नरकतीन गति।
चौथे पूरव आव बंध तै चहुगति प्रापति ॥
पंचम ग्यारम नान गुण मरे मुरग में औतार हैं।
वंदो एक चौदम गुण स्थानकनजी अजर अमर पद सिवपद लहैं ॥९१॥

॥ सप्तभंग जिन वाणी ॥

द्रव्य क्षेत्र काल भाव अपने चतुष्टय अस्ति,
परके चतुष्टंसे न नास्ति दरव है।
आपसे है परसे न येक समै अस्ति नास्ति,
ज्यों के त्यों न कहै जाहि अव्व तव्व तच्छ है।
अस्ति कहै नास्तिका अभाव अस्ति अव्व तव्व,
नासक है, अस्ति नाहि नाश अव्व तव्व है।
येकठे कहै न जाय अस्ति नास्ति अव्व तव्व,
स्यादवादसेति सात भंग सधै सव्व है ॥१०१॥

॥ आत्म महिमा ॥

जीव है अनंत एक जीवके अनंत गुण, एक गुण के असंख्य परदेश मानिये।
एक परदेश में अनंत कर्म वर्गना है, एक वर्गना अनंत परमानु ठानिये॥
अनूमें अनंत गुण, एक गुण में अनंत परजाय एकके अनंत भेद जानिये।
तीन ते हूं ये अनंत तातै होंहिगे अनन्त सब जानै समै माहि देव सो बखानिये ॥१०२॥

नमहु नाम अरिहंत, थुनहु जिनबिंब कलिलहर।
परमौदारिक दिव्य बिंबु निर्वाण अवनि पर॥
कहौ कल्यानक काल, भजहु केवल गुण ग्यायक।
यह षटविधि निक्षेप महा मंगल वर दायक॥
मंगल दुभेद सब जायमल, मंगल सुख लहै।
जोवरा यह आदि मध्य पर जत में मंगल राखो हीयरा ॥१०३॥

चरचा मुखसौ भजै, सुनैं नाहि प्राणी कानन।
केई सुनिघर जाय नाहि भाखै फिरि आनन॥
तिनकौ लखि उपगार-सार यह शतक बनाई।
पढत सुनय ह्वै बुद्धि शुद्ध जिनवाणी माई॥
इसमें अनेक सिद्धांतका कथन,मथन 'द्यानत' कहा।
सब माही जीवको सारहै, जीव भाव हम सदंहा ॥१०४॥

॥ इति चर्चा शतक समाप्त ॥

मुनि दीक्षा विधि

॥ श्री वृहद् दीक्षा विधि लिख्यते ॥

ॐ णमो अरहंताणं । ॐ णमो जिणाणं । ॐ णमो सदणाणं । मंगलाणं । लोगुत्तमाणं । ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा अर्हन्नमः ॥

ॐ णमो अरहंताणं । णमो सिद्धाणं । णमो आइरियाणं । णमो उव्वज्झायाणं । णमो लोए सव्वसाहूणं । ॐ परमहंसाय परमेष्टिने हंसोऽहं हं हां हीं हूं हों हौं जिनाय नमः ।

ब्रह्मचारी, गृही, वानप्रस्थो, वा यथा विरक्त स्तथा जैनो दीक्षां गृण्हीयात ।

भावार्थ—आता दिक्षाघेणारा ब्रह्मचारी, किंवा गृहस्थ वा वानप्रस्थ असो त्याने विरक्त होऊन, वरलिहिलेला मंत्र पूर्ण म्हणून पुढे वर्णन केलेंल्या क्रमानें जिन दीक्षाघेणें ।

दीक्षापूर्वदिने स्नानं संध्यादेवतार्चनं कृत्वा भोजन समये भाजन तिरस्कार विधिं विधाय, आहारं गृहित्वा चैत्यालये आगच्छेत । ततः वृहत्प्रत्याख्यान प्रतिष्ठापने सिद्ध योगि भक्ति पठित्वा गुरोः प्रणामं कुर्यात् ।

भावार्थ—दीक्षेच्या पूर्व दिवशी स्नान संध्या व देवतार्चन करून जेवणास बसावे जेवणा करिता मांडलेले तार वाट्या, पेला गडवा वगैरे भांड्याकडें पाहून त्यावरील ममत्व साडून तिरस्कार करणे तें असें,—मूला आतां हीं मांडी पुढे कशाकरिता पाहिजे ? मी सर्व परिग्रह सोडून दिगंबर होणार व कर पात्रीं आहार घेणार तर मग मला ह्या भांड्यांची काय जरूर आहें ? कांहींच नाहीं या प्रमाणे निर्ममत्वाने तिरस्कार करून भोजन करावे मगजिन मंदिरांत येवून बृहत्प्रत्याख्यान प्रतिष्टापन काली (सर्व संग परित्याग करून दीक्षा धारण्याचा जो नियम त्याकाली) सिद्ध भक्ति व योगि भक्ति म्हणून, गुरु जवल येऊन प्रत्याख्यान पूर्वक उपवासाचा नियम घेऊन आचार्य भक्ति, शांति भक्ति व समाधि भक्ति म्हणून गुरूंस वंदावें

अथ दीक्षादाने धातृदाने जनः शाँतिक गणधर वलय पूजादिकं यथा शक्तिं कारयेत् । अथ—धाता तं स्नानादिकं कारयित्वा यथायोग्यालंकार युक्तं कृत्वा । महा महोत्सवेन चैत्यालयं समानयेत् । ततो गुरोरग्रे संघस्याग्रे च दीक्षायै याचनां कृत्वा तदाज्ञया सौभाग्यवती स्त्री विहित पंचमंडल स्वस्तिकोपरिश्वेत वस्त्रं प्रछाद्य तत्र पूर्व दिशाभिमुखः

पल्यंकासन कृत्वा असत गुरूश्व उत्तराभिमुखो भूत्वा संघाष्टकं संघं च परि पृच्छय लोचं कुर्यात्।

भावार्थ—गुरूस वंदना केल्यानंतर दुसरे दिवसीं दीक्षा देताना जैन ब्राम्हणास—उपाध्यायास दानदेतानां त्यादीक्षा पुरुषाच्या घरच्या मंडलीनें शांतिक पूजा, गणधर वलयपूजा आदि करून यथा शक्तिनें पूजन करणें। नंतर कोणा एका उत्तम श्रावकाच्या घरीं त्यादीक्षा पुरुषास कलश भांडून स्नान घालून, यथा योग्य वस्त्रालंकार करून मोठ्या उत्सवानें वाजत गाजत चैत्यालयात आणणें। मग त्यादीक्षा पुरुषानें देवगुरू व शास्त्र यांची पूजा करणें नंतर अत्यंत वैराग्य भावना भावून, सर्वा बरोबर क्षमा भाव धारून गुरु पूढें उभें राहणें। नंतर गुरू जवल व ऋषि, अर्ज्जिका, श्रावक, श्राविका या चतुःसंघा जवल दीक्षेसाठीं यांचना करावीं। मगत्या सर्वांच्या आज्ञेनें सुवासिनीं स्त्रियांनीं काढलेल्या पंच मंडल स्वस्तिक यंत्रावर एक शुभ वस्त्र घालून त्यावर पूर्वे कडे मुख करून पल्यंकासन घालून बसणें। नंतर गुरूने उत्तरे कडे तोंड करून ऋषि, यति, मुनि, अनगारादि आठ संघासव चतुःसंघास विचारून लोच करणें॥

अथ बृहद् दीक्षायां लोंच क्रियायां

पूर्वाचार्यानु क्रमेण सकल कर्म क्षयार्थं भाव पूजादेव वंदना स्तवसमेतं, श्रीमल्लघु सिद्ध भक्ति योगभक्ती कृत्वां, आदौ ॐ झ वं ह्यः पः ह. क्षी अर्हं सर्वं शांति कुरु कुरु इ्वीय क्ष्वीयहं सः स्वाहा॥ इति शान्ति मन्त्रेण गधोदकेन त्रिः परि सिच्य मस्तकं दक्षिण हस्तेण स्पृश्येत्॥

भावार्थ—अथ "बृहदीक्षायां" पासून "स्तव समेत" पर्यंत म्हणून लघु सिद्ध भक्ति तथा लघुयोगि भक्ति करणे "ॐ झं वं आदिकरून "स्वाहा" पर्यंत हा शान्ति मंत्र म्हणून मस्तकावर गंधोदक ३वेला घालणें। नंतर पुढील मंत्रानें मस्तकास उजवा हात लावणें॥

ॐ नमोर्हते भगवते नमः श्री शान्तिनाथाय सर्वं शान्ति कराय सर्वं विघ्न विनाशाय सर्वं पर कृत क्षुद्रोपद्रव विनाशनाय ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा 'देव दत्तस्य" सर्वं शांति कुरु कुरु स्वाहा॥ या मंत्राने मस्तकास हाताचा स्पर्श करावा॥

ततो दध्यक्षत गोशर्करा भस्म दूर्वांकुरान् गधोदकादितान् मस्तकं लेपयेत्॥

भावार्थ—त्यानंतर पुढील मंत्रानें दही, अक्षत, सुगंध, चूर्ण, साखर, भस्म व पांढरी हरालो ह्या सर्वजिनसा गंधोदकांत कालवून मस्तकांस लेप करणें ॥

मंत्र—ॐ णमोभय वथो वढ्ढमाणस्स जस्स धम्म चक्कं जलंतं गच्छयि आयासं पायालं लोयाणं भूयाणं भूये वा रणे वा मरणे वा सव्व जीव संताणं मम अपराजिदो होदि अ सि आ उ सा स्वाहा ॥ इति मंत्रेण ॥

यामंत्राने वरसाँगित लेल्या जिन सांचा लेप करणे ॥ निक्षिप्य मस्तक मध्ये चतुर्दिक्षु केशोत्पाटन मंत्रेण लुंचनं कुर्यात्

भावार्थ—मस्तकाच्या मध्यभागीं व पूर्व दक्षिण पश्चिम उत्तर ह्या चार भागी थोडे थोडे केश राखून बाकीचे सर्व केश पुढील मंत्राने उपडन टाकणें ॥

मंत्र—ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं अ सि आ उ सा

या मंत्रानें केश उपडणें मग मध्य भागी राख लेलें केश त्याच मंत्राने प्रथम उपडावे नंतर पूर्वादि क्रमानें चारि ठिकाणचे राख लेले केश उपडणे ॥

इति लुचनांते वृहत्सिद्धि भक्ति विधाय निष्टाप्यच वस्त्राभरण यज्ञोपवितादिकं परित्यजेत् ॥

भावार्थ—या प्रमाणे केश उपडल्यावर दीक्षा पुरुषानें वृहत्सिद्ध भक्ति म्हणून निष्टापना करावी नंतर अंगावरोल अलंकार, वस्त्र, यज्ञोपवीत व कडदोरा काढून टाकावेत ॥

तत शिरः प्रक्षालन शुद्धयनंतर काश्मीरादिमिश्रचंदनं ॐ ह्रीं अर्हं अ सि आ उ सा ह्रीं स्वाहा इत्यनेनाष्टोतर शत सित पुष्पं परिजाप्य मस्तक मनुलेप्य ॐ ऐं श्रीं क्लीं अर्हं इति पंच वीजाक्षराणि मस्तक मध्यादि पंच स्थानेपु लिखेत् .

भावार्थ—वस्त्रालंकार टाकल्यानंतर प्रासुक जलानें मस्तक स्वच्छ धुणें। मग काश्मिरादि सुंगंध मिश्रित चंदनाचा गंध तयार करणें। नंतर "ॐ ह्रीं अर्हं अ सि आ उ सा ह्रीं स्वाहा" या मंत्राने पांढरी सुगंध फुलें घेऊन १०८ जापदेणें त्यानंतर मस्तकास तयार केलेल्या गंधाचा लेप करणें नंतर "ॐ ऐं श्रीं क्लीं अर्हं" हीं पांच बीजाक्षरें मस्तकाच्या मध्य भागीं व पूर्वादि चार भागीं लिहिणें ॥

ततः सिद्ध चारित्र भक्तयाऽलोचनां कृत्वा, अष्टाविंशति मूल गुणान् पट त्रिंशदुत्तर

गुणान समारोप्य, बृहत्प्रतिक्रमण निष्टित करण वीर भक्ति चतुर्विंशति तीर्थंकर भक्ति बृहदाचार्य चूलिकाचार्य भक्तिं कृत्वा जेष्ट ऋषिचाऽभिवंदयेत् ॥

भावार्थ—बीजाक्षरे लिहिल्यानंतर सिद्ध भक्ति, चारित्र भक्ति व आलोचना ह्या क्रिया करून २८ मूलगुन व ३६ उत्तर गुण यांचे आरोपण करणें। नंतर बृहत्प्रतिक्रमण, निष्टापन, वीर भक्ति, चतुर्विंशति तीर्थंकर भक्ति, बृहद् आचार्य चूलिका व आचार्य भक्ति ह्या सर्व क्रिया करून आपल्या जेष्ट गुरूस वंदन करणें॥

ततो वाम हस्ते तोद्धृत्य ॐ ह्रः भोंऽते वासिन् जन्म काय कुलादि जीवनिकाय्यानि करान् संरक्षेति इदं पिच्छ बर्हं दद्यात्।

भावार्थ—त्यानंतर गुरूने "ॐ ह्रः भोंऽतेवासिन" आदिकरून "संरक्षेति" येथ पर्यंत मंत्रम्हणून डाव्या हातानें शिष्यास जीव जंतु रक्षणासाठीं पिच्छी उचलून देणें॥

ततः ॐ ह्रौं भोंऽते वासिन् ज्ञानावरणादि दुष्टाष्ट कर्म मल प्रक्षालनाय इंद्र शौचोपकरणं गृण्हन स्वाहा॥

भावार्थ—त्यानंतर वरील मंत्र म्हणून गुरूनें ज्ञानावरणादि आठ कर्म मल धुवून टाकण्या करिता कमंडल देणें॥

ततः ॐ ह्रूँ भोंऽते वासिन् केवलज्ञान संप्राप्तायेति ज्ञानोपकरणं गृण्हण स्वाहा॥

भावार्थ—त्यानंतर सदृश्चामंत्र उच्चारून गुरूनें शिष्यांस केवलज्ञान प्राप्त होण्या साठीं शास्त्र देंणें॥

॥ इति दीक्षा विधि॥

अथ उपाध्याय पद दान विधि

सुमुहूर्त दाता गणधर वलयार्चन द्वादशांग श्रुतार्च्चनं च कारयेत॥ ततः श्री खंडादिना छटाः दत्वा तंदुलैः स्वस्तिकं कृत्वा तदुपरि पट्टकं संस्थाप्य! तत्र पूर्वाभिमुख तमुपाध्याय पद योग्यं मुनिमासायत्॥ अथ उपाध्याय पद स्थापन क्रियायां पूर्वाचार्येत्यादि उच्चार्य सिद्ध, श्रुत भक्तिः पठेत्॥ तत आवाहनादि मंत्रानुच्चार्य शिरसि लवंग पुष्पाक्षतानि क्षिपेत्॥ तद्यथा

ॐ ह्रौं णमो उवज्झायाणं॥ उपाध्याय परमेष्टिन् ऽत्र एहि एहि संवौषट् आह्वाहनं॥ ॐ ह्रौं णमो उवज्झायाणं उपाध्याय परमेष्टिन् तिष्ट तिष्ट ठ ठ स्थापनं॥

ॐ ह्रीं णमो उवज्झायाणं उपाध्याय परमेष्टिन् सन्निहितो भव भव वषट् संनिधी करणं ॥ ततश्वं ॐ ह्रीं णमो उवज्झायाणं उपाध्याय परमेष्टिने नमः ॥ इमं मंत्र समुच्चार्य सुगन्धिता चंदनेन शिरसि अर्मिसि ययेत् । तत शांति, समाधि भक्तिः पठेत् । ततः स उपाध्याय गुरु भक्ति दत्वा गुरुं प्रणम्य दात्रे आशिषं दद्यादिति ॥

-समाप्तम्-

श्री आचार्यपद स्थापना विधि

सुमूहूर्त दाता शांतिकं गणधर वलयार्चनं रत्नत्रयार्चनं च यथा शक्ति कारयेत्। ततः श्री खंडादिना छटाः दत्वातंदुलोः स्वस्तिकं कृत्वा। तदुपरि चतुष्क पटं संस्थाप्य तत्र पूर्वाभिमुखं तमाचार्य पदयोग्य मुनिमासादयत। अथाचार्य पद प्रतिष्ठापन क्रियायामित्यादि उच्चार्य सिद्धाचार्य भक्ति पठेत्। ततः ॐ ह्रूं परम सुरभि द्रव्य सन्दर्भ परिमल गर्भ तीर्थांबु संपूर्ण सुवर्ण कलश पंचक तोयेन परिषेचयामीति स्वाहा॥ इति पठित्वा कलश पंचकतोयेन पादौ परिषेंचयेत ॥ ततः पंडिताचार्य निर्वेद सौष्ट वेत्यादि महर्षिस्तवनं पठेत् ॥ पादौ समंतात्परा मृश्य गुणा रोपणं कुर्यात्। ॐ ह्रूं णमो आयरियाणं आचार्य परमेष्टिन् ऽत्रएहि एहि संवौषट् आवाहनं ॥ ॐ ह्रूं णमो आयरियाणं आचार्य परमेष्टिन्ऽत्र तिष्ट तिष्ट ठ ठ स्थापनं ॥ ॐ ह्रूं णमो आयरियाणं आचार्य परमेष्टिन् सन्निहितो भव भव वषट् सनिधीकरणं ॥ इति आवाहनादिकं कृत्वा।

ततश्च ॐ ह्रूं णमो आयरियाणं धर्माचार्याधिपतये नमः। अनेन महेंदुना चंदनेन पादयोस्तिलकं दद्यात् ॥ ततः शाँति समाधि भक्ति कृत्वा गुरू भक्तया गुरुं प्रणभ्यो पविशति ॥ ततः उपासकास्तस्य पादयोरष्ट तयीमिष्टिं कुर्वंति ॥ यतयश्च गुरू भक्तिं दत्वा प्रणमंति । सदात्रे अन्येभ्य उपासकेभ्य अशिकं दद्यात् ॥

॥ इति आचार्य पद दान विधि ॥



अथ श्रीगौतम स्वामी स्तवन

कर्मारण्य मदीदहत्प्ररतया योवीभरत्केवलं।
भव्यानां भव तीव्रताप सखिलं योदीदलत दुःसहं ॥
श्रुद्धानंत चतुष्टयं शिवपथं योची कथत्प्राणीनां।
सोस्मान् रक्षतु गौतमोगुणनिधिः कारुण्य पूर्णाशयः ॥१॥

पुण्यैर्मामिह पावनं यदि भवानु धर्तुं मीशोस्तिचेत्।
किंते देवदयालु ताऽपमता सामर्थ्यंतायाः फलं ॥
किं तु द्वेषति प्रकर्ष जनिता त्या पादधो गामिने।
हस्तालंबन मंत्र मह्यमसकृद्दत्ते तदा तत्फलं ॥२॥

वाचस्त्ववहण जल्पते सुरगुरो र्नालि श्रुताब्धे प्रभो।
तत्रास्माकम जानतां मतिलवं कावाकथा कथ्यते ॥
धृष्टत्वेन तथापिते भगवतः प्रारम्यते यः स्तवः।
सत्वा प्राप्यमनोधि नोतु कलिकामाम्रस्यवा कोकिलः ॥३॥

दुः प्राप्या भवकोटि जात विषम क्लेषैस्तयोभिः परोः।
मुक्तिर्गौतम सार सौख्य वसतिः स्वात्पोत्थ चिद्बोधिनी ॥
दातुतामपि भाविता त्वयिविभो भक्तिश्चशक्नोति चेत्।
संपत्कास्ति परानया भुवितयासं दीयते देहिनां ॥४॥

एकोनर्तत्रिकामाश्रु गहतविबला भ्रांत चेताः शबर्या।
अन्यो भोग्यांगनानां कुच कलशतटी लोकने व्यग्रमूर्ति ॥
दृष्ट्वा शंभोःसुयोषाप्रगलितसिकताप्रातरेताःप्रजासृट्।
सर्वे संसार बीजं कथमपि भगवन्नैवतेयांति साम्यं ॥५॥

ॐ ह्रीँ श्वीँ मुच्यते श्री तदनुच अरहं, लप्यतेस्या उसांते।
पठ्यंते प्रातिचक्रे, फटि तिच सवि चक्राय वर्णायवाच्यौ ॥
झ्रौँ झ्रौँ स्वाहातयुक्तौ, सकल सुखकरो मंत्र राजोयमुच्चै।
रे कांतेतेन भव्यः, स्मरतिगण भूतस्तस्य सर्वार्थसिद्धिः ॥६॥

अनेन मंत्रेण जाप्य क्रियते ।। अनुच द्वितीये नापि ।।

ॐकाराग्रं णमो युक् तदनुच अरहंता णमोकार युक्तं ।
वाच्यं पश्चाज्जिजाणाणां, णम इति सहितं ।।
ह्रां ह्रीं यं ह्रूं च वर्णाः ग्राह्याः ह्रौं ह्रः इतीमौ, पुनरपि असिआ ।
अग्रतो वाउ सौ द्वौ, पठंचते घाति चक्रे, फटि तिच स विचक्राय होमांत युक्तं ।।७।।

ताव दुःखं जनग्नां, भयमतुलमलं, रोग शोकौच तावन् ।
दुर्भिक्ष्यं दीनता वा, मरकमघ भरः सर्वं चिता दरिद्रं ।।
हत्या कृत्या च भूता,ग्रहविषरिपवः शाकिनी डाकिनी वा ।
तावद्बधेत देहे, गणधर गणिनो, नामयावन्नचित्ते ।।८।।

दुःखं सौख्यति मित्रति प्रतिदिनं शत्रुदृषत्स्वर्णति ।
शोकोप्युद्धावति स्रजत्यसिलता रोगः पुन र्भोगति ।।
वन्हिर्नीरति सार्थति प्रति पथं दस्युर्हरि र्वाछति ।
आस्ते किं भुवने शुभं तव पदौ मर्तुः शुभंनो भवेत् ।।९।।

सिद्धांतोप्यखिलो न ते गुणवतः पारंमहिम्नोगत ।
स्तत्र ज्ञानलवेप्य शुद्धमतयः केहंत मूढावयं ।।
यः कूपं तरितुं न तुच्छ पयसं जानाति हीनो जन ।
स्तस्याग्रेः सदुदत्वतः कथमहो वार्तापिरम्या भवेत् ।।१०।।

स्वर्भूपाताल लोके, सकल वलयुतो, मोह एवास्तिराजा ।
यस्मातेन प्रयुक्तं, भ्रमति जगदिदं, सर्वं कार्येष्ट धीनं ।।
नीरागास्ता स्त्वयासौ सकल परिजनो घाति तस्तदनादि ।
ज्ञात्वा चित्ते प्रभुत्वा मिति तवपुरतो विश्वमासीद्धिनम्र ।।११।।

मुक्तिस्थान जुष्टे प्रकृष्ट वचसे प्राणि प्रदत्तायुषे ।
निर्द्धूतात्मरुपे परिग्रमुषे स्वात्मोत्थ सत्तो ।।
जसे भव्य प्राणि पुरुषे प्रसिद्ध विदुषे ज्योतिमयागत्वेष ।
कीर्ति व्याप्त दिगेतमः सुमनसे धर्मामृत प्रावृषे ।।१२।।

त्वंधेय स्त्वंच देवस्त्वमसि गुरु तमस्तुछ बुद्धे र्ममायं।
इत्यालापः सुभक्तर्चा भवंति जन गुरो सर्व तत्वैक रूपे॥
महात्म्यं तैष्य जल्पन् सकलमिह विभो सौख्य हेतोरिवाब्धे।
संस्पर्शः क्षीरभाजो भवतिमल हरः पाथं वृंदस्य मार्गे॥१३॥

शुद्ध ज्ञान चारित्र दर्शन मयं केचित्कदाचित्कृता।
मन्यंतेन निज प्रदोष वशतः किंतर्हि मान्योभवेः॥
मूर्छायाश्रित देहिताय दमनः सस्यावढूदो जनैः।
किं वा नाद्रियते सुचंपक तरू स्त्यक्तोपि भृंगव्रजैः॥१४॥

सग्रंथोपि सदाबुधोत्तम जनै निग्रंथको गीयते।
भूदेवोपि च कृष्ण वर्त्म विमुखो नग्नोपि भूतिप्रदः॥
सद्रत्नत्रय मंडितोपि विगलद्भूणोप्य मानो महान्।
त्वद्वृत्तं व्रतयोगिना मपिहू दिव्या मोहतामानयेत्॥१५॥

चिंताधेनु सुरद्रु मौदिवगतं मणिक्यं च नौषधे।
निःशक्तित्व मुपाश्रितं रविकजै दूरे प्रदेशे स्थितं॥
त्वन्नाम्नि प्रसभं प्रकुर्वंति मनो भीष्टं च रोग क्षयं।
उद्योतं च जगत्रये बुधनुते व्यर्थंस्य काप्रार्थना॥१६॥

सद्धृत्तः कमलालयो हरिगतिः शुभंत्कलः कामदः।
सारंग स्थिति रुन्नतः शिवपदः सत्तारकाधीश्वरः॥
दोषोद्भूत तमोपहो बुधमनः स्नेहः समुद्राश्रयः।
लोकेचंद्र इव प्रमोद जनकः श्री गौतमो गो जनिः॥१७॥

अज्ञानाघत कर्मलग्न मसकृ धर्माच्युतं सौख्यदम्।
वित्ताशा हतमान संमनसिज व्यामोहनिद्राश्रितं॥
कैवल्यामल मार्ग दृष्टि विमुखं यावच्चमाने क्षुते।
तावदुर्गतिरात्म विद्भगवता कार्यः प्रयत्नो महान्॥१८॥

नक्षत्रेशः सदोषो, जड तनु भवनः षंडवृत्तः कलंकी।
सूर्योप्या तापकारी वर तपसि सदा स्वल्प भावः सकुष्टः॥
रामो भ्रांतो वने गे कनक मृग तृषा सागरोऽगस्ति दुष्यः।
सर्वेनायाति साम्यं तव गुण वलयतेः स्व स्व दोषै समेताः॥१९॥

लीला हंसति कोकिलो मृगमदः, कर्पूरति श्रीपतिः ।
गौरिकांत कौतलश्च सरति स्वर्भानु रंभो जति ॥
सर्प्पःशेष तिदंत्ति नामपिगणः स्वर्नाथ मातंगति ।
त्वत्कीर्तेः परिघदनाद परित्न सद्गंगामतरंगात्विषः ॥२०॥

सधर्मीयसि मानिनीयसि महोभोगोयसि ।
श्रीश्रसि संतानीयसि मंदरीयसि सदामानीयसि ॥
श्रीयसि नीरोगीयसि मंगलीयसि लसदानीयसी ।
हाद्भुतं चच्चेतो विकल स्वभाव चपल श्री गौतमचिंतय ॥२१॥

भव्याना मिहैवसु पूजित पदस्त्वं सर्व सौख्य प्रदः ।
किंतुस्त्वांतक जे स्मृतोपि भगवन् बोधार्य मोद्बोधिते ॥
उग्र ग्रीष्म रुतावगाहनमलं पद्माकरस्यामलं ।
अगत्यं स्तदुयाति काच्चपवनश्चेता पविछित्तये ॥२२॥

प्राप्ता कर्मवशात्सुदुर्लभतया विद्यामयासद्गुरो ।
स्त्वं कारुण्यमयः श्रितांगि शिवदश्चेत्स्क्रय सेनोतया ॥
सावार्ण वत चित्तमान जननील
वरं संनूर्वाकुल वृधयेत्समभवन्नाशाय चोत्कंततः ॥२३॥

स्तुत्वा त्वा सकलार्थि कल्पतरु भंनोप्रार्थये वाँछया ।
त्वं तस्याः स्वयमेव दातृनिपुणः किं प्रार्थनायाः फलं ॥
बिंब दर्श यतोति निर्मलतरात्किदर्पणो प्रार्थना ।
कुर्वन मूढतया नयाति विदुषां प्राप्ते सवै लक्ष्यतां ॥२४॥

भास्वत् क्वांति कलानिधिः समभवद्दंगं वरीये मते ।
चांच्चद्दहंकरः सभाति चतुरः श्रीमत्प्रभाचंद्रमाः ॥
तत्पट्टे जनिवाद वृंदतिलकः श्री वादि चंद्रो गुरु ।
स्तेनायंप्पर चिस्तवो गणभृतः श्री गौतम स्वामिनः ॥२५॥

नेत्र वेद षडब्जांके वर्षे मासि शुचा विदं स्तोत्रं ।
व्यरी रचत्सूरिर्घंनी घेवादि चंद्रभाः ॥२६॥

॥ इति श्री वादिचंद्र सूरि विरचितं श्री गौतमस्वामि स्तवन समाप्त ॥

करुणाष्टकं

त्रिभुवन गुरो जिनेश्वरं, परमानंदैक कारणं कुरुष्व।
मयि किंकरेत्र करुणां तथा यथा जायते मुक्तिः ॥१॥
निर्विण्णोहं नितरा मर्हन्, बहु दुःखया भवस्थित्याँ।
अपुनर्भवाय भवहर, कुरु करुणामत्र मय दीने ॥२॥

उद्धर मां पतितमतो विषमाद्भव कूपतः कृपा कृत्वा।
अर्हन्नलमुद्धरणे त्वमसीति पुनः पुनर्वच्मि ॥३॥
त्वं कारुणिकः स्वामी त्वमेव शरणं जिनेश तेनाहं।
मोहरिपुदलितमानः पूत्कारं तव पुरः कुर्व्वे ॥४॥

ग्राम पतेरपि करुणा परेण केनाप्युपद्रुते पुंसि।
जगतां प्रभोन किंतव जिनमयि खलु कर्म्मभिः प्रहते ॥५॥
अपहर ममजन्म दयां कृत्वेत्येकत्व वचसि वक्तव्ये।
तेनाति दग्ध इतिमे देव वभूव प्रलापित्वं ॥६॥

तव जिन चरणाब्जयुगं करुणामृत संगशीतलं यावत्।
संसारातप तप्तः करोमि हृदि तावदेव सुखी ॥७॥
जगदेकशरणं भगवन्न सम श्रीपद्म नंदित गुणौघ।
किं बहुना कुरु करुणामत्र जने शरण मापन्ने ॥८॥

॥ इति ॥

❀ उत्कृष्ट श्रावक ❀

घरको तज मुनिवन को जाकर, गुरु-समीप व्रत धारणकर।
तपते हैं भिक्षाशन करते, खंड वस्त्र धारी होकर॥
उत्तम श्रावक का पद यह है, जो मनुष्य इसको गहते।
उन्हें श्रेष्टजन क्षुल्लक ऐलक, भाग्यवान् श्रावक कहते॥

आत्म संबोधन

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

नत्वा वीर जिनेन्द्र मिंद्र महितं भव्यात्मनां संहितं।
प्राणि त्राण तनुत्र भूतमतुलं संसार बाधापहं॥
कुर्वेहं प्रथिमाननिर्म्मलगुण ग्रामाभिराम सुमं।
ग्रंथं भव्य मनोहरं भवहरं नाम्नात्म संबोधनं॥१॥

रेवात्र मुधैव दैवगतिनां लब्धं, नरत्वं त्वया।
संसारे भ्रमता सदासुखमये नित्ये चतुर्योनिषु॥
सम्यग्दर्शन बोध वृत्त विकलं मामुंचय--दुर्ल्लभं।
तन्नष्टं पुनरिष्टमंगमहता कष्टेननो लभ्यते॥२॥

रेपापिष्टं निघृष्ट दुष्ट कुमते प्राणिन् कृपा वर्जितात्।
किं किं वा विधुरं भवेत्र भवता नाप्तं महद्दुःसहं॥
मत्वा त्वं मनसीति भीति सहितः सर्वागिनां सर्वदा।
वा चांगेन सुचेतसा मृदुतया शिघ्रेण कुर्याः कृपां॥३॥

रे रे निष्टुर निष्टुरं शुभहरं यत् प्राणि पीडाकरं।
निद्यं दुर्वचनं च तथ्यविकलं मां ब्रूहिवाचा शुभं॥
प्राणिन् दुर्गति दीपकं गतमते त्वं केनचित्हेतुना।
यस्मादत्र महीतले गुणगणागारंहि भस्मी भवेत्॥४॥

कृत्याकृत्य विचार च चार्जित मते मोहात्परेषांधन।
हर्तुं चितसि चेत सोतिसुतरं दृष्ट्वा द्रुतं हुर्मते॥
अत्रं चापि भयं न भूपर चितं ते मुत्रनो दुग्रं ते।
नीचोच्चादि विवेक भावरहितं त्वं मन्यसे किं स्थिरं॥५॥

रे सत्कर्म्म विमुक्त जीवरभसा मागाः सुखं मानसे।
दृष्ट्वा स्त्रीजन संहतिं हतमते तच्चापदां वा पदं॥
यस्याः संगममात्रतोपि महिमातिख्याति कीर्त्यादयो।
गछंति प्रसभ ततोन महता कार्या हितत्संगतिः॥६॥

कल्पांतोद्गतवात संहतिहतो वार्द्धिर्वरंगाहितो।
व्याल व्याघ भुजंग भीषण वनं सं सेवितं वावरं॥
सर्वाप्लोष करोद्धतोज्वलशिखो वन्हिर्वरं चाश्रितो।
रे जीवोद्धत बुद्धिमान्नहिवरं सीमंतिनी संगमः॥७॥

स्त्रीणांकाय कुटीर के निजरिपो रे नास्ति किंचिच्छुभं।
दुर्गंधा शुचिसप्त धातु कलिते हीचर्मणाछादिने॥
विण्मूत्रादिभृते विमूढ विमते निंदा पदे पापदे।
किं मोहंमनसा प्रयासि भ्रमतः पापिष्ट लज्यागतां॥८॥

रे लज्जा हीन दीन प्रतिहतं निपुण व्यस्तसन्मार्ग वृद्धे।
सिद्धेः सौख्याभिलाषं व्यसनगतमतेयाचितो योमहद्भिः॥
हित्वातं कामिनी नामतिरत कुमते संगमं यां वांछसि।
त्वंमन्ये जीवात्मशत्रो कथमपि विधि ना वंचितोसीतिनूनं॥९॥

तत्केतुर्नहि मूढ जीव नृपतीरुष्टो पिदुष्टोपिदुष्टो।
द्विपोन व्याघ्रः क्षुधया द्विपारि रतुलोनोपन्नगः पावक॥
नक्ष्वेडो नयमो नशत्रुरपरो रामारते दुर्मते।
यद्दुःखं वितनोति वाक्षण कृतो रे कामिनी संगमः॥१०॥

धर्म्मध्वंस्तयते तनोति विधुरं पापंचिनोतित्वरं।
कामंवर्द्धयते विहंति सुमतिं कीर्त्यादिकं नाशयेत्॥
लज्जांहंति कुबुद्धिमत्र कुरुतेरागं धुनीतेशमं।
किं किं जीवन संगमोपि कुरुते स्त्री स्त्रीकृतश्चाशुभं॥११॥

रे रे संवर युक्ति मुक्ति विमते चित्तेन ते भासते।
दुर्वार्ता हत नीर क्रूर सहशा सीमंतिनी चंचला॥

सौख्यं यत्करणोद्भवं च तरलं मत्तांगना पांगव ।
दृहं बुद्बुद संनिभं जलमुचः श्रीरिंद्र जालोपमा ।।१२।।

किं जानासि न जीव देहमशुचीनां गेहमालोकना ।
क्रूध्यैरोगजरादिभिः प्रतिदिनं गच्छव्यवस्थातरं ।।
विण्मूत्रादि विसंकुलं शुचितरं किमन्यसे दृ‌ मंते ।
युक्तायुक्त विमुक्तरिक्तमपटो सारैः सुगंधादिभिः ।।१३।।

रे जानासि न जीव संसृति सुखं दुःखाश्रितं दुर्मते ।
प्रत्यक्षंकिमुनेक्षसेपि भुवनं मुग्धेंद्र जालोपमं ।।
किं कर्णेन श्रृणोषि मूढ विरसं स्त्रीसंगम निंदितं ।
यस्मादत्र पुरातपो धनवरा नष्टागरिष्टा नराः ।।१४।।

ज्ञानाभ्यासं विधस्त्वत्यज किलविषयं सद्गुरुं त्वं भजात्मन् ।
माया लिप्ता श्रयालं बुधजन पदवीं निर्दयत्वं जहाहि ।।
सतोषं संविधे हिव्यसन विमुखता मेहि मुंचैव कोपं ।
चित्ते चेदस्ति जीवा प्रविमल विमलो मुक्ति सौख्याभिलाषः ।।१५।।

रे जीवाज्ञप्रमोदं गुणवति करुणां प्राणिवर्गेषु शत्रौ ।
मध्यस्थत्वं च मैत्रीमय ववतिभवतो भीतिमक्षार्थं रोधं ।।
क्रोधादित्याग मात्मन् जिनवचसिरति मोक्ष सौख्याभिलाषं ।
भव्यानुष्टान निष्टच्युतनिखिल मलं जैन धर्मं कुरुष्वं ।।१६।।

बोधे बुद्धि निधेहि प्रमद गिरिकुलं भिद्धिमुंच प्रकोपं ।
तत्वं चित्ते विधेहि व्यसनगतमते काम वृक्षं लुनीहि ।।
धर्म्मध्यानं कुरुष्व प्रशमदमयमानेहिरे जीव तूर्णं ।
त्वंमानुष्यं पुनीहि प्रचरण विरते पाप पंकं धुनीहि ।।१७।।

संसारे सार जालेक्षण रुचि चपले यासिरे जीवनाशं ।
तारुण्याद्रेक रंम्यामतिमदसहितां भामिनी वीक्ष्यमोहात् ।।
कुर्वाण स्तत्प्रसंगं विगलित सुमते मूढ भावने तस्मा ।
त्वस्यां संसर्गतोषि प्रविरमयदिते सौख्य संघेस्ति वांछा ।।१८।।

रे जीवत्वं कुरुष्व व्रतचरणैः पुण्यपात्रं पवित्रं।
नेत्रं स्वकीयं जिन चरण युगालोकनात् संगमात्रं ॥
सीमंतिन्याः प्रयासि प्रशमगतमते ह्रीयदि प्रीतियोगा।
त्त्र्हित्वं यासिनाशं गत घृण भुवने सत्वरं रेहत्माताात्मन् ॥१६॥

यद्वद्रागं करोषि स्मरशर निहतः कामिनीनां शरीरे।
तद्वत्त्वंजीव धर्म्मेजिनवरगदितेभाव शुद्धचा विद्ध्याः ॥
तस्मात् किंकि नयासि प्रगतभवजरा मृत्यु दोषं सुखौघं।
नोचे द्दुःखौघंमात्मन् भवभय जनकं यासिरे नीच वुद्धि। २०॥

हित्वाभोगोपभोगान् स्थिरविशद धियामानसं जैन वाक्ये।
हेयाहेयादिवस्तु प्रगट निपुणे धर्म्मं वुद्धयाविदध्याः ॥
सर्वसंगविमुंच प्रचलमसुखदं ध्वेस्त सद्धयान कार्यं।
तावद्रे जीवमूढ व्यपगत विपदं नित्यं सौखं प्रयासि ॥२१॥

संसारे सौख्य हेतुं तुद मदन रिपुं मर्द्दयत्वं प्रलोभं।
तत्त्वत्यक्त प्रणीते परिहर जरजनक भ्रातृभार्यादिमोहं ॥
चारित्रं यत्पवित्रं शशिरुचिविशदं दर्शनज्ञान युक्तं।
तच्चित्ते संनिधेहि प्रतिहत सुमते जीव जैन प्रणीतं ॥२२॥

यः कोपं कुरुतेनिमित्त रहितोलं सज्जनं निंदति।
स्तौतिस्वं किलभाषते च वितथं वाक्यंसदानिष्टुरं ॥
सर्वोद्वेग विचक्षणेद्विरशन शश्वद्दया र्वज्जितो।
रेतंमाभज जीव जीव मेचक मति कृष्णाहि वद्दुर्ज्जनं ॥२३॥

जायंते चतुरंग मागजघटारमा रमा रम्यता।
विक्षताः सुभ कीर्ति कांति महिमो दारत्व सौर्यादयः ॥
लभ्यंते जिन चक्रवर्ति बल भृद्भोगेंद्र भोगायत।
स्तं धर्म्मं कुरु मुग्ध बहुनार्कि साध्य मुक्ते नवा ॥२४॥

काव्यैर्विंशतिभिश्चतुर्भिरधिकैररम्यै श्रुसल्लक्षणं।
ग्रंथ स्वात्मनि बोधनं भवपथ भ्रांति श्रमच्छेदनं ॥
विक्षातो भुवनादि कीर्त्ति मुनियः संवेगिनामग्रणी।
त शिष्यो भुवबोध भूषण मुनिश्चक्रे ति- संवेगिनः ॥२५॥

इति भ० श्रीभुवन कीर्त्ति शिष्य ज्ञानभूषण विरचित आत्म सबोधनं समाप्तम् ॥

यति भावनाष्टकम्

आदाय व्रत मात्म तत्व ममलं ज्ञात्वाथ गत्वावनं।
निःशेषा मपिमोह कर्म्म जनितां हित्वा विकल्पावलो ॥
ये तिष्टंति मनोमरुच्चिद चलं कत्व प्रमोदंगता।
निः कंपागिरि वज्जयंतिमुनय स्ते सर्व्व संगोझिताः ॥१॥

चेतो वृत्ति निरोधनेन करण ग्रामं विधायो द्वसंत।
संहृत्यगतागतं चमरुतो धैर्यं समाश्रित्यच ॥
पर्यंकेनमया शिवाय विधिवत्सून्यैक भूभृद्दरी।
मध्यस्थेन कदाचिदर्प्पित दृशास्थातव्यमंतर्मुखं ॥२॥

धूली धूसरितं विमुक्त वसनं पर्यंकमुद्रागतं।
शांतं निर्व्वचनं निमीलित दृशं तत्त्वोपलंभेसति ॥
उत्कीर्ण दृष दीवमांवन भुवि भ्रांतो मृगाणां गणः।
पश्यत्पुद्गल विश्मयो यदि तदा माद्दग जनः पुण्यवान ॥३॥

वासः शून्यमठे क्वचिन्निवसनं नित्यंककुपमडल।
संतोषोधन मुन्नतं प्रियतमा क्षांतिस्तपोवर्त्तनं ॥
मैत्री सर्व्व शरीरिभिः सहसदा तत्त्वैक चिंतासुखं।
चेदास्तेन किमस्ति मे समवतः कार्यं न किंचित्परैः ॥४॥

लब्धाजन्म कुले शुचौर्वर वपुर्वंह्वश्रितं पुण्यतो।
वैराग्यं चकरोतियः शुचितयो लोकेसएकः कृती ॥
ते नैवोझित गौरवेन यदिवाध्यानामृतं पीयते।
प्रासादे कलशस्तदा मणिमयेहैमः समारोपितः ॥५॥

ग्रीष्मे भूधर मस्तकाश्रित शिलां मूलंतरोः प्रावृषि।
प्रोद्भूते शशिरे चतुःपथ पदं प्राप्तास्थितिं कुर्वते ॥
येतेषां यमिनां यथोक्त तपसां ध्यान प्रशांतात्मनां।
मार्गे संचरतो मम प्रशमिनः कालः कदायास्यति ॥६॥

भेदज्ञान विशेष संहृतमनो वृत्तिः समाधिपरो ।
जायेताद्भुत धाम धन्याशमिनां केषांचिद त्राचलः ॥
वज्रे मूर्द्धि्न पतत्यपि त्रिभुवनेवह्निः प्रदीप्ते पिवा ।
येषां नोविकृतिर्म्मनागपि भवेत्प्राणेषु नश्यत्स्वपि ॥७॥

अंतस्त स्वमुपाधिवर्ज्जित महंत्याहार वाचापरं ।
ज्योतिर्यैः कलितसृतंच यतिभिस्ते संतुनः शांतयो ॥
येषांतत्सदनं तदेवशयन तत्संपदं तत्सुखं ।
तद्वृत्तिस्तदपि प्रियं स्तदखिलं श्रेष्टार्थ संसाधनं ॥८॥

पापारि क्षयकारि दातृ नृपति स्वर्गापवर्गश्रियं ।
श्रीमत्पंकज नंदिभि विरचितं चिच्चेतना नंदिभिः ॥
भक्त्यायो यति भावादाष्टकंमिदं भव्यास्त्रि संध्यापठे ।
तिंक किं सिध्यति वांछितन भुवने तस्यात्रपुण्यात्मनः ॥९॥

॥ इति यति भावनाष्टक समाप्तमिति ॥

॥ ॐ नमो जिनाय ॥

अहिंसा

तीन योग औ' तीन करण से, त्रस जीवों का वध तजना ।
कहा अहिंसाणुव्रत जाता, इसको नित पालन करना ॥
इसी अहिंसाणुव्रत के है, कहलाते पञ्चातीचार ।
छेदन भेदन भोज्यनिवारण, पीड़न बहुत लादना भार ॥
इसी अणुव्रत के पालन से, जाति पांति का था चॉडाल ।
तो भी सब प्रकार सुख पाया, कीर्तिमान् होकर यमपाल ॥
नहीं पालने से इस व्रत के, हिंसारत हो सेठानी ।
हुई धनश्री ऐसी जिसकी, दुर्गति नहिं जाती जानी ॥

सर्वज्ञ स्तवनम्

–श्री जयानन्द सूरि विरचितं–

देवाः प्रभो! यं विधिनात्म शुद्धयै। भक्त्याः सुमेरोः शिखरेऽभ्यषिंचन ॥
संस्तूयसे त्वं स मया समोद। मुन्मील्यते ज्ञानदृशा यथामे ॥१॥

ध्यानानु कंपाधृतयः प्रधानो। ल्लासिस्थिराः ज्ञान सुखक्षमं च ॥
सुनाथ ! संतित्वयि सिद्धि सौधा। धिरूढ ! कर्मोज्झित !विश्वरुच्य ! ॥२॥

संसार भीतं जगदीश ! दीनं। मां रक्ष रक्षाक्षम ! रक्षणीयम् ॥
प्रौढ प्रसादं कुरु सौम्य दृष्ट्या। विलोकयस्वीयवचश्च देहि ॥३॥

नतेन्द्र ! विद्रावितदोष ! दत्त। दाना दरिद्रा अपि वीत दौःस्थ्या ॥
त्वया कृता भूरिधना अनंत। ज्ञान ! द्विषान् सूक्ष्म ! मंक्षु मासान् ॥४॥

द्वित्रैर्भवै मुक्तिमना द्विपाद्या। स्तव श्रीपूजां विदधत् त्रिसंध्यम् ॥
कल्याणकानां जिन ! पंचपर्वी। माराध्य भव्यः क्षिपतेऽष्टकर्म ॥५॥

साम्येन पश्यँस्त्रिजगद्विवेकी। श्रयन् प्रभो ! पंच समित्युपैति ॥
अपास्य सप्तभ्यर्धिसिद्धि मध्ये। सिद्धं जवेनोप भवादुपेशम् ॥६॥

भवेच्छु भायोप भवद्यथेष्टं। श्रये सनाथोऽस्मि नमोऽस्तु दोषाः ॥
दूरे प्रभावश्च गुरुः सुखं मे। विश्वार्च्य ! धी श्रीकृदुपद्विपादे ॥७॥

मुक्त्वा भवं सौख्यमवाप्तुमंगी। धीमाँस्त्यजन मोहमघस्य हंता ॥
धोमुच्य मानस्तमसा शिवीयेत्। त्वत्सेविता काम्यतु सोऽत्र नेतः ! ॥८॥

क्षेमेषु वृक्षत्सु घनाय मानो। हितः पितेवामृत वद्दुरापः ॥
मम प्रभो ! भव्यतरं स्वभृत्यी। भावं जयानंदमय ! प्रदेयाः ॥९॥

इति जयानंद सूरि विरचितं विभक्त्युक्ति समास कियत्प्रत्ययोदाहरण रूपं श्री सर्वज्ञस्तवनं ॥

शलाकानिक्षेपण निष्काशन विवरणं

अर्हंतं तत्पुराणं जिनमुनि चरणान् देवतां क्षेत्रपालं ।
छायासूनोर्निशायामभिषवनविधैः पूजयित्वा जलाद्यैः ॥
जातां हेम्नः शलाकां कुशकुसुममयीं कन्यया दापयित्वा ।
तत्प्रातः पूजयित्वा पुनरथ शकुनं वीक्ष्यते तत्पुराणं ॥१॥

अत्युग्रशुभकार्य्यार्थं शनिवारो न याति चेत् ।
अन्यस्मिन्वासरे सौम्ये पुराणं प्राच्चर्येत्सुधीः ॥२॥

दुर्व्वचः श्रवणे चैव दुर्न्निमित्तावलोकने ।
क्षुत्ते प्रदीपनिर्व्वाणे पुराणं नार्च्चयेत्ततः ॥३॥

अष्टाब्दावां दशाब्दामजनितरजसं कन्यकां वा नवोढा ।
मभ्यंगस्नान भूषां मलयजवसनालंकृतां पूजयित्वा ॥
मंत्रैवागदेवतायास्त्रिगुणित नवकं मंत्रयित्वा शलाकां ।
तद्दोर्म्यां दापयित्वा तदनुच दलयोः कार्य्यमालोच्य मध्ये ॥४॥

कन्या न लभते यत्र न प्रौढा लभते यदा ।
शलाकां श्रावकः शुद्धः पुराणे प्रक्षिपेत्तदा ॥५॥

प्राक्पत्रे पूर्व्वपंक्तौ वा पद्ये पूर्व्वा क्षराणि च ।
सप्त हित्वा पठेच्छ्लोकमिति केषांमतं मतं ॥६॥

प्राक्पत्रसंपुटस्यांते पंक्तौ श्लोकाक्षराणि च ।
सप्त हित्वा पठेच्छ्लोकं पुराणं दोष वर्ज्जितं ॥७॥

यः पूर्व्वार्द्धं विसर्गवानपि तथा लिट्संयुतः सर्व्वथा ।
वैराग्यास्तुति रोगशोकमरणश्वभ्रादिदोषान्वितः ॥
पूर्व्वार्द्ध तगतो भवालि सहितस्त्यक्त्वान्य जन्माश्रयो ।
मानोनः प्रतिषेधवान्न शकुने श्लोकः प्रशस्तो भवेत् ॥८॥

रिक्तपत्रमपि जीर्णमक्षरं शीर्णपत्रमपि कूटलेखनं ।
सुप्रशस्तमपि पद्यमीदृशं ह्यामनंति न तु नीतिवेदिनः ॥६॥

पारावार पुरस्तुशैल सलिल क्रीडा कुमारोदयो ।
ध्यानाल्हादविवाह भोगविजय श्रीचन्द्रसूर्य्योदयः ॥
मंत्रालोचन नायकाभ्युदय युकपट्टाभिषेकोत्सवाः ।
शास्त्रावर्णनया पुराणशकुने पुण्यानुबंधोदयः ॥१०॥

धर्म्मो राजा तथा शाखा प्रजा चेति चतुर्व्विधा ।
जेष्ठ शुक्लस्य पंचम्यां शलाका दृश्यते बुधैः ॥११॥

धर्म्मः श्वेत. १. राजा रक्तः २. शाखा हरिता ३. प्रजा पीता ४.

॥ मंत्रः ॥

ॐ रों क्रों श्री ह्रीं क्लीं व्लें ह्राँ ह्री श्री सरस्वति मरालवाहने वीणापुस्तकमालापद्म मंडित चतुर्भुजे मौक्तिक हारावलिराजितोरोज सरोज कुड्मल युगले वद वद वाग्वादिनि सर्वजन संशयापहारिणि श्रीमद्भारति देवि ! तुभ्यं नमोस्तु ।

॥ इति श्री सरस्वती मत्रः ॥

इति शलाका वर्णनं संपूर्ण समाप्तं

प्रभावना

जैसे होवे वैसे भाई, दूर हटा जग का अज्ञान ।
कर प्रकाश करदे विनाश तम, फैला दे शुचि सच्चा ज्ञान ॥
तन मन धन सर्वस्व भले ही, तेरा इसमें लग जावे ।
वज्रकुमार मुनीन्द्र सदृश, तू तब प्रभावना कर पावे ॥
सम्यग्दर्शन सुखकारी है, भव सन्तति इससे मिटती ।
अङ्गहीन यदि हो इसमें तो, शक्ति नहीं इतनी रहती ॥
विष की व्यथा मिटा दे ऐसी, शक्ति मंत्र में है प्रियवर ।
अक्षर मात्रा हीन हुए से, मंत्र नही रहता सुखकर ॥

योगसारः

श्री योगीन्द्र चन्द्राचार्य कृतः

निर्मलध्याने परिस्थाय, कर्मकलंक दग्ध्वा ।
आत्मा लब्धोयेन परः तं परमात्मानं नत्वा ।।१।।
घाति चतुष्कस्य कृतविलयोऽनन्त चतुष्टय प्रतिष्ठितः ।
तं जिनेन्द्रं प्रणम्य करोमि काव्यं सुष्ठु ।।२।।

संसारस्य भयभीतानां मोक्षस्य लालसितानां ।
आत्मसम्बोधनार्थं दोहकान् एकमनसा ।।३।।
कालोऽनादिः अनादिर्जीवो भवसागरोऽपि अनन्तः ।
मिथ्यादर्शनमोहितः नापि सुखं दुःखमेव प्राप्तः ।।४।।

यदि बिभ्यति चतुर्गतिगमनात् ततः परभावंत्यज ।
आत्मानं ध्याय निर्मलं येन शिवसुखं लभसे ।।५।।
त्रिप्रकारं आत्मानं मन्यस्व परभन्तो बहिरात्मानम् ।
परंध्याय अन्तः सहितं वाह्यं त्यज निर्भ्रान्तिम् ।।६।।

मिथ्यादर्शन मोहितः परमात्मनं न मनुते ।
स बहिरात्मा जिनभणितः पुनः संसारे भ्रमति ।।७।।
यः परिजानाति आत्मानं परं यः परभावं त्यजति ।
स पंडित आत्मानं मनुते स संसारं मुञ्चति ।।८।।

निर्मलो निष्कलः शुद्धः जिनः कृष्णः बुद्धः शिवः शान्तः ।
स परमात्मा जिनभणितः य जानीहि निर्भ्रान्तिम् ।।९।।
देहादयो ये परे कथिताःतान् आत्मानं मनुते ।
स बहिरात्मा जिनभणितः पुनः संसारे भ्रमति ।।१०।।

देहादयोयें परे कथिताः ते आत्मां न भवन्ति ।
इति ज्ञात्वा जीव ! त्वं आत्मना आत्मानं मन्यस्व ॥११॥
आत्माना आत्मानं यदि मन्यसे ततः निर्वाणं लभसे ।
परं आत्मनं यदि मनुषे त्वंतर्हि संसारं भ्रमसि ॥१२॥
इच्छा रहितस्तपः करोषि आत्मना आत्मानं मनुषे ।
ततो लघु प्राप्नोसि परमर्गात पुनः संसारे नायासि ॥१३॥
परिणामै बंन्धोऽपि कथितः मोक्षोपि तैरेव विजानीहि ।
इति ज्ञात्वा जीव ! त्वं तान् भावान परिजानोहि ॥१४॥
अथ पुनरात्मानं न मनुषे पुण्यमपि करोषि अशेषम् ।
तथापि न प्राप्नोषि सिद्ध सुखं पुनः संसारे भ्रमसि ॥१५॥
आत्मदर्शनं एकं परं अन्यत् न किंचिदपि विजानीहि ।
मोक्षस्य कारणं योगिन् ! निश्चयेनैतत् जानीहि ॥१६॥
मार्गणागुण स्थानानि कथितानि व्यवहारनयेन अपि दृष्टि ।
निश्चयनयेन आत्मानं मन्यस्वयेन प्राप्नोषि परमेष्ठिनं ॥१७॥
गृहव्यापारे परिस्थिताः हेयमहेयं मन्यते ।
अनुदिनं ध्यायन्ति देवं जिनं लघु निर्वाणं लभन्ते ॥१८॥
जिनं स्मर जिनं चिन्तय जिनं ध्यायस्व सुमनसा ।
तं ध्यायमानः परमपदं लभते एक क्षणेन ॥१९॥
शुद्धात्मनि च जिनवरे भेदं माकिमपि विजानीहि ।
मोक्षस्य करणं योगिन्! निश्चयेन एतत् विजानीहि ॥२०॥
यो जिनः तं आत्मानं मन्यस्व एष सिद्धान्तस्य सारः ।
इति ज्ञात्वा योगिन् ! त्यज मायाचारम् ॥२१॥
यः परमात्मा स एव अहं योऽहं स परमात्मा ।
इतिज्ञात्वा योगिन् अन्यन्मा कार्षीः विकल्पम् ॥२२॥
शुद्ध प्रदेशैः पूरितः लोकाकाश प्रमाणः ।
तं आत्मानं अनुदिनं मन्यस्व प्राप्नोषि लघुनिर्वाणं ॥२३॥
निश्चयेन लोकप्रमाणं मन्यस्व व्यवहारेण स्वशरीरस्य ।
इमं आत्मस्वभावं मन्यस्व लघु प्राप्नोषि भवतीरम् ॥२४॥

चतुरशीतिलक्षे भ्रमितः कालमनाद्यनन्तं।
परं सम्यक्त्वं न लब्धं जीव! एतज्जानीहि निर्भ्रान्तम् ॥२५॥
शुद्धः सचेतनः बुद्धः जिनः केवलज्ञान स्वभावः।
तं आत्मानं अनुदिनं मन्यस्व य दीच्छसि शिवलाभं ॥२६॥

यावन्न भावयसि जीव!त्वं निर्मलात्म स्वभावम्।
तावन्न लभसे शिवगमनं यत्र भाति तत्र याहि ॥२७॥
यस्त्रिलोकस्य ध्येयो जिनः स आत्मा निजः उक्तः।
निश्चयनयेन एवं भणितः एतज्जानीहि निर्भ्रान्तम् ॥२८॥

व्रततपः संयममूलगुणैः मूढैर्मोक्षो निरुक्तः।
यावन्न जानाति एकं परं शुद्ध स्वभाव पवित्रं ॥२९॥
यो निर्मलं आत्मानं मनुते व्रतसंयम संयुक्तम्।
सलघु प्राप्नोति सिद्ध सुखं इति जिननाथैरुक्तम् ॥३०॥

व्रततपः संयम शीलानि जीव! एतानि सर्वाणि व्यर्थानि।
यावन्न जानाति एकं परं शुद्ध स्वभाव पवित्रम् ॥३१॥
पुण्येन प्राप्नोति स्वर्गं जीवः पापेन नरक निवासम्।
द्वयं त्यक्त्वा आत्मानं मनुते तेन लभ्यते शिववासः ॥३२॥

व्रत तपः संयमशीलानि जीव! एतानि सर्वाणि व्यवहारेण।
मोक्षस्य कारणं एकं मन्यस्व यः त्रिलोकस्य सारः ॥३३॥
आत्माना आत्मानं यो मनुते यः परभावं त्यजति।
स प्राप्नोति शिवपुरगमनं जिनवर एवं भणति ॥३४॥

षट्द्रव्याणि यानि जिनकथितानि नव पदार्थाः ये तत्वानि।
व्यवहारेण जिनोक्तानि तानी जानीहि प्रयत्नेन ॥३५॥
सर्वान् अचेतनान् जानीहि जीवं एकं सचेतनं सारम्।
यं ज्ञात्वा परममुनिः लघु प्राप्नोति भवपारम् ॥३६॥
यः निर्मलं आत्मानं मनुते त्यक्त्वा सर्वव्यवहारम्।
जिन स्वामी एवं भणति लघु प्राप्नोति भवपारम् ॥३७॥

सोरठा

जीवाजीवयोर्भेदं यो जानाति तेन ज्ञातं।
मोक्षस्यकारणं एष भणति योगिन्!योगिना भणितः ॥३८॥

॥ चौपाई ॥

केषु समाधिं करोमि कान्। आर्चयामि वैरमवैरं कृत्वा कान् वंचयामि ॥
....। यत्र यत्र पश्यामि तत्र आत्मा ॥३९॥

॥ दोहा ॥

तावत्कुतीर्थेषु परिभ्रमति धूर्तत्वं तावत्करोति।
गुरोः प्रसादः यावन्न देहमेवं देवं मनुते ॥४०॥
तीर्थानि देवालयः देवोनापि एवं श्रुतकेवलिनोक्तम्।
देहदेवालयो देवो जिनः एवं जानीहि निर्भ्रान्तम् ॥४१॥

देहदेवालये देवो जिनः देवालये नास्ति ?
हास्यं मुखस्योपरि भवतीह सिद्धभिक्षांभ्रमति ॥४२॥
मूढ!देवालये देवोनापि नापि शिलायां लेपे चित्रे।
देहदेवालये देवो जिनः तं बुध्यस्व समचेतसि ॥४३॥

तीर्थे देवालये देवो जिनः सर्वोऽपि कश्चित् भणति।
देह देवालये यो मनुते स बुधः कोऽपि भवेत् ॥४४॥
यदि जरामरण करालितः तर्हि जिनधर्मं कुरु।
धर्मं रसायनं पिबत्वं येन अजरामरो भव ॥४५॥

धर्मो न पठनेन भवेत् धर्मो न पुस्तक दर्शने ॥
धर्मो न मठप्रदेशे धर्मो न कूर्चलंचने ॥४६॥
राग द्वेषौ द्वौ परिहरति य आत्मनि निवसति।
स धर्मो जिनोक्तः यः पंचमगतिं ददाति ॥४७॥

आयुर्गलति न मनो गलति नाप्याशागलति।
मोहः स्फुरति नापि आत्महितः एवं संसारं भ्रमति ॥४८॥
यथामनो विषयेषु रमते तथा यदि आत्मानं मनुते।
योगी भणति रे योगिन्! लघु निर्वाणं लभते ॥४९॥

यथा जर्जरं नरकगृहं तथा बुध्यस्व शरीरम् ।
आत्मानं भावय निर्मलं लघु प्राप्नोषि भवतीरम् ॥५०॥
धांधे पतितं सकल जगत् नापि आत्मानं मनुते ।
तेन कारणेनेमे जीवाः स्फुटं न हि:निर्वाणं लभन्ते ॥५१॥

शास्त्रं पठन्ति तेऽपि जडाः आत्मानं येन जानन्ति ।
तेन कारणेनेमे जीवाः स्फुटं नहि निर्वाणं लभन्ते ॥५२॥
मनः इन्द्रियैः वि···।
राग प्रसारं निवारय सहजं उत्पद्यते सः ॥५३॥

पुद्गलोऽन्यः अन्यो जीवः अन्यः सर्वव्यवहारः ।
त्यज पुद्गलं प्रहाण जीवं लघु प्राप्नोषि भवपारम् ॥५४॥
ये नापि मन्यन्ते जीवं स्फुटं ये नापि जीवं मन्यन्ते ।
ते जिननाथेन उक्ता न संसारं मुञ्चन्ति ॥५५॥

रत्नं दीपः दिनकरः दधि दुग्धं घृतं पाषाणं ।
सुवर्णं रौप्यं स्फटिकं अग्निः नव दृष्टान्तान् जानीहि ? ॥५६॥
देहादिकं यः परं मनुते यथा शून्याकाशं ।
स लघु प्राप्नोति ब्रह्म परं केवलं करोति प्रकाशम् ॥५७॥

यथा शुद्धं आकाशं जीव ! तथा आत्मा उक्तः ।
आकाशमपि जडं जानीहि जीव ! आत्मानं चैतन्यवन्तं ॥५८॥
नासाग्रेण अभ्यन्तरे यः पश्यति अशरीरं ।
व्याघुटच जन्म न सम्भवति पिबति न जननीक्षीरम् ॥५९॥

अशरीरोऽपि सशरीरो मुनिः इदं शरीरं जडं जानीहि ।
मिथ्यामोहं परित्यज·· ॥६०॥
आत्मना आत्मानं मन्वानस्य किन्नेह फलं भवति ।
केवलज्ञानं विपरिणमति शाश्वतं सुखं लभते ॥६१॥

ये परभावं त्यक्त्वा मुनयः आत्मनात्मानं मन्वते ।
केवलज्ञानस्वरूपं लब्ध्वा ते संसारं मुञ्चंति ॥६२॥
धन्यास्ते भाग्यवन्तः बुधा ये परभावं त्यजन्ति ।
लोकालोक प्रकाशकरं आत्मानं विमलं जानन्ति ॥६३॥

सागारोऽप्य नगारोऽपिय आत्मनि वसति।
स प्राप्नोति लघु सिद्धसुखं जिनवर एवं भणति ॥६४॥
विरला जानन्ति तत्वं बुधाः विरलाः शृण्वन्ति तत्वम्।
विरला ध्यायन्ति तत्वं जीव! विरला धारयन्ति तत्वम् ॥६५॥

अयं परिजनः न महान् पुनः अयं सुख दुःखस्य हेतुः।
एवं चिन्तयन् किं करोति लघु संसारस्य छेदम् ॥६६॥
इन्द्रफणीन्द्रनरेन्द्रा अपि जीवस्य शरणं न भवन्ति।
अशरणं ज्ञात्वा मुनिधवला आत्मनात्मानं मन्वते ॥६७॥

एक उत्पद्यते म्रियते एकः दुःख सुखं भुंक्ते एकः।
नरकं याति एकः जीव! तथा निर्वाणं एकः ॥६८॥
एकः यदि जायसे तर्हि परभावं त्यज।
आत्मनं ध्यायस्व ज्ञानमयं लघु शिवसुखं लभस्व ॥६९॥

यः पापमपि तत्पापं मनुते सर्वः कोऽपि मनुते।
यः पुण्यमपि पापं भणति स बुधः कोऽपि भवेत् ॥७०॥
यथा लोहमयं निगलं तथा सुवर्णमयं जानीहि।
ये शुभं अशुभं परित्यजन्ति ते भवन्ति हि ज्ञानिनः ॥७१॥

यावत् मनोनिर्ग्रन्थः जीव! तावत्त्वं निर्ग्रन्थः।
यावत्त्वं निर्ग्रन्थः जीव! ततः लभसे शिवपथं ॥७२॥
यथा बटमध्ये बीजं स्फुटं बीजे बटमपि जानीहि।
तथा देहे देवं मन्यस्व यः त्रिलोके प्रधानः ॥७३॥

यो जिनः सोऽहं सोऽप्यहं एतत् भावय निर्भ्रान्तम्।
मोक्षस्य कारणं योगिन्! अन्यो न तंत्रः न मंत्रः ॥७४॥
द्वि त्रि चतुः पंच द्वि नव सप्त षट् पंच—।
चतुर्गुण सहितं यः मनुते एतल्लक्षणं यस्मिन् ॥७५॥

द्वौ त्यक्त्वा द्विगुणसहितः य आत्मनि वसति।
जिन स्वामी एवं भणति लघु निर्वाणं लभते ॥७६॥
त्रिरहितः त्रिगुणसहितः य आत्मनि वसति।
स शाश्वतसुख भाजनं अपि जिनवरः एवं भणति ॥७७॥

चतुः कषाय संज्ञारहितः चतुर्गुण सहितः उक्तः।
तं आत्मानं मनुस्व जीव! त्वं येन परः भवसि पवित्रः ॥७८॥
द्विपंच रहितं जानीहि द्विपंच संयुक्तं।
द्विपंचभिः यो गुणैः सहितः स आत्मा निज उक्तः ॥७९॥

आत्मानं दर्शनं ज्ञानं मन्यस्व, आत्मानं चरणं जानीहि।
आत्मा संयमः शीलं तपः आत्मा प्रत्याख्यानम् ॥८०॥
यः परिजानाति आत्मानं परं स परित्यजति निर्भ्रांतं।
तत्संज्ञानं मनुस्वत्वं केवलज्ञानिना उक्तम् ॥८१॥

दर्शनं येन पश्यति बोधः आत्मानं विमलं मनुते।
पुनः पुनः आत्मानं भावयति तत् चारित्रं पवित्रम् ॥८२॥
रत्नत्रय संयुक्तो जीवः उत्तमतीर्थं पवित्रम्।
मोक्षस्य कारणं योगिन! अन्यो न तन्त्रः न मंत्रः। ८३॥

यत्र आत्मा तत्र सकलगुणाः केवलिन एवं भणंति।
तेन कारणेन इमे जीवाः स्फुटं आत्मानं विमलं जानन्ति ॥८४॥
एकाकी इन्द्रिय रहितः मनोवाक्कायत्रिशुद्धः।
आत्माना आत्मानं मनुस्वत्वं लघु प्राप्नोसि शिवसिद्धम् ॥८५॥

यदि बद्धं मुक्तं मण्यसे तर्हि बध्नासि निर्भ्रान्तम्।
सहज स्वरूपे यदि रमसे तर्हि प्राप्नोसि शिवं शान्तम् ॥८६॥
सम्यग्दृष्टि जीवस्य दुर्गतिगमनं न भवति।
यदि यात्वपि तर्हि दोषो नापि पूर्वकृत्यं क्षपयति ॥८७॥

आत्म स्वरूपे यो रमते त्यक्त्वा सर्वव्यवहारम् ।
सम्यग्दृष्टिः भवति लघु प्राप्नोति भवपारम् ।।८८।।
अजरोमरो गुणगणनिलयः यत्र आत्मा स्थिरः तिष्ठति ।
स कर्माणि नैव बध्नाति संचितपूर्वाणि विलीयंते ।।८९।।

यः सम्यक्त्व प्रधानः बुधः स त्रैलोक्ये प्रधानः ।
केवल ज्ञानमपि स लभते, शाश्वत सुखनिधानं ।।९०।।
यथा सलिलेन न लिप्यते कमलिनीपत्रं कदापि ।
तथा कर्मणा न लिप्यते यदि रमते आत्मस्वभावे ।।९१।।

यः समसुखनिलीनः बुधः पुनः पुनः आत्मानं मनुते ।
कर्मक्षयं कृत्वा सोऽपि स्फुटं लघु निर्वाणं लभते ।।९२।।
पुरुषाकार प्रमाणं जीव आत्मानं इमं पवित्रं ।
पश्यति गुण निर्मलं निर्मल तेजसा स्फुरन्तं ।।९३।।

यं आत्मानं शुद्धं अपि मनुते अशुचिशरीर विभिन्नं ।
स जानाति शास्त्रं सकलं शाश्वतसुखलीनः ।।९४।।
यः नापि जानाति आत्मानं परं नापि परभावं त्यजति ।
स जानन् शास्त्राणि सकलानि न हि शिवसुखं लभते ।।९५।।

वर्जितं सकल विकल्पैः परमसमाधिं लभन्ते ।
यत् विदन्ति सानन्दं स्फुटं तत् शिवसुखं भणन्ति ।।९६।।
यः पिंडस्थं पदस्थं बुधः रूपस्थमपि जिनोक्तम् ।
रूपातीतं मन्यते लघु येन परः भवति पवित्रः ।।९७।।

सर्वे जीवाः ज्ञानमया यः समभावं मनुते ।
तत् सामायिकं जानीहि स्फुटं जिनवर एवं भणति ।।९८।।
राग द्वेषौ द्वौ परिहृत्य यः समभावं मनुते ।
तत्सामायिकं जानीहि स्फुटं केवली एवं भणति ।।९९।।

हिंसादीनां परिहारं कृत्वा यः आत्मानं स्थापयति।
तद्द्वितीयं चारित्रं मनुस्व यत्पंचमगतिं नयति ॥१००॥
मिथ्यात्वादिकं यः परित्यज्य सम्यग्दर्शन शुद्धिर्मे।
तत्परिहार विशुद्धं मनुस्व लघु प्राप्नोसि शिवशुद्धिम् ॥१०१॥

सूक्ष्मस्य लोभस्य यः विलयः सूक्ष्मः भवेत्परिणामः।
तत्सूक्ष्म चारित्रं मनुस्व तत् शाश्वत सुखधाम ॥१०२॥
अर्हन्तमपि तं सिद्धं स्फुटं तं आचार्यं जानीहि।
तं उपाध्यायं तमेव मुनिं निश्चयेन आत्मानं जानीहि ॥१०३॥

स शिवः शंकरः विष्णुः स रुद्रः अपि स बुद्धः।
स जिनः ईश्वरः ब्रह्मा स अनंतः स्फुटं सिद्धः ॥१०४॥
एतल्लक्षणलक्षितः यः परः निष्कलो देवः।
देहस्य मध्ये स वसति तस्मिन् नान्यभेदः ॥१०५॥

ये सिद्धा ये सेत्स्यन्ति ये सिध्यन्ति जिनोक्तं।
आत्मदर्शनेन तेऽपि स्फुटं एतत् जानीहि निर्भ्रान्तम् ॥१०६॥
संसारस्य भयभीतानां योगिचंद्र मुनिना।
आत्मसंबोधनाय कृतानि दोहकानि एकमनसा ॥१०७॥

॥ इति श्री योगिचंद्रकृतो योगसारः समाप्तं ॥

जो ना जाने जीव क्या जो न कहै है जीव।
सो नास्तिक भव भ्रमेंगे जिनवर कहत सदीव ॥
रत्नदीप रवि दूध दधि घृत पत्थर अरु हेम।
रजत स्फटिक अग्नि नव उदाहरण जिय एम ॥
देह आतमा भिन्न इम ज्यों सुवर्ण आकाश।
पावै केवलज्ञान जिय तब निज करे प्रकाश ॥
यथा व्योम निर्लेप शुचि त्यों शुचि आतम प्रदेश।
परजड़ अम्बर आतमा चेतन है परमेश ॥
घ्राण दृष्टि अन्तर लखे देह रहित जो जीव।
फिर न जन्म धर पय पिये शिवथल रहै सदीव ॥

❀ सिद्धान्त सार: ❀

(श्री जिनेन्द्राचार्य प्रणीत:)

जीव गुण स्थान संज्ञा पर्याप्ति प्रमाण मार्गणा नवोनान् ।
सिद्धान्तसारमिदानीं भणामि सिद्धान् नमस्कृत्य ॥१॥

भावार्थ—चतुर्दश जीव समास, चतुर्दश गुणस्थान, चार संज्ञा, षट् पर्याप्ति, दश द्रव्य प्राण, १४ मार्गणा, नवशेषः का वर्णन, सिद्ध परमात्मा को नमस्कार कर इस सिद्धान्त सार ग्रन्थ को कहते हैं ॥१॥

सिद्धानां सिद्धगतिः दर्शनं ज्ञानं च केवलं चायिकं ।
सम्यक्त्वमनाहारकं शेषाः संसारिणि जीवे ॥२॥

भावार्थ—सिद्ध परमात्मा के (१) सिद्ध गतिः (२) दंसणः (३) ज्ञानः (४) क्षायिक सम्यक्त्व (५) अनाहारकत्वः यह पाँच मार्गणा है शेष नव संसारी जीवों में सर्वत्र देखो ।

जीवगुणान् तथा योगान् सप्रत्ययान् मार्गणासु उपयोगान् ।
जीवगुणेष्वपि योगान् उपयोगान् प्रत्ययान् वक्ष्ये ॥३॥

भावार्थ—सर्व ग्रन्थ में १४ मार्गणा में १४ जीव समासों का १४ गुण स्थानों में वर्णन है—गति आदि १४ मार्गणा में १५ योग का ५७ आश्रवों का १२ उपयोगों को तथा १४ गुण स्थानों में १५ उपयोगों का तथा जीव समासादि में सर्व प्रत्यय उपयोगों का वर्णन करते हैं ।

त्रिगतिषु संज्ञियुगलं चतुर्दशतिर्यक्षु द्वौ विकलेषु ।
एकपंचाक्षेऽपि च चत्वारः पृथिवीपंचके चत्वारः ॥४॥

भावार्थ—नरक १ मनुष्य १ देवगति १ ये तीनो में पंचेन्द्रि संज्ञि १ पर्याप्त २

अपर्याप्त २ जीव समास होते हैं। तिर्यंच गती में १४ जीव समास हैं। वे ऐसे—उक्तं

वादरसूक्ष्मैकेन्द्रिय, द्वित्रिचतुरिन्द्रिया संज्ञिसंज्ञिनश्च।
१ १ — १ १ १ १ १ ×
पर्याप्तापर्याप्ता एवं ते चतुर्दश जीवा: ॥१॥
१—१

दो-तीन-चार-इन्द्रिय में दो पर्याप्त अपर्याप्त समास हैं—एक-पंच-इन्द्रियों में चार हैं वे ऐसे एकेन्द्रि में सूक्ष्म १ वादर १ पर्याप्त १ अपर्याप्त १ पंचेन्द्रि में संज्ञि १ असंज्ञि १ पर्याप्त १ अपर्याप्त १ है। एकेन्द्रि—पृथ्वि १ अप १ तेज १ वायु १ वनस्पति १ पाँचों में चार प्रकार हैं। मार्गणा उक्तंच-गाथा—

गई-इंदिये चकाए जोगे वेए कसायणाणे य।
संजमदंसण लेस्साभविया सम्मत्तसण्णिआहारे ॥१॥

दश त्रसकाये संज्ञी सत्यमनआदिषु सप्तयोगेषु।
द्वीन्द्रियादिपूर्णाः पंचाष्टमे सप्त औराले ॥५॥

भावार्थ—त्रसकाय में दश जीव समास हैं वे ऐसे द्वि-त्रि-चतु-पचेन्द्रि चारों पर्याप्त अपर्याप्त करै ८ पंचेन्द्रि संज्ञि असंज्ञि २ कुल १०। सत्य मनोयोग, असत्य, उभय, अनुभय, सत्य वचन योग, असत्य, उभय, सात योगों में एक संज्ञि तथा एक पर्याप्तक होते हैं। अनुभय वचन योग में—द्वि-त्रि-चतु-पंचेन्द्रि-संज्ञि-पर्याप्त-असंज्ञि ५ है। औदा-
१ १ १ १ (१) १
रिक शरीर में सात जीव समास हैं—एकेन्द्रि सूक्ष्म वादर पर्याप्त २ विकलत्रय ३
१ १ = ३
पंचेन्द्रि संज्ञि-असंज्ञि पर्याप्त:=७
१ १

मिश्रे अपूर्णसप्त एकसंज्ञी विगूर्विकादि चतुर्षु च।
कार्मणे अष्टौ स्त्रीपुंसोः पंचाक्षगतचत्वारः ॥६॥

भावार्थ—औदारिक मिश्रकाय योग में एकेन्द्रि से पंचेन्द्रि सं० असं० तक अपर्याप्त
२ ३ १ १
७ केवलिसमुद्घाते संज्ञि पर्याप्ते १ ऐसे आठ हैं। वैक्रियक काय योगात एक संज्ञी पर्याप्त १ वैक्रियिक मिश्रयोगे पंचेन्द्रि संज्ञि अपर्याप्त १ आहारक काय योगे-पंचेन्द्रिसंज्ञि-

पर्याप्त १ आहारक मिश्र काय योग में–पंचेन्द्रि संज्ञि अपर्याप्त १ जीव समास हैं। औदारिक मिश्र काय योग में जो आठ होते है वे ही–कार्माण काय योग में आठ ८ जीव समास हैं। पुरुष वेद में–तथा स्त्री वेद मे–चार-चार=पंचेन्द्रि संज्ञि पर्याप्त १ अपर्याप्त १ असंज्ञि पर्याप्त १ असंज्ञि अपर्याप्त १ऐसे है।

षंढे क्रोधे माने मायालोभयोः च कुमति कुश्रुतयोः च।
चतुर्दश एकोविभंगे मति श्रुतावधिषु संज्ञिद्विकं ॥७॥

भावार्थ—नपुंसक वेद मे चौदह जीव समास हैं। क्रोध में, मान मे, माया में, लोभ में चौदह जीव समास हैं। कुमति-कुश्रुत में चौदह जीव समास है। कुअवधि में-विभंग में=एकः पंचेन्द्रिय संज्ञि पर्याप्तक। सुमति-श्रुतिः अवधिज्ञान मे पंचेन्द्रि सज्ञि पर्याप्त १ अपर्याप्त १ ऐसे दो जीव समास होते है।

मनः केवलयोः संज्ञी पूर्णः सामायिकादिषट्सु तथा चः।
चतुर्दश असंयमे पुनः लोचनावलोकने षट्कम् ॥८॥

भावार्थ—मनपर्यय–केवलज्ञान में–पंचेन्द्रि संज्ञि पर्याप्त १ एक-एक जीव समास है। देश संयमे,–सामायिक–च्छेदोपस्थापना–परिहारविशुद्धि–सूक्ष्मसाम्पराय–यथाख्यात=षटसंयम में प्रत्येकी–संज्ञिपर्याप्त एक। असंयम सातवे में चौदा जीव समास होते हैं। चक्षुदर्शने षट्कं=चतुइन्द्रियपर्याप्त १ अपर्याप्त १=पंचेन्द्रिय संज्ञिपर्याप्त १ अपर्याप्त १=पंचेन्द्रि असंज्ञि पर्याप्त १ अपर्याप्त १=ऐसे छह जीव समास हैं।

चतुर्दश अचक्षुरालोके द्वौ एकोऽवधिकेवलालोके।
कृष्णादित्रिके चतुर्दश तेजआदिषु संज्ञिद्विकं च ॥९॥

भावार्थ—अचक्षु दर्शने चौदा जीव समास हैं। अवधि दर्शन में–पंचेन्द्रि संज्ञि पर्याप्त १ अपर्याप्त १=दो है। केवल दर्शन में–पंचेन्द्रिसंज्ञि पर्याप्त १ समास है। कृष्ण–नील–कपोत=तीन अशुभ लेश्या में=चौदा जीव समास हैं। पीत–पद्म–शुक्ल=तीन शुभ लेश्या में प्रत्येकी=पंचेन्द्रिसंज्ञि पर्याप्त १ अपर्याप्त १ दो हैं।

चतुर्दश भव्याभव्ययोः द्वौ एकः चायिकादित्रिषु मिश्रे।
अपूर्णाः सप्त पूर्णः संज्ञी एकः चतुर्दश च द्वयोः क्रमेण ॥१०॥

भावार्थ—भव्य जीव में–अभव्य जीव में=चौदह जीव ससास हैं। क्षायिक-उपशम-वेदक सम्यक्त्व में पंचेन्द्रि संज्ञि पर्याप्त १ अपर्याप्त १ ऐसे दो हैं। मिश्र सम्यक्त्व में–पंचेन्द्रि संज्ञि पर्याप्त १ होता है। मिश्र में जन्म मरण नहिं करके अपर्याप्त का अभाव जानो। सासादनसम्यक्त्व में–एकेन्द्रि-द्वि-त्रि-चतु-पंचेन्द्रि-संज्ञि-असंज्ञि-सर्व अप-
२
र्याप्त ऐसे ७ तथा–पंचेन्द्रि संज्ञि पर्याप्त एक–कुल ८ जानो। मिथ्यात्व सम्यक्त्व में–एकेन्द्रियादि चौदह जीव समास होते हैं।

संज्ञ्यसंज्ञिनोः द्वौ च आहारानहारकयोः विज्ञेयाः।
जीवसमासाश्चतुर्दश अष्टावेवजिनैः निर्दिष्टाः ॥११॥

भावार्थ—संज्ञीजीव में–पंचेन्द्रि संज्ञि पर्याप्त १ अपर्याप्त १ दो है। असंज्ञि जीव में–पर्याप्त-अपर्याप्त दो हैं। आहारक में चौदह जीव समास है। अनाहारक में आठ हैं=वे ऐसे–एकेन्द्रि-द्वि-त्रि-चतु-पंचेन्द्रि-संज्ञि-असंज्ञि=सातो अपर्याप्त–एकः संज्ञि पंचे-
३
न्द्रिपयाप्तक ८ आठ है। क्वचिदविग्रहगति अपेक्षा–क्वचित केवलिसमुद्घात अपेक्षा से=उक्तंच–विग्रहगतिमापन्नाः समुद्घातकेवल्ययोगिजिनाः ॥ सिद्धाश्चानाहारकाः शेषाः आहारका जीवः ॥१॥

॥ इति चतुर्दशमार्गणासुजीवसमासाश्चतुर्दश संक्षेपेण कथिताः ॥

अथ मार्गणासु गुणस्थाननिरूपणार्थ—

नारकतिर्यंनरामरगतिषु चतुः पंच चतुर्दश चत्वारि।
एकद्वित्रिचतुरक्षेषु च मिथ्यात्वं द्वितीयं चोपपादे ॥१२॥

भावार्थ—नरक-तिर्यंच-मनुष्य-देव-चारो गति में क्रम से-चार-पाँच-चौदह-चार-गुण स्थान यथा संभव होते हैं। एकेन्द्रि में–द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रि में–एक मिथ्यात्व गुण स्थान होता है। एकेन्द्रि से चतु इन्द्रि तक उत्पत्तिकाल में अपर्याप्त समय में सासादन गुण स्थान होता है कथंचित।

चतुर्दश पंचाच्चत्रसयोः धरादित्रिषु द्वे एकं तेजः पवनयोः ।
सत्यानुभययोः त्रयोदश मनो वचनयोः द्वादशान्येषु ॥१३॥

भावार्थ—पंचेन्द्रिय के चौदाहि गुणस्थान होय हैं। इति इन्द्रिय मार्गणा ॥ त्रसकाय के मिथ्यात्वादि चौदाहि गुणस्थान होय हैं। पृथ्वी-अप-वनस्पति कायों के मिथ्यात्व, सासादन दो गुण स्थान होते हैं। तेज-पवन कायों के एक मिथ्यात्व गुण स्थान होता है। इति कायमार्गणा ॥ सत्यानुभयमनयोग में-मिथ्यात्वादि तेरह गुण स्थान होते हैं।
१ १
सत्य १ अनुभय १ वचनों में—तेरह तक हैं। असत्यमनयोगे-उभयमनयोगे—असत्य वचन-उभय वचन योग—चारों में प्रत्येक की मिथ्यात्वादि क्षीण कषाय पर्यन्त बारह गुण स्थान होते हैं।

औदारिके च त्रयोदश मिश्रे कार्मणे च मिश्र त्रिकयोगिनः ।
वैगूर्विकद्विके चतुः त्रिंक प्रमत्तमाहारकद्विके च ॥१४॥

भावार्थ—औदारिक काय योग में मिथ्यात्वादि तेरह गुण स्थान होते है। औदारिक मिश्रकाय योग मे—कार्माणकाय योग में—मिथ्यात्व १ सासादन १ अविरति १ संयोग केवलि १ ऐसे चार प्रत्येक में जानो। उक्तंच—'मिश्रे क्षीणे संयोगे च मरणं नास्ति देहिनाम्' इति वचनात। वैक्रियकाय योग में—पहिले चार गुण स्थान होते है, वैक्रियकमिश्रकाय योग में— मिथ्यात्व, सासादन, अविरति १ ऐसे तोन गुण स्थान होते है। आहारककाय योग में, आहारकमिश्रकाय योग में-एक छट्ठा गुण स्थान होता है ॥ इति योग मार्गणा ॥

वेदत्रिके क्रोधत्रिके नवगुणस्थानानि दशकं तथा लोभे ।
अज्ञानत्रिके द्वौ मतित्रिके चतुर्थादिनव चैव ॥१५॥

भावार्थ—वेद तीनों में—स्त्री०-पु०-न०-में पहिले से नव गुण स्थान होते है। इति वेद मार्गणा ॥ क्रोध, मान, माया तीनों कषाय नववें गुण स्थान पर्यंत होते है, लोभ कषाय दशवें गुण स्थान पर्यंत होते हैं ॥ इति कषाय मार्गणा पूर्ण ॥ कुमति कुश्रुत, कुअवधि-ज्ञान, मिथ्यात्व सासादन दोनों गुण स्थानों में होते हैं। सुमति, सुश्रुत, सुअवधिज्ञान अविरत चौथे से बारहवें क्षीणकषाय तक नव गुण स्थानों में होते हैं।

सप्त मनःपर्यये केवलज्ञाने योगिद्विकं प्रमत्तादीनि।
चत्वारि सामायिकयुगले प्रमत्तयुगलं च परिहारे ॥१६॥

भावार्थ—मनपर्यय ज्ञान छट्टे से—बारहवे तक सात गुण स्थान में होता है। केवलज्ञान—तेरा, चौदा ऐसे दो गुण स्थान में होता हे ॥ इति ज्ञान मार्गणा ॥ सामायिक च्छेदोपस्थापन, छट्टे से नववें तक चार गुण स्थान में होते हैं। परिहारविशुद्धिसंयमछट्टे, सातवें दो गुण स्थान मे होता है।

सूक्ष्मे सूक्ष्मं अन्तिम चत्वारि भवन्ति यथाख्याते।
चरिता चरिते एकं पंचमकं असंयमे चत्वारि ॥१७॥

भावार्थ—सूक्ष्मसाम्पराय संयम एकदशवे गुण स्थान में होता है। यथाख्यात संयम ग्यारह से चौदा चारों गुण स्थानों में होता है। देश संयम, पाँचवें गुण स्थान में होता है। असंयम सातवां पहिले से चौथे चार गुण स्थानों में होता है ॥ इति संयम मार्गणा पूर्ण ॥

द्वादश चक्षुर्द्विके नव अवधौ द्वे केवलालोके।
कृष्णादित्रिके चत्वारि तेजः पद्मयोः सप्तगुणाः ॥१८॥

भावार्थ—चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन दोनों पहिले से बारहवें तक बारह गुण स्थानों में होते हैं। अवधि दर्शन चौथे बारहवें तक नव गुण स्थानों में होता है। केवलदर्शन—तेरह, चौदह दो गुण स्थानों में होता है ॥ इति दर्शन मार्गणा ॥ कृष्ण, नील, कापोत तीन लेश्या पहिले चार गुण स्थानों में होती हैं। पीत, पद्म, दोनों लेश्या प्रमतेपर्यन्त सातो गुण स्थानों में होती है।

सितलेश्यायां त्रयोदश भव्ये सर्वाणि अभव्ये मिथ्यात्वं।
एकादश चत्वारि अष्टौ क्षायिक त्रये तथान्येषु निजैकम् ॥१९॥

भावार्थ—शुक्ल लेश्या तेरह गुण स्थानों में होती है, ॥ इति लेश्या मार्गणा ॥ भव्य जीव के चौदाहि गुण स्थान होते हैं। अभव्य जीव के पहिला एकहि गुण स्थान होता है। ॥ इति भव्य मार्गणा ॥ क्षायिक सम्यक्त्व, चौथे से चौदह तक ग्यारह गुण

स्थान हैं । वेदक सम्यक्त्व चौथे से सातवें तक चार गुण स्थान होते हैं, उपशमसम्यक्त्व चौथे से ग्यारवा तक आठ गुण स्थान में रहता है, मिथ्या सम्यक्त्व पहिले एक में, सासादन सम्यक्त्व दूसरे एक में, मिश्र सम्यक्त्व तीसरे एक गुण स्थान में होता है, ।। इति सम्यक्त्व मार्गणा ।।

संज्ञ्यसंज्ञिषु द्वादशद्वे प्रथमादित्रयोदश पंचगुणाः क्रमशः ।
आहारकानाहरके एतेषु इति मार्गणस्थानेषु गुणाः ।।२०।।

भावार्थ—संज्ञि जीव प्रथम से बारहवें गुण स्थान तक है । असंज्ञि जीव के पहिले दो गुण स्थान होते हैं ।। इति संज्ञि मार्गणा ।। आहारक प्रथम से तेरहवें गुण स्थान तक होते हैं–संयोग केवली के समुद्धात अपेक्षा से है । अनाहारक–मिथ्यात्व, सासादन, अविरति, संयोग केवली, अयोग केवली, ये पाँच गुण स्थान में–पहिला, दूसरा, चौथा, इनमें विग्रह गति अपेक्षा, तेरावा, समुद्धात अपेक्षा, चौदा में स्वभासे हैं । इस प्रकार मार्गण स्थान में गुण स्थानों का वर्णन पूर्ण हुआ ।। इति १४ मार्गणा में १४ गुण स्थान वर्णन ।। अथ १४ मार्गणा में १५ योग वर्णन–

आहारकौदारिकद्विकैः हीना भवन्ति नारकसुरेषु ।
आहारक वैक्रियिकद्विकयोगेन एकादश तिरश्चि ।।२।।

भावार्थ—नरक गती में, देवगती में- योग मनोयोग चारों, बचन योग चारों, वैक्रियककाय योग १ वैक्रियक मिश्र १ कार्मणकाय योग, ग्यारा होते हैं । तिर्यंच गती में–मनोयोग ४ वचन योग ४ औदारिक १ औदारिक मिश्र १ कार्माणकाय योग १ कुल ग्यारा होते हैं ।

वैगूर्विकद्विक रहिता मनुजे त्रयोदश एकाक्षकायेषु ।
पंचसु औदारिकद्विकं कार्मणं त्रयो विकलेषु ।।२२।।

भावार्थ—मनुष्य गती में वैक्रियक १ मिश्र १ दो छोड़कर शेष तेरह योग होते हैं ।। इति गति मार्गणा ।। पाँचो एकेन्द्रि–पृथ्वी १ अप १ तेज १ वायु १ वनस्पति १ में तीन=औदारिक १ मिश्र १ कार्माणकाय योग १ होते हैं । विकलत्रय में आगे बताते हैं ।

अनुभय वचनेन युताः चत्वारः पंचाक्षे तु पंचदश योगाः।
त्रसकाये विज्ञेयाः पंचदश योगेषु निजैकः ॥२३॥

भावार्थ—विकल त्रय के—औदारिक १ मिश्र १ कार्माण १ अनुभय वचन योग १ ऐसे चार योग प्रत्येक—दो इन्द्रि—तीन इन्द्रि—चार इन्द्रि जीवों के होते है। पंचेन्द्रिय के—पंद्रह योग होते हैं नाना जीव अपेक्षा से। त्रसकाय में सामान्य से पंद्रह योग होते हैं, इन्द्रिय मार्गणा, काय मार्गणा दो हुए, पंद्रह योगों में अपने-अपने योग होते है। ॥ इति योग मार्गणा ॥

आहारकद्विक रहिताः त्रयोदश स्त्री नपुंसकयोः पुंसि।
क्रोध चतुष्के सर्वे अज्ञानद्विके त्रयोदश भवन्ति ॥२४॥

भावार्थ—स्त्री वेद में—नपुंसक वेद में—आहारक तथा आहारक मिश्र ये दो छोड़ शेष तेरह योग होते हैं पुरुष वेद में सर्व्व पंद्रह योग हैं ॥ इति वेद मार्गणा ॥ क्रोध-मान-माया-लोभ-चारों कषायों में पंद्रह योग हैं ॥ इति कषाय मार्गणा ॥ कुमति-कुश्रुति-अज्ञान में—आहारक दोनों छोड़ तेरह योग होते हैं।

मिश्रद्विकाहारद्विक कार्मणविहीना भवन्ति विभंगे।
दश सर्वे ज्ञानत्रिके मनः पर्यये प्रथमनवयोगाः ॥२५॥

भावार्थ—कुअवधि–विभंग ज्ञान में—औदारिक मिश्र १ वैक्रियक मिश्र १ आहारक २ नो, कार्माण १ ये ५ रहित शेष दश योग होते हैं। सुमति-श्रुति-अवधि तीनों ज्ञानों में पंद्रह योग हैं, मनःपर्यय ज्ञान में आठौ मन वचन और एक औदारिक काय योग कुल नव होते हैं।

औदारिकः तन्मिश्रः कार्मणं सत्यानुभयानां च।
मनोवचनानां चतुष्कं केवलज्ञाने सप्त एकादशकं ॥२६॥

भावार्थ—केवलज्ञान में—औदारिक १ मिश्र १ सत्य मन १ सत्य वचन १ अनुभय मन १ अनुभय वचन १ कार्माण १ सब सात योग होते हैं, समुद्घात अपेक्षा से।

उक्तंच—

दंडद्विके औदारिकं कपाट युगले च प्रतरसंवरणे।
मिश्रौदारिकं भणितं शेषत्रिके जानीहिकार्मण॥

॥ इति ज्ञान मार्गणा॥

कार्मणाद्वि वैक्रियिक मिश्रौदारिकोनाः प्रथमयम युगले।
परिहारद्विके नवकं देशयमे चैव यथाख्याते॥२७॥

भावार्थ—सामायिक १ च्छेदोस्थापना १ दोनों संयम में - आठ-मन वचन योग ८ औदारिक १ आहारक व मिश्र २ दोनों मिले ग्यारह योग हैं, परिहार विशुद्धि १—सूक्ष्मसाम्पराय १ दोनों में—आठ मन वचन योग, एक औदारिक काय योग ऐसे नौ होते हैं। अगे—

वैक्रियिक द्विकाहरकद्विकोना एकादश असंयमे योगाः।
त्रयोदश आहारक द्विकरहिताः चक्षुषि मिश्रोनाः॥२८॥

भावार्थ—यथाख्यात चारित्र में-मन वचन ८ आठ, औदारिक १ मिश्र १ कार्मण १ ये ग्यारह होते हैं। असंयम में—आहारक २ दोनो छोड़ शेष तेरह हैं।

॥ इति संयम मार्गणा॥

द्वादश अचक्षुरवध्योः सर्वे सप्तैव केवलालोके।
कृष्णादित्रिके त्रयोदश पंचदश तेज-आदिक चतुष्के॥२९॥

भावार्थ—चक्षु दर्शन में बारह, वैक्रियक मिश्र १ औदारिक मिश्र १ कार्मण १ ये तीन रहित है। अचक्षु दर्शन में अवधि दर्शन में—सर्व पंद्रह योग है। केवल दर्शन में—ज्ञान के अनुसार सात हैं ॥ इति दर्शन मार्गणा॥ कृष्ण-नील-कापोत-तीनों लेश्या में—आहारक दोन खेरिज तेरह होते हैं। पीत-पद्म-शुक्ल में—भव्य में—सर्व पंद्रह योग होते हैं।

त्रयोदशाभव्ये सर्वे क्षायिकयुग्मे खलु उपशमे सम्यक्त्वे।
सासादन मिथ्यात्वयोः त्रयोदश अत्रिमिश्राहारकर्मणाः॥३०॥

भावार्थ—अभव्य जीव में आहारक दो के सिवाय तेरह योग हैं, ॥ इति लेश्या

मार्गणा—भव्य मार्गणा ।। क्षायिक—वेदक सम्यक्त्व दोनों में पंद्रह योग हैं, उपशम-मिथ्यात्व-सासादन में—आहारक दोनों छोड़ तेरह योग हैं।

मिश्रे दश सज्ञिनि सर्वे चत्वारोऽसंज्ञिनियोगाः ।
गतकार्माणा आहारके अनाहारके कार्मण एकः ॥३१॥

भावार्थ—मिश्र सम्यक्त्व में दस योग हैं—आठ मन वचन योग, औदारिक १ वैक्रियिककाय योग ये है ।। इति सम्यक्त्व मार्गणा ।। संज्ञी जीव में सर्व योग होते हैं, असंज्ञि में—औदारिक १ मिश्र १ कार्मण १ अनुभय वचन योग १ ये चार हैं ।। इति संज्ञि मार्गणा ।। आहारक जीव के कार्मण छोड़ चौदह योग है, अनाहारक में विग्रह गति मे एक कार्मणकाय योग होता है ।। इति आहारक मार्गणा ।।

।। इति मार्गणासु—पचदशयोगाः समाप्ताः ।।

अथ चतुर्दशमार्गणा में द्वादश उपयोगः—

नव नव द्वादश नव गति चतुष्के त्रय एक द्वित्र्यक्षे ।
चतुरक्षेउपयोगाश्चत्वारो द्वादश भवन्ति पंचाक्षे ॥३२॥

भावार्थ—नरक गती में ९ नौ उपयोग कुज्ञान ३ सुज्ञान ३ चक्षु-अचक्षु-अवधि-३ दर्शन—होते हैं, तिर्यंच गती में इसी प्रकार ९ है, मनुष्य गती में पूर्वोक्त ९ तथा—मनःपर्यय ज्ञान १ केवल ज्ञान १ केवल दर्शन १ कुल बारह उपयोग होते हैं। देव गती में नरक गति अनुसार ९ हैं ।। इति गति मार्गणा ।। एकेन्द्रि, द्वेइन्द्र, तीन इन्द्री में,—कुमति १ कुश्रुत १ अचक्षु दर्शन १ ये तीन हैं। चतुः इन्द्रि जीव में—कुमति-कुश्रुत ज्ञान २ अचक्षु-चक्षु दर्शन २ मिल चार होते हैं। पंचेन्द्रि मनुष्य अपेक्षा बारह होते हैं ।। इति इन्द्रिय मार्गणा ।।

कुमतिः कुश्रुतं अचक्षुः त्रयोऽपि भ्वप्तेजो वायुवनस्पतिषु ।
द्वादश त्रसेषु मनोवचनसत्यानुभयेषु द्वादशापि ॥३३॥

भावार्थ—स्थावर पंचकायों में प्रत्येककी-कुमति १ कुश्रुत १ अचक्षु दर्शन १ तीन हैं। त्रसकाय में बारह उपयोग होते हैं ।। इति काय मार्गणा ।। सत्य वचन योग १

अनुभय वचन १ सत्य मन योग १ अनुभयमन १ चारों योगों में बारह उपयोग होते हैं।

दशकेवलद्विकं वर्जयित्वा योग चतुष्के द्वादश औदारिके।
केवलद्विक मनःपर्ययहीना नव भवन्ति वैक्रियिके ॥३४॥

भावार्थ—असत्य मन योग में १ उभयमन योग में १ असत्य वचन योग १ उभय वचन योग में १ चारों में—केवल ज्ञान १ दर्शन १ दो रहित दश उपयोग होते है। औदारिक काय योग मे बारह है, वैक्रियिककाय योग में—केवल ज्ञान १ दर्शन १ मनपर्यय ज्ञान १ ये तीन रहित ९ नौ होते हैं।

चक्षुर्विभंगोनाः सप्तमिश्रे आहारकयुग्मे प्रथमं।
दर्शनत्रिकांज्ञानत्रिकं कार्मणे औदारिक मिश्रे च ॥३५॥

भावार्थ—वैक्रियिक मिश्रकाय योग में—कुमति-कुश्रुत-सुमति-श्रुत-सुअवधि ज्ञान, पाँच अचक्षुदर्शन-अवधि दर्शन २ मिल सात होते है, आहारक-मिश्र-दो में-सुमति, श्रुति, अवधि, चक्षु-अचक्षु-अवधि दर्शन-ये छह उपयोग होते हैं।

विभंगचक्षुर्दर्शन मनः पर्ययहीना नव वधू षंढयोः।
मनः केवलद्विकहीना नव दश पुंसि कषायेषु ॥३६॥

भावार्थ—कार्माणाकाययोगे—औदारिक मिश्रकाय योग में—विभंग ज्ञान, चक्षुदर्शन मनः पर्यय ज्ञान रहित शेष नौ उपयोग होते हैं ॥ इति योग मार्गणा ॥ स्त्री वेद—नपुंसक वेद में—मनः पर्यय ज्ञान—केवल ज्ञान—केवल दर्शन ये तीन छोड़ शेष नौ होते हैं। पुरुष वेद में—केवल ज्ञान, केवल दर्शन दो सिवाय दश होते हैं ॥ इति वेद मार्गणा ॥ क्रोध मान माया लोभ में—केवल ज्ञान दर्शन दो विना दस होते है ॥ इति कषाय मार्गणा ॥

अज्ञानत्रिके तान्येव त्रीणि चक्षुयुग्मं पंच सप्त चतुषु।
चत्वारि त्रीणि ज्ञानानि दर्शनानि पंचमज्ञानेऽन्तिमौ द्वौ ॥३७॥

भावार्थ—तीनों कुज्ञानों में—कुमति-कुश्रुति-विभंग ज्ञान-चक्षु अचक्षु दर्शन ये पाँच

होते हैं--मति, श्रुति, अवधि, मनपर्यय इन चार ज्ञानों में--चार ज्ञान, तीन दर्शन ऐसे सात उपयोग होते हैं। केवल ज्ञान में--केवल ज्ञान दर्शन दो उपयोग है ।। इति ज्ञान मार्गणा ।।

सामायिक युग्मे तथा सूक्ष्मे सप्त षडपि तुरीयज्ञानोनाः ।
परिहारे देशयतौ षट् भणिता असंयमे नवेति ।।३८।।

भावार्थ—सामायिक, च्छेदोपस्थापना, सूक्ष्मसाम्परायमें मति-श्रुति-अवधि-मन पर्यय ज्ञान चार चक्षु-अचक्षु-अवधिदर्शन तीन ये सात हैं। परिहार विशुद्धि में मतिज्ञानादि तीन, चक्षु दर्शनादि तीन, ये छह उपयोग हैं। देश संयम में उपरोक्त छः हैं। असंयम में कुज्ञान तीन, सुमति आदि के तीन, चक्षु आदि दर्शन तीन, ऐसे नउ उपयोग होते हैं ।।

पंचज्ञानानि दर्शन चतुष्कं यथा ख्याते चक्षुर्दर्शनयुग्मेषु ।
गत केवलद्विकं दर्शनगतज्ञानोक्ता हि अवधिद्विके ।।३९।।

भावार्थ—यथा ख्यात संयम में-मति ज्ञानादि पांच ज्ञान–चक्षु आदि चार दर्शन ये नव उपयोग होते हैं। इति संयममार्गणा। चक्षु-अचक्षु दो दर्शन में केवल ज्ञान-दर्शन-दोनों छोड बाकी दश उपयोग होते हैं। अवधि दर्शन में-मति ज्ञानादि चार ज्ञान-चक्षु दर्शनादि तीन दर्शन ये सात उपयोग हैं। केवल दर्शन में-केवल ज्ञान-केवल दर्शनोपयोग ये दो होते हैं। इति दर्शन मार्गणा ।।

मनः पर्यय केवलद्विक हीनोपयोगा भवन्ति कृष्णात्रिके ।
नव दशते जोयुगले भव्येऽपि च द्वादश शुक्लाया ।।४०।।

भावार्थ—कृष्ण-नील-कापोत-तीनों लेश्या में-मनपर्यय-केवलज्ञान-केवल दर्शन ये तीन छोड़ बाकी के नउ उपयोग होते हैं, पीत-पद्म-दो लेश्या में-केवल ज्ञान दर्शन दो छोड शेष दश होते हैं, शुक्ल लेश्या में-बारह उपयोग होते हैं। इति लेश्या मार्गणा ।। भव्य जीव में बारह उपयोग होते हैं।

पंच अशुभा अभव्ये क्षायिकत्रिके च नव सप्त षडेव ।
मिश्रामिश्रे सासने मिथ्यात्वं षट् पंच पंचकं च ।।४१।।

भावार्थ—अभव्य जीव में-कुमति-कुश्रुति-कुअवधि-चक्षु-अचक्षु दर्शन ये पाँच अशुभ उपयोग होते हैं। इति भव्य मार्गणा ॥ क्षायिक सम्यक्त्व में तीन कुज्ञान छोड़ नव हैं, वेदक सम्यक् में-कुज्ञान तीन-केवलज्ञान-दर्शन दोन मिल पांच खेरोज सात उपयोग हैं, उपशम सम्यक्त्व में-सुमति आदि तीन ज्ञान-चक्षु आदि तीन दर्शन ये छह् उपयोग है। मिश्र सम्यक्त्व में-मिश्र आदि के तीन ज्ञान कुसुमिश्र-चक्षु-अचक्षु-अवधि दर्शन तीन ये सर्व छह् होते हैं। सासादन सम्यक्त्व में कुज्ञान तीन-चक्षु-अचक्षु दर्शन दो सब पांच उपयोग हैं। मिथ्यात्व सम्यक्त्व में सासादनऽनुसार पांच होते है। इति सम्यक्त्व मार्गणा ॥

दश संज्ञिनि असंज्ञिनि चत्वारः प्रथमे आहारके च द्वादशकं।
मनश्चक्षुर्विभंगोना नव अनाहारे च उपयोगाः ॥४२॥

भावार्थ—संज्ञी जीव में-केवल ज्ञान दर्शन दो छोड़ शेष दस उपयोग होते है, असंज्ञि जीव में-कुमति-कुश्रुति-दोन ज्ञान-चक्षु-अचक्षु दर्शन दो ये चार होते है। इति संज्ञिमार्गणा ॥ अहारक जीव के बारह उपयोग होते है, अनाहरक जीव में-मनपर्यय ज्ञान-चक्षु-दर्शन-विभग ज्ञान ये तीन छोड नउ उपयोग होते है। इति आहार मार्गणा ॥

॥ इति चतुर्दश मार्गणासु द्वादशः उपयोगः पूर्णः ।:

अथ—चौदह् जीव समास में पंद्रहायोग वर्णन.—

नवसु चतुष्के एकस्मिन् योगा एको द्वौ भवन्ति द्वादश।
तद्भवगतिषु एते भवान्तर्गतिषु कार्मणं ॥४३॥
सप्तसु पूर्णेषु भवेत् औदारिकं मिश्रकं अपूर्णेषु।
एकैकयोगः द्वि हीनाः जीव समासेषु ते ज्ञेयाः ॥४४॥

भावार्थ—एकेन्द्रिय सूक्ष्म अपर्याप्त में-एक औदारिक मिश्र काय योग-एके-सूक्ष्म पर्याप्त में औदारिक काय योग एक-एके-वादर अपर्याप्त में औदारिक मिश्र १-एक वादर पर्याप्त में औदारिक काय १. द्वि इन्द्रिय अपर्याप्त में-औ०मिश्र १ द्विइन्द्रिय पर्याप्त में औदारिक काय १ अनुभय वचन १ ये दो हैं। त्रिइन्द्रि अपर्याप्त में-औ० मिश्र १-त्रिइन्द्रिपर्याप्त में औदारिकाय १ अनुभय वचन १ ऐसे दोन। चौइन्द्रि

अपर्याप्त में-औ०-मिश्र १ चौ इन्द्रि पर्याप्त में-औदारिक काय १ अनुभय वचन १ ये दो हैं । पंचेन्द्रि असंज्ञि अपर्याप्त में-औ०-मिश्र १ पंचे-असंज्ञि पर्याप्त में-औदारिक काय १ अनुभय वचन १ ये दो होते हैं । पंचेन्द्रि संज्ञि अपर्याप्त में-औदारिक मिश्र १ पंचेन्द्रि संज्ञि पर्याप्त में-आठों मन, वचन, योग, तथा औदारिक काय १ वैक्रियक काय १ आहारक काय १ आहारक मिश्र १ ये बारह होते हैं । कार्माण काय योग अन्य भव में गमन के समय विग्रह गती में होता है । सातो जीव समास में पर्याप्त अपर्याप्त वर्णन हुआ ।

॥ इति योग वर्णनः ॥

अथ चतुर्दश जीव समासे=उपयोगः ॥

कुमतिद्विको अचक्षुः त्रयः दशसु द्विके चत्वारो भवन्ति ।
चक्षुयु ताः संज्ञयपर्याप्ते पर्याप्तेसप्तदश जीवेषु उपयोगाः ॥४५॥

भावार्थ—एकेन्द्रि सूक्ष्म अपर्याप्त १ पर्याप्त १ ए० बादर अपर्याप्त १ पर्याप्त १ दोइन्द्रि अपर्याप्त १ पर्याप्त १ त्री इन्द्रि अपर्याप्त १ पर्याप्त १ चौइन्द्रि अपर्याप्त १ पंचेन्द्रि असंज्ञि अपर्याप्त १ इन दस जीवों में—तीन उपयोग हैं वे यह—कुमति-कुश्रुति-अचक्षु । चार इन्द्रि पर्याप्त १ पंचेन्द्रि असंज्ञि पर्याप्त १ इन दोनों में—कुमति-कुश्रुति-अचक्षु-चक्षु-चार उपयोग हैं । पंचेन्द्रि संज्ञि अपर्याप्त में—सातवें यह=कुमति १ कुश्रुत १ सुमति १ श्रुत १ अवधिज्ञान १ चक्षु १ अवधि दर्शन १ ऐसे है । पंचेन्द्रि संज्ञि पर्याप्त में दश—केवल ज्ञान दर्शन छोड़ के शेष । जीव समास में यथा योग्य बारह उपयोग वर्णन पूर्ण ।

॥ चौदह गुण स्थान योग-वर्णन ॥

मिथ्यात्वद्विके अयते तथा त्रयोदश मिश्रे प्रमत्तकेयोगाः ।
दशैकादश सप्तसु नव सप्त सयोगे अयोगिनि च ॥४६॥

भावार्थ—मिथ्यात्व-सासादन-अविरत-तीनों में तेरह योग आहारक दोनों छोड़
१ २ ४
कर होते हैं । तीसरे मिश्र में—आठ मन वचन योग औदारिक काय १ वैक्रियक काय
३

योग १ ये दश हैं । प्रमत्त में–ग्यारह वे यह आठ मन वचन-औदारिक १ आहारक दोनों
६
देशविरत–अप्रमत्त–अपूर्वकरण–अनिवृत्तकरणकसूक्ष्म साम्पराय-उपशान्तकषाय–क्षीण
५ ७ ८ ९ १० ११ १२
कषाय इन सात गुण स्थानों में–आठ मन वचन योग-एक औदारिक काय योग ये नौ होते हैं । संयोग केवलि में–सत्य-अनुभयमन २ सत्य-अनुभय वचन २ औदारिक-मिश्र २
१३
कार्मण १ ऐसे सात हैं । अयोगि गुण स्थान में योग नहीं ॥ इति ॥
१४

चौदह गुण स्थानो मे—बारह उपयोग वर्णनः—

प्रथमद्विके पंच पंचकं मिश्रा मिश्रे ततो द्विके षट्कं ।
सप्तोपयोगाः सप्तसु द्वौ योग्य योगिगुणस्थाने ॥४७॥

भावार्थ—मिथ्यात्व-सासादन में=कुमति-कुश्रुत-विभंग-चक्षु-अचक्षु ये पाँच उपयोग है । तीसरे मिश्र में–मति-श्रुति-अवधि मिश्र ज्ञान ३ चक्षु अचक्षु अवधि दर्शन मिश्र ३ ये छह हैं । चौथे-पाँचवें में–तीन पहिले सुज्ञान–तीन पहिले दर्शन ये छह है । छट्टे से बारहवें तक सात गुण स्थानों में –चार पहिले सुज्ञान–तीन पहिले दर्शन ये सात होते तेरह-चौदह दो स्थानों में–केवल-ज्ञान–केवल दर्शन ये दो होते है ।

॥ इति समासे उपयोगाः ॥

अथ चतुर्दश मार्गणा में–सप्त पंचाश प्रत्ययाः कथ्यन्ते—

मिथ्यात्वमविरतयस्तथाकषाया योगाश्च प्रत्ययभेदाः ।
पंच द्वादश बन्धहेतवः पंचविंशतिः पंचदश भवन्ति ॥४८॥

भावार्थ—

मिथ्यात्वपंचकं मिथ्यात्योदयेन मिथ्यात्वं अश्रद्धानं चत्वार्थानां ।
एकान्तं विपरीतं विनयं संशयितम ज्ञानमिति ॥१॥
अविरतः द्वादशः पट्प्विंन्द्रियेपु अविरतिः पट्जीवे तथा चविरतिश्चैव ।
इन्द्रिय प्राणासयमा द्वादश भवन्तीत्ति निर्दीप्टं ॥२॥

तथा कषाय पंचविस=अनन्तानुबंधि–अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान-संज्वलन=क्रोध ४ मान ४ माया ४ लोभ ४ हास्य-रति-अरति-शोक-भय-जुगुप्सा-स्त्री-पुरुष-नपुंसक–नौ इति। योग पंद्रह-मन वचन ८ औदारिक ७ काय योग इति॥ ये आस्रव कर्म बन्ध के कारण होते है॥

आहारौदारिकद्विकस्त्रीपुंहिना नरके एकपंचाशत्।
आहारक वैक्रियिकद्विकोनाः त्रिपंचाशत् तिरश्चि॥४९॥

भावार्थ—नरक गति में–आहारक २ ओदारिक २ स्त्री-पुं-वेद २=ये छह छोड़कर इक्यावन आश्रव है। तिर्यंच गति में–आहारक २ वैक्रियक दो २ ये चार छोड़ बाकी के त्रेपन होते हैं।

पंचपचाशत् वैक्रियिकद्विकोना मनुजेषु भवन्ति।
द्विपंचाशत् षंढाहारौदारिकद्विकैर्हीनाः सुरगत्याम्॥५०॥

भावार्थ—मनुष्य गति में–वैक्रियक दो रहित पचपन प्रत्यय होते हैं। देव गति में-नपुंसक वेद-आहारक दो-औदारिक दो-ये पाँच छोड़ बावन प्रत्यय होते हैं॥ इति गति मार्गणा॥

मनोरसन चतुष्कस्त्रीपुरुषा हारक वैक्रियिकयुगैः।
एकाक्षे मनोवागष्टयोगैर्हीना अष्टात्रिंशत्॥५१॥

भावार्थ—एकेन्द्रि जीव के ३८ प्रत्यय है–शेष मन १ रसनादि ४ स्त्री-पुरुष वेद २ आहारक २ वैक्रियक २ सत्यादि मन वचन ८ ये कंदर १९ उन्नीस नहीं होते।

एते च अन्तभाषारसनायुक्ता घ्राण चक्षुः संयुक्ताः।
चत्वारिंशत् एकाद्विचत्वारिंशत् क्रमेण विकलेषु विज्ञेयाः॥५२॥

भावार्थ—द्वि-त्रि-चतुः इन्द्रियों-एकेन्द्रि के कहे ३८ तथा अनुभय वचन-रसना २ ज्यादा ४० द्वि० के०। एक घ्राण ज्यादा ४१ त्रिइन्द्रि के। एक चक्षु ज्यादा ४२ चार इन्द्रि के प्रत्यय हैं।

पंचेन्द्रिये त्रसे तथा सर्वे एकान्नोक्ता अष्टात्रिंशत्।
स्थावरपंचके गणिता गणनाथैः प्रत्यया नियमात् ॥५३॥

भावार्थ—पंचेन्द्रि नाना जीवों के अपेक्षा सर्व प्रत्यय होते हैं। इति इन्द्रिय मार्गणा॥ तथा त्रसकाय में नाना जीव अपेक्षा से—सत्तावन आश्रव होते हैं। स्थावर पाँचों एकेन्द्रि के ३८ प्रत्यय हैं इस प्रकार गणधर भगवान ने कहा है॥ इति काय मार्गणा॥

आहारकद्विकं हृत्वा अन्येषु योगेषु निजं निजं धृत्वा।
योगं ते त्रिचत्वारिंशत् ज्ञातव्या अन्ययोगोनाः ॥५४॥

भावार्थ—आहारक दोनों छोड़ शेष तेरह योगों में अपने-अपने योगों को लेकर ४३ आश्रव होते हैं। वे ऐसे पाँच मि० ५ अविरती १२ कषाय २५ एक काय १ है।

संज्वलना अषण्ढास्त्रियो भवन्ति तथा नोकषायनिजयोगाः।
द्वादश आहारकयुगे आहारकोभयपरिहीनाः ॥५५॥

भावार्थ—आहारक काय–आहारक मिश्रकाय में–संज्वलन क्रोध-मान-माया-लोभ-हास्य-रति-अरति-शोक-भय-जुगुप्सा-पुरुष वेद-स्वकाय योग-ऐसे बारह होते हैं॥ इति योग मार्गणा में आश्रवः॥

स्त्रीनपुंसकवेदे सर्वे पुरुषे च क्रोध प्रभृतिषु।
निजरहितेतर द्वादश कषायहीना हि पंच चत्वारिंशत् ॥५६॥

भावार्थ—स्त्री वेद में आहारक दोय अन्य दो वेद ४ रहित ५३-नपुंसक वेद में आहारक दोय अन्य दो वेद-४ रहित ५३ पुरुष वेद में अन्य दो वेद रहित ५५ आश्रव होते हैं। क्रोध-मान-माया-लोभ–में अपने कषाय सहित अन्य तीन चौकड़ी के बारह कषाय रहित ४५ आश्रव होते हैं॥ इति कषाय मार्गणा॥

कुमतिद्विके पंचपंचाशत् आहारकद्विकोनाःकर्ममिश्रोनाः।
द्वापंचाशत् विभंगे मिथ्यात्वान पंच चतुर्हीनाः ॥५७॥

भावार्थ-कुमति ज्ञान में-कुश्रुत ज्ञान में--आहारक दो छोड़ कर शेष पचपन आश्रव होते हैं। कुअवधि ज्ञान में--आहारक दो-औदारिक मिश्र-वैक्रियक मिश्र-कार्मण ये पाँच छोड़ शेष बावन आश्रव होते हैं।

ज्ञानत्रिके अष्टचत्वारिंशत् अषण्ढस्त्रीनोकषाया मनः पर्यये।
विंशतिः चतुः संज्वलनाः नवादियोगा सप्तान्तिमे ॥५८॥

भावार्थ--सुमति-सुश्रुत-अवधि ज्ञान में--मिथ्यात्व पाँच-अनंतानुबंधी चार-ये नौ कम होके शेष ४८ अड़तालीस आश्रव होते हैं। मनः पर्यय ज्ञान में--पु० १ वेद छह ६ नो कषाय-संज्वलन ४ आठ ८ मन वचन योग-औदारिक १-कुल बीस आश्रव हैं। केवल ज्ञान में सात-सत्य-अनुभय-मन २ वचन २ औदारिक १ मिश्र १ कार्मण १ ये सात आश्रव हैं।

॥ इति ज्ञान मार्गणाश्रवः ॥

वैगूर्विकद्विकौदारिकमिश्र कार्मणोना एकादशयोगाः।
संज्वलननोकषायाः चतुर्विंशतिः प्रथमयमयुग्मे ॥५९॥

भावार्थ--सामायिक-छेदोपस्थापन संयममें--मन वचन योग आठ औदारिक १ आहारक २ संज्वलन ४ हास्यादि नो कषाय ९=येकंदर २४ होते हैं।

परिहारे आहारकद्विकरहितास्ते भवन्ति द्वाविंशतिः।
संज्वलनलोभ आदिमनवयोगा दश भवन्ति सूक्ष्मे च ॥६०॥

भावार्थ--परिहार विशुद्धि संयम में--आठ मन वचन योग--औदारिक काय १ संज्वलन कषाय ४ नो कषाय ९ ये बाईस आश्रव हैं। सूक्ष्म साम्पराय में--मन वचन ८ औदारिक १ संज्वलन लोभ १ ये दश प्रत्यय हैं।

औदारिकमिश्रकार्मणसंयुता लोभहीना यथाख्याते।
नवयोगा नोकषाया अष्टान्तकषाया देशयमे ॥६१॥

भावार्थ--यथाख्यात समय में--अष्ट मन वचन योग ८ औदारिक १ मिश्र १ कार्मण १ ये ग्यारह होते हैं।

त्रसासंयमाहीना अयमाः सर्वे सप्तत्रिंशत् संयमविहीने।
आहारक युगोनाः पंचपंचाशत् सर्वे च चक्षुर्युगे ॥६२॥

भावार्थ—देश संयम में—मन वचन ८ औदारिक काय १ हस्यादि नो कषाय ६ प्रत्याख्यान ४ संज्वलन ४ त्रस-छोड़-ग्यारह अविरति ११ ये सब ३७ प्रत्यय हैं। असंयम में—आहारक दोनों छोड़ शेष सर्व ५५ होते हैं। इति संयम मार्गणा में आश्रवः ॥ चक्षु-अचक्षु दोनों में नाना जीवों के अपेक्षा ५७ आश्रव है ॥

अवधौ अष्ट चत्वारिंशत् ज्ञान त्रिकोक्ता हि केवलालोके।
सप्त गतद्विकाहारकाः पंचपंचाशत् भवन्ति कृष्णत्रिके ॥६३॥

भावार्थ—अवधि दर्शन में—अनन्तानुबंधी ४-मिथ्यात्व ५ ये नौ छोड़ शेष ४८ प्रत्यय है। केवल दर्शन में—सत्य मन-अनुभय मन-सत्य वचन-अनुभय वचन-औदारिक १ मिश्र १ कार्मण योग १ ये सात होते है। इति दर्शन मार्गणा में आश्रवः। कृष्ण-कापोत-नील तीनों अशुभ लेश्या में आहारक दोनों छोड़ शेष पचपन प्रत्यय है।

तेजआदित्रिके भव्ये सर्वे अनाहारकयुग्मका अभव्ये।
पंचपंचाशत्ते मिथ्यात्वानोनाः षट्चत्वारिंशत् उपशमे ॥६४॥

भावार्थ—पीत-पद्म-शुक्ल तीन लेश्या में तथा भव्य जीव में—सर्व ५७ आश्रव नाना जीव अपेक्षा से होते है। अभव्य जीव में—आहारक दोनों छोड़ शेष पचपन प्रत्यय है। इति लेश्या भव्य मार्गणा में आश्रवः। उपशम सम्यक्त्व में—बारह अविरति १२ कषाय २१ अनन्तानुबंधी रहित-१३ योग-आहारक दो छोड़ ऐसे ४६ होते हैं।

आहारकयुगयुक्ताः क्षायिकद्विके च तेऽपिअष्टचत्वारिंशत्।
मिश्रे त्रिचत्वारिंशत् ते त्रिमिश्राहारकद्विकोनाः ॥६५॥

द्वितीये मिथ्यात्वपंचकोनाः पंचाशत् मिथ्यात्वे च भवन्ति।
पंचपंचाशत् आहरकयुगवियुक्ताः प्रत्ययाः सकलाः संज्ञिनि ॥६६॥

भावार्थ—क्षायिक–वेदक दोनों सम्यक्त्व में—अविरति १२ कषाय २१ अनन्तानुबंध रहित—योग १५ येकंदर ४८ होते हैं। मिश्रसम्यक्त्वे–अविरत १२ कषाय पूर्वोक्ति २१ योग १० मन वचन ८ औदारिक-वैक्रियककाय २ ऐसे ४३ होते हैं। सासादन में—पाँच मिथ्यात्व-आहारक दोनों ये सात कम करके शेष ५० होते हैं। मिथ्या सम्यक्त्व में—आहारक दो छोड़ सर्व ५७ होते है ॥ इति सम्यक्त्व मार्गणा में आश्रवः ॥ संज्ञि जीव में सर्व ५७ नाना जीव अपेक्षा होते है।

कार्मणौदारिक द्विकासत्यमृषोनयोगमनोहीनाः।
पंचचत्वारिंशद्संज्ञिनि संकलाआहारकेअकार्णमकाः ॥६७॥

भावार्थ—असंज्ञि जीव में ४५ प्रत्यय होते हैं वे ऐसे—पाँच मिथ्यात्व ५ मन रहित ११ अविरति २५ कषाय-कार्मणः औदारिक योग २ असत्य वचन-अनुभय वचन २ ये सर्व ४५ हैं। इति संज्ञि मार्गणा-प्रत्ययाः। आहारक जीव के कार्मण काय योग छोड़ सर्व ५६ होते हैं।

त्रिचत्वारिंशदनाहारके कर्मेतरजोगहीनका भवन्ति ॥
तीर्थ प्रभुणा गणिता इति मार्गणाप्रत्यया भणिताः ॥६८॥

भावार्थ—अनाहार के जीव में–मिथ्यात्व ५ अविरतः १२ कषाय २५ कार्मण काय योग १ ये सब ४३ प्रत्यय हैं। इस प्रकार तीर्थंकर भगवान ने तथा गणधरादि आचार्यों ने वर्णन किया है ॥ इति ॥

अथ चतुर्दश जीव समासेषु सप्तपंचाशतप्रत्ययाः कथ्यन्ते—

एकद्वित्रिचतुरक्षेषु च संज्ञिषु भाषिता येते।
अष्टात्रिंशदादयः संकलाःपंच चत्वारिंशत् कार्मामिश्रोनाः ॥६९॥

सप्तसु पूर्णेषु भवेत् औदारिकं मिश्रकं अपूर्णेषु।
एकैकयोगविहीना जीवसमासेषु ते ज्ञेयाः ॥७०॥

भावार्थ—एकेन्द्रि सूक्ष्म अपर्याप्त के–मिथ्यात्व ५ षटकाय विराधना ६ स्पर्श इन्द्रि

अविरत १ स्त्री-पुरुष दो वेद छोड़ बाकी २३ कषाय-औदारिक मिश्र-कार्मण २ योग सव ३७ आश्रव हैं। एकेन्द्रि सूक्ष्म पर्याप्त के-मि० ५ अवि० ७ कषाय २३ औदारिक काय योग १ सर्व ३६ आश्रव हैं। एकेन्द्रि बादर अपर्याप्त के मिश्र ५ अविरत ७ कषाय २३ औदारिक मिश्र १ कार्मण १ ये सब ३७ होते है। एकेन्द्रि बादर पर्याप्त के–मिश्र ५ अविरति ७ कषाय २३ औदारिक १ सर्व ३६ आश्रव है। द्विइन्द्रि अपर्याप्त के–मिश्र ५ षटकाय विराधना स्पर्श रसना अविरती ८ कषाय २३ औदारिक मिश्र-कार्मण २ योग सर्व ३८ हैं। द्विइन्द्रि पर्याप्त के–मी० ५ अ० ८ क० २३ औ० १ अनुभय भाषा १ ये सर्व ३८ है। त्रिइन्द्रि अपर्याप्त जीव के दो इन्द्रि से एक घ्रान अविरति अधिक ३६ है। त्रिइन्द्रि पर्याप्त के दो इन्द्रि पर्याप्त से १ अधिक घ्राण अविरती सर्व ३६ हैं। चौइन्द्रि अपर्याप्त के तीन इन्द्रि अ० एक चक्षु अविरति अधिक सर्व ४० हैं। चौइन्द्रि पर्याप्त के तीन इन्द्रि पर्याप्त से एक चक्षु अविरति अधिक ४० हैं। पंचेन्द्रि असंज्ञि अपर्याप्त के–मिश्र ५ मन रहित अविरति ११ कषाय २५ औदारिक मिश्र १ कार्म १ ये ४३ है। पंचेन्द्रि असंज्ञि पर्याप्त के मिश्र ५ अविरति ११ कषाय २५ औदारिक १ अनुभय वचन १ ये सब ४३ हैं। पंचेन्द्रि संज्ञि अपर्याप्त के-मिश्र ५ अविरति ११ कषाय २५ औदारिक मिश्र १ वैक्रियक मिश्र १ कार्म १ सर्व ४४ प्रत्यय है। पंचेन्द्रि संज्ञि पर्याप्ते जीव समासे–मिश्र ५ अविरति १२ कषाय २५ मिश्र कार्मण २ छोड़ १३ योग कुल ५५ आश्रव होते हैं।

॥ इति जीव समास आश्रवः ॥

अथ चतुर्दश गुण स्थानेषु-प्रत्यया कथ्यन्ते—

मिथ्यात्वे चतुः प्रत्ययो वन्धः सासनद्विके त्रिप्रत्ययः।
ते विरतियुता अविरत देश गुणे उपरिमद्धिकं च ॥७१॥

द्वौ ततः पंचसु त्रिषु ज्ञातव्यो योगप्रत्यय एकः।
सामान्य प्रत्यया इतिः अष्टानां भवन्ति कर्मणां ॥७२॥

भावार्थ—मिथ्यात्व गुण स्थान में–मिश्र अविरति कषाय योग चारों प्रकार के आश्रव से वन्ध होता है। सासादण-मिश्र गुण अविरति कषाय योग तीनों प्रकार के

आश्रव हैं। अविरति-देशविरति-दो गुण स्थान में-अविरति कषाय-योग-तीनों आश्रव हैं। प्रमत्तादि सूक्षम सांम्पराय तक पाँच गुण स्थानों में कषाय योग दो आश्रव हैं। ग्यारह-बारह-तेरहवें-गुणस्थान में—१ योगाश्रव है।

आगे विशेष वर्णन करते है—

प्रथमगुणेपंचपंचाशत् द्वितीये पंचाशत् च कार्मणानोनाः।
मिश्रौदारिकवैक्रियिक मिश्रोनाः त्रिचत्त्वारिंशन्मिश्रे ॥७३॥

भावार्थ—पहिले गुण स्थान में—आहारक दोनों छोड़ शेष ५५ आश्रव है। सासादन में—पांच मिथ्यात्व रहित ५० आश्रव है। मिश्र में—पचास में—कार्मण १ अनतानु ४ औदारिक मिश्र १ वैक्रियक मिश्र १ ऐसे ज्यादा घटा देने से-४३ आश्रव हैं।

भवन्ति षट्चत्वारिंशत् खलु अयते कार्मणमिश्रद्विकयुक्ताः।
द्वितीय कषायत्रसायम द्विमिश्रवैक्रियिक कार्मणोनाः॥७४॥

भावार्थ—चतुर्थ गुण स्थानों में तीसरे के ४३ और कार्मण १ औदारिक मिश्र १ वैक्रयिक मिश्र १ तीन लेकर ४६ आश्रव है। पाँचवें में ३७ प्रत्यय है वे—कषाय १७ अविरति ११ योग ६ सर्व ३७ हैं।

सप्तत्रिंशद्देशे तथा चतुर्विंशति प्रत्ययाः प्रमत्ते च॥
आहारकद्विको एकादशाविरतिचतुः प्रत्यन्ययूनाः॥७५॥

भावार्थ—प्रमत्त में-कषाय स० ४ नो कषाय ६ मन वचन ८ औदारिक १ आहारक २ ये सर्व २४ हैं।

आहारकद्विकोना द्विषु द्वाविंशतिः हास्यषट्केन षंढस्त्री।
पुंक्रोधादिविहीनाः क्रमेण नवमं दशमं जानीहि॥७६॥

भावार्थ—अप्रमत्त-अपूर्व करण इन दो गुण स्थानों में—संज्वलन ४ नो कषाय ६ मन वचन योग ८ औदारिक १ ये सर्व २२ हैं। अनिवृतिकरण में—संज्वलन ४ वेद

नोकषाय ३ मन वचन योग ८ औदारिक १ सर्व १६ हैं। १० वें गुण स्थान में–सं० लोभ १ मन वचन ८ औदारिक १ ये सर्व १० होते हैं।

दश सूक्ष्मेऽपि च द्वयोः नव सप्त सयोगे प्रत्यया भवन्ति।
प्रत्ययहीनमन्यूनं अयोगिस्थानं सदा वन्दे ॥७७॥

भावार्थ—ग्यारहवें-बारहवें दो गुण स्थानों में–मन वचन योग ८ औदारिक १ ये सर्व ६ आश्रव है। १३ संयोगि में–सत्य अनभयमन २ वचन २ औदारिक मिश्र २ कार्म १ ये सर्व ७ होते हैं। अयोगी १४ वे गुण स्थान में सर्व अभाव है। ऐसे परमात्मा को सतत हम वन्दते हैं।

॥ इति गुण स्थानम् आश्रवः ॥

प्रवचनप्रमाणलक्षणच्छन्दोऽलङ्कार रहित हृदयेन।
जिनचन्द्रेण प्रोक्तं इदं आगमभक्तियुक्तेन ॥७८॥

भावार्थ—यह सिद्धांतसार शास्त्रं–जिनचन्द्र-सिद्धान्त ग्रन्थ वेदिते-प्रवचन-प्रमान लक्षणच्छन्द अलंकारादि छोड़ हृदय से आगम की भक्ति से इसे युक्ति से लिखा है।

सिद्धान्तसारं वरसूत्रगेहाः, शोधयन्तु साधवो मदमोहत्यक्ता ॥
पूरयन्तु हीनं जिननाथभक्ताः विरागचित्ताः शिवमार्गयुक्ताः ॥७६॥

भावार्थ—भो साधुगण इस ग्रन्थ की अशुद्धियादि को शुद्धि कर लेवो या भूल रही हो सो पूर्ति कर लेवो मैंने जिनागम की भक्ति से मद मोह छोड़ कर विराग भाव से सम्यग्दर्शनादि मोक्ष मार्ग की अभिलाषा से यह लिखा है।

॥ इति सिद्धान्तसार पूर्ण ॥



कर्म बन्धादि यंत्र:

गुण० संख्या	गुण० नाम	बंध सं०	बंध सं० व्युछ०	उदय सं०	उदय सं० व्यु०	संख्या	संख्या
प्रथम	मिथ्यात्व	११७	१६	११७	५	१४८	० उपशम
						सत्ता	सत्ता व्यु०
द्वितीय	सासादन	१०१	२५	१११	९	१४५	०
तृतीय	सम्यग्मिश्र	७४	०	१००	१	१४७	०
चतुर्थ	अविरत स०	७७	१०	१०४	१७	१४८	१
पंचम	देश विरत०	६७	४	८७	८	१४७	१
षष्ठ	प्रमत्त संयत०	६३	६	८१	५	१४६	० क्षपक
सप्तम	अप्रमत्त संय०	५९	१	७६	४	१४६	४=१०
अष्टम	अपूर्व करण०	५८	३६	७२	६	१४२	०
नवम	अनिवृत्तिक०	२२	५	६६	६	१४२	० ३६
दशम	सूक्ष्मसाम्पराय	१७	१६	६०	१	१४२	० १
एकादश	उपशान्त कषाय	१	०	५९	२	१४२	० =
द्वादश	क्षीण कषाय	१	०	५७	१६	१०१	१६
त्रयोदश	संयोग केवली	१	१	४२	३०	८५	०
चतुर्दश	अयोग केवली	०	०	१२	१२	८५	८५



गणित-ज्योतिष

(गणित विषय संज्ञादि प्रकार)

संख्यामान १ के २१ भेद हैं

१. संख्यात—	जघन्य १ २	मध्यम २	उत्कृष्ट ३
२. परितासंख्यात—	" १	" २	" ३
३. युक्तासंख्यात—	" १	" २	" ३
४. असंख्यातासंख्यात—	" १	" २	" ३
५. परीतान्त—	" १	" २	" ३
६. युक्तानन्त—	" १	" २	" ३
७. अनंतानंत—	" १	" २	" ३
(अक्षय अनंत)			२१

ये गणतिसरसीसे ४६ अंक प्रमाण विरलन कर गुणे परितऽसंख्या।

भावार्थ.—जहां द्रव्य का परिमाण कहे वहाँ पदार्थ। क्षेत्रका प्रमाण कहे वहां उतने प्रदेश। जहांकाल का परिमाण कहे वहां समय। जहां भाव का प्रमाण कहे वहाँ उतने अविभाग-प्रतिच्छेद जानने चाहिये ये उपमा मान से जाने जाते हैं।

अभव्य जीवरासी—जघन्ययुक्तानन्त समान है॥

ज० युक्तऽसंख्य समय का = आवली संख्यातका = मुहूर्त३०का = रात्रदिन ३० का =
१ १ १

मास २ का = ऋतु ३ का = अपन २ का = १ वर्ष
१ १ १

उपमामान २ के ८ भेद हैं

१. पल्य — ३ भेद हैं — (१ व्यवहारपल्य २ उद्धारपल्य ३ अद्धापल्य) × १० को×
कोडिसे =(सागर)

२. सागर — ३ भेद हैं- (१ व्यवहार सागर २ उद्धारसागर ३ अद्धासागर)

३. सूच्यंगुल—का वर्ग प्रतर

४. प्रतरांगुल

५. घनांगुल (सूच्यकाघन) का विरलन करगुण =

६. जगच्छ्रेणो का सातवां भाग राजू = का वर्ग =

७. जगत्प्रतर

८. लोक (जगच्छ्रेणी का घन)

परमाणु × अनंत का-स्कंध (अवसन्नासन्न ८ का = सन्नासन्न ८ का = तृटरेणु ८ का = त्रसरेणु ८ का = रथरेणु ८ का = उ० भो० वा० ८ का = मं० भो०वा० ८ का = ज० भो० वा० ८ का = क० भू-बालग्र ८ की = लीख ८ की = सरसू ८ का = जौ ८ का = अंगुल (उत्सेधांगुल = शरीर नगर मन्दिर) से × ५०० का प्रमाणांगुल (से-महापर्वत-नदी, द्वीप, समुद्र)-भरत ऐरावत के मनुष्यों के अपने काल में = आत्मांगुल (झारी कलश धनुषादि) ६ अंगुल का = पाद २ का = विलस्त २ का = हाथ ४ का = धनुष २००० का = कोश ४ का = योजन ५००का = महायोजन १ का-खोल-तथा १ व्यास का खंडागोल = भो० केसाग्र ४५ अंक प्रमाण को १०० वर्ष से १ निकाल कर पूर्ण करणे का काल को = व्यवहारपल्य काल के असंख्यात कोटी वर्ष के समय से गुणेउद्धारपल्य (के समयों को २५ को० को० गुणे = द्वीप समुद्र संख्या) को असंख्यात वर्ष के समय से गुणे = अद्धापल्य के = अर्द्धच्छेद विरलन करगुणे = सूच्यंगुल का वर्ग प्रतर।

—o—

नक्षत्र विचार

नक्षत्रे—

ध्रुव (स्थिर)—	उत्तरा फाल्गुनी उत्तराषाढा, उत्तरा भाद्रपद्रा, रोहिणी व रविवार	- स्थिरं बीजगेहशान्त्या रामादि सिद्धयति ॥
क्रूर (उग्र) —	पूर्वा फाल्गुनी, मघा, पूर्वाषाढा, पूर्वा भाद्रपदा, भरणी व मंगलवार	- घाताग्नि शाठ्यानि विप शस्त्रादि सिद्धयति
चर (चंचल)—	श्रवण, धनिष्टा, शततारका पुनर्वसु, स्वाती व चन्द्रवार	- गजादिकारोहो वाटिका गमनादिकम् ॥
लघु (क्षिप्र) —	अश्विनी, पुष्य, हस्त, अभिजित व, गुरुवार	- त० पण्यरतिज्ञानं भूपा-शिल्प कलादिकम् ॥
मृदु (मैत्र) —	मृग, चित्रा अनुराधा, रेवती व शुक्रवार	- गीताम्वर क्रीडा मित्र - कार्यं विभूपणम् ॥
मिश्र(साधारण)	कृतिका, विशाखा व बुधवार	- तत्राग्निकार्यं मिश्रं च वृपोत्सर्गादि सिद्धयति ॥ हे बुधवारचे ॥
दारुण (तीक्ष्ण)	आर्द्रा, आश्लेषा, ज्येष्ठा, मूल व शनिवार	-अभिचार घातोग्रभेदाः पशुदमादिकम् ॥

शुभतिथि — १ / २ / ३ / ५ / ७ / १० / १२ / १३

शुभवार — चन्द्रवार, बुधवार, गुरुवार, शुक्रवार

शुभनक्षत्रे — स्थिर, लघु, मृदु, चर,

शुभयोग — नामतुल्य-फल जाणावे

शुभकरण — बव, बालव, कौलव, तैतील,

दिन शुद्धि पहाड़े–कृष्णा १३ ते शुक्ल १ पर्यन्त, ४ तिथी, संक्रान्ति दिवस, व्यतिपात, वैधृति, करिदिन, रवि, मंगल, शनि, हेवार, क्षय वृद्धि तिथि, भद्रा करण परिघाचे पूर्वार्ध, ग्रहण नक्षत्र ही वर्ज्य करावीन ।

	तिथि		तिथि		तिथि		तिथि		तिथि	शुक्ल	कृष्ण
नंदा	१	भद्रा	२	जया	३	रिक्ता	४	पूर्णा	५	अशुभ	शुभ
	६		७		८		९		१०	मध्यम	मध्यम
	११		१२		१३		१४		१५	शुभ	अशुभ
	शुभकाम		पौष्टिक		युद्ध सा०		घातक०		यात्राशु०		

निम्नलिखित लग्नें तिथि में वर्जनीय है–

१. नंदा - वृष ८ सिंह ५ तुला ७ मकर १०

२. भद्रा - मीन ३ धनु ९

३. जया - कन्या ६ मनी १२

४. रिक्ता-मे० १ कर्क २

५. पूर्णा - कुम्भ ११ वृषभ २

अथ दीक्षा नक्षत्राणां फलानि–

अश्विन्यां दीक्षित आचार्यो भवति, पंच पुरुषाणां दीक्षा दायको ।
मिष्टान्न भोक्ता अपमृत्यु द्वयं बिना चतुश्चत्वारिंशद्वर्षाणि जीवति ॥ १ ॥
भरणी नक्षत्रे दीक्षितोऽशनादितपः कारकाः गुरु घातकः व्रतभ्रष्टो ।
भूत्वा पुनर्व्रत्तं स्वीकृत्य द्वाषष्टी वर्षाणि जीवति ॥ २ ॥

कृतिकायां आचार्यः पंच पुरुषाणां दीक्षा दायकः ।
भ्रष्ट व्रतवान् षण्णवति वर्षाणि जीवति ॥ ३ ॥

रोहिण्यां दीक्षितः मृष्टान्न भोक्ता विदेश परिभ्रमणशील अपमृत्युद्वयेन ।
वंचितः व्रतभ्रष्टो भत्वा पश्चादव्रतं स्वीकृत्य सप्तति वर्षाणि जीवति ॥ ४ ॥

मृगशिरे दीक्षितः आचार्यो द्वाविंशति पुरुषाणां दीक्षादायकः ।
समस्त संघ आधारो भूत्वा सप्तति वर्षाणि जीवति ॥ ५ ॥

आर्द्रायां दीक्षितो जितेंद्रियः द्वाषष्टि वर्षाणि जीवति ॥ ६ ॥
पुनर्वसौ दीक्षितः पंचवर्षानंतरं तपश्चुतो भूत्वा पुनर्व्रतं स्वीकृत्य ।
तिसृणांमार्यिकाणां दीक्षा दायकः सप्तति वर्षाणि जीवति ॥ ७ ॥

पुष्य नक्षत्रे तपः कृत्वा आचार्यः पंचपुरुषाणां ।
दीक्षा दायकः मेधावी विंशति वर्षाणि जीवति ॥ ८ ॥

अश्लेषांया दीक्षितो विदेशगामी दुःखितः गुरु विनितः ।
वार द्वय तपश्चुतो भूत्वाषष्टि वर्षानंतर सर्प दंष्टोम्रीयते ॥ ९ ॥

मघायां दीक्षितः प्रशस्ताचारवान् विनीतः षष्ठावति वर्षाणि जीवति ॥१०॥

पूर्वायां दीक्षितः पंचदश पुरुषाणां दीक्षा दायक. ।
व्रत भ्रष्टो भूत्वा पुनः स्वीकृत्य नवति वर्षाणि जीवति ॥११॥
उत्तरायां दीक्षितः आचार्यः अशीति वर्षाणि जीवति ॥१२॥
हस्तायां दीक्षितः आचार्यः पंचस्त्रीणां पंचपुरुषाणां ।
दीक्षागुरुः शत वर्षाणि जीवति ॥१३॥
चित्रायां दीक्षितः आशीति वर्षाणि जीवति ॥१४॥
स्वातौ दीक्षितः षष्टि वर्षाणि जीवति ॥१५॥

विशाखायां दीक्षितः पंचदश दिने तपश्चुतः आशीति वर्षाणि जीवति ॥१६॥
अनुराधायां दीक्षितः आचार्य सप्तति पुरुषाणां, दीक्षागुरुः नवतिवर्षाणि जीवति ॥१७॥
जेष्टायां दीक्षितः एकांगी उग्रतपस्वी षट्पंचाशद्वर्षाणि जीवति ॥१८॥
मूले दीक्षितो मृष्टान्न भोक्ता अपमृत्युत्रयच्युतो नवति वर्षाणि जीवति ॥१९॥

पूर्वाषाढायां दीक्षितः उपसर्ग त्रय सहिष्णुः तपश्चुत्वा ।
पुनः स्वीकृत्य अशोति वर्षाणि जीवति ॥२०॥

उत्तराषाढा दीक्षितः तपश्च्युतः अतिरोगोद्भवः अपमृत्युतो भूत्वारत्री ।
द्वयपुरुष पंचकच दीक्षयित्वाषष्टि वर्षाणि जीवति ॥२१॥

श्रवण दीक्षितः द्वादश पुरुषाणां दीक्षागुरुः मृष्टान्न-
भोक्ता विंशत्युत्तरशत वर्षाणि जीवति ॥२२॥
धनिष्टायां दीक्षितः आचार्य अशीति वर्षाणि जीवति ॥२३॥
शततारे दीक्षितः पंच पंच पुरुषस्य गुरुः नवति वर्षाणि जीवति ॥२४॥

पूर्वाभाद्रपदे दीक्षितः द्वादश पुरुषाणां दीक्षागुरुः अशीति वर्षाणि जीवति ॥२५॥

उत्तराभाद्रपदे दीक्षितः मृष्टान्न भोजी द्वादश पुरुषाणां-
मार्यकाणां चगुरुः अशीति वर्षाणि जीवति ॥२६॥

रेवत्यां दीक्षितो मृष्टान्न भोजो आचार्यो-
भूत्वा विंशति वर्षाणि जीवति ॥२७॥ इति०

प्रदेश प्रचयात्कायाः द्रवणाद् द्रव्य नामकाः ॥ परिच्छेद्यत्व तस्तेर्थाः ।
तत्त्वं वस्तुस्वरूपतः ॥ १ ॥ काय १ द्रव्य २ अर्थ ३ तत्व ४

अथातः संप्रवक्ष्यामिगृह् बिंबस्य लक्षणं ॥
एकांगुलं भवेत् श्रेष्टं द्वयंगुलं धन नाशनं ॥ १ ॥
त्र्यंगुले जायते वृद्धिः पीडास्याच्च तुरंगुले ॥
पंचागुले तुवृद्धिः स्यादुद्वेगस्तु षडंगुले ॥ २ ॥

सप्तागुले गवां वृयते वृद्धिः हानिरष्टांगुलेमता ॥
नवांगुले पुत्रवृद्धिर्द्धन नाशोदशां गुले ॥ ३ ॥
एकादशांगुलं बिंबं सर्व कामार्थ साधनं ॥
एतत्प्रमाण माख्यात मतऊर्द्ध्वंन कारयेत् ॥ ४ ॥

॥ इति गृह बिंब विचारः ॥

अथ बिंब दोषाः—

आसने वाहने चैव परिवार तथा युधि ॥
नखाभरण वस्त्रेषु वांगदोषो न जायते ॥१॥
नाशा मुखे तथा नेत्रे हृदये नाभिमंडले ॥
स्थानेषु व्यंजितामेषु प्रतिमां नैव पूजयेत ॥२॥ ॥इति ॥

केशलोच नक्षत्राणि—

कृत्तिका सुविशाखा सुमघा सुभरणीषुच एतैश्चतुर्भिर्नक्षत्रैर्लोचकर्मन कारयेत् ।
॥ इति ॥

केशलोंच करण्याम योग्यवार—सोमवार, बुधवार, शुक्रवार ।

ब्रह्मचर्य व्रत देण्यास योग्य नक्षत्राणि—पूर्वा भाद्रपदा, मूला धनिष्टा, विशाखा–श्रवण।

अथ दीक्षा नक्षत्राणि—

मृगशिर, आरद्रा, पुष्य, मघा, उत्तरा, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, ज्येष्टा, श्रवण, धनिष्टा, शततारा, पूर्वाभाद्रपदा, व रेवती हीं नक्षत्रें शुभ होत।

स्त्रीयाना दीक्षा -

अश्विनी पूर्वाफाल्गुणि, हस्त, स्वाति, अनुराधा, मूला उत्तराषाढा, श्रवण, शतामिषा, उत्तराभाद्रपदा ए दश नक्षत्र ग्राह्य।

भरणी, कृतिका पुष्य अश्लेषा, आद्रा, पुनर्वसु, नक्षत्राणि अग्राह्य।

लग्न-उदय में

राशि	घडी–पल	राशि–नाम
मेष:	३–५८	चु चे चो ला लि लु ले लो अ।
वृषभ:	४–२७	इ उ ए ओ व वि वु वे वो।
मिथुन	५–१०	क कि कु घ ङ छ के को ह।
कर्क:	५–३६	हि हु हे हो ड डि डु डे डो।
सिंह:	५–३१	म मि मु मे मो ट टि टु टे।
कन्या	५–१८	टो प पि पू प ण ठ पे पो।
तुला	५–१८	र रि रु रे रो त ति तु ते।
वृश्चिक	५–३१	तो न नि नु ने नो या यि यु।
धनु:	५–३६	ये यो भ भि भू धा फा भा भे।
मकर:	५–१०	भो ज जि जु जे खु खु खो गि जो ग्वि खे ग।
कुम्भ:	४–२७	गु गे गो स सि सु से सो द।
मीन:	३–५८	दि दु थ झ ञ दे दो च चि।

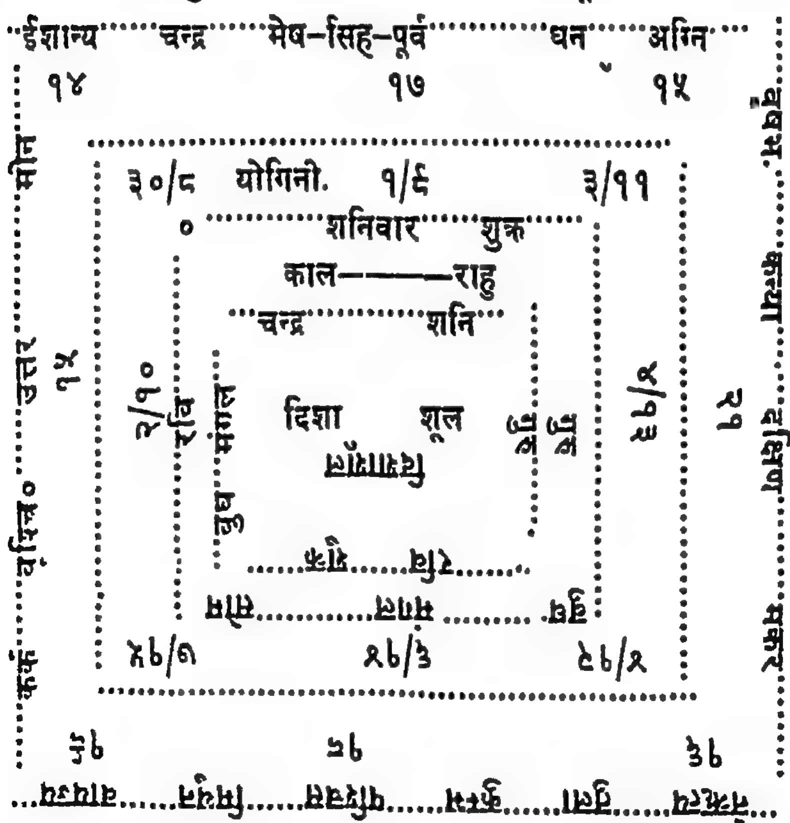
करण तिथि में २ फल-१ किंतुघ्न, २ वव, ३ वालव, ४ कौलव, ५ तैतील, ६ गरज, ७ वाणिज्य, ८ विष्ट ६ शकुनि, १० चतुष्पाद, ११ नाग।

योगों के नाम	रवि०	चद्र०	मंग०	बुध०	गुरु०	शुक्र०	शनि०	फल
आनद.	अ.	मृ.	आ.	ह.	अ.	उ.	श.	सिद्ध.
कालंदं.	भ.	आ.	म.	चि.	जे.	अ.	पू.	मृत्यु.
धूम्र.	कृ.	पु.	पू.	स्वा.	मू.	श्र.	उ.	असुख.
प्रजाप.	रो.	पु.	उ.	पि.	पू.	ध	रे.	सौभाग्य.
सौम्य.	मृ.	आ.	ह.	अ.	उ.	श.	अ.	महासी.
ध्वाक्ष.	आ.	म.	चि.	जे.	अ.	पू.	भ.	धनक्षय.
ध्वज.	पु.	पू.	स्वा.	मू.	श्र.	उ.	कृ.	सौमा.
श्रीवत्स.	पु.	उ.	वि	पू.	ध.	रे.	रो.	सौख्य.
बज्र.	आ.	ह.	अ.	उ.	श.	अ.	मृ.	क्षय.
मुद्गर.	म.	चि.	जे.	अ.	पू	भ.	आ.	श्रीनाश.
छत्र.	पू.	स्वा.	मू.	श्र.	उ.	कृ.	पु.	राजस.
मैत्र.	उ.	वि.	पू.	ध.	रे.	रो	पू.	पुष्टि
मानस.	ह.	अ.	उ.	श.	अ.	मृ.	आ.	सौभाग्य.
पद्म.	चि.	जे.	अ.	पू.	भ.	आ.	म.	धनलाभ.
लंबक.	स्वा.	मू.	श्र.	उ.	कृ.	पु.	पू.	धननाश.
उत्पात.	वि.	पू.	ध.	रे.	रो.	पु.	उ.	प्राणनाश.
मृत्यु.	अ.	उ.	श.	अ.	मृ.	आ.	ह.	मृत्यु.
काण.	जे.	अ.	पू.	भ.	आ.	म.	चि.	क्लेश
सिद्धि.	मू.	श्र.	उ.	कृ.	पु.	पू.	स्वा.	कार्य सि.
शुभ.	पू.	ध.	रे.	रो.	पु.	उ.	वि.	कल्याण.
अमृत.	उ.	श.	अ.	मृ.	आ.	ह.	अ.	राजस
मुसल.	अ.	पू.	भ.	आ.	म.	चि.	ज्ये.	धन नाश.
गदाख्य.	श्र.	उ.	कृ.	पु.	पू.	स्वा.	मू.	अविद्या.
मातग	ध.	रे.	रो.	पु.	उ.	वि.	पू.	कुल वृद्धि.
राक्षस.	श.	अ.	मृग.	आ.	ह.	अ.	उ.	महा कष्ट.
चर.	पू.	भ.	आ.	म.	चि.	जे.	अ.	कार्यसिद्धि.
स्थिर.	उ.	कृ.	पु.	पू.	स्वा.	मू.	श्र.	गृहारभ.
वर्धमान.	रे.	रो.	पुष्य.	उ.	वि.	पू.	ध.	लग्न.

योग=१ विष्कुंभ २ प्रीति ३ आयु० ४ सौभाग्य ५ शोभन ६ अतिगंड ७ सुकर्मा
३ ६
८ धृति ९ शूल १० गंड ११ वृद्धि १२ ध्रुव १३ व्याघात १४ हर्षण १५ वज्र १६
७ ५ ६ ८ ७
सिद्धि १७ व्यतिपात १८ वारियान १९ परिघ २० शिव २१ सिद्ध २२ साध्य २३
× १० ११०
शुभ २४ शुक्ल २५ ब्रह्मा २६ ऐन्द्र २७ वधृति फल नामानुरूप–प्रथम घड़ी अशुभोवी छोड़ना।

मोजि० मृग, रेवति, श्रवण, धनिष्ठा, हस्त, स्वाती, चित्रा, पुष्य, अश्विनी, पुनर्वसु० करें।

दिशाशूल ले जावे वामे, राहु योगिनी पूठ।
सन्मुख लेवें चन्द्रमा, ल्यावे लक्ष्मी लूट॥



शुद्ध	पूज्य	अशुद्ध
रवि–३/६/१०/११	१/२/५/७/९	४/८/१२
गुरु–२/५/७/९/११	१/३/६/१०	४/८/१२
चन्द्र–१/२/३/५/६/७/९/१०/११	१२	४/८

दिन का चौघड़िया

घड़ी	रवि०	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
३॥।	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल	काल
३॥।	चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ
३॥।	लाभ	शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग
३॥।	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल	काल	उद्वेग
३॥।	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल
३॥।	शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ
३॥।	रोग	लाभ	शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत
३॥।	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल	काल

रात्रि का चौघड़िया

घड़ी	रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
३॥।	शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ
३॥।	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल	काल	उद्वेग
३॥।	चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ
३॥।	रोग	लाभ	शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत
३॥।	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल
३॥।	लाभ	शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग
३॥।	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल	काल
३॥।	शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ

श्री समाधि मरण

(पं० सूरजचन्द्र जी कृत)

—:नरेन्द्र छन्दः—

बन्दो श्री अर्हन्त परम गुरु, जो सबको सुखदाई।
इस जग में दुःख जो मैं भुगते, सो तुम जानो राई॥
अब मैं अरज करूं नित तुमसे, कर समाधि उर माहीं।
अन्त समय में यह वर मांगूं, सो दीजे जगराई॥१॥

भव भव में तन धार नये मैं, भव भव शुभ संग पायो।
भव भव में नृप ऋद्धि लई मैं, मात पिता सुत थायो॥
भव भव में तन पुरुष तनो धर, नारीहूं तन लीनो।
भव भव में मैं भयो नपुंसक, आतमगुण नहिं चीनो॥२॥

भव भव में सुर पदवी पाई, ताके सुख अति भोगे।
भव भव में गति नरकतनी धर, दुख पायो विधयोगे॥
भव भव में तिर्यंच योनि धर, पायो दुख अति भारी।
भव भव में साधर्मी जनको, संग मिलो हितकारी॥३॥

भव भव में जिन पूजन कीनी, दान सुपात्रहिं दीनो।
भव भव में मैं समवसरण में, देखो जिन गुण भीनो॥
एती वस्तु मिली भव भव में, सम्यक् गुण नहिं पायो।
ना समाधियुत मरण करा मैं, ताते जग भरमायो॥४॥

काल अनादि भयो जग भ्रमते, सदा कुमरणहिं कीनो।
एक बारहूं सम्यकयुत मैं, निज आतम नहिं चीनो॥
जो निज परको ज्ञान होय तो, मरण समय दुखकांई।
देह विनाशी मैं निजभाषी, जोति स्वरूप सदाई॥५॥

विषय कषायन में बश होकर, देह आपनो जान्यो।
कर मिथ्यासरधान हिये बिच, आतम नाहिं पिछान्यो॥
यों कलेश हिय धार मरण कर, चारों गति भरमायो।
सम्यक दर्शन ज्ञान चरन ये, हिरदे में नहिं लायो॥६॥

अब या अरज करूं प्रभु सुनिये, मरण समय यह माँगो।
रोग जनित पीड़ा मत होऊ, अरु कषाय मत जागो॥
ये मुझ मरण समय दुखदाता, इन हर साता कीजे।
जो समाधि युत मरण होय मुझ, अरु मिथ्या मद छीजे॥७॥

यह तन सात कुधात मई है, देखत ही घिन आवै।
चर्म लपेटी ऊपर सोहै, भीतर विष्टा पावै॥
अति दुर्गंध अपावन सों यह, मूरख प्रीति बढ़ावै।
देह विनाशी जिय अविनाशी, नित्य स्वरूप कहावै॥८॥

यह तन जीर्ण कुटीसम, आतम! यातैं प्रीति न कीजे।
नूतन महल मिलै जब भाई, तब यामें क्या छीजे॥
मृत्यु होन से हानि कौन है, याको भय मत लावो।
समता से जो देह तजोगे, तो शुभ तन तुम पावो॥६॥

मृत्यु मित्र उपकारी तेरो, इस अवसर के माहीं।
जीरण तन से देत नयो यह, या सम साहू नाहीं॥
या सेती इस मृत्यु समय पर, उत्सव अति ही कीजै।
क्लेष भाव को त्याग सयाने, समता भाव धरीजै॥१०॥

जो तुम पूरव पुण्य किये हैं, तिनको फल सुखदाई।
मृत्यु मित्र बिन कौन दिखावे, स्वर्ग संपदा भाई॥
रागद्वेष को छोड़ सयाने, सात व्यसन दुखदाई।
अन्त समय में समता धारो, परभव पन्थ सहाई॥११॥

कर्म महा दुठ बैरी मेरो, तासेती दुख पावे।
तन पिंजरे में बंध कियो मोहि, यासों कौन छुड़ावे॥
भूख तृषा दुख आदि अनेकन, इस ही तन में गाढ़े।
मृत्युराज अब आप दया कर, तन पिंजर सों काढ़े॥१२॥

नाना वस्त्राभूषण मैंने, इस तन को पहिराये।
गंध सुगंधित अतर लगाये, षट रस असन कराये॥
रात दिना मैं दास होयकर, सेव करी तन केरो।
सो तन मेरे काम न आयो, भूल रह्यो निधि मेरी॥१३॥

मृत्युराय को शरण पाय तन, नूतन ऐसो पाऊं।
जामें सम्यक् रतन तीन लहि, आठो कर्म खपाऊं॥
देखो तन सम और कृतघ्नी, नांहि सु या जगमाहीं।
मृत्यु समय में ये ही परिजन, सबही हैं दुखदाई॥१४॥

यह सब मोह बढ़ावन हारे, जिय को दुर्गति दाता।
इनसे ममत निवारो जियरा, जो चाहो सुख साता॥
मृत्यु कल्प द्रुम पाय सयाने, मांगो इच्छा जेती।
समता धर कर मृत्यु करो तो, पावो संपति तेती॥१५॥

चौ आराधन सहित प्राण तज, तौ ये पदवी पावो।
हरि प्रतिहरि चक्री तीर्थेश्वर, स्वर्ग मुकति में जावो॥
मृत्यु-कल्प-द्रुम सम नहिं दाता, तीनों लोक मंझारे।
ताको पाय कलेश करो मत, जन्म जवाहर हारे॥१६॥

इस तन में क्या राचे जियरा, दिन-दिन जीरण हो है।
तेज कांति बल नित्य घटत है, या सम अथिर सु को है॥
पाँचों इन्द्री शिथिल भई अब, स्वास शुद्ध नहिं आवै।
तापर भी ममता नहिं छोड़े, समता उर नहिं लावै॥१७॥

मृत्युराज उपकारी जिय को, तन सों तोहि छुड़ावे ।
नातर या तन बंदीग्रह में, परचौ परचौ बिललावे ॥
पुदगल के परमाणू मिलके, पिंडरूप तन भासी ।
याही मूरत मैं अमूरतो, ज्ञान जोति गुण खासी ॥१८॥

रोग शोक आदिक जो वेदन, ते सब पुदगल लारे ।
मैं तो चेतन व्याधि विना नित, हैं सो भाव हमारे ॥
या तन सों इस क्षेत्र सम्बन्धी, कारण आन बन्यो है ।
खान पान दे याको पोष्यो, अब समभाव ठन्यो है ॥१०॥

मिथ्या दर्शन आत्म ज्ञान विन, यह तन अपनो जानो ।
इन्द्री भोग गिने सुख मैंने, आपो नांहि पिछानो ॥
तन विनशन तें नाश जानि निज, यह अयान दुखदाई ।
कुटुम आदि को अपनो जानो, भूल अनादी छाई ॥२०॥

अब निज भेद यथारथ समझो, मैं हूँ ज्योति स्वरूपी ।
उपजे विनशे सो यह पुदगल, जानो याको रूपी ॥
इष्टऽनिष्ट जेते सुख दुख हैं, सो सब पुदगल सागे ।
मैं जब अपनो रूप विचारो, तब वे सब दुख भागे ॥२१॥

बिन समता तनऽनन्त धरे मैं, तिनमें ये दुख पायो ।
शस्त्रघात तैऽनन्त बार मर, नाना योनि भ्रमायो ॥
बारऽनन्त ही अग्निमांहि जर, मूवो सुमति न लायो ।
सिंह व्याघ्र अहिऽनन्त बार मुझ, नाना दुःख दिखायो ॥२२॥

बिन समाधि ये दुःख लहै मैं, अब उर समता आई ।
मृत्युराज को भय नांहि मानो, देवै तन सुखदाई ॥
यातें जब लग मृत्यु न आवे, तब लग जप तप कीजै ।
जप तप बिन इस जग के माहीं, कोई भी ना सीजै ॥२३॥

स्वर्ग संपदा तप से पावै, तप से कर्म नशावै।
तप ही से शिवकामिनिपति ह्वै, यासे तप चितलावे॥
अब मैं जानी समता बिन मुझ, कोऊ नाहिं सहाई।
मात पिता सुत बान्धव तिरिया, ये सब हैं दुखदाई॥२४॥

मृत्यु समय में मोह करें ये, तातैं आरत हो है।
आरत तैं गति नीची पावे, यों लख मोह तज्यो है॥
और परिग्रह जेते जग में, तिनसे प्रीति न कीजे।
परभव में ये संग न चालें, नाहक आरत कीजे॥२५॥

जे जे वस्तु लखत हैं ते पर, तिनसे नेह निवारो।
परगति में ये साथ न चालें, ऐसो भाव विचारो॥
जो पर भव में संग चलें तुझ, तिनसे प्रीति सु कीजे।
पंच पाप तज समता धारो, दान चार विधि दीजे॥२६॥

दश लक्षण मब धर्म धरो उर, अनुकम्पा चित लावो।
षोडश कारण नित्य चिन्तवो, द्वादश भावन भावो॥
चारो परवी प्रोषध कीजे, अशन रात को त्यागो।
समता धर दुरभाव निवारो, संयम सों अनुरागो॥२७॥

अन्त समय में ये शुभ भावहि, होवें आनि सहाई।
स्वर्ग मोक्ष फल तोहि दिखावें, ऋद्धि देय अधिकाई॥
खोटे भाव सकल जिय त्यागो, उरमें समता लाके।
जा सेती गति चार दूर कर, बसो मोक्षपुर जाके॥२८॥

मन थिरता करके तुम चिंतो, चौ आराधन भाई।
येही तोकों सुख की दाता, और हितू कोउ नाई॥
आगे बहु मुनिराज भये हैं, तिन गहि थिरता भारी।
बहु उपसर्ग सहे शुभ भावन, आराधन उर धारी॥२९॥

तिनमें कछु इक नाम कहूं मैं, सो सुन जिय ! चित लाके।
भाव सहित अनुमोदे तासों, दुर्गति होय न ताके ॥
अरु समता निज उरमें आवै, भाव अधीरज जावै।
यों निश दिन जो उन मुनिवर को, ध्यान हिये विचलावे ॥३०॥

धन्य धन्य सुकुमाल महामुनि, कैसें धीरज धारी।
एक श्यालनी जुगबच्चाजुत, पांव भख्यो दुखकारी ॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव भारी ॥३१॥

धन्य धन्य जु सुकौशल स्वामी, व्याघ्री ने तन खायो।
तौ भी श्रीमुनि नेक डिगे नहिं, आतम सों हित लायो ॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव भारी ॥३२॥

देखो गज मुनि के सिर ऊपर, विप्र अगिनि बहु बारी।
शीस जले जिम लकड़ी तिनको, तौ भी नाहिं चिगारी ॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव भारी ॥३३॥

सनत कुमार मुनी के तन में, कुष्ट वेदना व्यापी।
छिन्न भिन्न तन तासों हूवो, तब चिन्तो गुण आपी ॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव भारी ॥३४॥

श्रेणिकसुत गंगा में डूब्यो, तब जिननाम चितारयो।
धर सल्लेखना परिग्रह छांड्यो, शुद्ध भाव उर धारयो ॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव भारी ॥३५॥

समँतभद्र मुनिवर के तन में, क्षुधा वेदना आई।
ता दुख में मुनि नेक न डिगियो, चिन्त्यो निज गुण भाई॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी॥३६॥

ललित घटादिक तीस दोय मुनि, कौशांबी तट जानो।
नद्दी में मुनि बहकर मूवे, सो दुख उन नहिं मानो॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी॥३७॥

धर्म घोष मुनि चंपा नगरी, बाह्य ध्यान धरि ठाढ़ो।
एक मास को कर मर्यादा, तृषा दुःख सह गाढ़ो॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी॥३८॥

श्रीदत मुनि को पूर्व जन्म को, बैरी देव सु आके।
विक्रिय कर दुख शीत तनो सो, सह्यो साध मन लाके॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी॥३९॥

वृषभसेन मुनि उष्ण शिला पर, ध्यान धरयो मन लाई।
सूर्य्यघाम अरु उष्ण पवन की, वेदन सहि अधिकाई॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी॥४०॥

अभय घोष मुनि काकंदीपुर, महा वेदना पाई।
बैरी चंडने सब तन छेद्यो, दुःख दीनों अधिकाई॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी॥४१॥

विद्युतचर ने बहु दुख पायो, तौ भी धीर न त्यागी।
शुभ भावन सों प्राण तजे निज, धन्य और बड़भागी ॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥४२॥

पुत्र चिलाती नामा मुनि को, बैरी ने तन घातो।
मोटे-मोटे कीट पड़े तन, तापर निज गुण रातो ॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥४३॥

दण्डक नामा मुनि की देही, बाणन कर अरि भेदी।
तापर नेक डिगे नहिं वे मुनि, कर्म महा रिपु छेदी ॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥४४॥

अभिनंदन मुनि आदि पाँचसै, घानी पेलि जु मारे।
तौ भी श्री मुनि समता धारी, पूरव कर्म विचारे ॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥४५॥

चाणक मुनि गौ घर के मांही, मूंद अगिनि परिजाल्यो।
श्री गुरु उर समभाव धार कै, अपनो रूप सम्हाल्यो ॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥४६॥

सात शतक मुनिवर दुख पायो, हथिनापुर में जानो।
बलि ब्राह्मण कृत घोर उपद्रव, सो मुनिवर नहिं मानो ॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥४७॥

लोहमयी आभूषण गढके, ताते कर पहराये।
पांचों पाण्डव मुनि के तन में, तौ भी नाहिं चिगाये ॥

यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव भारी ॥४८॥
और अनेक भये इस जग में, समता रस के स्वादी।
वे ही हमको हैं सुखदाता, हरहैं टेव प्रमादी ॥
सम्यक दर्शन ज्ञान चरण तप ये, आराधन चारों।
येही मोकों सुख के दाता, इन्हें सदा उर धारों ॥४९॥
यों समाधि उरमांही लावो, अपनो हित जो चाहो।
तज ममता अरु आठों मद को, ज्योति स्वरूपी ध्यावो ॥
जो कोई नित करत पयानो, ग्रामांतर के काजै।
सो भी शकुन विचारे नीके, शुभ के कारण साजै ॥५०॥
मात पितादिक सर्व कुटुम सो, नीके शकुन बनावें।
हलदी धनियां पुंगी अक्षत, दूध दही फल लावें ॥
एक ग्राम के कारण एते करै शुभाशुभ सारे।
जब परगति को करत पयानो, तब नहिं सोचौ प्यारे ॥५१॥
सर्व कुटुम जब रोवन लागे, तोहि रुलावें सारे।
ये अपशकुन करें सुन तोकूं, तू यों क्यों न विचारे ॥
अब परगति के चालत विरियाँ, धर्म ध्यान उर आनो।
चारों आराधन आराधो, मोह तनो दुख हानो ॥५२॥
होय निःशल्य तजो सब दुविधा, आतम राम सुध्याओ।
जब परगति को करहु पयानो, परम तत्व उर लावो ॥
मोह-जाल को काट पियारे! अपनो रूप विचारो।
मृत्यु मित्र उपकारी तेरो, यों उर निश्चय धारो ॥५३॥

मृत्यु महोत्सव पाठ को, पढ़ो सुनो बुधिवान।
सरधा धर नित सुख लहो, सूरचन्द्र शिवथान ॥५४॥
पंच उभय नव एक नभ, सम्वत सो सुखदाय।
आश्विन श्यामा सप्तमी, कह्यो पाठ मन लाय ॥५५॥

॥ इति समाधि मरण ॥

समाधि मरण

(कवि द्यानतराय कृत)

गौतम स्वामी बन्दों नामी मरण समाधि भला है ।
मैं कब पाऊं निश दिन ध्याऊं गाऊं वचन कला है ॥
देव धरम गुरु प्रीति महा दृढ़ सप्त व्यसन नहीं जाने ।
त्यागि बाईस अभक्ष संयमी बारह व्रत नित ठाने ॥१॥

चक्की उखरी चूलि बुहारो पानी त्रस न विराधे ।
बनिज करै पर-द्रव्य हरै नहिं, छहों करम इमि साधै ॥
पूजा शास्त्र गुरुन की सेवा, संयम तप चहुं दानी ।
पर उपकारी अल्प अहारी, सामायिक विधि ज्ञानी ॥२॥

जाप जपै तिहुं योग धरै दृढ़ तन की ममता टारै ।
अन्त समय वैराग्य सम्हारै ध्यान समाधि विचारै ॥
आग लगै अरु नाव डुवै जब धर्म विघन जब आवै ।
चार प्रकार आहार त्यागि के मंत्र सु मनमें ध्यावै ॥३॥

रोग असाध्य जहां बहु देखै कारण और निहारै ।
बात बड़ी है जो बनि आवै भार भवन को डारै ॥
जो न बने तो घर में रह करि सबसों होय निराला ।
मात पिता सुत त्रिय को सोंपै निज परिग्रह अहि काला ॥४॥

कछु चैत्यालय कछु श्रावक जन कछु दुखिया धन देई ।
क्षमा क्षमा सबही सों कहिके मनकी शल्य हनेई ॥
शत्रुन सों मिल निजकर जोरै मैं बहु करी है बुराई ।
तुमसे प्रीतम को दुख दीने ते सब बकसो भाई ॥५॥

धन धरती जो मुख सों मांगे सो सब दे संतोषैं।
छहों काय के प्राणी ऊपर, करुणा भाव विशेषैं॥
ऊंच नीच घर बैठ जगह इक, कुछ भोजन कुछ पय ले।
दूधाधारी क्रम-क्रम तजि के, छाछ अहार पहेलैं॥६॥

छाछ त्यागि के पानी राखैं, पानी तजि संथारा।
भूमि मांहि थिर आसन मांडे, साधर्मी ढिग प्यारा॥
जब तुम जानो यह न जपै है, तब जिनवाणी पढ़िये।
यों कहि मौन लियो सन्यासी, पंच परम पद गहिये॥७॥

चौ आराधन मन में ध्यावैं, बारह भावन भावैं।
दश लक्षण मन धर्म विचारैं, रत्नत्रय मन ल्यावैं॥
पैंतिस सोलह षटपन चारों, दुइ इक वरन विचारैं।
काया तेरी दुःख की ढेरी, ज्ञानमई तू सारैं॥८॥

अजर अमर निज गुण सों पूरे, परमानन्द सुभावैं।
आनन्द कन्द चिदानन्द साहब, तीन जगतपति ध्यावे॥
क्षुधा तृषादिक होइ परीषह, सहै भाव सम राखैं।
अतीचार पांचो सब त्यागैं, ज्ञान सुधारस चाखैं॥९॥

हाड मांस सब सूखि जाय जब धरम लीन तन त्यागैं।
अद्भुत पुण्य उपाय सुरग में, सेज उठै ज्यों जागैं॥
तहँ तैं आवैं शिवपद पावैं, विलसै सुक्ख अनन्तो।
'द्यानत' यह गति होय हमारी, जैन धरम जयवन्तो॥१०॥



श्री वज्रनाभि चक्रवर्ती की

वैराग्य भावना

बीज राखि फल भोगवे,ज्यों किसान जगमांहि ।
त्यों चक्री सुख में मगन, धर्म विसारै नांहि ॥

चाल-योगीरासा

इस विधि राज्य करै नरनायक भोगे पुण्य विशाला ।
सुख सागर में मग्न निरन्तर जात न जानो काला ॥
एक दिवस शुभ कर्म संयोगे क्षेमंकर मुनि वन्दे ।
देखे श्रीगुरु के पद पङ्कज लोचन अलि आनन्दे ॥१॥

तीन प्रदक्षिणा दे शिरनायो कर पूजा स्तुति कीनी ।
साधु समीप विनय कर बैठो चरणों में दृष्टि दीनी ॥
गुरु उपदेशो धर्म शिरोमणि सुन राजा वैरागो ।
राज्यरमा वनितादिक जो रस सो सब नीरस लागो ॥२॥

मुनि सूरज कथनी किरणावलि लगत भर्म बुद्धि भागी ।
भव तन भोग स्वरूप विचारो परम धर्म अनुरागी ॥
या संसार महावन भीतर भर्मत छोर न आवे ।
जन्मन मरन जरा यों दाहे जीव महा दुख पावे ॥३॥

कबहूं कि जाय नर्क पद भुंजे छेदन भेदन भारी ।
कबहूं कि पशु पर्याय धरे तहाँ वध बन्धन भयकारी ॥
सुरगति में परि सम्पत्ति देखे राग उदय दुख होई ।
मानुष योनि अनेक विपति मय सर्व सुखी नहिं कोई ॥४॥

कोई इष्ट वियोगी बिलखे कोई अनिष्ट संयोगी ।
कोई दीन दरिद्री दीखे कोई तन का रोगी ॥
किस हो घर कलिहारी नारी कै बैरी सम भाई ।
किनही के दुख बाहर दीखे किसही उर दुचिताई ॥५॥

कोई पुत्र बिना नित झूरें होय मरें तब रोवैं।
खोटी सन्तति सों दुख उपजे क्यों प्राणी सुख सोवै ॥
पुण्य उदय जिनके तिनके भी नाहिं सदा सुख साता।
यह जगवास यथारथ दीखे सबही हैं दुखदाता ॥६॥

जो संसार विषैं सुख होता, तीर्थंकर क्यों त्यागे।
काहे को शिवसाधन करते, संजमसों अनुरागे ॥
देह अपावन अथिर घिनावन, यामैं सार न कोई।
सागर के जलसों शुचि कीजे, तो भी शुद्ध न होई ॥७॥

सात कुधातु भरी मल मूरत चर्म लपेटी सोहै।
अंतर देखत या सम जगमें अवर अपावन को है ॥
नवमल द्वार स्रवै निशिवासर, नाम लिये घिन आवै।
व्याधि उपाधि अनेक जहाँ तहं कौन सुधी सुख पावै ॥८॥

पोषत तो दुख दोष करें अति, सोषत सुख उपजावै।
दुर्जन देह स्वभाव बराबर, मूरख प्रीति बढावै ॥
राचन योग्य स्वरूप न याको विरचन जोग सही है।
यह तन पाय महातप कीजे यामैं सार यही है ॥९॥

भोग बुरे भवरोग बढ़ावें, बैरी हैं जग जीके।
बेरस होंय विपाक समय अति, सेवत लागें नीके ॥
बज्र अगिन विष से विषधर से, ये अधिके दुखदाई।
धर्म रतन के चोर चपल अति, दुर्गतिपंथ सहाई ॥१०॥

मोह उदय यह जीव अज्ञानी, भोग भले कर जानैं।
ज्यों कोई जन खाय धतूरा, सो सब कंचन मानैं ॥
ज्यों ज्यों भोग संजोग मनोहर, मन वांछित जन पावै।
तृष्णा नागिन त्यों त्यों डंके, लहर जहर की आवै ॥११॥

मैं चक्रीपद पाय निरंतर भोगे भोग घनेरे ।
तो भी तनिक भये ना पूरण भोग मनोरथ मेरे ॥
राज समाज महा अघ कारण बैर बढ़ावन हारा ।
वैश्या सम लक्ष्मी अति चंचल याका कौन पत्यारा ॥१२॥

मोह महा रिपु बैर विचारो जग जिय संकट डारे ।
घर काराग्रह वनिता वेड़ी परिजन है रखवारे ॥
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण तप ये जिय के हितकारी ।
ये ही सार असार और सव यह चक्री चित धारी ॥१३॥

छोड़े चौदह रत्न नवोनिधि और छोडे सङ्ग साथी ।
कोड़ि अठारह घोड़े छोड़े चौरासी लख हाथी ॥
इत्यादिक सम्पति बहु तेरी जीरण तृणवत त्यागी ।
नीति विचार नियोगी सुत को राज्य दियो वड़ भागी ॥१४॥

होइ निशल्य अनेक नृपति संग भूषण वसन उतारे ।
श्री गुरु चरण धरी जिन मुद्रा पंच महाव्रत धारे ॥
धनि यह समझ सुबुद्धि जगोत्तम धनि यह धीरजधारी ।
ऐसी सम्पति छोड़ वसे वन तिनपद धोक हमारी ॥१५॥

* दोहा *

परिग्रह पोट उतार सव, लीनो चारित पंथ ।
निज स्वभाव में थिर भये वज्रनाभि निर्ग्रन्थ ॥

॥ इति समाप्त ॥



बारह भावना

* भूधरदास कृत *

(१) अनित्य— दोहा— राजा राणा छत्रपति, हाथिन के असवार।
मरना सबको एक दिन, अपनी अपनी बार ॥१॥

(२) अशरण— दल बल देई देवता, मात पिता परिवार।
मरती विरियाँ जीव को, कोई न राखनहार ॥२॥

(३) संसार— दाम बिना निर्धन दुखी, तृष्णावश धनवान।
कहीं न सुख संसार में, सब जग देख्यो छान ॥३॥

(४) एकत्व— आप अकेला अवतरै, मरै अकेला होय।
यूँ कबहूं इस जीव का, साथी सगा न कोय ॥४॥

(५) अन्यत्व— जहाँ देह अपनी नहीं, तहाँ न अपना कोय।
घर सम्पति पर प्रगट ये, पर हैं परिजन लोय ॥५॥

(६) अशुचि— दिपै चाम चादर मढ़ी, हाड़ पींजरा देह।
भीतर या सम जगत में, अवर नहीं घिनगेह ॥६॥

(७) आश्रव— सोरठा— मोहनींद के जोर, जगवासी घूमें सदा।
कर्मचोर चहुं ओर, सरवस लूटैं सुध नहीं ॥७॥

(८) संवर— सतगुरु देय जगाय, मोह नींद जब उपशमै।
तब कछु बनहिं उपाय, कर्मचोर आवत रुकैं ॥८॥

(९) निर्जरा— दोहा— ज्ञान दीप तप तेल भर, घर शोधैं भ्रम छोर।
या विधि बिन निकसैं नहीं, बैठे पूरब चोर ॥९॥
पंच महाव्रत संचरण, समिति पंच परकार।
प्रबल पंच इंद्री-विजय, धार निर्जरा सार ॥१०॥

(१०) लोक— चौदह राजु उतंग नभ, लोक पुरुष संठान।
तामें जीव अनादिसे, भरमत हैं बिन ज्ञान ॥११॥

(११) बोध दुर्लभ— धनकनकंचन राजसुख, सबहि सुलभ कर जान।
दुर्लभ है संसार में, एक यथारथ ज्ञान ॥१२॥

(१२) धर्म भावना— याचें सुरतरु देय सुख, चिंतत चिंता रैन।
बिन याँचे बिन चिंतये, धर्म सकल सुख देन ॥१३॥

—:*:—

अथ निर्वाणकाण्ड भाषा

॥ दोहा ॥

वीतराग बंदौं सदा, भाव सहित सिर नाय।
कहूं काण्ड निर्वाण की भाषा सुगम बनाय ॥१॥

॥ चौपाई ॥

अष्टापद आदीश्वर स्वामि। वासुपूज्य चंपापुरि नामि॥
नेमिनाथ स्वामी गिरनार। बंदौं भाव भगति उर धार ॥२॥

चरम तीर्थंकर चरम शरीर। पावापुर स्वामी महावीर॥
शिखरसमेद जिनेसुर बीस। भाव सहित बंदौं निशदीस ॥३॥

वरदतराय रु इंद मुनिंद। सायरदत्त आदि गुण वृन्द॥
नगरतारवर मुनि उठकोडि। बंदौं भाव सहित कर जोड़ि ॥४॥

श्री गिरनार शिखर विख्यात। कोड़ि बहत्तर अरु सौ सात॥
संबु प्रदुम्न कुमर द्वै भाय। अनिरुध आदि नमूं तसु पाय ॥५॥

रामचंद्र के सुत द्वै वीर। लाड नरिंद आदि गुण धीर॥
पांच कोड़ि मुनि मुक्ति मझार। पावागिरि बंदौं निरधार ॥६॥

पांडव तीन द्रविड राजान। आठ कोड़ि मुनि मुकति पयान॥
श्री शत्रुंजय गिरि के सीस। भाव सहित बंदौं निशदीस ॥७॥

जे बलभद्र मुकति में गये। आठ कोड़ि मुनि औरहु भये॥
श्री गजपंथ शिखर सुविशाल। तिनके चरण नमूं तिहुं काल ॥८॥

राम हणू सुग्रीव सुडील। गव गवाख्य नील महानील॥
कोड़ि निन्याणव मुक्ति पयान। तुंगीगिरि बंदौं धरि ध्यान ॥९॥

नंग अनंग कुमार सुजान। पाँच कोड़ि अरु अर्ध प्रमान॥
मुक्ति गये सोनागिरि शीश। ते बंदौं त्रिभुवनपति ईस ॥१०॥

रावण के सुत आदिकुमार। मुक्ति गये रेवातट सार ।।
कोटि पंच अरु लाख पचास। ते बंदौं धरि परम हुलास ।।११।।
रेवा नदी सिद्धवर कूट। पश्चिम दिशा देह जहँ छूट ।।
द्वै चक्री दश काम कुमार। ऊठ कोड़ि बंदौं भव पार ।।१२।।
बड़वानी बड़नयर सुचंग। दक्षिण दिशि गिरि चूल उतंग ।।
इंद्रजीत अरु कुंभ जु कर्ण। ते बंदौं भवसागर तर्ण ।।१३।।
सुवरण भद्र आदि मुनि चार। पावागिरिवर-शिखर-मँझार ।।
चेलना नदी तीर के पास। मुक्ति गये बंदौं नित तास ।।१४।।
फलहोड़ी बड़गाम अनूप। पश्चिम दिशा द्रोणगिरि रूप ।।
गुरु दत्तादि मुनीसुर जहाँ। मुक्ति गये बंदौ नित तहाँ ।।१५।।
बाल महाबाल मुनि दोय। नाग कुमार मिले त्रय होय ।।
श्री अष्टापद मुक्ति मँझार। ते बंदौं नित सुरत सँभार ।।१६।।
अचलापुर की दिश ईसान। तहाँ मेढ़गिरि नाम प्रधान ।।
साढ़े तीन कोड़ि मुनिराय। तिनके चरण नमूं चितलाय ।।१७।।
वंसस्थल वन के ढिग होय। पश्चिम दिशा कुंथुगिरि सोय ।।
कुलभूषण दिशिभूषण नाम। तिनके चरणन करूं प्रणाम ।।१८।।
जशरथ राजा के सुत कहे। देश कलिंग पाँचसौ लहे ।।
कोटि शिला गुरु कोटि प्रमान। बंदन करूं जोर जुगपान ।।१९।।
समवसरण श्री पार्श्वजिनंद। रेसिंदी गिरि नयनानंद ।।
वरदत्तादि पंच ऋषिराज। ते बंदौं नित धरम जिहाज ।।२०।।
तीन लोक के तीरथ जहाँ। नित प्रति वंदन कीजै तहाँ ।।
मन वच काय सहित सिर नाय। वंदन करहिं भविक गुण गाय ।।२१।।
संवत सतरहसौ इकताल। आश्विन सुदि दशमी सुविशाल ।।
'भैया' वंदन करहिं त्रिकाल। जय निर्वाणकाण्ड गुणमाल ।।२२।



बाईस परीषह

क्षुधा तृषा हिम उष्ण दंशमंशक दुःख भारी ।
निरावरण तन अरति खेद उपजावत नारी ।।
चर्या आसन शयन दुष्टवायस वध-वंधन ।
याचें नहीं अलाभ रोग तृण स्पर्श निबन्धन ।।
मलजनित मान सम्मान वशप्रज्ञा और अज्ञानकर ।
दर्शन मलिन बाईस सब साधु परीषह जान नर ।।

* दोहा *

सूत्र पाठ अनुसार ये, कहे परीषह नाम ।
इनके दुःख जे मुनि सहैं, तिन प्रति सदा प्रणाम ।।

१ क्षुधा परीषह

अनशन उनोदर तप पोषत है, पक्ष मास दिन बीत गये हैं ।
जो नहीं बने योग्य भिक्षा विधि सूख अंग सब शिथिल भये है ।।
तब तहां दुःसह भूख की वेदन सहित साधु नहीं नेक नये हैं ।
तिनके चरण कमल प्रति प्रतिदिन हाथ जोड़ हम शीश नये है ।।

२. तृषा परीषह

पराधीन मुनिवर की भिक्षा पर घर लेय कहें कछु नाहीं ।
प्रकृति विरुद्ध पारणाभुंजत बढ़त प्यास की त्रास तहाँ ही ।।
ग्रीषम काल पित्त अति कोपे लोचन दोय फिरें जब जाहीं ।
नीर न चहैं सहैं ऐसे मुनि जयवन्तों वर्तो जग माहीं ।।

३. शीत परीषह

शीतकाल सबही जन कम्पें खड़े जहाँ वन वृक्ष डहे हैं ।
झंझा वायु चलै वर्षा ऋतु वर्षत बादल झूम रहे हैं ।।
तहाँ धीर तटिनी तट चौपट ताल पाल पर कर्म दहे हैं ।
सहैं सम्हाल शीत की बाधा ते मुनि तारण तरण कहे हैं ।।

४. उष्ण परीषह

भूख प्यास पीड़े उर अन्तर प्रज्वले आंत देह सब दागे ।

अग्नि स्वरूप धूप ग्रीषम की ताती वायु झालसी लागे ॥
तपं पहाड़ ताप तन उपजे कोप पित्त दाह ज्वर जागे ।
इत्यादिक गर्मी की बाधा सहै साधु धीरज नहिं त्यागे ॥

५. दंशमशक परीषह

दंश मशक माखी तनु काटें पीड़ें वन पक्षी बहुतेरे ।
डसें व्याल विषहारे विच्छू लगैं खजूरे आन घनेरे ॥
सिंघ स्याल शुण्डाल सतावें रीछ रोज दुख देंय घनेरे ।
ऐसे कष्ट सहै समभावन ते मुनिराज हरो अघ मेरे ॥

६. नग्न परीषह

अन्तर विषय वासना वर्तै बाहिर लोक लाज भय भारी ।
तातैं परम दिगम्बर मुद्रा धर नहिं सकै दीन संसारी ॥
ऐसी दुर्द्धर नग्न परीषह जीतें साधु शील व्रत धारी ।
निर्विकार बालकवत् निर्भय तिनके पांयन धोक हमारी ॥

७. अरति परीषह

देश काल को कारण लहिके होत अचंन अनेक प्रकारैं ।
तब तहां खिन्न होयें जगवासी कलवलाय थिरतापन छारैं ॥
ऐसी अरति परीषह उपजत तहाँ धीर धीरज उर धारें ।
ऐसे साधुन को उर अन्तर बसौ निरन्तर नाम हमारे ॥

८. स्त्री परीषह

जे प्रधान केहरि को पकड़ें पन्नग पकड़ पान से चम्पत ।
जिनकी तनक देख भौं बांकी कोटिन सूर दीनता जम्पत ॥
ऐसे पुरुष पहाड़ उठावन प्रलय पवन त्रिय वेद पयम्पत ।
धन्य-धन्य ते साधु साहसी मन सुमेरु जिनको नहिं कम्पत ॥

६. चर्य्या परीषह

चार हाथ परिमाण निरख पथ चलत दृष्टि इत उत नहिं तानें ।
कोमल पांव कठिन धरती पर धरत धीर बाधा नहिं मानें ॥
नाग तुरङ्ग पालकी चढ़ते ते सर्वादि याद नहिं आनें ।
यों मुनिराज सहैं चर्य्या दुख तब दृढ़ कर्म कुलाचल भानें ॥

१०. आसन परीषह

गुफा मसान शैल तरु कोटर निवसैं जहाँ शुद्ध भू हेरैं।
परिमित काल रहैं निश्चल तन बार-बार आसन नहिं फेरैं॥
मानुष देव अचेतन पशु कृत बैठे विपत आन जब घेरे।
ठौर न तजैं भजैं थिरतापद ते गुरु सदा बसौ उर मेरे॥

११. शयन परीषह

जे महान् सोने के महलन सुन्दर सेज सोय सुख जोवें।
ते अब अचल अङ्ग एकासन कोमल कठिन भूमि पर सोवें॥
पाहन खण्ड कठोर कांकड़ी गड़त कोर कायर नहिं होवें।
ऐसी शयन परीषह जीतें ते मुनि कर्म कालिमा धोवें॥

१२ आक्रोश परीषह

जगत जीवयावन्त चराचर सबके हित सबको सुखदानी।
तिन्हें देख दुर्वचन कहैं शठ पाखण्डी ठग यह अभिमानी॥
मारो याहि पकड़ पापी को तपसी भेष चोर है छानी।
ऐसे कुवचन वाण की वेला क्षमा ढाल औढें मुनि ज्ञानी॥

१३. वध वन्धन परीषह

निरपराध निर्वैर महामुनि तिनको दुष्ट लोग मिल मारैं।
कोई खेंच खम्भ से बांधैं कोई पावक में परजारैं॥
तहां कोप नहिं करैं कदाचित पूरब कर्म विपाक विचारैं।
समरथ होय सहैं वध बन्धन ते गुरु सदा सहाय हमारैं।

१४. याचना परीषह

घोर वीर तप करत तपोधन भये क्षीण सूखी गलबांही।
अस्थि चाम अवशेष रहो तन नसां जाल झलके जिस मांहीं॥
औषधि असन पान इत्यादिक प्राण जाउ पर जांचत नांहीं।
दुर्द्धर अयाचीक व्रत धारैं करहिं न मलिन धर्म परछांहीं॥

१५. अलाभ परीषह

एक बार भोजन की बिरियां मौन साध बस्ती में आवें।
जो नहिं बने योग भिक्षा विधि तो महन्त मन खेद न लावे॥
ऐसे भ्रमत बहुत दिन बीतें तब तप वृद्धि भावना भावें।
यों अलाभ की कठिन परीषह सहें साधु सोही शिव पावें॥

१६. रोग परीषह

वात पित्त कफ श्रोणित चारों ये जब घटें बढ़ें तन माहीं।
रोग सयोग शोक जब उपजत जगत जीव कायर हो जाहीं॥
ऐसी व्याधि वेदना दारुण सहै सूर उपचार न चाहीं।
आतमलीन विरक्त देह से जैन यती निज नेम निवाहीं॥

१७ तृण स्पर्श परीषह

सूखे तृण और तीक्षण कांटे कठिन कांकरी पांय विदारें।
रज उड़ आन परैं लोचन में तीर फांस तनु पीर पिथारैं॥
तापर पर सहाय नहिं वांछत अपने करसों काढ़ न डारें।
यों तृण परस परीषह विजयी ते गुरु भव भव शरण हमारे॥

१८ मल परीषह

यावज्जीवन जल न्हौन तजो नित नग्न रूप बन थान खड़े हैं।
चले पसेव धूप की विरियां उड़त धूल सब अंग भरे है॥
मलिन देह को देख महा मुनि मलिन भाव उर नाहिं करे हैं।
यों मल जनित परीषह जीतें तिनहिं पाँय हम सीस धरे हैं॥

१९ सत्कार तिरस्कार परीषह

जे महान विद्या निधि विजयी चिर तपसी गुण अतुल भरे हैं।
तिनकी विनय वचन सों अथवा उठ प्रणाम जन नाहिं करे हैं॥
तो मुनि तहां खेद नहिं मानें उर मलीनता भाव हरे हैं।
ऐसे परम साधु के अहर्निशि हाथ जोड़ हम पांय परे हैं।

२०. प्रज्ञा परीषह

तर्क छन्द व्याकरण कलानिधि आगम अलंकार पढ़ जानें।
जाकी सुमति देख परवादी विलखे होंय लाख उर आनें॥
जैसे सुनत नाद केहरि को वन गयन्द भाजत भय भानें।
ऐसो महाबुद्धि के भाजन ये मुनीश मद रञ्च न ठानें॥

२१. अज्ञान परीषह

सावधान वर्तें निशि वासर संयम शूर परम वैरागी।
पालत गुप्ति गये दीरघ दिन सकल सङ्ग ममता पर त्यागी॥
अवधि ज्ञान अथवा मन पर्यय केवल ऋद्धि न आजहूं जागी।
यों विकल्प नहिं करें तपोधन सो अज्ञान विजयी बड़ भागी॥

२२. अदर्शन परीषह

में चिरकाल घोर तप कीनों अजहूं ऋद्धि अतिशय नहिं जागे ।
तप बल सिद्ध होय सब सुनियत सो कछु बात झूठ सी लागे ।।
यों कदापि चित में नहि चिन्तत समकित शुद्ध शान्तिरस पागे ।
सोई साधु अदर्शन विजयी ताके दर्शन से अघ भागे ।।

किस कर्म के उदय से कौनसी परीषह होती है ।

ज्ञानावरणी से दोय प्रज्ञा अज्ञान होय एक महामोहते अदर्शन बखानिये ।
अन्तराय कर्म सेती उपजे अलाभ दुःख सप्त चारित्र मोहनी केवल जानिये ।।
नग्न निषध्यानारीमान सन्मान गारियाचना अरति सब ग्यारह ठीक ठानिये ।
एकादश बाकीरही वेदनी उदय से कहीं बाईस परीषह उदय ऐसे उर आनिये ।

आडिल्ल छन्द

एक बार इन माहिं एक मुनि के कहो ।
सब उन्नीस उत्कृष्ट उदय आवें सहो ।।
आसन शयन विहार दोइ इन माहिं की ।
शीत उष्ण में एक तीन ये नाहिं की ।।

—इति बाईस परीषह समाप्त—

सिद्ध स्वरूप

अविनाशी अविकार परमरस धाम हो ।
समाधान सर्वज्ञ सहज अभिराम हो ।।
शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध अनादि अनंत है ।
जगत शिरोमणि सिद्ध सदा जयवंत है ।।
ध्यान अग्निकरि कर्म कलंक सबही दहे ।।
नित्य निरंजन देवस्वरूपी हो रहे ।।
ज्ञायक के आकार ममत्व निवार के ।
सो परमातम सिद्ध नमूं शिर नायके ।।
अविचल ज्ञान प्रकाशते गुण अनन्त की खान ।
ध्यान धरत शिव पाइये परम सिद्ध भगवान ।।१।।

।। इति शुभ भवतु ।।

श्री १०८ आचार्य शान्ति सागराय नमः कृत्वामया चन्द्रसागरं आर्य्येण
सम्पूर्ण करिस्यामि २४५५ भाद्रपदमासे कृष्णा ३ ।